महाभारत का
आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर
प्रभाव

महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव

(दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

डॉ० विनय



सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-७

प्रथम संस्करण	:	१९६६
प्रकाशक	:	सन्मार्ग प्रकाशन १६, यू० बी० बंगलो रोड, दिल्ली-७
मूल्य राज संस्करण	:	पच्चीस रुपए
मुद्रक	:	शुक्ला प्रिंटिंग एजेन्सी द्वारा, इण्डिया प्रिंटर्स दिल्ली

समर्पित

कविवर डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' को

सादर

हमारी योजना

'महाभारत का आधुनिक प्रबन्ध-काव्यो पर प्रभाव' हिन्दी-अनुसन्धान-परिषद् ग्रथमाला का ३९वा ग्रथ है। 'हिन्दी अनुसधान परिषद्' हिन्दी-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की सस्था है, जिसकी स्थापना अक्तूबर, सन् १९५२ मे हुई थी। परिषद् के मुख्यत दो उद्देश्य हैं। हिन्दी-वाङ्मय-विषयक गवेषणात्मक अनुशीलन तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

अब तक परिषद् की ओर से अनेक महत्वपूर्ण ग्रथो का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रथ तीन प्रकार के हैं—एक तो व जिनमे प्राचीन काव्य शास्त्रीय ग्रथो का हिन्दी रूपान्तर विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओ के साथ प्रस्तुत किया गया है, दूसरे वे जिन पर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की गई है, और तीसरे ऐसे हैं, जिनका अनुसधान के साथ—उसके सिद्धान्त और व्यवहार दोनो पक्षो के साथ—प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रथ हैं—(१) हिन्दी-काव्यालकार सूत्र, (२) हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, (३) अरस्तू का काव्य शास्त्र, (४) हिन्दी-काव्यादर्श, (५) अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, (हिन्दी रूपान्तर), (६) पाश्चात्य काव्य-शास्त्र की परम्परा, (७) होरेस कृत 'काव्यकला', (८) हिन्दी अभिनव भारती, (९) हिन्दी-काव्यप्रकाश, (१०) हिन्दी-नाट्यदर्पण, (११) सौन्दर्य-तत्व और काव्य-सिद्धात, (१२) हिन्दी भक्तिरसामृत सिन्धु, (१३) रुद्रट-प्रणीत 'काव्यालकार'।

द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रथ हैं—(१) मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, (२) हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, (३) सूफीमत और हिन्दीसाहित्य, (४) अपभ्रश साहित्य, (५) राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धात और साहित्य, (६) सूर की काव्य कला, (७) हिन्दी मे भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा, (८) मैथिलीशरणगुप्त कवि और भारतीय सस्कृति के आख्याता, (९) हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य, (१०) मतिराम कवि और आचार्य, (११) आधुनिक हिन्दी कवियो के काव्य सिद्धात, (१२) व्रजभाषा के कृष्णकाव्य मे माधुर्य भक्ति (१३) प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास, (१४) हिन्दी मे नीतिकाव्य का विकास, (१५)

आधुनिक हिन्दी-मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन, (१६) आधुनिक हिन्दी-काव्य की रूप विधाएं, (१७) गुरुमुखी लिपि मे हिन्दीकाव्य, (१८) रामकाव्य की परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, (१९) भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत तीन ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है।

(१) अनुसंधान का स्वरूप, (२) हिन्दी के स्वीकृत शोध-प्रबन्ध, (३) अनुसंधान की प्रक्रिया।

प्रस्तुत ग्रंथ 'महाभारत का आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों पर प्रभाव' द्वितीय वर्ग का बीसवां प्रकाशन है। इसमें आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की कथावस्तु, चरित्र-सृष्टि तथा धर्म-दर्शन पर महाभारत के प्रभाव का सूक्ष्म-गहन विश्लेषण किया गया है। महाभारत हमारे जातीय जीवन का सांस्कृतिक कोश है जिसका व्यक्त-अव्यक्त प्रभाव प्रायः सभी भाषाओं के कवियों पर पड़ा है। इस प्रभाव के आकलन का दिशा-निर्देश कर डॉ० विनयकुमार ने निश्चय ही एक शुभ कार्य का श्रीगणेश किया है। हम अपनी शुभकामनाओं सहित इस शोध-प्रबन्ध को विज्ञ पाठकों की सेवा में अर्पित करते हैं।

परिषद् की प्रकाशन योजना को कार्यान्वित करने में हमें हिन्दी की अनेक प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। उन सभी के प्रति हम परिषद् की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

डॉ० नगेन्द्र
अध्यक्ष
हिन्दी-अनुसंधान-परिषद्

भूमिका

प्रस्तुत ग्रन्थ शोध-प्रबन्ध है। इसकी रचना यह दिखाने को की गयी है कि आधुनिक हिन्दी-प्रबन्ध काव्यों पर महाभारत का प्रभाव कहाँ-कहाँ और किन-किन रूपों मे पडा है। लेखक ने आधुनिक युग का आरम्भ भारतेन्दु से माना है और तब से लेकर आज तक महाभारत को उपजीव्य मान कर हिन्दी मे जितने भी प्रबन्ध काव्य लिखे गये है, अपने जानते, उन्होंने उन सभी काव्यों पर विचार किया है। किन्तु, उनकी सूची लम्बी होने पर भी अधूरी रह गयी। उदाहरणार्थ, कर्ण पर एक छोटा प्रबन्ध-काव्य बिहार के कवि पंडित केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' का भी है, और एकलव्य पर एक प्रबन्ध कविता श्री रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' ने भी लिखी है। किन्तु इन दो काव्यों के नाम इस ग्रन्थ मे नहीं लिये गये हैं। लेकिन, इस प्रबन्ध का सबसे बडा अभाव यह है कि इसमे डाक्टर धर्मवीर भारती के 'अधा युग' का कही भी उल्लेख नहीं है। इस शोध प्रबन्ध मे 'अधा युग' का विवेचन उपयोगी होता क्योंकि महाभारतीय पात्रो और घटनाओ की अद्यतन व्याख्या उसी काव्य मे मिलती है।

रामायण और महाभारत, ये दो महाकाव्य पिछले दो हजार वर्षों से समस्त भारतीय साहित्य के उपजीव्य रहे हैं, बल्कि, यह कहना चाहिये कि महाभारत से प्रेरणा लेकर लिखे गये काव्यो और नाटको की सख्या संस्कृत मे भी बडी थी और यह सख्या भारत की अर्वाचीन भाषाओ मे भी विशाल है। महाभारत भारतीय सस्कृति का आधार ग्रन्थ है। जब-जब हमारी सस्कृति मे परिवर्तन आते हैं, महाभारतीय चरित्रो की नवीन व्याख्याएं प्रस्तुत की जाती हैं और उनके द्वारा सस्कृति के परिवर्तनो पर प्रकाश डाला जाता है।

भारतीय सस्कृति में जितना बडा परिवर्तन उन्नीसवीं सदी मे घटित हुआ, उतना बडा परिवर्तन पहले और कभी घटित नहीं हुआ था। परिवर्तन की वह धारा आज भी बह रही है और हम सब उसके प्रवाह मे हैं। इस बीच महाभारत की कथाओ को लेकर हिन्दी मे जो काव्य लिखे गये, उनमे से जीवन्त उन्हें मानना चाहिये जिनमे हमारे सास्कृतिक नव जागरण के सन्देश सुनायी देते हैं। इस दृष्टि से मैथिलीशरण जी गुप्त की कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं क्योंकि उनके भीतर से धर्म का प्रवृत्तिवादी रूप अपना पथ प्रशस्त करता है। भारत का सबसे बडा अपराध यह

था कि वह निवृत्ति के अंधकार में खो गया था। नये भारत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रवृत्ति की महिमा को समझने लगा है। यह दृष्टि हमें पं० द्वारिका प्रसाद जी मिश्र के कृष्णायन में भी प्रखर मिलती है। मिश्र जी ने कथा या चरित्र-चित्रण में महाभारत से जहाँ कहीं भी छूट ली है, उसका उद्देश्य युगधर्म-निरूपण के लिए ही सुविधा का प्रबन्ध है।

मुझे इसी प्रबन्ध से यह जानकारी हासिल हुई कि मिश्र जी के कृष्णायन से पूर्व हिन्दी में दो कृष्णायन और लिखे जा चुके थे; एक सन् १७८८ ई० में और एक सन् १९०३ ई० में। वैसे ब्रजभाषा में एक और कृष्णायन काव्य इधर हाल में ही बिहार में प्रकाशित हुआ है। उसके लेखक चंपारण (बिहार) के एक वयोवृद्ध कवि थे जो अब स्वर्गीय हो गये हैं। । वह ग्रन्थ भी काफी बड़ा है और संयोग से उसकी भूमिका लिखने का सौभाग्य कवि जी ने मुझे ही प्रदान किया था। कठिनाई यह है कि हिन्दी का क्षेत्र इतना विशाल है कि उसकी एक सीमा की आवाज दूसरी सीमा तक मुश्किल से पहुँच पाती है।

अच्छा हुआ कि महाभारत से प्रेरित अधिकांश काव्य-ग्रन्थों की समीक्षा इस एक शोध-प्रबन्ध में समाविष्ट हो गयी। इस ग्रन्थ में पहले तो महाभारत का परिचय दिया गया है। फिर यह बताया गया है कि आधुनिक युग के आरम्भ से पूर्व संस्कृत और हिन्दी के काव्यों पर महाभारत का कैसा प्रभाव पड़ा था। फिर महाभारतीय कथा के प्रभाव का पूर्ण विश्लेषण दिया गया है। उसके बाद लेखक ने विद्वत्तापूर्वक यह दिखलाया है कि महाभारत के पात्रों का चरित्र महाभारत में कैसा था और हिन्दी में वह कहाँ तक भिन्न हुआ है। यह खंड काफी रोचक है और ज्ञानवर्द्धक भी तथा उससे लेखक की गंभीर अध्ययनशीलता पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। फिर लेखक ने यह दिखलाने की कोशिश की है कि महाभारत में निरूपित धर्म का आख्यान आज के कवि कहाँ तक कर सके हैं और कहाँ-कहाँ उन्होंने इस धर्म को नया मोड़ दिया है। धर्म के बाद लेखक ने महाभारत के दर्शन को लिया है और यह दिखलाया है कि नये काव्य में इस दर्शन का निर्वाह कहाँ तक संभव हुआ है।

यह शोध-ग्रन्थ काव्य की विषयगत आलोचना का ग्रन्थ है। लेखक का ध्यान इस बात पर नहीं गया है कि महाभारत से प्रेरणा लेकर हिन्दी में जो असंख्य काव्य लिखे गये हैं, उनमें कवित्व सचमुच कितना है। जिस काव्य-ग्रन्थ में कवित्व नहीं होता, वह बहुत बार उल्लेख करने योग्य ग्रन्थ है या नहीं, इसे मैं संदिग्ध मानता हूँ। साहित्य की व्याख्या जो लोग समाजशास्त्रीय उद्देश्यों के लिए करते हैं, उन्हें भी सबसे पहले साहित्यिक ही होना चाहिये, क्योंकि साहित्य की नवीनता उसके विषयों तक ही सीमित नहीं होती, वह शब्दों में भी बोलती है, शैली-तन्त्र के भीतर से भी पुकार करती है।

किन्तु, शोध करने वाले युवा विद्वानों की विवशता थोड़ी-बहुत मैं भी जानता हूँ। सूक्ष्म को छोड़ देना उनके लिए इसलिये सुकर होता है, क्योंकि स्थूल को छोड़ने

को उन्हें छूट नहीं होती।

डाक्टर विनयकुमार शर्मा को मैं बधाई देता हूँ कि उन्होंने एक ऐसा प्रबन्ध हिन्दी को प्रदान किया है, जो रोचक और ज्ञानवर्द्धक है तथा जिसके प्रकाश में आगे के विद्वान और भी अच्छा काम कर सकेंगे। डाक्टर शर्मा की भाषा बलवती और स्वच्छ है तथा उनकी चिंतन पद्धति उलझी हुई नहीं है। वे जो बात कहना चाहते हैं, उसकी भाषा उन्हें सुलभ रहती है। यह लेखकों के लिए एक दुर्लभ गुण है। मुझे आशा है कि भविष्य में डाक्टर शर्मा की इस दुर्लभ शक्ति से हिन्दी को और भी लाभ पहुँचेगा।

२, साउथ एवेन्यू लेन
नई दिल्ली
२४ मई, १९६६ ई०

रामधारी सिंह 'दिनकर'

प्राक्कथन

हिन्दी की आधुनिक काव्यधारा पौर्वात्य और पाश्चात्य जीवन-मूल्यों के आंशिक समन्वय पर आधारित है। आधुनिक युग का कवि अपने परिवेश के प्रति अधिक सजग एवं सक्रिय रहते हुए अपनी सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान के सूत्र भी खोजता रहा है। स्वाभाविक रूप से उसकी दृष्टि अपने अतीत के साहित्य की ओर भी गई है। आज के युग का विप्लव जिन नैतिक मूल्यों की पृष्ठभूमि में निर्मित हुआ है उसी प्रकार की परिस्थितियों का आटोप महाभारत युग में घटित हुआ था। अनेक वैयक्तिक और सामाजिक आदर्शों के लिए समाज और साहित्य ने इस युग में भी महाभारत का अनुकरण किया है। आधुनिक काव्य के स्वरूप को यथावत् समझने के लिए महाभारत की इस प्रभाव-परम्परा का अध्ययन अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का यही प्रतिपाद्य है। महाभारत का प्रभाव विशेष रूप से प्रबन्ध काव्यों पर ही पड़ा है क्योंकि प्रबन्ध काव्य के रचयिता की दृष्टि जातीय, एवं सांस्कृतिक संरक्षण की महत् प्रेरणा से व्याप्त रहती है अतः प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विवेच्य साहित्य महाभारत-प्रभावित आधुनिक हिन्दी-प्रबन्धकाव्य है।

प्रत्येक युग का काव्य सामयिक समस्याओं का परीक्षण युग-निरपेक्ष सिद्धान्तों के निकष पर करता है, ऐसे सिद्धान्त शाश्वत होते हैं, उनमें सामाजिक अन्तश्चेतना की अविच्छिन्न परम्परा विद्यमान रहती है। प्राचीन का पुनरावलोकन उन्हीं जीवन संगतियों का युगीन अनुसंधान होता है और नवीन कथा-रूपों में प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों की पुनर्व्याख्या होती है। हिन्दी के आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में महाभारत की प्रभाव-परिणति भी इन दोनों रूपों में देखी जा सकती है।

शोध-दृष्टि

(१) महाभारत से प्रभावित प्रकाशित ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक हस्तलिखित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रस्तुत संदर्भ में प्रथम बार प्रयोग किया गया है। इनमें से महत्वपूर्ण रचनाओं को विशेष रूप से अपने अध्ययन का आधार बनाया है तथा सामान्य रचनाओं का परिचय मात्र दिया गया है।

(२) हिन्दी के आधुनिक प्रबन्धकाव्यों पर महाभारत के प्रभाव के निमित्त महाभारतीय पात्र, कथा और जीवन दर्शन के प्रति कवि की वैयक्तिक विचारधारा को महत्व दिया गया है। प्राचीन और अर्वाचीन चिन्तन धारा का समन्वय और अन्योन्याश्रित विवेचन करते हुए आधुनिक कवि ने महाभारत की कथा को, युगीन परिवेश मे जिस दृष्टि से प्रस्तुत किया, उसकी उपलब्धि का अनुसधान इस शोध-प्रबन्ध के उद्देश्यो मे से एक है।

(३) जिन कवियो ने महाभारत की कथा को काव्य का विषय बनाया है उनके उद्देश्य को समीक्षा करते हुए कथा-परिवर्तन के औचित्य की मीमांसा भी की गई है।

(४) कथा, पात्र-चित्रण और सिद्धातो की दृष्टि से महाभारत का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी आधुनिक कवियो ने जहाँ अपने उपजीव्य ग्रन्थ से मतभेद प्रस्तुत किया है अथवा उसमे नवीनता का आकलन किया है, उन स्थलो की समीक्षा आधुनिक कवि के युगीन परिवेश के मूल्याकन के साथ उसे सम्पूर्ण महत्व देकर प्रकाशित की गई है।

प्रस्तुत अध्ययन

इस शोध-प्रबन्ध मे सात अध्याय हैं। १ महाभारत का सामान्य परिचय, २ आधुनिक हिंदी प्रबन्ध काव्य । एक सर्वेक्षण, ३ आधुनिक हिन्दी काव्य-पूर्व महाभारत की प्रभाव-परम्परा, ४ महाभारत की कथा का प्रभाव, ५ महाभारत के चरित्र-चित्रण का प्रभाव, ६ महाभारत की धर्म विधि का प्रभाव, और ७ महाभारत के दर्शन का प्रभाव।

प्रथम अध्याय मे महाभारत के महत्व पर विस्तार से विचार किया गया है। भारतीय सास्कृतिक परम्परा मे महाभारत इतिहास, धर्म ग्रन्थ, महाकाव्य, नीतिग्रन्थ के रूप मे समादृत है। इस अध्याय मे अनेक अन्त और बाह्य साक्ष्यो से महाभारत के उक्त समस्त रूपो की समीक्षा है। महाभारत के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए उसकी विभिन्न विचार-सरणियाँ, दार्शनिक समन्वय और सामाजिक चिंतन की मीमासा की गई है। प्रतिपादन शैली शीर्षकान्तर्गत महाभारत की अनेक वर्णन-शैलियो पर विचार किया है।

द्वितीय अध्याय मे महाभारत से प्रभावित आधुनिक हिंदी प्रबन्ध काव्यो का सर्वेक्षण प्रस्तुत है। सन १८७४ से महाभारतीय आख्यानात्मक खण्ड काव्यो की अविच्छिन्न परम्परा विद्यमान है। इसमे ५० ग्रन्थो का परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय मे आधुनिक हिन्दी-काव्य पूर्व महाभारत की प्रभाव परम्परा का आलेखन है। सस्कृत, पालि अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य मे उपलब्ध महाभारतीय शाय-सम्पन्न काव्यो और विभिन्न काव्य-धाराओ पर महाभारत के प्रभाव की समीक्षा

की गई है। इस अध्याय मे परिचयात्मक दृष्टि को अपनाया गया है क्योंकि प्रस्तुत प्रबंध का वास्तविक क्षेत्र आधुनिक प्रबन्ध काव्य है। इसमें एक विकसित अविच्छिन्न परम्परा से यह ज्ञात हो जाता है कि महाभारत से हमारे साहित्य के सभी युग प्रभावित हुए है और सबने अपनी आवश्यकतानुसार पूर्वजों की सम्पत्ति का उपयोग किया है।

चतुर्थ अध्याय में आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों के संदर्भ में महाभारत की कथा के प्रभाव की समीक्षा की गई है। महाभारत के प्रति प्रत्येक कवि की स्वतन्त्र दृष्टि के कारण पृथक् से कथा-संग्रह, परिवर्तन-परिवर्धन और समीक्षा आदि उपशीर्षकों मे आलोचना का क्रम रक्खा गया है। कथा-परिवर्तन मे कवि के अभिप्रेत जीवन-दर्शन की व्याख्या करते हुए उसके औचित्य पर विचार किया है।

पंचम अध्याय मे महाभारत के चरित्र-चित्रण के प्रभाव की समीक्षा है। आधुनिक कवि की सामाजिक मनोवैज्ञानिक और आदर्शवादी दृष्टि के कारण महाभारत के स्थिर पात्र नवीन रूप में उपस्थित हुए हैं। यह नवीनता कहीं पर सामान्य परिवर्तन मात्र से व्यक्त है और कही पर मानसिक द्वन्द्व की अवतारणा से पात्रों की दिव्यता को स्वाभाविक मनुजता में परिवर्तित करके अभिव्यक्त की गई है।

षष्ठ अध्याय में महाभारत की धर्म-विधि का प्रभाव विवेचित है। मानव-धर्म, स्त्री-धर्म, वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म आदि अनेक धर्म-रूपों के प्रभाव की समीक्षा युगीन परिवेश में की गई है। आधुनिक कवि ने धर्म के व्यापक अर्थ को भी अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया है। इस परिवर्तन का औचित्य कितनी सीमा में महाभारत के प्रभाव का परिणाम है और कितनी सीमा में आधुनिक युग का, इस तथ्य की समीक्षा करते हुए—आधुनिक चिन्तन-धारा का व्यापक विवेचन किया गया है।

सप्तम अध्याय में महाभारत के दर्शन विषयक प्रभाव की परीक्षा की गई है। महाभारत के विभिन्न दार्शनिक विचारों की विस्तृत व्याख्या करते हुए, आधुनिक कवि की दार्शनिक दृष्टि की मीमांसा की गई है। आधुनिक बुद्धिवाद, मनोविज्ञान के प्रभाव से दार्शनिक शब्दावली का आधुनिक प्रयोग जिस नवीन रूप में किया गया है, उसके औचित्य पर विचार करते हुए महाभारत के दार्शनिक विचारों के प्रभाव को प्रस्तुत किया गया है। जहां पर कवि महाभारत के दर्शन का संकेत मात्र ग्रहणकर स्वतन्त्र चिन्तन करता है वहां, उसकी सामाजिक उपलब्धि का मूल्यांकन करते हुए, सांस्कृतिक दृष्टि से परीक्षा की गई है।

यह प्रबन्ध डा० रामदत्त भारद्वाज पी-एच० डी०, डी० लिट० के निर्देशन में लिखा गया है। उनके कृपाभाव के प्रति मेरी मौन श्रद्धांजलि है।

इस प्रबन्ध के लेखन काल में सुहृद्वर डा० ओमप्रकाश शास्त्री और डा० शरण-बिहारी गोस्वामी तथा विनयकुमार मिश्र का बहुमूल्य सहयोग रहा है। इसके लिए उन्हें

धन्यवाद देकर अभिन्नता कम करने का मुझे कोई अधिकार नहीं। डा० सावित्री सिन्हा डा० विजयेन्द्र स्नातक, डा० ओमप्रकाश, डा० उदयभानु सिंह के सत्परामर्श से मैंने लाभ उठाया है, उसके लिए मैं अपने गुरुजनो का हृदय से आभारी हू।

और, अपनी पत्नी 'प्रमिल जी' के लिए क्या कहू, उनके अधिकार के समय को छीन कर ही तो मैं यह प्रबन्ध लिख सका हू।

श्रद्धेय गुरुवर डा० नगेन्द्र जी की शोध विषयक गम्भीर दृष्टि के आलोक ने निरन्तर मेरा मार्गदर्शन किया है। शिष्य होने के कारण मैं उनके स्नेह का सहज अधिकारी रहा हू। इसी स्नेह ने आद्योपान्त शक्तिशाली सम्बल बनकर मुझे कार्य करने की शक्ति दी है।

राष्ट्रकवि रामधारीसिंह 'दिनकर' जी ने पुस्तक को आद्योपान्त पढ कर और भूमिका लिख कर पुस्तक की क्षमता और मेरे साहस मे जितनी अधिक वृद्धि की है उसकी तुलना मे मेरा कृतज्ञता-ज्ञापन एव आभार-प्रदर्शन नितान्त अकिंचन है। मैं अपने सभी गुरुजनो के प्रति श्रद्धानत होता हुआ यह प्रबन्ध आप सब के समक्ष प्रस्तुत करता हू।

विनय

विषय-सूची



महाभारत : परिचय

महाकाव्य

धर्म-ग्रन्थ

नीति-ग्रन्थ

प्रतिपाद्य

प्रतिपादन शैली

प्रथम अध्याय

महाभारत परिचय

भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास जिन महान् ग्रन्थों से समुज्ज्वल है, उनमें 'रामायण-महाभारत' शीर्ष स्थान पर विराजमान हैं। भारतीय चिन्तन-धारा के अनवरत प्रवाह में—वैदिककाल, उपनिषत्काल महाकाव्यकाल आदि युग-खण्डों में प्रसरित विचारधारा, अनेक परिवर्तित मोड़ मुड़कों के साथ आधुनिक युग में, अपने नवीन स्वरूप से ज्योतित है। चिन्तन के इस सहज स्वाभाविक विकास में जीवन और जगत् के प्रति जिन सिद्धांतों का निर्माण हुआ, मानवेतर शक्ति की स्वरूप-कल्पना में जिन दर्शनों का अभ्युदय हुआ, वे किसी न किसी रूप में महाभारत में विद्यमान हैं।[1] 'महाभारत' नाम से ही ऐसे ग्रन्थ का आभास होता है, जिसमें महान् भारत की प्राण-धारा अपने सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो।

भारतीय महाकाव्यों में भारतीय जीवन के महिमामय अतीत को वाणी मिली है। इन्हीं महाकाव्यों के द्वारा आज हम अपने गरिमा-मंडित प्राचीन को यथावत् देख सकते हैं। 'वाल्मीकि' और 'व्यास' दोनों महाकवियों ने तत्कालीन भारतीय जीवन का सांगोपांग चित्रण इस रूप में किया कि वह एक व्यक्ति, काल अथवा देश की वस्तु न रहकर सार्वभौमिक और सार्वकालिक हो गई। इन महाकाव्यों में हमारी जातीय, सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा की प्राण-प्रतिष्ठा है। इन महाकाव्यों में किसी एक व्यक्ति के जीवन का आदर्श नहीं बोलता, एक युग अभिव्यक्त नहीं होता अपितु इनमें समस्त भारत का स्वरघोष है। यही कारण है कि समीक्षात्मिका बुद्धि की अनवरत चोटों से प्रताड़ित भारतीय हृदय इन ग्रन्थों के प्रति अविश्वसनीय नहीं हो पाता।

भारतीय संस्कृति और साहित्य का जिज्ञासु 'महाभारत' का अध्ययन काव्य, इतिहास, धर्म ग्रन्थ, नीति-ग्रन्थ आदि अनेक रूपों में करता है। इसके अतिरिक्त 'महाभारत' की विविधता और विशालता के मध्य ऐसे आख्यान विद्यमान हैं कि महा-भारतोत्तर रचनाकारों ने इस ग्रन्थ को प्रेरणास्रोत के रूप में स्वीकार किया है।

भारतभूमि के ज्ञानी-मनस्वी ऋषियों द्वारा युगयुगों से संचित और सुचिंतित जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या का एक मात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ 'महाभारत' है। इस महती कृति में अनेक ज्ञान-सरणियां, लोककथाएं, ऐतिहासिक आख्यान मिलकर एक प्राण हो गये हैं कि '*यन्न भारते तन्न भारते*' की युक्ति युक्त उक्ति शतप्रतिशत सत्य है।

---

१ धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥ म० आदि० ६२।५३

'महाभारत' के इस सार्वभौम महत्व के कारण हम उसे किसी एक ज्ञान-शाखा के अन्तर्गत नही रख सकते। वह पुराण, इतिहास, सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के ग्रन्थ के रूप में समादृत है।[१] इसमें भारतीय जीवन के धार्मिक आचार, पूजापाठ आदि के साथ, दया, करुणा, दाक्षिण्य, पशुपक्षी, देव-मानव, साधु-संतों की अन्य बातें उसके महत्व को और भी बढा देती हैं।[२] 'महाभारत' के वैविध्य पूर्ण प्रसग ऐसी शृंखला का निर्माण करते हैं जिसमे भारतीय तत्वज्ञान पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित है।[३] सैद्धान्तिक चिन्तन की प्रधानता के साथ पात्रों की उत्कृष्ट व्यावहारिकता 'महाभारत' की विशेषता है। सिद्धात और व्यवहार के ऐसे सन्तुलन का दृश्य 'रामायण' 'महाभारत' के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ मे दुर्लभ है।

पौराणिक काल की आख्यानात्मक प्रणाली तथा तत्कालीन जीवन की सागोपांग अभिव्यक्ति के कारण 'महाभारत' इतिहास-ग्रन्थ भी है। भारतवर्ष के प्राचीन ग्रन्थों में वेदों के उपरान्त ऐतिहासिक दृष्टि से 'महाभारत' का महत्व निर्विवाद है। वेदों का प्रमुख अंश पूजापाठ के विधानों मे आवृत्त है, इस कारण वैदिक साहित्य मे ऐतिहासिक अनुमान अस्पष्ट हैं। परन्तु 'महाभारत' मे अनेक ऐतिहासिक कथाएं एक ही स्थान पर सुरक्षित है।[४] 'महाभारत' का प्रथम श्लोक इस ग्रन्थ को 'जय' काव्य की संज्ञा देता है। 'जय' शब्द का अर्थ अनेक विद्वानों ने इतिहास के रूप मे भी लिया है।[५] प्राचीन काल में इतिहास लिखने की आधुनिक प्रणाली नहीं थी। उस युग मे पुराणाख्यानों मे ही इतिहास के तत्व विद्यमान है। सम्भवत: इस हेतु 'महाभारत' मे भी 'इतिहास' शब्द का प्रयोग है।

आचख्युः कवयः केचित् सम्प्रत्याचक्षते परे।
आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि ॥[६]

यहां 'इतिहास' शब्द घटना और नामांकन मात्र का बोधक नहीं। इतिहास नाम से 'महाभारत' के महत्व के अवमूल्यन का अनुमान नहीं होना चाहिए।

---

१. "They are religious ordinances as well as histories of actual incidences. Religious practices, prayers and resolutions are embodied in them."
—*The Mahabharata As A History And A Drama.* 1339, p. 21.

२. हिस्ट्री ऑव इंडियन लिटरेचर, विन्टरनित्ज, जिल्द १, पृ० ३१७

३. 'महाभारत का सबसे बड़ा गुण यही है कि वह तत्वज्ञान की भिन्न-भिन्न चर्चा से पाठकों का मनोरंजन और ज्ञान वृद्धि किया करता है'।
—महाभारत मीमांसा, पृ० ४७५

४. महाभारत मीमांसा. पृ० १,

५. "The Great History of Descendant of Bharata".
—*Chambers Encyclopaedia,* Vol. 8, p. 831.

६. म० आदि० १।२६

'हापकिन्स' ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि 'महाभारत' में आख्यान, उपाख्यान, इतिहास, आदि सभी शब्दों का प्रयोग समान अर्थों में किया गया है, और सभी में किसी प्राचीन घटना, निजन्धरी आख्यान का वर्णन है। इस प्रकार की कथाएं प्राचीन काल से पौराणिक विश्वासों में घुली मिली थीं। इनमें ऐतिहासिक तत्व भी विद्यमान थे।[1]

'महाभारत' को इतिहास कहने का मुख्य कारण यह है कि यह ग्रन्थ दो मुख्य वंशों के साथ अनेक अन्य वंशावलियों का साहित्यिक वर्णन करता है।[2] वंश-वर्णन की प्रधानता के कारण यह ग्रन्थ इतिहास की कोटि में भी आता है। किन्तु अपने अन्य महत्वपूर्ण तत्वों के कारण सामान्य इतिहास की कोटि से उठकर सम्पूर्ण जीवन का महाकाव्य और धर्मग्रन्थ बन जाता है। नैमिषारण्य में उग्रश्रवा जी के पहुंचने पर ऋषियों ने 'महाभारत' के महत्व को ऐतिहासिक ग्रन्थ, पुराण और धर्मग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है। ऋषि कहते हैं कि "श्रीकृष्ण द्वैपायन ने जिस प्राचीन इतिहास-रूप पुराण का वर्णन किया है, देवताओं तथा ऋषियों ने अपने-अपने लोक में श्रवण करके जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है, जो आख्यानों में सर्वश्रेष्ठ है जो सम्पूर्ण वेदों के तात्पर्यानुकूल अर्थों से अलंकृत है, उस भारतीय इतिहास के परम पुण्य युक्त भावों को, पदवाक्यों की व्युत्पत्ति से युक्त ग्रन्थ को, जो सब शास्त्रों के अनुकूल व्यवहारों से समर्थित है, उस व्यास की संहिता को हम सुनना चाहते हैं।"[3] इस कथन के आधार पर 'महाभारत' पुराण परम्परा का इतिहास भी सिद्ध होता है। सम्भवतः इसी आधार को लेकर कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने 'महाभारत' के प्रथम 'जय' रूप को इतिहास मात्र माना था। उनके अनुसार यह 'जय' इतिहास कौरव-पाण्डवों के युद्ध के रूप में लिखा गया होगा और बाद में इसे महाकाव्य का रूप मिला होगा।[4] यह तो निश्चित है कि सिद्धान्त-प्रतिपादन के लिए बाद में जुड़े उपाख्यानों की

---

१ दी ग्रेट इपिक आव इंडिया, पृ० ५०

२ म० आदि० १।९९-१०१

३ द्वैपायनेन तत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम्॥
तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः।
सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च॥
भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम्।
संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपबृंहिताम्॥
जनमेजयस्य यां राज्ञो वैशम्पायन उक्तवान्।
यथावत् स ऋषिस्तुष्ट्या सत्रे द्वैपायनाज्ञया॥ म० आदि० १।१७-२०

४ ए हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर, वा० १, पृ० ३१८-३२०, ३२४
हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० २८४-२८५

कथात्मक सरसता सम्भवत: 'जय' काव्य में न हो पर 'जय' काव्य को नितान्त इतिहास[1] नहीं माना जाना चाहिए।

महाकाव्य

महाकाव्य के रूप में 'महाभारत' की प्रतिष्ठा निर्विवाद है। स्वयं ग्रन्थ में इसे पूजित काव्य बताया गया है।

उवाच स महातेजा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परम पूजितम्॥[2]

इस पूजित महाकाव्य में कुरुओं का चरित्र[3] काव्यात्मक शैली में वर्णित है। कवित्व की पुष्टि के हेतु जितने आवश्यक तत्व माने गये हैं वे सभी 'महाभारत' में विद्यमान है। यह शुभ, ललित, मंगलमय शब्द-विन्यास से अलंकृत एवं वैदिक, लौकिक-संस्कृत, प्राकृत संकेतों से सुशोभित है। इसमें अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। अतः 'महाभारत' महाकाव्य के सम्पूर्ण विशेषणों से संयुक्त है।[4]

महाकाव्य का विषय और उद्देश्य महान् होना चाहिये, जिससे समाज में उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा हो सके, उसके विचार विषयानुरूप महान् हों और आदर्श तथा विचारों की प्रतिष्ठा संवादों तथा कथा के मध्य सरलता से होती रहे।[5]

विकसनशील महाकाव्य :—'महाभारत' विकसनशील महाकाव्य है। वह एक सम्पूर्ण युग की रचना है। विकासशील महाकाव्य में सैकड़ों वर्षों में अगणित कवियों की प्रतिभा का विकास होता है। ऐसे महाकाव्यों की अपनी कतिपय विशेषताएं होती हैं जो 'महाभारत' में सर्वांगीण रूप में पाई जाती हैं। वीरता की भावना का उदात्त वर्णन, वीर-चरित्रों का अभ्युदय, साहसिक कार्यों का अनुष्ठान, कथानक का विस्तार,

---

१. इतिहासप्रदीपेन मोहावरण घातिना।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् सम्प्रकाशितम्॥ म० आदि० १।८७

२. म० आदि० १। ६१

३. महाभारतमाख्यानं कुरुणां चरितं महत्। म० आदि० ६२।१

४. अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्य मानुषैः।
छन्दो वृत्तैश्च विविधैरन्वितं विदुषां प्रियम्॥म० आदि० १।२८

५. "The Subject of the Epic poem must be some one, great, complex action. The Principal personages must belong to the high places of society and must be grand and elevated in their ideas. The measure must be of a sonorous dignity befitting the subject. The Epic developed by a mixture of dialogue, soliloquy and narration".
—*The Mahabharata A criticism. P. 40*

महोद्देश्य, वस्तु-व्यापार वर्णन का आधिक्य, परिवर्तनशीलता और अनेक काव्य-रूढियों का समावेश[1] आदि कतिपय विशेषताए विकसनशील महाकाव्य को अन्य अलकृत महाकाव्यो से पृथक् करती है।

'महाभारत' का विकास वीर-युग मे हुआ। वीरयुगीन समस्त सामग्री के साथ इसकी मूल भावना मे वीरता और प्रेम का अद्भुत सम्मिश्रण है। वीर-चरित्रो के अभ्युदय की दृष्टि से यह काव्य अद्वितीय है। अर्जुन, कर्ण, भीष्म, भीम आदि ऐसे वीरचरित्र हैं, जिनके जीवन का लक्ष्य यश और सम्मान है, जिसे वे अपने धनुष की टकार के स्वरघोष तथा नैतिक चरित्र-बल से प्राप्त करते हैं। ऐसे वीर युद्ध मे विजय-हेतु किसी सैन्य बल की अपेक्षा नही करते, अपितु अपनी वैयक्तिक वीरता और शक्ति-प्रदर्शन के आश्रय पर ही, विजय के आकाक्षी होते हैं। ऐसी वैयक्तिक वीरता से सम्बन्धित अदभुत साहसिक कर्मों का व्यापक विधान इस ग्रन्थ मे व्यक्त हुआ है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इन वीर चरित्रो के साहसिक प्रयासो से चमत्कार का प्रदर्शन होता है। 'महाभारत' की कथा की एकान्विति अलकृत काव्यो की भाति समयनिष्ठ नही है। उसमे भूत और वर्तमान की अनेक गाथाएँ मूल कथा मे सन्निविष्ट होकर ग्रन्थ के कलेवर को बढाती हैं। अनेक कथाओ की अतिप्राकृत और अतिमानवीय रूपरेखा भी, युद्ध की कहानी से सग्रथित होकर मूल कथा का अभिन्न भाग बन गई हैं। इस रूप मे चि० वि० वैद्य का कथन सारगर्भित है "कि यद्यपि महाभारतकार ने अवान्तर कथाओ को प्रचुर मात्रा मे लिया है फिर भी उन्हे मूल कथा के भाग रूप मे ही मानना चाहिये।"[2] सिद्धात-निरूपण के लिए लघु आख्यानो को पीछे से जोड देना विकसनशील महाकाव्य का प्रमुख लक्षण है और यह लक्षण यहाँ आद्योपान्त व्याप्त है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—पुरुषार्थ चतुष्टय—के विषय मे जो कुछ 'महाभारत' मे है वही अन्यत्र हो सकता है। इस उक्ति के आधार पर इस महाकाव्य के व्यापक एव महान् उद्देश्य को जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त विकासशील महाकाव्य की सभी विशेषताओ से सयुक्त 'महाभारत' वेदो के गुप्त रहस्य और उपनिषदो के ज्ञान का भडार है।[3]

महाकाव्य का प्रणयन सस्कृति के महत्-पुण्य से होता है। महाकवि विश्व के हृदय को अपने हृदय मे अनुभवकर उसे जीवन की समग्र विशालता से चित्रित करता है। सस्कृति के पक्षविशेष का आदर्शात्मक विवेचन महाकवि का प्रमुख लक्ष्य होता है। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए महाकवि लोकजीवन के व्यापक आदर्शों को

---

१ विस्तार के लिए दे०—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ६४-६८

२ महाभारत मीमासा, पृ० ३३

३ अस्मिन् वेदरहस्य च यच्चान्यत् स्थापित मया।
साङ्गोपनिषदा चैव वेदानां विस्तरक्रिया। म० आदि० ११६२

अलंकृत कर, महाकाव्य में अनस्यूत करता है अतः महाकाव्य में जीवन का व्यापक चित्र होता है। अब महाकाव्य की मुख्य विशेषताओं के आधार पर 'महाभारत' की समीक्षा स्पृहणीय है।

महत्प्रेरणा, महोद्देश्य और महती काव्य-प्रतिभा :—'महाभारत' के रचयिता की महती काव्य-प्रतिभा असंदिग्ध है। इतने विशाल ग्रन्थ का प्रणयन चाहे कितने वर्षों में और कितने ही व्यक्तियों द्वारा हुआ हो, किन्तु उसके प्रथम रूप में अभिव्यक्त काव्य-प्रतिभा अद्वितीय है। काव्य की समस्त भावगत और कलागत विशेषताएँ यहाँ प्राण रूप में विद्यमान हैं, जिनसे परवर्ती काव्यकारों ने प्रेरणा ली है। भगवान वेदव्यास ने इस महाकाव्य की रचना में इतिहास और पुराणों का मथन करके उनका प्रशस्त रूप प्रकट किया है।[1] कोई भी विषय उनकी प्रतिभा-प्रकाश की सीमा से बाहर नहीं रह पाया। इसकी रचना-प्रेरणा के लिए उस युग की पृष्ठभूमि का ज्ञान आवश्यक है। 'महाभारत' की रचना अपने युग के विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों, दार्शनिक विचारों और जीव-जगत् की अनेक विध विशेषताओं के समन्वय के लिए हुई।[2] अतः 'महाभारत' की प्रेरणा कवि की लोक-मंगलकारी दृष्टि और संस्कृति की रक्षा तथा विशाल राष्ट्रनिर्माण की भावना का अभ्युदय मानी जा सकती है। 'महाभारत' का उद्देश्य महान् है। उसमें सत्य और धर्म की प्रतिष्ठा तथा असत्य का क्षय प्रतिपादित है। मानव-जीवन का मूल 'धर्म' है, और 'महाभारत' में धर्म का प्रतिपादन उसकी आत्मा की उच्चता है। इस सम्पूर्ण महाकाव्य में सत्य और धर्म की प्रतिष्ठा प्राणशक्ति के रूप में आद्योपान्त व्याप्त है। इसी व्याप्ति के कारण 'महाभारत' संस्कृति का कोष बन गया है। 'महाभारत' में क्षात्र-धर्म की प्रतिष्ठा है, और क्षात्र-धर्म के आधार पर ही परम ज्ञान का उपदेश दिया गया है। संहिता रूप में 'महाभारत' के दो मुख्य उद्देश्य—इतिहास के गौरव की रक्षा और धर्म-सिद्धि, प्रतीत होते हैं।

गाम्भीर्य और महत्व :—भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में 'महाभारत' का महत्व अद्वितीय है। 'महाभारत' के रचयिता की विराट-कल्पना शक्ति और गाम्भीर्य तथा सूक्ष्म मानसिक धरातल से लोक-जीवन की तरंगायित लोक कथाएँ महाकाव्य के कलेवर में सन्निविष्ट हो गई हैं। धर्म पर आधारित विशाल समाज की कल्पना 'व्यास' के समान महाकवि ही कर सकता था। अतः उसका महत्व धर्म-संस्थापन और उसके व्यावहारिक रूप का दिग्दर्शन कराने में है। उसके प्रथम संस्करण से अन्तिम संस्करण तक चाहे जितने परिवर्तन हुए हों, किन्तु उसकी मूल विचारधारा उसी प्रकार एक बनी रही, जिस प्रकार भागीरथी की पुण्यधारा में अनेक बाह्य लघु तरंगें रूपायिता होती हैं और पुण्य धारा अपने स्वरूप में प्रवाहित रहती है। 'महाभारत' के पात्रों

१. इतिहास पुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्। म० आदि० १।६३
२. म० आदि० २।६५-६६

के आचरण में वह गम्भीरता और महत्व विद्यमान है, जो किसी भी युग-पुरुष के लिए आदर्श हो सकता है।

कार्य और युगजीवन का समग्र चित्र —'महाभारत' में प्राचीन भारत अपनी वास्तविकता में अभिव्यक्त है। कुरुवंश की कथा का आधार लेकर, जिस महत्त्वपूर्ण कार्य, और कार्य के आश्रय 'महान् चरित्र' की अवतारणा इस ग्रन्थ में हुई है वह महाकार्य है 'धर्म की स्थापना' और महा चरित्र है 'भगवान् कृष्ण'। यदि केवल कथा के प्रत्यक्ष पात्रों के आधार पर इस बात की समीक्षा की जाये तो युधिष्ठिर का यह कथन कि धर्म के अतिरिक्त और कुछ साध्य नहीं और मैं जीवन और अमरत्व की अपेक्षा भी धर्म को ही महान् समझता हूँ राज्य पुत्र यश, धन और धन यह सब 'सत्य' धर्म की सोलहवीं कला को भी नहीं पा सकते'—'महाभारत' का महाकार्य माना जा सकता है। संसारी जीव अज्ञान के अन्धकार से अन्धे होकर छटपटा रहे हैं और 'महाभारत' ज्ञानांजन-शलाका को लगाकर उनके नेत्र खोलता है।[2] इस घोषणा में भी उसके महाकार्य का सम्पादन होता है। कौरव पाण्डव युद्ध भी महाकार्य है और इसका फल धर्मपक्षीय पाण्डवों की विजय में निहित है। युद्ध की अनिवार्य आवश्यकता और उसके उपरान्त सान्त्वना की उपलब्धियों के लिए सम्पूर्ण शान्तिपर्व की उपस्थापना की गई है। 'महाभारत' से हमें अपने अनेक प्राचीन राजवंशों और उनके इतिहास का ज्ञान होता है। उस काल में प्रतिष्ठित हमारी सांस्कृतिक मान्यताएँ, धार्मिक आचरणों के मूल्य, जीवन के अन्य लोक-व्यवहार, वाङ्मय मृत्यु भय, रोग आदि जीवन-परिस्थितियों का सम्यक चित्रण[3] तथा न्याय, शिक्षा चिकित्सा दान[4] आदि का विशद् निरूपण 'महाभारत' में उपलब्ध होता है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में सहस्रों वर्षों के सांस्कृतिक जीवन का चित्र प्रस्तुत है।

जीवन्त सुघठित कथानक —'महाभारत' की कथा अत्यन्त विस्तृत है। मूल युद्ध-कथा में अनेक अवान्तर कथाओं को जोड़कर कथानक की दृष्टि से 'महाभारत' का पर्याप्त विस्तार किया गया है। अत्यधिक विस्तार होते हुए भी उसमें एकता एवं पूर्णता है, और असम्बद्धता का अभाव है।[5] भगवान कृष्ण के विस्तृत चरित्र के उसी भाग को भारतीय युद्ध के साथ सम्बद्ध किया गया है जिसका सम्बन्ध युद्ध से है।[6] जितनी लघु और अवान्तर कथाएं उपलब्ध हैं वे भी किसी न किसी प्रकार 'महाभारत' की कथा से सुसम्बद्ध हैं। पौराणिक आख्यान होने के कारण बीच-बीच में प्राचीनकाल

---

१ म० वन० ३४।२२
२ म० आदि० १।८४-८५
३ म० आदि० १।६४
४ म० आदि० १।६७
५ महाभारत मीमांसा, पृ० ३३
६ वही, पृ० ३४

में अभ्युदित अनेक वंश-क्रमों को इसलिए दिया गया है कि 'महाभारत' का रचयिता इस ग्रन्थ को इतिहास, पुराण, धर्मग्रन्थ और राजनीतिशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता था।[1] कुरुवंश की कथा में अनेक देवताओं की कथा का सम्मिश्रण और अनेक स्वतन्त्र उपाख्यानों का आयोजन कथानक की विराटता का परिचायक है। यह कथानक काव्यशास्त्र में वर्णित कथा-रूप के समान न होकर भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह भारतीय जीवन का अमर ग्रन्थ है।[2] सिद्धान्त-प्रतिपादन की दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण स्वतंत्र उपाख्यानों को 'महाभारत' की मूल कथा में समाविष्ट कर इस विकसनशील महाकाव्य का सांस्कृतिक महत्व और भी बढ़ गया है। द्यूतवर्जन के हेतु नलोपाख्यान, स्त्रीधर्म-प्रतिपादन के लिए सावित्री का उपाख्यान, प्राचीनधर्म-प्रतिष्ठा के लिए रामोपाख्यान आदि ऐसे स्वतंत्र उपाख्यान हैं, जो यदि 'महाभारत' में न होते तो उनका उपयोग लोक-जीवन में और ही कुछ होता। अतः कथानक की दृष्टि से 'महाभारत' का महत्व अक्षुण्ण है, जिस कारण परवर्ती साहित्यकारों ने इससे अनेक कथा-रत्नों को चुनकर काव्यों की रचना की है। यूरोपियन पंडितों ने इसी विस्तार के कारण सम्भवतः 'महाभारत' को 'इपिक पोइट्री' कहा है।[3]

प्रत्येक देश के आदिकाव्य की परीक्षा करने पर विदित होता है कि उसका निर्माण लोक में फैली अनेक गाथाओं से होता है। लोकजीवन की ये गाथाएं साहित्य में प्रविष्ट होने पर स्थिर तो हो जाती हैं किन्तु इन के स्रोत का पता लगाना कठिन है। एक विस्तृत युग के अन्तराल में बनते-बिगड़ते हुए कई गाथा-रूप, चिरकाल से विकसित होते हुए गाथा-चक्र ही महाकाव्य का निर्माण करते हैं। किसी एक प्रतिभाशाली कवि की वाणी में सभी प्रकीर्ण गाथाएं एकसूत्र हो जाती हैं और स्वतः आदर्श की जन्मदात्री होकर सभ्यता और संस्कृति का पथप्रदर्शन करती हैं। प्रत्येक देश और जाति नित्य नूतन घटनाओं को जन्म देती रहती है। यही नहीं, एक घटना के साथ अन्य कल्पित घटनाएँ भी प्रचलित हो जाती हैं। युग-प्रवाह में ये गाथाएं बदलती रहती हैं और कहीं-कहीं तो इतनी भिन्न हो जाती हैं, कि एक ही

---

१. पुराणां चैवदिव्यानां कल्पानां युद्ध कौशलम्।
वाक्य जाति विशेषाश्च लोकयात्रा क्रमश्चयः॥
यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम्। म० आदि० १।६९-७०

२. इतिहासाः सवैयाख्या विविधा : श्रुतयोऽपिच।
इह सर्वमनुक्रान्तमुक्तं ग्रन्थस्य लक्षणम्॥ म० आदि० १।५०

३. महाकाव्य शब्द का प्रयोग आजकल दो अर्थों में होने लगा है। अंग्रेजी के 'एपिक' शब्द के अर्थ में और प्राचीन आलंकारिक आचार्यों द्वारा प्रयुक्त सर्गबद्ध काव्य के अर्थ में। साधारणतः यूरोपियन पंडितों ने भारतीय 'एपिक' कहकर केवल दो ग्रन्थों की चर्चा की है—'महाभारत' और 'रामायण' की—आलोचना १९५१, अंक प्रथम, पृ० ९

घटना दो रूपों में होकर जीवन के दो भिन्न तत्वों का प्रतिपादन करती है। एक घटना के साथ कल्पित घटना को सम्बंधित करने की परम्परा से कई बार एक कल्पित पात्र ऐतिहासिक सत्य के रूप में स्वीकृत हो जाता है। इस प्रकार विकसनशील महाकाव्यों (विशेषत वीरकाव्यों) में, कोई परवर्ती कवि कल्पित घटना को ऐसे समन्वित कर देता है कि पता नहीं चलता कि ये पीछे की जोड़ी हुई रचना है। कभी-कभी कई व्यक्तियों द्वारा प्रचलित घटना-चक्रों को जो एक व्यक्ति सयोजित करता है, वही उस समस्त साहित्य का रचयिता मान लिया जाता है। ये गाथा-चक्र निरन्तर विकसित, परिवर्धित, परिवर्तित अथवा कल्पित होते रहते हैं। इनका इतना अधिक प्रसार होता है कि मूल योजना असम्भव सा हो जाता है। इन्हीं गाथा-रूपों से विकासशील महाकाव्यों का जन्म होता है। ईश्वर-विश्वास इन गाथाओं का मूल होता है, धर्म की धुरी पर इनका जीवन चलता है कर्तव्य की प्रेरणा से इनमें प्राणों का सचार होता है। इस कारण इन गाथाओं पर आधारित महाकाव्यों में आस्तिकता का स्वर स्नायुओं में रक्त की तरह प्रवाहित रहता है। बौद्धिक चेतना के उत्कर्ष और प्रवर्धन के साथ ऐसे काव्यों पर से विश्वास उठने लगता है। इतना सत्य अवश्य है, कि ये महाकाव्य जन-जीवन में महोद्देश्य महत्प्रेरणा और गम्भीर काव्य-प्रतिभा से प्रेरित, युग-जीवन के विभिन्न चित्र और सास्कृतिक गुरुत्व को धारण करते हुए, एक सुघटित जीवन्त कथानक में, महत्वपूर्ण नायक की स्थापना करके, गरिमामयी उदात्त शैली तथा गम्भीर रसव्यजना से अनवरुद्ध जीवन-शक्ति और सशक्त प्राणधारा का सचार करते हुए, महत्तम आदर्श की स्थापना करते हैं।

'महाभारत' इस दृष्टि से महाकाव्य और इतिहास अथवा आख्यानकाव्य है। अन्य महाकाव्यों की भाति इस काव्य-ग्रन्थ का भी कोई एक रचयिता नहीं है, यह अनेक युगों में अनेक कवियों द्वारा निर्मित हुआ है। 'महाभारत' का रूप-निर्माण युगों तक होता रहा, युग-युग तक इस काव्य-ग्रन्थ के अवयव, विषय और शैली का सघटन हुआ और अन्त में एकरूपता आ गई। इस एकरूपता के कारण सारा काव्य एक दिखाई देने लगा। इसके निर्माण में अनेक रूपों में गाथाओं और तत्वों का सघटन हुआ।[1] प्राचीन धार्मिक विश्वास, लोक-प्रचलित दन्तकथाएँ वशानुक्रमपरिचय, ऐतिहासिक एव सामयिक घटनाएँ प्राचीन ज्ञान, और लोककथा—ये सब 'महाभारत' में इस तरह सम्बद्ध हो गये कि इनसे अनेकता में एकता की स्थापना की गई। इनके कारण 'महाभारत' काव्य ही नहीं अपितु धर्मशास्त्र, पुराण और इतिहास के रूप में समादृत हुआ।

---

१. विस्तृत अध्ययन के लिये देखिये—'महाकाव्य का स्वरूप विकास' द्वितीय अध्याय।

महानायक :—विकसनशील महाकाव्यो मे नायक की परिकल्पना भी अलंकृत काव्यों की स्थिति से भिन्न होती है। 'महाभारत' में मूल विषय भारती-युद्ध है अतः युधिष्ठिर सब प्रकार से 'महाभारत' के महानायक सिद्ध होते है। पाण्डवों की समस्त कथा युधिष्ठिर के चरित्र को केन्द्र-बिन्दु बनाकर विकसित होती है। कतिपय धार्मिक प्रवृत्ति के समीक्षक भगवान् कृष्ण को 'महाभारत' का नायक मानते है[1] किन्तु 'महाभारत' के प्रत्यक्ष पात्र एव सर्व प्रधान होते हुए भी उन्हे नायक नही कहा जाना चाहिए। इसका मुख्य कारण यह है, कि उनके जीवन के एक ही पक्ष का व्यापक चित्रण 'महाभारत' मे हुआ है। यद्यपि कृष्ण को ईश्वरत्व की सीमा में प्रविष्ट कराने का श्रेय 'महाभारत' को ही है, पर वह अन्य विषय है। भारती-युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर राजसिंहासन प्राप्त करते है। इस अवसर पर शेष सभी मुख्य पात्र युधिष्ठिर की महत्ता स्वीकार करते है।

महानायक के आदर्श चरित्र, वीरत्व, त्याग, प्रेम, राजनीतिज्ञता, सदसद्-विवेक आदि गुण युधिष्ठिर मे विद्यमान है। 'महाभारत' मे कुरुवंश की गाथा है अतः कुरुवंश का प्रमुख व्यक्ति ही उसका नायक है।

तीव्र प्रभावान्विति और गम्भीर रसव्यंजना :—प्रभावान्विति और गम्भीर रस-व्यंजना की दृष्टि से 'महाभारत' काव्यत्व के सर्वोच्च शिखर पर समासीन है। इसके अनेक वर्णनों में—युद्ध-वर्णन, व्यूह-वर्णन, द्वैरथ-युद्ध, संकुलयुद्ध आदि ऐसे प्रसंग हैं जिनमें उत्कृष्ट प्रभावान्विति विद्यमान है। सृष्टि-सौन्दर्य-वर्णन पर्याप्त रूप में बढ़े-चढ़े मिलते हैं। वनपर्व के हिमालय पर्वत के दृश्यों तथा गन्धमादन पर्वत के वर्णन विशेष द्रष्टव्य है। करुण रसाभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक पक्ष के वीर सैनिक के पतन के बाद का दृश्य, विशेष रूप से स्त्रीपर्व का विलाप अतीव हृदयस्पर्शी है। ध्वन्यालोककार ने 'महाभारत' में ज्ञानचर्चा के आधिक्य के कारण शान्त रस प्रधान माना है।[2] 'महाभारत' के विस्तृत कलेवर मे वीर, शृंगार, करुण, शान्त, अद्भुत, वीभत्स, रौद्र आदि रसों का पूर्ण परिपाक हुआ है। स्वतंत्र उपाख्यानों में पृथक्-पृथक् रसो की स्थिति है, यथा नलोपाख्यान में शृंगाररस प्रधान है और अम्बोपाख्यान में वीररस।

---

१. महाभारतपरिचय, पृ० ५२

२. महाभारतेऽपि शास्त्रकाव्यरूपच्छायान्वयिनि वृष्णिपाण्डव विरसावसानवैमनस्य दायिनींसमाप्तिमुपनिबध्नता महामुनिना वैराग्यजननं तात्पर्यं प्राधान्येन स्वप्रबन्धस्यदर्शयता मोक्षलक्षणः पुरुषार्थः शान्तो रसश्च मुख्यतया सूचितः।—ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत

संक्षेप में अन्तरंग और बहिरंग परीक्षा के आधार पर 'महाभारत' उत्कृष्ट एवं रमणीय[1] विकसनशील महाकाव्य है। इसमें कथा, पात्र, नायक तथा उद्देश्य और रस आदि की दृष्टि से वही शिथिलताएं और शक्तियां प्राप्त होती हैं जो विकसनशील महाकाव्य के स्वभावज गुण हैं। भारतीय जीवन के एक सम्पूर्ण युग को अपने दर्पण में प्रतिबिम्बित करने वाला यह महान् ग्रन्थ हमारी काव्य-परम्परा का उज्ज्वल नक्षत्र है। इसी कारण परवर्ती साहित्य को नित्य नवीन सामग्री देकर साहित्य-वर्धन का मूल स्रोत बना हुआ है।

धर्मग्रन्थ

इतिहास एवं महाकाव्य के साथ महाभारत' धर्मग्रन्थ भी है। सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परम्परा में इसका आदर श्रुतियों और उपनिषदों के समान है। इस कारण इसे वेद के समान[2] कहा गया है। 'महाभारत' की कथा चारों वेदों के अर्थों से पूर्ण पुण्य स्वरूपा है जो पाप और भय को नाश करने वाली है।[3]

मानव-जीवन के विस्तार के समान ही धर्म का क्षेत्र व्यापक है। धर्म जीवन का सजीव एवं सक्रिय विधान है, जिसके आश्रित व्यक्ति और लोक की प्रतिष्ठा सम्भव हो रही है।[4] अतः इस ग्रन्थ को युद्ध की कथा को निमित्तमात्र बनाकर धर्म-संहिता के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है।[5] धर्म का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विवेचन इतने विस्तार से हुआ है कि धर्म के अन्तर्गत आनेवाले जीवन के विविध व्यापारों से कोई भी शेष न बचा होगा। 'मुक्ति-भुक्ति, अर्थात् त्रिवर्ग और मोक्ष इन

---

१ महाभारत की रमणीयता उसके सम्भाषणों में ही है। उसमें दिये हुए सम्भाषणों के समान प्रभावशाली भाषण अन्य स्थानों में बहुत ही कम देख पड़ेंगे। इन भाषणों के द्वारा भिन्न भिन्न पात्र उत्तम रीति से व्यक्त हो जाते हैं। —महाभारत मीमांसा, पृ० ३७

२ इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्।
आख्यानामुत्तमं चेदं पुराणमृषिसंस्तुतम्। म० आदि० ६२।१६

३ वेदैश्चतुर्भिः संयुक्तां व्यासस्याद्भुतकर्मणः।
संहितां श्रोतुमिच्छामः पुण्यां पापभयापहाम्। म० आदि० १।२१
भूतस्थानानि सर्वाणि रहस्यं त्रिविधं च यत्।
वेदायोगः सविज्ञानो धर्मोऽर्थः काम एव च।
धर्मकामार्थयुक्तानि शास्त्राणि विविधानि च
लोकयात्राविधानं च सर्वं तद् दृष्टवानृषिः॥ म० आदि० १। ४८-४९

४ भारतसावित्री, भूमिका पृ० ५

५ नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
नित्यो जीवो धातुरस्य त्वनित्यः। म० स्वर्गा० ५।६३

नीति में उपलब्ध है।[1] मुख्यतः राजनीतिशास्त्र के रूप में भी इसे मान्यता मिली है। क्योंकि इससे प्राचीन राज्य व्यवस्था, राजा के कर्तव्य,[2] राजा विषयक तत्कालीन मान्यता[3] आदि पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है। इसके अध्ययन से स्पष्ट है कि राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि या देवता माना जाता था[4], राजा के कर्मों का प्रत्यक्ष फल जनता को भोगना पड़ता था, और उसके पाप-पुण्य से जनता की समृद्धि सम्बद्ध थी।[5]

'महाभारत' में राजधर्म का विस्तृत वर्णन है। प्रजा के प्रति, ब्राह्मणों और अन्य वर्णों के प्रति राजा के कर्तव्य के विवेचन के अतिरिक्त शासन की गम्भीर समस्याओं पर विचार किया गया है। राजा के द्वारा बलसंचय, सेना, सेनापति, दुर्ग, गुप्तचर आदि की व्यवस्था[6] का राजतन्त्रीय दृष्टि से, व्यापक विवेचन हुआ है। वन में जाते समय धृतराष्ट्र की राजनीतिक शिक्षा में कूटनीति की अनेक बातों पर विचार किया गया है।[7] उक्त विवेचन के आधार पर 'महाभारत' को राजनीति-शास्त्र के रूप में सम्मान देना युक्तियुक्त है।

भारतीय जीवन का विश्वकोष—इतिहास, पुराण, धर्म-ग्रन्थ, नीति-ग्रन्थ और महाकाव्य के रूप में 'महाभारत' की विशेषताओं से यह सिद्ध ही है, कि 'महाभारत' भारतीय ज्ञान-विरासत का विश्वकोष है। उसमें चिन्तन, मनन, ज्ञान, सामान्य व्यवहार आदि जीवन के किसी भी पक्ष का अभाव नहीं है। चिन्तन के विविध पक्षों के समन्वयात्मक रूप के कारण 'महाभारत' का महत्त्व सर्वाधिक और सार्वभौम है। "वैदिक और लौकिक युगों के मध्यमय काल में उनके अधिकारों का परिसीमन करने के लिए 'महाभारत' एक सन्धिपत्र के समान है जिसमें वैदिक और लौकिक दोनों युगों के प्रतिनिधि ज्ञान-प्रवण मनस्वियों के हस्ताक्षरों की मुहर है।"[8]

'महाभारत महात्म्य' में 'महाभारत' को अठारहों पुराण समस्त धर्मशास्त्र, अंगों सहित वेद की समानता करने वाला बताया गया है। यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है

---

१ म० उद्योग० अध्याय, ३२,३३,३४,३६,३६

२ म० शान्ति० अध्याय, ६६, ८६, ६१

३ म० शान्ति० अध्याय, ६४

४ नहि जात्ववमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिप।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥ म० शान्ति० ६८।४०

५ म० शान्ति०, अध्याय, ६८, ६१

६ म० शान्ति०, अध्याय, ८२, १००, १०४, १०६, ११६

७ म० आश्रम० अध्याय ५, १५, ४३

८ संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २३७

और रहस्य भार से युक्त है। अतः इसमें समस्त भारतीय ज्ञान संचित है।[1] इस कारण विन्टरनित्ज 'महाभारत को केवल काव्य नहीं सम्पूर्ण साहित्य मानते हैं।[2]

महाभारतका प्रतिपाद्य

'महाभारत' का प्रतिपाद्य उसके जीवन-दर्शन, विचार धारा और सिद्धांत निरूपण मे निहित है। 'महाभारत' महाकाव्य, इतिहास, पुराण आदि होने के कारण भारतीय संस्कृति का विचार-प्रधान ग्रन्थ है। भारतीय जीवन का सम्पूर्ण तत्वज्ञान, सम्पूर्ण धार्मिक आचार-विचार, इस ग्रन्थ मे इस प्रकार अभिव्यक्त हो पाये हैं कि कुरुवंश की कथा गौण हो गई है। यद्यपि कुरुवंश की कथा को मूल आधार मानकर महाकाव्य का निर्माण किया गया है जिस कारण वह कथा तो निर्विवाद रूप से 'महाभारत' का प्रतिपाद्य है ही, तथापि कथा-विकास के अन्तर्गत आद्योपान्त व्याप्त सांस्कृतिक आदर्श, सामाजिक व्यवस्था और जीवन-जगत के अनेक सिद्धान्त 'महाभारत' के प्रतिपाद्य है। कौरव-वंशीय चरित्रों के अतिरिक्त इसमे अन्य प्राचीन राजाओं, ऋषियों और देवताओं के वृत्तान्त भी मूलकथा से कम नहीं। अतः 'महाभारत' के प्रतिपाद्य का निर्णय करने के लिए कथा के इस विस्तृत क्षेत्र और उसमे व्याप्त विभिन्न सरणियों की परीक्षा परम आवश्यक है।

किसी भी महाकाव्य का प्रतिपाद्य इतिवृत्त से प्राप्त लेखक की विचारधारा होता है। सामान्यतः इतिवृत्त के अभिधेयार्थ से विचारधारा का सम्बन्ध प्रत्यक्ष इति-वृत्त नहीं होता किन्तु व्यन्यात्मक होता है। जिन अनेक स्थलों पर कवि कथा के आग्रह को त्यागकर सैद्धान्तिक विश्लेषण करता है, उन स्थलों पर कथा गौण हो जाती है और दर्शन प्रमुख। काव्य की इन्ही दो अवस्थाओं मे मूल प्रतिपाद्य का अनुसंधान करना उचित है। 'महाभारत' में वर्णित विचारधारा को किसी एक वर्ग के अन्तर्गत समाविष्ट करना असम्भव है। इसमे अपने समय के विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों,

---

१. अष्टादश पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।
वेदाः सांगास्तथैकत्र भारते चैकतः स्थितम्॥
महत्वाद् भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्व पापं प्रमुच्यते॥ महाभारत महात्म्य, पृ० ६५१८

२. "It is only in a very restricted sense that we may speak of the Mahabharata as an 'epic' and a 'poem'. Indeed in a certain sense, The Mahabharata is not one poetic production but rather a whole Literature".
—*History of Indian Literature, English Translation*, Vol I, 1927, p. 317.

धार्मिक विचारों का गम्भीर विवेचन है, जिसका समाहार समन्वयात्मक दृष्टिकोण में हुआ है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य एक व्यापक 'धार्मिक-व्यवस्था' का प्रतिपादन है। किन्तु, इतना कहने मात्र से 'महाभारत' का प्रतिपाद्य स्पष्ट नहीं होता। इस विवेचन से अभीष्ट यह है कि हम 'महाभारत' का कोई एक पक्षीय प्रतिपाद्य स्वीकार नहीं। 'महाभारत' के कवि की दार्शनिक दृष्टि समन्वयवादी है। सामान्यतः असत्य का वर्जन और सत्य की प्रतिष्ठा ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। कुरुभूमि पर विराट युद्ध की अवतारणा का मुख्य कारण यही दिखाई देता है कि अधर्म के बढ़ते हुए अन्धकार को युद्ध की ज्वाला में भस्मीभूत कर धर्म प्रकाश का प्रणयन किया जाए।

विचारात्मक समन्वय

'महाभारत' का साहित्य इतना विराट है कि उसमें अनेक मतों की उपस्थापना हुई है। उसमें परस्पर विरोधी धार्मिक भावों और दार्शनिक सिद्धान्तों का पृथक् पृथक् निरूपण भी हुआ है और अन्त में उनका समन्वय भी कर दिया गया है। कवि कथा-वस्तु को विचार प्रतिपादन का साधन बनाता है, उसकी सिद्धि उद्देश्य में निहित है। भारतीय विचारधारा पाण्डवों को धर्म-पक्ष और कौरवों को अधर्म पक्ष मानती है। इन दोनों पक्षों के संघर्ष में कौरवों की पराजय, अधर्म की पराजय है। कवि का यह आदर्श समस्त कथा में ओतप्रोत है। धृतराष्ट्र और पाण्डुपुत्रों का संघर्ष, संघर्ष में समस्त देश का विभाजन, कुरुक्षेत्र की भूमि में अठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश और अन्त निवृत्ति की ओर जाते हुए युधिष्ठिर को भीष्म का प्रवृत्तिपरक उपदेश कवि की विचारधारा को स्पष्ट करता है। यह विचारधारा संक्षेप में इस प्रकार है

— मानव जीवन में धर्म की परम महत्ता है। धर्म जीवन और लोक-व्यापार को आश्रय देता है, वह मानव जीवन का सक्रिय तत्व है अतः व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए धर्माचरण अनिवार्य है। अधर्म से समाज का विनाश होता है, शान्ति विच्छिन्न होती है और युद्ध की भयंकर लपटें विश्व-संहार के लिये तत्पर हो जाती हैं। युद्ध विनाश की जड़ है, उसमें विश्वशान्ति को भयाक्रान्त होना पड़ता है, अपने पृथक् व्यक्तित्व में कोई भी युद्ध का पक्षपाती नहीं होता। (कौरवों की आकांक्षा यही रही होगी कि पाण्डव वन में रहें और ऐश्वर्यशाली होकर राज्य में समान भोगी न बनें।) इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए युद्ध तो अन्तिम उपाय था। भगवान् कृष्ण शान्ति का प्रयास करते हैं किन्तु सहनशीलता की चरम सीमा पर आघात होने के उपरान्त वही कृष्ण मोह-ग्रस्त अर्जुन को युद्ध का औचित्य सिद्ध करते हैं। अधिकारी के द्वारा अधिकार का हनन करने पर युद्ध भी मानव-कर्त्तव्य के अन्तर्गत आ जाता है। इस आधार पर कुरु-गाथा दो वर्गों का ही संघर्ष नहीं था, अपितु संघर्ष के बीच मानव के मूल अधिकारों के हनन का प्रश्न था। आश्रमवासिक पर्व में कुन्ती युधिष्ठिर से कहती है कि—जुए में तुम्हारा राज्य छिन गया था, तुम सुख से भ्रष्ट हो चुके थे और

तुम्हारे ही बन्धु-बान्धव तुम्हारा तिरस्कार करते थे इसलिए मैंने तुम्हें युद्ध के लिए उत्साह प्रदान किया था।'[1] कुन्ती की इस उक्ति से जीवन के प्रति महाभारतकार के सिद्धान्त का स्पष्टीकरण हो जाता है।

पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा

युद्ध के प्रसंग में ही पाण्डवों के वन-निवास के समय द्रौपदी और युधिष्ठिर संवाद की प्रस्तावना में महाभारतकार पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा करता है।[2] सात्विक वृत्ति के कारण युधिष्ठिर में सहनशीलता अधिक थी किन्तु वह अन्ततः कर्त्तव्यनिष्ठा की कसौटी पर कंचन से कुन्दन बना और धर्मराज की अधर्म पर विजय हुई। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इतने विराट कथानक में सत्य-असत्य, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म के संघर्ष का चित्रण कर एक लोकव्यापी जीवनादर्श के रूप में सत्य, पुण्य और धर्म की प्रतिष्ठा ही 'महाभारत' का प्रतिपाद्य है। महाभारतकार का यह मत स्पष्ट है कि पुरुषार्थ ही मानव की उन्नति का मुख्य साधन है। पुरुषार्थहीन मानव समाज में औचित्य-पूर्ण और सम्मानित पद प्राप्त नहीं कर सकता। राष्ट्र की रक्षा के लिए क्षत्रिय का परम कर्त्तव्य है कि वह युद्ध करे और जीवन को सार्थक बनाए।

शोषण का विरोध

महाभारतकालीन राज्यतन्त्र की व्यवस्था के आदर्शचित्र में निम्न वर्ग को कितने अधिकार प्राप्त थे—इस बात का स्पष्टीकरण नहीं होता। उस काल की वर्ण-व्यवस्था से स्पष्ट होता है कि शूद्रों का मुख्य कर्तव्य द्विज-सेवा ही था। तथापि शोषण का प्रयोग और विरोध आधुनिक युग की सीमा में नहीं था। किन्तु राज्य-परिवारों के अधिकारों के संघर्ष के मध्य शोषण का विरोध महाभारतकार ने सशक्त रूप से किया है। (दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को पाँच ग्राम तक न देना उच्चस्तरीय शोषण का निम्नतम रूप है) यदि दुर्योधन पाण्डवों के प्रस्ताव को मान जाता तो यह संघर्ष नहीं होता। भारत की पुण्य आत्माएं इस शोषण को स्वीकार न कर सकीं, फलतः दैवी शक्तियां पाण्डवों के पक्ष में हो गई। इन्द्र धर्म-पक्ष को विजय दिलाने के हेतु छल करते हैं। इन दैवी शक्तियों ने युद्ध को माध्यम बनाकर आसुरी प्रवृत्ति का विनाश और भ्रातृत्व तथा समानता की भावना का लोक-व्यापी प्रसार किया। महाभारतकार स्पष्ट रूप में स्वीकार करता है कि ध्वंसात्मक और अत्याचारी वृत्तियों का दमन शक्ति से भी करणीय है;[3] ऐसी परिस्थिति में संघर्ष धर्म के लिए

---

१. द्यूतापहृत राज्यानां पतितानां सुखादपि।
ज्ञातिभिः परिभूतानां कृतमुद्धर्षणं मया। म० आश्रम० १७।२

२. भैक्ष्यचर्या न विहिता न च विट् शूद्रजीविका।
क्षत्रियस्य विशेषेण धर्मस्तु बलमौरसम्। म० वन० ३३।५१

३. म० वन० ३५।३५

होता है।[1] जीवन के प्रत्येक पक्ष के प्रति महाभारत की दृष्टि अत्यन्त व्यवस्थित और यथार्थवादी है। धर्माधर्म, हिंसाहिंसा, पुण्यापुण्य की विवेचना में स्थिति सापेक्षता को अधिक महत्त्व दिया गया है। स्थिति निरपेक्ष जीवनादर्श की कल्पना महाभारतकार को अधिक गम्भीर और लोककल्याणकारी ज्ञात नहीं हुई, अत उसमें उसने मानव की वास्तविक दुर्बलताओं और शक्तियों के साथ ही चित्रित किया है।

प्रवृत्ति मूलक जीवन-दर्शन

'महाभारत' में आद्योपान्त प्रवृत्तिमूलक जीवन-दर्शन की स्थापना है। शान्तिपर्व में भीष्म युधिष्ठिर को प्रवृत्ति के आधार पर ही मानवता की सेवा का उपदेश देते हैं। यह मानवता ही आद्यन्त 'महाभारत' का मूलस्वर है। मानवमात्र का हितचिन्तन, कर्म के प्रति अदम्य उत्साह[2] और संहार से प्रताडित मानव का पुन कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करना 'महाभारत' की व्यावहारिक शिक्षा है। प्रवृत्तिमूलक जीवन-चेतना में संयाम और वैराग्य की अवसरानुकूल प्रधानता का समावेश है, किन्तु यह वैराग्य और संन्यास आश्रम-धर्म के अन्तर्गत चतुर्थ आश्रम के लिए है। अत युधिष्ठिर के लिए वैराग्य की आवश्यकता नहीं। 'महाभारत' व्यक्ति को जीवन के प्रति आसक्तिरहित बनाकर धर्माचरण के लिए प्रेरित करता है। धर्म अपने व्यापक रूप में जीवन का आदि, मध्य और अन्त है। अत 'महाभारत' प्रतिपादित 'धर्म' प्रवृत्ति निष्ठ है।

आशावाद

आशावाद व्यक्ति की मानसिक दृढ़ता और उत्थान का चरम सोपान है। मानवता की सीमा में इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'महाभारत' की कथा में आद्योपान्त आशावाद की प्राणधारा की विद्यमानता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। दुर्योधन और कर्ण जैसे तेजस्वी पात्र इसी आशावाद के आधार पर युद्ध के लिए प्रेरित होते हैं। यद्यपि कौरव पक्षीय आशावाद धर्मनिष्ठ नहीं कहा जा सकता, तथापि युधिष्ठिर, अर्जुन आदि पात्रों के हृदय में जिस कर्त्तव्यनिष्ठा, धार्मिकता के दर्शन होते हैं उसका मूल आशावाद ही है। जो व्यक्ति प्रत्यक्ष विध्वंस के पश्चात् भी मानवता की निरन्तर उन्नति में विश्वास करता है, वह वर्तमान के अतिरिक्त भविष्य के प्रति दृढ़ होता है। भारतीय संस्कृति का यह आशावाद 'महाभारत' में व्यावहारिक रूप से व्याप्त है। भीष्म और द्रोण के पतन पर यही आशावाद[4] दुर्योधन

---

१ म० शान्ति० ६५।११

२ म० शान्ति० अध्याय, २६८

३ म० शान्ति० अध्याय, १४, ३३, ६६, गीता० २।३७-४०

४ हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णोऽस्मिन्न्यति पाण्डवान्।
 तमाशां हृदये कृत्वा समाश्वासच भारत॥ म० कर्ण० १०।१६

के जीवन का सम्बल है, तथा सर्वनाश के उपरान्त यही आशा युधिष्ठिर को राज्य के प्रति आश्वस्त करती[1] है। जब युधिष्ठिर शोकवश शरीर त्याग देने की बात करते हैं, उस समय व्यास इसी आशावाद के आधार पर युधिष्ठिर को पुनः कर्म की प्रेरणा देकर स्पष्ट करते है कि मनुष्य कर्म के फल का नियंता नही।[2]

दार्शनिक समन्वय

'महाभारत' मे भारतीय जीवन के विकास मे उद्भूत अनेक दार्शनिक मतो का उल्लेख और उनके सिद्धान्तों का व्यापक विवेचन है। भारतीय दर्शन के विकास में प्रथम वैदिक युग था, इस युग में सद्सद्वाद, अम्भोवाद, अहोरात्रवाद आदि दार्शनिक दृष्टिकोण थे। द्वितीय युग मे उपनिषदो का चितन है जिसमे वैदिक दार्शनिक दृष्टि की व्यापक विवेचना प्राप्त होती है। तृतीय युग षड्दर्शनो के विकास का युग है। चतुर्थ युग मे, पाचरात्र, पाशुपत भागवत और शैव आदि दर्शनों का प्रस्फुटन और पंचम युग मे शाकर वेदान्त, और भक्तियुग में पूर्ववर्ती विचारधारा का विवेचन नवीन दृष्टियो से किया गया है।

इस दार्शनिक विकास मे 'महाभारत' की दार्शनिक पृष्ठभूमि द्वितीय युग की थी, यद्यपि कुछ समय के उपरान्त तृतीय और चतुर्थ युग की दार्शनिक विशेषताओं का सन्निवेश भी 'महाभारत' मे हो गया था। 'महाभारत' की कथा में जिस प्रकार समय समय पर अनेक उपाख्यानों की वृद्धि हुई और उसका कलेवर बढ़ता गया उसी प्रकार दार्शनिक विचारों का समावेश भी होता गया। इसी कारण इस ग्रन्थ मे किसी एक दार्शनिक दृष्टि का प्रतिपादन न होकर अनेक दर्शनों का समन्वय है। यह समन्वय ही 'महाभारत' की मूल विशेषता है। नियतिवाद, कर्मवाद, वैराग्य की स्थापना के साथ चार्वाक बृहस्पति के लोकायतवाद[3] की प्रतिष्ठा भी इस में विद्यमान है। द्रौपदी ने युधिष्ठिर के समक्ष जिस जीवन-दर्शन का व्यापक प्रतिपादन किया था वह बृहस्पति का लोकायतवाद ही था। भीम के पुरुषार्थ प्रतिपादन में कर्मवाद की स्पष्ट प्रतिष्ठा है और ऐसा प्रतीत होता है, कि उद्योगपर्व की विदुरनीति में प्राचीन प्रज्ञावाद नामक दर्शन का ही संग्रहण है।[4]

महाभारतयुग तक सांख्य, योग, पाशुपत, पांचरात्र आदि मतों का अभ्युदय हो चुका था। इसीकारण 'महाभारत' की दार्शनिक पीठिका मे इन्ही मतों का विवेचन

---

१. एषधर्मः क्षत्रियाणां प्रजानां परिपालनम्।
उत्पथोऽन्यो महाराज मास्म शोके मनः कृथाः। म० शान्ति० २३।४६
२. यथा सृष्टोऽसिकौन्तेय धात्राकर्मसुतत् कुरु।
अतएवहि सिद्धिस्ते नेशस्त्वं कर्मणां नृप॥ म० शान्ति० २७।३३
३. भारत सावित्री, भूमिका पृष्ठ ६
४. भारत सावित्री, पृष्ठ १०

और प्रसार विद्यमान है। यद्यपि प्राचीन वैदिक मतों के अनुसार वैराग्य और संन्यास की भी पूर्ण प्रतिष्ठा है, तथापि भगवान् कृष्ण के कर्मयोग में सभी मतों का समन्वय अत्यन्त व्यापक रूप से किया गया है। 'महाभारत' में भगवान कृष्ण के ईश्वरत्व प्रतिपादन में सम्पूर्ण विचारधारा का चरम लक्ष्य प्राप्त होता है। कृष्ण माया-रहित अपनी माया से प्रकट होते है।[1] समस्त जगत की स्थिति उन्ही में है,[2] वे सम्पूर्ण यज्ञों के भोक्ता है।[3] उनकी उत्पत्ति अज्ञात है,[4] और वे ही जगत की उत्पत्ति के कारण है।[5] ऐसे भगवान् कृष्ण जिस मत का प्रतिपादन करते है वही ग्राह्य है। भगवान कृष्ण ने सांख्य और योग का समन्वय करते हुए अर्जुन को कर्मयोग की शिक्षा दी। शान्तिपर्व में पाशुपत और पांचरात्र मतों की विचारधारा का संश्लिष्ट प्रतिपादन महाभारतकार के समन्वयात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है।

सिद्धान्त-प्रतिपादक दार्शनिक मतों की दृष्टि से 'महाभारत' में किसी एक मत का सैद्धान्तिक प्रतिपादन न होकर अनेक मतों का समन्वय है। इस समन्वय की विराट भावना कर्मवाद के अन्तर्गत व्यापक रूप में संनिविष्ट हुई दिखाई पडती है। सांख्य के तात्त्विक विवेचन को मानकर, योग के ध्यानयोग को स्वीकार कर, पांचरात्र के भक्तितत्व को ग्रहण कर, वेदान्त के ज्ञान और वैराग्य का आदर कर—'महाभारत' सबका समन्वय मानवीय कर्मक्षेत्र की महदुपयोगिता के मध्य करता है।

समन्वय की इस विराट भावना मे दर्शन के साधन पक्षों का समन्वय 'भारतीय संस्कृति को' 'महाभारत' की महत्त्वपूर्ण देन है। महाभारतकार ने विभिन्न मार्गों के समन्वय से साधना मार्ग को अधिक व्यावहारिक और सुगम बना दिया है। इसकी दृष्टि मे कर्म, ज्ञान, भक्ति, ध्यान, योग आदि पृथक् अथवा स्वतन्त्र सरणियां न होकर, चरमध्येय के बहुविध मार्ग है। जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र मे गीता के निष्काम कर्मयोग का सिद्धान्त, भक्ति के क्षेत्र में हृदयस्थित अन्तर्यामी के प्रति सम्पूर्ण समर्पण और दर्शन के क्षेत्र मे आत्मज्ञान के चिरन्तन प्रकाश का निष्पादन, इस ग्रन्थ का आध्यात्मिक प्रतिपाद्य है। संक्षेप मे 'महाभारत'—लोकसंग्रही प्रवृत्तिमूलक जीवन-दर्शन, व्यक्ति के लिए समाज सापेक्ष कर्तव्य-निष्ठा, आध्यात्मिक दृष्टि से भक्ति-ज्ञान और कर्म का समन्वय—धर्म के व्यापक प्रतिपाद्य के अन्तर्गत मानवतावाद का प्रतिपादन करता है। इस मानवतावाद का मुख्य अंग है—'धर्म', अतः अधर्म के

---

१ गीता, ४।६-१०
२ गीता, ६।१७-१९
३ गीता, ६।२४
४ गीता, १०।२-३
५ गीता, १०।८

प्रथम खण्ड में कथा का उपक्रम, मूल कथा का संक्षिप्त परिचय और उपसंहार वर्णित है।

द्वितीय खण्ड में मूल कथा का विकास और साथ ही अनेक प्रासंगिक कथाएँ और उपाख्यानों का समावेश है।

तृतीय खण्ड में 'महाभारत' का चिन्तन पक्ष प्रधान और उपसंहारात्मक कथा का वर्णन है।

सम्पूर्ण 'महाभारत' की रचना श्रोता-वक्ता शैली के अन्तर्गत हुई है, अतः कथावाचक प्राचीन कथा को सुनाकर मुख्य विषय का वर्णन करता है। प्रथम खण्ड कथा का उपक्रम है, इसमें प्रारम्भिक अनुक्रमणिका पर्व से ६७ वें अध्याय अंशावतरण पर्व तक, कथा का उपक्रम है, तथा अनेक पूर्ववर्ती और परवर्ती कथाओं के संयोग से मूल कथा का परिचय दिया गया है। श्रोता वक्ता शैली के कारण ही युद्ध पूर्व और युद्ध के उपरान्त की कथाओं का समावेश है।

भीष्म के जन्म और कुरुवंशवर्णन से मूल कथा का प्रारम्भ है। इस खण्ड में राजकुमारों की शिक्षा, रंगभूमि-प्रसंग, वनयात्रा, विराटनगर-निवास, उद्योग और भीष्मपर्व वर्णन, तथा युद्ध का सम्पूर्ण वर्णन है। युद्ध के कथानक के मध्य ही यथावसर दार्शनिक चिंतन के लिए स्थान निकाल लिया गया है। स्त्रीपर्व तक के कथा विकास को 'महाभारत' के वस्तु संयोजन का मध्य माना जा सकता है। शांतिपर्व से आगे समस्त कथा उपसंहार है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यदि युधिष्ठिर के राज्यारोहण पर ही कथा समाप्त कर दी जाती तब भी महाकाव्य की दृष्टि से गौरव का अभाव नहीं होता। इसके आगे की कथा का मुख्य उद्देश्य दार्शनिक विवेचन और नर के नारायणत्व प्राप्ति के ध्येय का प्रकाशन है। इस प्रकार 'महाभारत' के विराट कलेवर में लोक-जीवन की अनेक गाथाएं आकर एकाकार हो गई हैं। महाभारतकार ने सोद्देश्य अनेक उपाख्यान और प्रासंगिक वृत्तों का समावेश जिस रूप में किया है, उसकी चर्चा अप्रासंगिक न होगी।

कथानक का स्वरूप

कौरव-पाण्डवों की मूल कथा के साथ अनेक प्रासंगिक वृत्तों, उपाख्यानों और पूर्ववर्ती कथाओं के सम्मिश्रण से 'महाभारत' के कथानक का स्वरूप निर्मित हुआ है। इन उपाख्यानों के आधार पर आधुनिक काल में बहुत कुछ लिखा गया है। ये उपाख्यान अपनी सिद्धान्तवादिता के कारण प्रत्येक युग को प्रभावित करते हैं। इन समस्त लघु कथा-खंडों का मूल कथा से सहेतुक सम्बन्ध है।

सिद्धान्त प्रतिपादक उपाख्यान —सामान्यतः ये उपाख्यान महाभारत-पूर्व युग में आविर्भूत हो चुके थे और 'महाभारत' में सिद्धान्त-प्रतिपादन के लिए इनका

भीष्म और अनेक स्थलो पर कृष्ण ने प्राचीन ऋषियो और राजाओं के उदाहरण देकर युधिष्ठिर की निवृत्ति की ओर जाने वाली भावनाओ को प्रवृत्ति की ओर मोडने का सफल प्रयास किया है। इन सिद्धात कथाओ मे स्वग के देवता भी सम्मिलित हैं और प्राचीन राजा तथा ऋषि भी। उदाहरण स्वरूप जपयज्ञ के प्रसग मे जापक का सक्षिप्त वृत्त[1], समत्व बुद्धि के प्रसग मे असित-देवल का सवाद[2], ब्रह्म-प्राप्ति के उपाय मे वृत्त-शुक्र सवाद[3] आदि सक्षिप्त कथानक आये हैं।

इन प्रमुख उपाख्यानो के अतिरिक्त आने वाले सक्षिप्त कथानक प्रासगिक कथाओ मे भिन्न है। इनकी 'महाभारत' की कथा से सम्बद्धता ऐसा रूप है जो उनको उपाख्यानो से पृथक् करता है। कथा के प्रवाह मे कोई लघु कथा अथवा घटना मुख्यपात्र को साथ लेकर थोडी दूर तक गतिमान रहती है और बाद मे समाप्त हो जाती है—वह प्रासगिक कथा होती है। ऐसी प्रासगिक कथायें 'महाभारत' मे अनेक हैं।

पूर्वजन्म की कथाए, प्राचीन युग की कथाए, स्वर्ग की कथाए वरदानो की कथाए, प्रमुख पात्रो के साथ घटित सक्षिप्त घटनाओ की कथाए, और दृष्टान्त कथाए—ये सभी प्रासगिक कथाए मूल कथा के साथ सहयोग करती है। मूल कथा के विस्तृत घटना पट पर अनायास ऐसी घटना घटित होती है जिसका सम्बन्ध मुख्य कथा के पात्र से हो जाता है। उदाहरण के लिए हिडिम्बा की कथा[4] प्रासगिक वृत्त है। वन मे रहते हुए पाण्डवो मे से भीम पर हिडिम्बा का आसक्त होना और भीम तथा कुन्ती द्वारा उसे वधू के रूप मे स्वीकार करना, तथा उसमे घटोत्कच की उत्पत्ति और अन्त मे हिडिम्बा का भीम से पृथक् हो जाना—समस्त वृत्त प्रासगिक है। आगे घटोत्कच का सम्बन्ध इन्द्र की शक्ति से हो जाता है।

इसी प्रकार पूर्वजन्म एव प्राचीन प्रसगो को लेकर कथा-प्रवाह मे आने वाली लघु कथायें भी प्रासगिक है, क्योंकि उनका उदय एक विशिष्ट प्रसग को गति देने के लिए होता है। इतिहास और पुराण की सम्मिश्रित शैली मे एक कथा के साथ दूसरी कथा निर्मित होती चलती है। उचित प्रसग की समाप्ति के साथ कथा भी समाप्त हो जाती है। सिद्धान्त निरूपित इन कथाओ के सभी पात्र केवल लोक विश्वास पर जीवित रहते हैं। आधुनिक प्रबन्ध कारो ने मूल कथा के साथ इन उपाख्यानो को भी उसी रूप मे ग्रहण किया है। इन उपाख्यानो का प्रभाव कई स्थानो पर प्रत्यक्ष और कई स्थानो पर अप्रत्यक्ष रूप से पडा ही है किन्तु अन्तकथा के रूप मे भी इनका अस्तित्व विद्यमान है। इन कथाओ मे जीवन के नैतिक कर्त्तव्यो, नियमो,

---

१ म० शान्ति० अध्याय १६६-२००

२ म० शान्ति० अध्याय २२६

३ म० शान्ति० अध्याय २७६

४ म० शान्ति० अध्याय १५१-१५५

विधानों का वर्णन है। प्रत्येक सिद्धान्त के मान्य होने के प्रमाण में 'महाभारत' में किसी प्राचीन कथा को दृष्टान्त रूप में रखने की प्रवृत्ति सर्वत्र विद्य-मान है। विधि-निषेध के साथ चलने वाले ये कथानक 'महाभारत' में अन्तः शाखा के रूप में क्षणभर के लिए आलोक जगा कर पुनः मूल कथा के सागर में निमग्न हो जाते हैं।

प्रासंगिक कथाएं

स्वतन्त्र आख्यानों के अतिरिक्त 'महाभारत' के प्रमुख पात्रों के साथ आने वाले प्रासंगिक वृत्त पृथक् अस्तित्व रखते हैं। गुरु द्रोण की कथा,[1] एकलव्य का वृत्त[2], हिडिम्बा की कथा[3] बकासुर-वध[4], उलूपी-चित्रांगदा[5] उल्लेखनीय वृत्त हैं। ये सभी प्रासंगिक कथाएं प्रमुख कथानक में सहयोगी हैं। इनका प्रमुख पात्रों से गहरा सम्बन्ध है और इनके द्वारा कथा के प्रवाह के साथ ही प्रमुख पात्रों के चरित्र पर भी महत्व-पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

मुख्य कथा के रूप में आदिपर्व की तीन घटनाएं अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं :—(१) पाण्डवों का वारणावत जाना, (इसके कारण पाण्डवों को अनेक कार्य करने का समय मिल जाता है। राजनैतिक दृष्टि से उनकी मित्रता गन्धर्वों से होती है। अनेक राक्षसों के संहार के कारण शक्ति प्रदर्शन होता है) (२) द्रौपदी-विवाह (इससे पाण्डव पांचालों के सम्बन्धी बनते हैं।) (३) अर्जुन-सुभद्रा-परिणय (इसके प्रभाव से पाण्डवों को कृष्ण की मैत्री मिलती है।) इन तीनों घटनाओं के मध्य उपर्युक्त प्रासंगिक वृत्त संयोजकों का कार्य करते हैं।

इसके उपरान्त कथा नगर की ओर मुड़ती है। मय सभा का निर्माण करता है। राजसूय के हेतु राजनैतिक स्थिति को अनुकूल बनाने के लिए जरासंध का वध किया जाता है। जरासंध का प्रासंगिक वृत्त भी राजनैतिक सहायता करता है। उसके बन्दी नरेश पाण्डवों के पक्ष में हो जाते हैं। इस प्रासंगिक वृत्त के साथ ही शिशुपाल की कथा, भी सामने आती है। द्यूत खेला जाता है और पाण्डव वन की ओर चल देते हैं।

वनवास की अवधि में कथा मुख्यतः पाण्डवों के साथ ही रहती है। पाण्डव के प्रसंग में ही हस्तिनापुर और कौरवों का उल्लेख होता है। वनपर्व में पाण्डव सामान्यतः सभी रमणीय स्थलों की यात्रा करते हैं। इस यात्रा के मध्य धर्म, नीति, आचार आदि के जितने भी प्रसंग आते हैं, उनमें अनेक दृष्टान्त कथाएं संलग्न

---

१. म० आदि० अध्याय १२९
२. म० आदि० अध्याय १३१
३. म० आदि० अध्याय १५१-१५५
४. म० आदि० अध्याय १५६-१६३
५. म० आदि० अध्याय २१३-२१४

हैं। वनपर्व में प्रासंगिक वृत्त, उपाख्यान और दृष्टान्त कथाएं अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। बारह वर्ष की अवधि में अनेक ऋषि मुनियों का सम्पर्क, अर्जुन का इन्द्रलोक गमन और निवातकवचों से युद्ध होता है।

प्रासंगिक वृत्त कथाप्रवाह में सहायक होकर पाण्डवों के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। किर्मीर राक्षस का भीम द्वारा वध, भीम की शक्ति एवं चरित्र का प्रकाश दिखाता है। द्वैतवन में जाकर द्रौपदी एवं युधिष्ठिर का आचार शक्ति व धर्म सम्बन्धी संवाद होता है—इसकी पृष्ठभूमि के साथ अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर जाते हैं, वहां किरात वेष धारी शिव से युद्ध होता है—इस युद्ध के कारण अर्जुन को दिव्यास्त्रों की प्राप्ति होती है। द्यूत के विषय में बृहदश्व नलोपाख्यान प्रस्तुत करते हैं। तदुपरान्त व्यास जी अनेक संवादों से धर्माचार का प्रतिपादन करते हैं। भीष्म और पुलस्त्य के प्रस्तावित संवाद से तीर्थों का वर्णन होता है। यह वर्णन तीर्थों के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। इल्वल-वातापि, अगस्त्य का संक्षिप्त कथानक, राजा सगर और पुत्रों की कथा (गंगावतरण) ऋष्यशृंगमुनि का आख्यान, परशुराम की कथा, च्यवन ऋषि की कथा, मान्धाता, सोमक, उशीनर और अष्टावक्र का संक्षिप्त वृत्त, यवक्रीत का कथानक, वराह द्वारा वसुधा के उद्धार की कथा आदि स्वतन्त्र संक्षिप्त उपाख्यानों में कथा को आगे बढ़ाया गया है। ये सभी उपाख्यान सौति के संस्करण के ज्ञात होते हैं क्योंकि पाण्डव जिन स्थानों पर गये उनका विस्तृत वर्णन प्रसंगवश कर दिया गया।

भीमसेन सौगन्धिक कमल लाने के लिए जाते हैं तो हनुमान से भेंट होती है। इस भेंट के उपरान्त कथाकार ने अनेक अवान्तर कथाओं में प्रसंग को विस्तार दिया। इस विस्तार का कारण सौति की पौराणिक कथा कहने की प्रवृत्ति ही रही होगी। जटासुर-वध, यक्ष-युद्ध और निवातकवच-युद्ध—इन तीनों प्रसंगों में इस प्रकार का विस्तार किया गया है। नहुष के संक्षिप्त वृत्त को भी इसके उपरान्त जोड़ दिया गया। यहां कथाकार का अभीष्ट यही ज्ञात होता है कि सर्प रूप धारी नहुष और युधिष्ठिर के प्रश्नोत्तर से कतिपय सिद्धान्तों को प्रकाश में लाया जाय। इसके उपरान्त कथाकार कथा को धार्मिक विवेचना की ओर ले जाता है। मार्कण्डेय युधिष्ठिर को अनेक दृष्टान्त और स्वतन्त्र कथाओं से धर्म के सूक्ष्म रूप को समझाते हैं। धुंधुमार उपाख्यान, पतिव्रता उपाख्यान, स्कन्द का उपाख्यान, अंगिरसोपाख्यान के द्वारा धर्म के अनेक व्यावहारिक पक्षों की विवेचना होती है।

पाण्डवों के साथ कथा को इस स्थल तक लाकर द्रौपदी सत्यभामा संवाद के उपरान्त कथाकार कथा के अपर पक्ष (कौरवों) की ओर अग्रसर होता है। घोषयात्रापर्व में राजधानी में होने वाली पाण्डव विरोधी गति-विधियों की सूचना देकर कर्ण की दिग्विजय के वृत्तान्त के बाद कथा पुनः पाण्डवों के साथ चलती है। इस वृत्त से दुर्योधन की गन्धर्वों द्वारा पराजय और पाण्डवों की सहायता के द्वारा कथाकार दोनों पक्षों के चरित्र का चित्रण करता है। कौरवों का दुर्बल और अधर्मी पक्ष

तथा पाण्डवों का सबल और आदर्श वादी पक्ष उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत होता है।

पाण्डव काम्यक वन मे आते है, यहां मुख्य घटना जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी का हरण और पराजित होकर शिव से वरदान प्राप्त करना है। इससे अभिमन्यु-वध का कारण स्पष्ट हो जाता है। मार्कण्डेय युधिष्ठिर को रामोपाख्यान सुनाते है; यहीं पर सावित्री सत्यवान का उपाख्यान, कर्ण के जन्म का वृत्त सामने आता है। वनपर्व के अन्त मे ब्राह्मण की अरणि और मन्थन काष्ठ की कथा के मध्य यक्ष एवं युधिष्ठिर की प्रश्नोत्तरी के साथ अज्ञातवास की चर्चा होती है।

वनपर्व मे आने वाले स्वतन्त्र उपाख्यान और प्रासंगिक वृत्त निश्चित रूप से मूल कथा के प्रारम्भिक लघु भाग को विस्तार देने के हेतु और धर्म चर्चा के कारण प्रस्तुत किये गए है, इनसे देश की कुछ भौगोलिक परिस्थिति का भी ज्ञान होता है।

अज्ञातवास में कीचक का प्रासगिक वृत्त सैरन्ध्री के चरित्र का उत्कर्ष दिखाता है और प्रकारान्तर से कीचक का वध दुर्योधन तथा त्रिगर्तों को विराट पर आक्रमण करने की भावना को जागृत कराता है। इस आक्रमण के कारण ही अत्यन्त नाटकीय रूप से पाण्डव प्रकट होते है, कौरवो को पराजय का मुख देखना पड़ता है, और उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से होता है।

उद्योग पर्व मे कथा का अधिक भाग युद्ध की तैयारी और स्वतंत्र उपाख्यानों से निर्मित होता है। संजयानपर्व, प्रजागरपर्व, सनत्सुजातपर्व—कथा के हल्के स्पर्श से धार्मिक एव नीति सम्बन्धी चर्चा से परिपूर्ण है। वृत्तासुर, नहुष, मातलि, गरुड़, विदुला और अम्बा के स्वतंत्र उपाख्यान प्रमुख कथा के मध्य जोड़ दिये गए है। ये सभी साभिप्राय है; यथा विदुलोपाख्यान, परास्त पुत्र के हृदय मे पुन: साहस का सचार करने के हेतु कुन्ती सन्देश के रूप मे पाण्डवों के पास भेजती है। यानसन्धि-पर्व मे कौरव पक्ष की तैयारी और भगवद्यान पर्व मे पाण्डवों की तैयारी की झलक मिलती है। यहां कथाकार यह भी सिद्ध करना चाहता है कि कौरवो का पक्ष अनीति की ओर झुका हुआ था इस कारण कृष्ण भी उनको न समझा सके।

युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व कृष्ण गीता का उपदेश देते है और दस दिन का युद्ध भीष्म के सेनापतित्व मे होता है। भीष्मपर्व से कथाप्रवाह के स्थान पर युद्ध वर्णन का आधिक्य हो जाता है। युद्ध ही मुख्य रूप से सामने होता है अत: अवान्तर प्रसंग नहीं आ पाते। द्रोणपर्व मे प्रमुख व्यक्तियो के वध की घटना के साथ अभिमन्यु-वध के उपरान्त व्यास जी मृत्यु की उत्पत्ति का वर्णन करते है और नारदजी १६ राजाओं का चरित्र सुनाते है।

कर्णपर्व मे युद्ध के अतिरिक्त कर्ण एवं परशुराम का सांकेतिक वर्णन, व्याध और कौशिक मुनि का आख्यान प्रमुख रूप से आता है। शल्यपर्व में भी कोई प्रासंगिक वृत्त नहीं है कथा केवल युद्ध के साथ विकसित होती है। गदापर्व में बलरामजी चन्द्रमा के शापमोचन की सक्षिप्त कथा अवश्य सुनाते हैं। सौप्तिक और स्त्रीपर्व युद्ध के परिणाम की स्थिति चित्रित करते है।

प्रासंगिक वृत्तों का सक्रिय भाग स्त्रीपर्व तक सामान्यतः समाप्त हो जाता है। शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्व कथा की दृष्टि से स्थिर गति के स्थल हैं। इन पर्वों में जीवन के आचार-सम्बन्धी अनेक नियमों का वर्णन है। युधिष्ठिर तथा अन्य समस्त पाण्डवों को भीष्म, कृष्ण, व्यास धर्म के गूढ़ रहस्य समझाते हैं। इन पर्वों में अधिकांश दृष्टान्त कथाएं आई हैं जो मूल रूप में स्वतन्त्र किन्तु उदाहरण के हेतु महाभारत का भाग बन गई हैं। आश्वमेधिक पर्व में अश्वमेध यज्ञ प्रमुख घटना है। इस पर्व में उत्तंक इन्द्र, वज्रदत्त तथा उलूपी का प्रासंगिक वृत्त आता है। इन प्रासंगिक वृत्तों से अर्जुन के पराक्रम और विजय की घोषणा होती है।

उपसंहार :—आश्रमवासिक पर्व से कथा का उपसंहार प्रारम्भ हो जाता है। इस पर्व में कुरुक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त सभी व्यक्तियों का पुनर्दर्शन होता है। मौसल-पर्व में यादवों के आपस के युद्ध का वर्णन है। अर्जुन द्वारका से स्त्री पुरुषों को लाते हैं और अपनी राजधानी में बसा देते हैं। महाप्रस्थानिक पर्व में पाण्डवों का प्रस्थान और निर्वाण प्राप्ति होती है। स्वर्गारोहण पर्व में कथा का स्थल स्वर्ग होता है और इस महाकाव्य की समाप्ति हो जाती है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि मूल-युद्ध की कथा पाण्डवों की कथा के साथ अनेक उपकथाएं—स्वतन्त्र आख्यान और दृष्टान्त कथाओं को सम्बद्धकर तृतीय संस्करण में इस काव्य को इस रूप में लाया गया।

वस्तु संयोजन के विवेचन से यह स्पष्ट है कि महाभारतकार कथा के चयन और संपादन में कितनी विलक्षण प्रतिभा का कवि है। कुरुवंश के साथ अनेक पूर्व और परवर्ती उपाख्यानों के सुसम्बद्ध और सुनियोजित संयोजन में उसकी विराट गरिमामयी वस्तु संयोजन शैली का प्रकाशन होता है।

अब कथा वर्णन की प्रक्रियाओं के आधार पर शैली के विभिन्न रूपों की संक्षिप्त समीक्षा स्पृहणीय है।

कथात्मक शैली

महाभारत' की विशालता में कथात्मक शैली का आद्यन्त आयोजन है। इसमें वक्ता-श्रोताओं के प्रश्नोत्तर में प्रवचनात्मक रूप में कथा चलती है। इन स्थलों में कुछ द्रुत गति से वर्णित स्थल हैं कुछ की गति मंथर है। द्रुत गति वाले स्थलों में वक्ता कथा का नितान्त परिचय प्रस्तुत करता है। मंथर गति में वह परिचयात्मकता के स्तर से ऊपर उठकर विवेचन और विचार की सीमा में प्रविष्ट करता है। एकलव्य[1], पाण्डवों की वारणावत् यात्रा[2], हिडिम्बा का प्रसंग[3], शाल्व वध[4], सगरपुत्रों

१. म० आदि० अध्याय, १३१

२ म० आदि० अध्याय, १४०-१५०

३ म० आदि० अध्याय, १५१-१५५

४ म० वन० अध्याय, १४-२१

का आख्यान,[1] उशीनर का आख्यान[2] आदि स्थलों पर कथा द्रुत गति से प्रवाहित होती है। मंथर गति वाले स्थलो मे युद्ध का प्रसग प्रमुख है। युद्ध प्रसग के अतिरिक्त चित्र और दृश्यों के वर्णनों में भी कथा-क्रम सीमित रहता है। मंथर गति युक्त कथा-रूप मे द्रोण-द्रुपद की कथा[3], विराटनगर की कथा[4], तथा शान्तिपर्व और अनुशासन पर्व की दृष्टान्त कथाएँ आती हैं। हमारे इस विभाजन का आधार गति-बाहुल्य है। जिन स्थलो पर कवि चारित्रिक विशेषता और विचार प्रतिपादन की उपेक्षा करता हुआ केवल कथा कहता है, वे स्थल द्रुतगति वाले माने हैं। शेष मंथर गति के अतर्गत आते हैं। आस्तीक पर्व के अन्तर्गत देवताओं के अमृतपान का वर्णन कवि कितनी द्रुतता से करता है—

ततः पिबत्सु पिबत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम् ।
राहुर्विबुधरूपेण दानवः प्रापिबत् तदा ॥
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा ।
आख्यातं चन्द्र सूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया ॥[5]

जिस समय देवता उस अमृत का पान कर रहे थे ठीक उसी समय राहू नामक दानव ने देवता रूप में आकर अमृत पीना आरम्भ किया। वह अमृत अभी उस दानव के कण्ठ तक ही पहुँचा था कि चन्द्रमा और सूर्य ने देवताओं के हित की इच्छा से, उसका भेद बता दिया। ऐसे स्थलों मे लेखक ने वस्तु के आगे बढ़ाने की प्रवृत्ति पर अधिक बल दिया है। इसके विपरीत कथानक मे स्थिरता के कारण गति मन्थर हो जाती है। जैसे किरात और अर्जुन का युद्ध। कई स्थलों पर एक कथा मे अवान्तर कथा को जोड़ते हुए सारी कथा का भार अवान्तर प्रसंगों पर भी डाल दिया गया है।

संक्षेप में 'महाभारत' कथात्मक शैली मे लिखा हुआ संस्कृत का सर्वोच्च काव्य-ग्रन्थ माना जाता है। एक घटित घटना को निरपेक्ष व्यक्ति की तरह सुनाना इस ग्रन्थ की शैलीगत विशेषता है। सारी गाथा जनमेजय के यज्ञ मे वैशम्पायन सुना रहे हैं, अतः कथानक में कहानी कहने की सी प्रवृत्ति का होना अनिवार्य है। कथात्मक शैली महाकाव्योचित गरिमा और प्रवाह को लिए है। उसमे कथा की दृष्टि से जो रूप अपनाया गया है उसमें शिथिलता लेश-मात्र भी नही है।

---

१. म० वन०, अध्याय, १०६-१०९
२. म० वन, अध्याय, १३१
३. म० आदि०, अध्याय, १३७
४. म० विराट०, अध्याय, १४-२४
५. म० आदि०, १९।४-५

वर्णनात्मक शैली

महाकाव्य के वर्णनात्मक स्थलों में कवि अपनी वास्तविक गम्भीर दृष्टि की परीक्षा देता है। वर्णनों में कवि के व्यापक ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। एक विशेष विषय पर कवि किन स्तरों से विचार कर सकता है, किन रूपों में उसे देखता है? यह सब वर्णन स्थलों से ज्ञात होता है। महाभारत की वर्णन-शैली ऊँचे दर्जे की है।[1] एक नहीं अनेक प्रकार के वर्णन जिनका सम्बन्ध विभिन्न विषयों से है, हमें इस ग्रंथ में मिलते हैं। एक बात को विभिन्न रूपों में वर्णित करना 'महाभारत' की वर्णनात्मक शैली की विशेषता है।

चि० वि० वैद्य का मत है कि व्यास जी की प्रतिभा होमर और मिल्टन से कई गुनी अधिक है।[2] हमारे कवि के वर्णन सर्वथा यथार्थ और स्पष्ट होते हैं। 'महाभारत' में प्रमुख रूप से इन वर्णनों का समावेश है —

वस्तु-वर्णन, चेष्टा-वर्णन, स्थान-वर्णन, महात्म्य वर्णन, गुण-वर्णन स्तवन-वर्णन रूप-वर्णन, युद्ध-वर्णन, प्रकृति-वर्णन, यश-वर्णन, वर्णाश्रमधर्म-वर्णन आदि।

वस्तु-वर्णन

वस्तु वर्णन के द्वारा पाठक मूलवस्तु के अतिरिक्त उस के विभिन्न पक्षों का परिचय प्राप्त करता है। 'महाभारत' जैसे विशालकाय काव्य में व्यास जी का वस्तु-परिगणन के अनेक स्थल मिले हैं। राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर को प्राप्त भेंट का एक चित्र द्रष्टव्य है।

> और्णान् बैलान् वार्षदंशाजान् रूपपरिष्कृतान्।
> प्रावाराजिन मुख्यांश्च काम्बोजः प्रददौ बहून्॥
> अश्वांस्तित्तिरिकल्माषांस्त्रिशतं शुकनासिकान्।
> उष्ट्रवामीस्त्रिशतं च पुष्टाः पीलुशमीङ्गुदैः॥[3]

इन श्लोकों में कवि ने कम्बोज-नरेश प्रदत्त वस्तुओं की गणना मात्र की है। वस्तु-परिगणन में एक वस्तु की परिगणना करके, कवि उसी को विस्तृत कर देता है। राजसूय यज्ञ में आये हुए राजकुमारों के नामों के वर्णन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

> कैराता दरदा दर्वाः शूरा वै यमकास्तथा।
> औदुम्बरा दुर्विभागाः पारदा वाह्लिकैः सह॥
> काश्मीराश्च कुमाराश्च घोरका हंसकायनाः।
> शिबित्रिगर्तयौधेया राजन्या मद्र केकयाः॥[4]

---

1 महाभारत मीमांसा, पृ० ३८
2 महाभारत मीमांसा, पृ० ३२
3 म० सभा० ५१।३-४
4 म० सभा० ५२।१३-१४

इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र के पुत्रों की नामावली, कार्तिकेय के विभिन्न नामों का वर्णन, तथा शिव और विष्णु के सहस्र नामों का वर्णन, इसी वस्तु-परिगणन शैली के अन्तर्गत आता है।

चेष्टा-वर्णन

महाकाव्यकार मानव मन का पूर्ण पर्यवेक्षण कर उसके नाना रूपों का उद्घाटन करता है। मनुष्य की चेष्टाओं के वर्णन से उसके भावों की अभिव्यक्ति सामान्यत: कवि की एक कलागत विशेषता समझी जाती है। शुद्ध साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'महाभारत' में वर्णित विभिन्न पात्रों की चेष्टाओं का वर्णन कवि की सूक्ष्म-दर्शिनी प्रतिभा का द्योतक है। 'महाभारत' में अनेक स्थल ऐसे हैं जहां पर कवि ने पात्र की मनोभूमि की अभिव्यक्ति इसी शैली से की है।

उदाहरण के लिए द्रौपदी-चीर-हरण के समय भीम और अर्जुन की मौन चेष्टाओं में विवशता की आकुलता का चित्रण, दुर्योधन की चेष्टाये, सैरन्ध्री रूप द्रौपदी के प्रति कीचक की कामुकता पूर्ण चेष्टाये और युद्ध के समय योद्धाओं की चेष्टायें आदिका वर्णन प्रभाव शाली रूप में हुआ है। कभी-कभी मानव अपने बाह्याकार प्रदर्शनों में भी सारी स्थिति स्पष्ट कर देता है।[1]

राजाओं के अतिरिक्त दुर्योधन की चेष्टाओं का वर्णन दृष्टव्य है।

एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोह्य वसनं स्वकम्।
स्मयन्नवेक्ष्य पाचालीमैश्वर्य मद मोहितः॥
कदलीस्तम्भसदृशं सर्व लक्षण संयुतम्।
गजहस्त प्रतीकाशं वज्र प्रतिमगौरवम्॥[2]

स्थान-वर्णन

कथा के प्रवाह में अनेक स्थल ऐसे आते हैं जहां पर लेखक स्थान विशेष का वर्णन करके ही किसी उद्देश्य की पूर्ति करता है। 'महाभारत' में स्थान-वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। स्थान-वर्णनों में सभा-वर्णन, दिशा-वर्णन, तीर्थ या क्षेत्र-वर्णन, स्थान-वर्णन, युद्ध-भूमि-वर्णन प्रमुख हैं।

सभा-वर्णन के अन्तर्गत महाभारतकार ने प्रमुख रूप से इन्द्र, यमराज, वरुण, कुबेर और ब्रह्मा की सभाओं का वर्णन किया है। सभाओं के वर्णन में ऐश्वर्य और विलास का व्यापक चित्रण हुआ है। कुबेर की सभा का एक चित्र दृष्टव्य है :—

---

१. युधिष्ठिर च ते सर्वे समुदैक्षन्त पार्थिवाः।
किंनु वक्ष्यति धर्मज्ञ इति साचीकृताननाः॥ म० सभा० ७०।६
२. म० सभा० ७१।१०-११

तस्यां वैश्रवणो राजा विचित्राभरणाम्बरः ।
स्त्रीसहस्रैर्वृतः श्रीमानास्ते ज्वलितकुण्डलः ।।
दिवाकरनिभे पुण्ये दिव्यास्तरणसंवृते ।
दिव्यपादोपधाने च निषण्णः परमासने ।।[1]

उस सभा में सूर्य के समान चमकीले दिव्य बिछौनों से ढके हुए तथा दिव्य पादपीठों से सुशोभित श्रेष्ठ सिंहासन पर कानों में ज्योति से जगमगाते कुण्डल और अंगों में विचित्र वस्त्र एवं आभूषण धारण करने वाले राजा वैश्रवण (कुबेर) सहस्रों स्त्रियों से घिरे हुए बैठते हैं।

दिशा-वर्णन

महाभारतकार ने चारों दिशाओं और उनकी विचित्रताओं का विस्तृत वर्णन किया है। दिग्विजय के लिए पाण्डव चारों दिशाओं में अग्रसर होते हैं। इस स्थल पर महाभारतकार अपने विपुल दिशाज्ञान का परिचय देता है।[2] इसके अतिरिक्त तिथि-वर्णन आदि प्रसंग भी वर्णनात्मक शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

माहात्म्य-वर्णन

'महाभारत' धर्म संहिता है, अतः धर्म के विभिन्न तत्वों के प्रतिपादन के साथ माहात्म्य वर्णन की ओर भी कवि का ध्यान अधिक गया है। दान माहात्म्य, ब्राह्मण सेवा का माहात्म्य, तीर्थ का माहात्म्य आदि, वर्णन धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं। स्वयं 'महाभारत' में आने वाले कई उपाख्यान ऐसे हैं, जिनके पीछे फल श्रुति जुड़ी हुई है।[3]

इस प्रकार प्रत्येक धार्मिक कर्म के माहात्म्य का वर्णन हुआ है।

गुण-वर्णन

गुण-वर्णन के अन्तर्गत महाभारतकार ने स्तुति वर्णन तथा अन्य गुणों का वर्णन किया है। 'महाभारत' में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ पर एक देव दूसरे देव की स्तुति करता है, अथवा तपस्वी और ऋषि अपने आराध्य का स्तवन करते हैं। इन स्थलों पर महाकाव्यकार ने वर्णनात्मक शैली द्वारा गुण-चित्रण किया है। 'महा-

---

१. म० सभा० १०।५-६
२. भारताध्ययनं पुण्यमपि पादमधीयतः ।
श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः ।। म० आदि० १।२५४,
श्रद्दधानः सदायुक्तः सदाधर्मपरायणः ।
आसेवन्निममध्यायं नरः पापात् प्रमुच्यते ।। म० आदि० १।२६१
३. म० आदि० ६३।२७

भारत' में जितने भी स्तोत्र है, सब इसी शैली के अन्तर्गत आयेंगे। विष्णुस्तुति,[1] शिवस्तुति,[2] कृष्णस्तुति,[3] इन्द्रस्तुति आदि स्तुतियां गुणवर्णन के अन्तंगत हैं। इन देवों के अतिरिक्त मानवीय पात्रों के गुण-कथन भी प्रचुर मात्रा में है। कृष्ण के द्वारा भीष्म के गुण-प्रभाव[4] का वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक है।

इस शैली का प्रयोग अधिकतर एक पात्र के द्वारा किसी अन्य पात्र के गुणों के उद्घाटन के लिए किया गया है। जहां कहीं एक पात्र कोई विशेष कार्य करता है वहां उससे सम्बन्धित पात्र उसकी प्रशंसा कर देते हैं। प्रारम्भ से अन्त तक प्रश्नोत्तर के बीच वैशम्पायन के कथा कहने के ढंग की प्रशंसा की गई है। इस प्रसंग में भी लेखक स्थिर हो जाता है तथा कथा के प्रवाह से ध्यान हटाकर व्यक्तिगत स्तर पर विचार करने लगता है।

रूप-वर्णन

सौन्दर्य-वर्णन में महाभारतकार ने उतना दत्तचित्त होकर मन नहीं लगाया जितना स्तवन में। रूप-वर्णन के लिए चि० वि० वैद्य ने लिखा है कि मनुष्यों का वर्णन करने में 'महाभारत' की शैली निर्मल और जोशीली जान पड़ती है। स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन करने में परवर्ती काल के संस्कृत कवियों के समान विषय-परायणता 'महाभारत' में नहीं देखने में आती। द्यूतक्रीड़ा के प्रसंग में द्रौपदी को दांव पर रखते समय युधिष्ठिर ने जो उसका वर्णन किया है। वह इस प्रकार के वर्णन का नमूना है।[5]

नैव ह्रस्वा न महती न कृष्णानातिरोहिणी।
नील कुंचितकेशी च तया दीव्याम्यहंत्वया॥
शारदोत्पल पत्राक्ष्या शारदोत्पलगन्धया।
शारदोत्पल सेविन्या रूपेण श्री समानया।
तथैव स्यादानृशंस्यात् तथा स्याद् रूपसम्पदा।
तथा स्याच्छीलसम्पत्या यामिच्छेत् पुरुषः स्त्रियम्॥[6]

---

१. म० वन० अध्याय १०२
२. म० शान्ति० अध्याय २८४
३. म० शान्ति० अध्याय ४३
४. यच्चभूतं भविष्यंच भवच्च पुरुषर्षभ।
सर्वतज्ज्ञानवृद्धस्य तव भीष्म प्रतिष्ठितम्।
त्वां हि राज्ये स्थित स्फीते समग्रांगमरोगिणम्।
स्त्रीसहस्त्रैः परिवृतं पश्यामीवोर्ध्वरेतसम्॥ म० शान्ति०, ५० । १८, २०
५. महाभारत मीमांसा, पृ० ३६
६. म० सभा०, ६५।३३-३५

द्रौपदी का यह सौन्दर्य-वर्णन उत्तेजनात्मक नहीं है। इस विषय में महाभारतकार पर्याप्त सतर्क है। कीचक जैसे दुष्टात्मा और व्यसनी के मुख से द्रौपदी का जो सौन्दर्य-वर्णन कराया गया है वह भी प्रेयात्मक है। सत्यभामा, लक्ष्मी तथा अन्य नारियों का सौन्दर्य-वर्णन अत्यन्त शुद्ध और सर्वांगीण है। इस विषय में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सौन्दर्य में महाभारतकार ने आंगिक वर्णन पर अधिक ध्यान दिया है। इसका कारण उस समय की विचार-धारा और प्रवृत्ति हो सकती है।

युद्ध-वर्णन

महाभारत' के युद्ध विस्तृत एवं ओजस्वी शैली में लिखे गये हैं। युद्ध का विस्तार-पूर्वक वर्णन करने में व्यास की शक्ति सचमुच अद्भुत है। युद्ध-वर्णन में शस्त्र-चालन और रथचालन के वर्णन अत्यन्त सजीव हैं। युद्ध-वर्णन में व्यूह-युद्ध, पदाति-युद्ध, रथ-युद्ध संकुल-युद्ध, मल्ल-युद्ध, रण में वाक्-युद्ध, माया-युद्ध और द्वन्द्व-युद्ध आदि का वर्णन उल्लेखनीय है। युद्ध-वर्णन में ओजस्वी भाव, शारीरिक वीरत्व का वर्णन पर्याप्त रूप में किया गया है। अमुक योद्धा ने अपने प्रतिपक्षी पर इतने बाणों से प्रहार किया और उसके उत्तर में अपर व्यक्ति ने इतने बाणों का प्रहार किया, इस प्रकार के गणनात्मक वर्णन अनेक स्थलों पर हुए हैं।

महाभारतकार ने युद्ध-वर्णन में अतिशयोक्तिपूर्ण शैली को अपनाया है—यद्यपि यह वर्णन यथार्थ रूप से किया गया है तथापि पुनरुक्ति के कारण वर्णन बोझिल हो गये हैं। युद्ध-वर्णन में व्यूह-वर्णन-शैली का प्रयोग कम किया गया है। अधिकतर द्वन्द्व-युद्धों का वर्णन है। ये द्वन्द्व-युद्ध-वर्णन भी जिस जोश और ओज के साथ चित्रित है, उनमें पाठक की आश्चर्य-वृत्ति उभरती है। इन वर्णनों का सीधा प्रभाव पाठक के मन पर पड़ता है। पाठक उत्साह और शौर्य से आपूरित हो जाता है, उसके हृदय में वीरता की लहरें उमड़ने लगती हैं।[1]

मल्ल-युद्ध के दाव-पेचों के वर्णन में अत्यन्त अन्वेषणी प्रतिभा से कार्य किया गया है। जरासंध और भीम, कीचक और भीम के प्रसंगों तथा हिडिम्ब राक्षस और भीम के मल्लयुद्ध में कवि ने एतद्विषयक ज्ञान का पूर्ण परिचय दिया है।

प्रकृति-वर्णन

प्रकृति और मानव का सम्बन्ध चिरकालीन और अत्यन्त मधुर है। 'महाभारत' में प्रकृति-वर्णन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। पर्वत, नदी, नाले, वनस्पति आदि के अत्यन्त मनोहारी वर्णन स्थान-स्थान पर उपलब्ध हैं। बलरामजी के द्वारा वर्णित तीर्थों में प्राकृतिक दृश्य प्रचुर मात्रा में हैं, ये दृश्य अत्यन्त सुन्दर और हृदय-स्पर्शी हैं। इन स्थलों पर कवि प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करता है। वनपर्व का

---

1 महाभारत मीमांसा, पृ० ३८

हिमालय वर्णन, स्वर्गारोहण पर्व में पर्वत के ऊपर गिरती हिमराशि, उसमें गिरे पाण्डवों का वर्णन, गन्धमादन पर्वत का वर्णन, आदि अत्यन्त सटीक बन पड़े हैं। प्रकृति-वर्णन में कहीं-कहीं पर आवश्यकता से अधिक विस्तार किया गया है। प्राकृतिक सुषमा-चित्रण के साथ महाभारतकार ने वस्तुओं का भी वर्णन किया है। इनमें फूलों, फलों का वर्णन करके गणना-मात्र पर ध्यान केन्द्रित हुआ है। सामान्यतः प्रकृति-वर्णन में अलौकिक भावना की प्रधानता है, समुद्र-वर्णन में कवि के समस्त वर्ण्य उपकरण अलौकिक हो जाते हैं।

इन वर्णनों के अतिरिक्त वंशावली, वर्णाश्रमधर्म, अन्य वस्तु-व्यापार के वर्णनों को भी प्रचुर स्थान मिला है। ग्रन्थ का एक-तिहाई भाग इसी वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है।

संवादात्मक शैली

इतिवृत्तात्मक काव्यों में इस शैली से सामान्यतः कथा को विराम देकर विचार प्रतिपादन किया जाता है। संवादों से महाकाव्य के कार्य-व्यापार और गति में द्रुतता आती है। काव्य में संवादों का होना पाठक की रुचि के लिए भी आवश्यक है। कभी पाठक कथा के प्रवाह के साथ चलता है, कभी संवादों के विराम-स्थलों पर चिन्तन में मग्न होता है। एकरसता के साथ अनेकता की स्थापना शैली परिवर्तन के द्वारा अत्यन्त सुन्दरता से होती है। जिस प्रकार जीवन के विविध अंगों का उद्घाटन महाकाव्य का प्रमुख कार्य होता है, उसी प्रकार कला की दृष्टि से अधिकाधिक शैलियों का प्रयोग श्रेयस्कर है।

'महाभारत' में संवादों की प्रतिष्ठा निर्विवाद है। वक्ता-श्रोता परम्परा में संवाद नितान्त स्वाभाविक है। इन संवादों के द्वारा पात्रों का चरित्रांकन, सिद्धान्त-प्रतिपादन, वस्तु-विशेष का चित्रण, पूर्वकथानकों का उद्धरण और किसी विवादास्पद विषय का समाधान होता है। यह शैली महाभारत में नई नहीं है, इसका प्रयोग इससे पूर्व होता रहा है। इस ग्रन्थ में मुख्यरूप से दुर्योधन-कर्ण, अर्जुन-भीम, शिशुपाल-भीष्म, द्रौपदी-युधिष्ठिर, सात्यकि-अर्जुन, कर्ण-कृष्ण, धृष्टद्युम्न-युधिष्ठिर, युधिष्ठिर-दुर्योधन आदि के संवाद महत्वपूर्ण हैं। इन सब में वाद-विवाद की स्थिति रही है। कुछ स्थलों पर भाषण और संवाद का समन्वय भी हुआ है।[1]

व्याख्यानात्मक शैली

'महाभारत' में शैली की एक विशेषता भाषणों में उपलब्ध है। इन भाषणों से एक पक्ष के विविध दृष्टिकोणों का ज्ञान अनायास हो जाता है। ये भाषण दो प्रकार के हैं। एक तो किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए भाषण—इनमें भाषणकर्त्ता मत

---

१. म० उद्योग० भगवद्यान पर्व

प्रतिपाद्य के साथ पूर्ववर्ती संवाद या उपाख्यानों का उदाहरण देकर भाषण को रोचक बना लेता है। दूसरे भाषण वे हैं, जो किसी कार्य के लिए प्रोत्साहित करने के लिये दिये गये हैं। इनके अन्तर्गत हम उन भाषणों को भी ले लेंगे जिनमें किसी पात्र विशेष ने किसी के गुण-कथन में एक लम्बा-सा भाषण दे दिया हो।

उद्योगपर्व में उभयपक्ष के बीच सन्धि कराने के लिए श्रीकृष्ण का भाषण साहित्य का सुंदर उदाहरण है। व्यासजी समर्थ भाषण करने में कितने सिद्धहस्त हैं, यह कृष्ण के कर्णपर्व के भाषण से ज्ञात होता है। अर्जुन के युद्धाभिमुख होने पर, उसको प्रोत्साहन करने के लिए कृष्ण का भाषण तेजस्विता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

निर्भयता इन भाषणों का प्रमुख गुण है। भाषणकर्ता निर्भीकता से अपने विचार प्रकट करता है। इनमें व्यक्तिगत प्रतिभा और उसकी निर्द्वन्द्व अभिव्यक्ति अत्यन्त तीव्र रूप में हो पाई है। दुर्योधन के लिए विदुर और कर्ण के लिए भीष्म आदि ने जो निर्भय अभिव्यक्ति की है, वह संस्कृति और सभ्यता के उत्कृष्टतम रूप की द्योतक है। 'महाभारत यथार्थवादी महाकाव्य है। उसमें अनावश्यक प्रच्छन्नता नहीं मिलती। *शकुन्तला कहती है—"यदि सत्य के लिए तुम्हारे भीतर सम्मान नहीं है, तो* तुम्हारे जैसे पुरुष का संग मुझे नहीं चाहिए। पतिया पुत्र की अपेक्षा भी सत्य अधिक मूल्यवान वस्तु है।'[1] शकुन्तला की यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशेषता है। वस्तुतः व्यासजी ने अपने पात्रों के मुख से नीति का महान् से महान् उपदेश अत्यन्त उदात्त शैली में कहलवाया है। प्रत्येक पात्र जब कभी जीवन के किसी व्यावहारिक प्रश्न के विषय में बोलता है, तब उसका स्पष्ट कथन लेखक के व्यक्तित्व की प्रतिछाया का आभास कराता है। सत्यता, सरलता, स्वाभिमान, पाप, पुण्य आदि विवादों पर लम्बे-लम्बे संवाद और भाषणों में कवि ने कथा के स्वरूप का निर्माण किया है। समग्रतः 'महाभारत' की प्रतिपादन शैली-विभिन्न-रूपा है, और इस शैलीगत विशेषता ने भी परवर्ती काव्य पर पर्याप्त प्रभाव डाला है।

---

१ म० आदि० ७४।१०५-१०६

महाभारत-प्रभावित हिन्दी प्रबन्ध काव्य
एक सर्वेक्षण

परम्परा

परिचय

द्वितीय अध्याय

महाभारत-प्रभावित हिन्दी प्रबन्ध काव्य : एक सर्वेक्षण

प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों का संक्षिप्त सर्वेक्षण स्पृहणीय है। सं० १९०० अर्थात् १८४३ ई० से आधुनिक काल की सीमा अभीष्ट है। इस काल में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के कारण अनेक साहित्यिक आन्दोलन हुए और प्रत्येक आन्दोलन के प्रभावस्वरूप लिखे गये साहित्य में विशेष विचारधारा का प्रतिपादन, एवं आधुनिक और प्राचीन विचारों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। भारतेन्दु युग में प्राचीन आख्यानों के प्रति मोह विद्यमान रहा। इस काल में पुनरुत्थानवादी विचारधारा के अन्तर्गत प्राचीन आख्यानों का पुनःस्थापन मात्र अपेक्षित रहा। द्विवेदी युग में प्राचीन उपाख्यानों की परम्परा तो अक्षुण्ण रही, किन्तु उनमें युगीन विचारधारा के प्रतिपादन के लिए चारित्रिक और कथात्मक परिवर्तन की प्रणाली का अभ्युदय हुआ।

परम्परा

इन प्रबन्ध काव्यों की परम्परा में दो प्रकार के काव्य हैं —

१ प्राचीन कथागत और विचारगत तत्वों को यथावत रूप में स्वीकार करने वाले तथा

२ प्राचीन कथा और विचार में बौद्धिक दृष्टिकोण का समावेश करने वाले काव्य।

भारतेन्दु और द्विवेदी-युग में होने वाले राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव यद्यपि प्रमुख रूप से सामयिक काव्यों पर पड़ा है, तथापि 'महाभारत' से सम्बन्धित प्रबन्धकाव्य भी उस प्रभाव के स्पर्श से पृथक न रह सके। कथा-विकास के बीच युगीन आन्दोलन का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। 'महाभारत' का प्रभाव आधुनिक प्रबन्ध काव्यों पर परोक्ष और प्रत्यक्ष, दोनों रूपों में पड़ा है। इस अध्याय में प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित प्रबन्धकाव्यों का परिचय दिया जायेगा। 'महाभारत' की कथा से प्रभावित काव्यों की परम्परा हमें आधुनिक काल की सीमा में १८७४ ई० से मिलती है। इसके पूर्व भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में अनेक काव्यों का विवरण है किन्तु वे काव्य प्रकाशित नहीं, और हस्तलिखित प्रतियाँ भी खण्डित हैं। इन पाण्डुप्रतियों का संक्षिप्त परिचय 'आधुनिक हिन्दी-काव्य-पूर्व की प्रभाव-परम्परा' शीर्षक के अन्तर्गत तृतीय अध्याय में दिया जायगा। इन प्रतियों के लिपि-काल आधुनिक काल की सीमा के अन्तर्गत आते हैं किन्तु रचना-काल पूर्व सीमा में प्रमाणित होते हैं।

सन् १८७० से १९१५ तक की रचनाओं की प्रवृत्ति 'महाभारत' के कथानक के पुनर्लेखन की ओर अधिक रही है। यह समय ऐसा था कि प्रबन्ध रचना की

परम्परा और प्रेरणा तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना तो विद्यमान थी, किन्तु प्राचीन लोक-विश्रुत कथानकों के आधार पर लिखे गये काव्यों में कथा और चरित्र की दृष्टि से नूतन उद्भावनाओं की सृष्टि का अभाव रहा। 'महाभारत' की मुख्य घटनाओं पर चरित्र-प्रधान खंडकाव्य लिखे गये, किन्तु उनमें कथा-विकास और अति प्राकृत तत्वों की स्वीकृति यथावत है। इस काल के काव्यों में पुनर्जागरण के संदर्भ में युगीन विचारधारा के अनुकूल परिवर्तन नहीं किये गये, केवल प्राचीन कथाओं को काव्य में प्रस्तुत करना ही मुख्य उद्देश्य रहा। १९१५ के उपरान्त गुप्तजी के अनुकरण में, बौद्धिक चेतना के विस्तृत प्रभाव के साथ इन प्रबन्ध-काव्यों में चारित्रिक पुनरुत्थान और युगीन आदर्शवाद के कारण पौराणिक विचारधारा का आधुनिक चिन्तन-क्षेत्र की परिधि में आलेखन किया गया। कुछ काव्यों में 'महाभारत' की कथात्मक पृष्ठभूमि के आधार पर, आधुनिक उन ज्वलन्त समस्याओं का विवेचन किया है, जो हरयुग में मानव-चेतना को त्रस्त करती है। महाभारतकार ने उनका समाधान जिस पौराणिक विश्वास के अन्तर्गत किया था, आधुनिक कवि उस विश्वास की बौद्धिक व्याख्या कर, उसे आधुनिक, वैज्ञानिक और अनेक राजनीतिक-सामाजिक आन्दोलनों के आलोक में ग्रहण करता है। 'महाभारत' से प्रभावित प्रबन्ध काव्यों की विवेचना की एक प्रमुख उपलब्धि यह है, कि हम देख सकें कि आधुनिक कवि किन अर्थों मे अतीत के प्रति जागरूक रहकर वर्तमान को अतीत की नींव पर सुदृढ़ बनाता है।

परिचय

अब प्रकाशन सन् के आधार पर प्रबन्ध-काव्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जायगा।

जरासंध-वध (गिरधरदास) १८७४ ई०

'जरासंध-वध' की कथा का प्रारम्भ कृष्ण के युद्ध-विरत होने और जरासंध द्वारा अनेक राजाओं को बन्दी बनाने की सूचना से होता है। इस काव्य में जरासंध और यादवों के युद्ध का चित्रण[1] विस्तार से है और कौरवों को आसुरी वृत्ति संयुक्त प्रदर्शित करने के लिए जरासंध का सहायक बना देना[2] कवि की मौलिक सूझ है।

'महाभारत' में जरासंध-वध की घटना प्रासंगिक वृत्त है। अतः वहां जरासंध के कार्यों की सूचना देकर भीमार्जुन के मगध-गमन से कथा प्रारम्भ होती है। परन्तु 'जरासंध-वध' में कथा का विकास 'महाभारत' के आधार पर स्वतंत्र कथा-खंड के रूप में हुआ है। 'जरासंध-वध' के अभियान को महत्ता देता हुआ कवि जरासंध की सेना का

---

१. आजुहि अयादवी धराकरौं विचारिके।
वीरभागवेस के लसै आनन्द धारि के॥ जरासंधवध, पृ० ६

२. कौरवेस आदि संग मागधेस के बने। जरासंधवध, पृ० ६

प्रयाण विस्तार के साथ दिखाता हुआ द्वारका के पश्चिम द्वार पर भयंकर युद्ध का वर्णन करता है।[1]

काव्य का द्वितीय भाग अनुपलब्ध है अत जरासंध वध की रूप-रेखा अस्पष्ट है।

कृष्णसागर (जगन्नाथ सहाय) १८७५ ई०

'कृष्णसागर' मे भगवान् कृष्ण के जीवन की कथा विभिन्न छंदो मे वर्णित है। उनके जीवन के साथ पाण्डवो का अभिन्न सम्बन्ध है। अत कथा का उत्तरार्ध 'महाभारत' से प्रभावित है। कवि कृष्ण के जीवन पर आधारित अन्य काव्यो की भांति ही ब्रज, द्वारका और हस्तिनापुर के कथानक में सहेतुक सम्बन्ध करता है, किन्तु जिस स्थल से उसने 'महाभारत' के कथानक को ग्रहण किया है वही से कथानक का उचित निर्वाह हुआ है।

कृष्ण-काव्यो मे प्रथा है कि उद्धव या अक्रूर पाण्डवो के पास जाकर वहा युधिष्ठिर, विदुर या कुन्ती को सारी कथा सुनाते हैं। इस तरह द्वारका के साथ पाण्डवो का प्रसग जुड जाता है। 'कृष्णसागर' मे भी यही परम्परा अपनाई गई है। पाण्डवो की कथा का प्रारम्भ कुन्ती के निवेदन से होता है।

> एक बार तेई भीम को दीन्हेंसि गरल खिलाय।
> अपर लाखके कोट रचि, पावक दियो लगाय॥[2]

कथा का प्रारम्भिक भाग इसी सूचनात्मक शैली मे लिखा गया है। इसके पश्चात् कथा मे 'महाभारत' के पात्र तो आ जाते हैं पर घटना-स्थल द्वारका ही रहता है। राजसूय यज्ञ के अवसर पर अवश्य हस्तिनापुर घटना-स्थल बनता है।[3]

कृष्ण के ईश्वरत्व[4] मे 'महाभारत' का प्रभाव पूर्णरूप से पडा है, क्योंकि श्रीकृष्ण की स्तुति, ईश्वर के रूप मे की गई है।

देवयानी (जगन्मोहन सिंह) १८८६ ई०

प्रस्तुत काव्य 'महाभारत' के एक उपाख्यान पर आधारित है। यह आदिपर्व के ७५वें अध्याय से ८५वें अध्याय तक की कथा है। गुरु शिष्य के गौरवपूर्ण सम्बन्ध आत्म-त्याग के ओजस्वी और काम-पूर्ति के व्यापक रूप का चित्रण इस काव्य मे

१ जरासंध-वध, पृ० ४०
२ कृष्णसागर, पृ० १३४
३ कृष्णसागर, पृ० २१४
४ अर्थ धर्म कामादिक जोऊ। निर्गुण रूप रहत नृप सोऊ।
रहन चहत जब यह ससारा। धारत रूप सगुन अवतारा॥ कृष्णसागर, पृ० २३६

हुआ है। गुरु-पुत्री के प्रणय-प्रस्ताव का विरोध कच ने जिस आदर्श से प्रेरित होकर किया वही आदर्श काव्य का प्रतिपाद्य है।

'देवयानी' काव्य की कथा का विकास 'महाभारत' के अनुरूप ही हुआ है। कच का शुक्राचार्य के पास जाकर संजीवनी विद्या और देवासुर-संग्राम का वर्णन 'महाभारत' के अनुसार है।

ब्राह्मणो तावुभौ नित्य मन्योन्य स्पर्धिनौ भृशम्।
तत्रदेवा निजघ्नुर्यंन्दानवानयुधि संगतान्॥
तान्पुन जीवयामास काव्यों विद्याबलाश्रयात।
ततस्ते पुनरुत्थाय योधयां चक्रिरे सुरान्॥[1]

'देवयानी' में इस प्रसंग को यथावत् चित्रित किया गया है। कवि 'महाभारत' की चित्रण-शक्ति का क्षणिक स्पर्श करने में समर्थ हुआ है।

ते दोउ द्विजनित करहिं झगर आपुस महं जानौं।
शुक्र आपुनी बल विद्या सों तुरत जियावैं॥
तै पुनि उठि दिति देव संग संगरतर ठावैं।[2]

इससे ज्ञात होता है कि कवि ने कथा का स्वतन्त्र विकास नहीं किया है। निम्नलिखित प्रसंग समान रूप से चित्रित हुए हैं :—

देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर कच का शुक्र के पास गमन[3] नृत्यकला से देवयानी का मनोरंजन[4], राक्षसों द्वारा कच का वध और देवयानी की प्रार्थना पर पुनर्जीवन।[5]

कवि ने इन समस्त प्रसंगों का चित्रण यथावत् किया है। कच के अनेक बार मरने और पुनर्जीवन के प्रसंग में देवयानी के प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। संजीवनी प्राप्त करने के उपरान्त जाते समय देवयानी कच को शाप दे देती है और कच शिरोधार्य कर प्रतिरोध में शाप देकर अपने धाम चला जाता है। प्रस्तुत काव्य में कवि 'महाभारत' के जीवन-दर्शन को ग्रहण करने में असमर्थ रहा है। भोगवादी वृत्ति-निवारण के हेतु यदि कवि अपने युग की विचारधारा को वाणी देता तो काव्य की सोद्देश्य परिणति होती। इसके अभाव में यह काव्य केवल कथावचन मात्र रह गया है। कथा-विकास में देवयानी, शर्मिष्ठा, ययाति, प्रभृति चरित्रों का आख्यान पौराणिक है अतः यह काव्य प्रभाव-परम्परा की शृंखला के रूप में ही गिना जाना चाहिए।

---

१. म० आदि०, ७६।७-८
२. देवयानी, पृ० १८
३. देवयानी, पृ० १६
४. देवयानी, पृ० २०
५. देवयानी, पृ० २६

महाभारत दर्पण (गोकुलनाथ) १८६१ ई०

इस ग्रन्थ मे कवि ने 'महाभारत' का सारांश, भाषा मे पद्यबद्ध किया है। उस समय संस्कृत के 'महाभारत' को जनता के पढने के लिए हिन्दी मे लिखने की परम्परा थी। यह काव्य उसी का परिणाम है। छायानुवाद होने के कारण यह हमारे विवेचन-क्षेत्र से बाहर है।

जैमिनी पुराण (सूर्यबली सिंह) १८६१ ई०

इस काव्य मे युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ की कथा वर्णित है। व्यासजी युधिष्ठिर को अश्वमेध-यज्ञ का परामर्श देते हैं, और श्रीकृष्ण के आ जाने पर कार्य प्रारम्भ होता है। महाभारत' की कथा को अत्यन्त संक्षिप्त करते हुए कवि ने अन्य पौराणिक स्रोतो से इन प्रसगो को ग्रहण किया है—भीम द्वारा द्वारका मे अश्वमेध की व्यवस्था[1] कृष्ण और अनुशाल्व का युद्ध[2], नील-ध्वज-युद्ध और गंगा-शाप[3] प्रस्तर मे अश्व-परिवर्तन, चण्डीशाप मोचन[4], कृष्णार्जुन की रतनपुर यात्रा[5], मोरध्वज-भक्ति की परीक्षा और चन्द्रहास।[6] 'महाभारतीय' कथा का स्वरूप यथासम्भव नवीन है। अनेक गौण प्रसगों[7] को विस्मृत कर दिया गया है। कथा-विकास मे कवि के मौलिक योगदान का अभाव है और पात्रो का स्वरूप भी मूल ग्रन्थ के अनुरूप है। अतिप्राकृत तत्वो को भी उनके मूल रूप मे स्वीकार किया गया है। मोरध्वज के प्रसग मे कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन भी हुआ है।[8]

धनजय-विजय (लालता प्रसाद) १८६२ ई०

'महाभारत' विराटपर्वान्तर्गत गोहरण प्रसग से इस काव्य की रचना हुई है। कथा-विकास मूलग्रन्थ के अनुरूप है किन्तु यत्र-तत्र सामान्य परिवर्तन भी अवश्य हुए हैं। इन परिवर्तनो मे कवि-प्रतिभा की मौलिकता के दर्शन नही होते। 'महाभारत' मे अर्जुन की सम्मति से[9] सैरध्री उत्तर से अर्जुन को सारथी बनाने के लिए कहती

---

१ जैमिनी पुराण, पृ० ५१
२ जैमिनी पुराण, पृ० ६४
३ जैमिनी पुराण, पृ० ७६
४ जैमिनी पुराण, पृ० ८०
५ जैमिनी पुराण, पृ० १४५
६ जैमिनी पुराण, पृ० १६३
७ जैमिनी पुराण, पृ० ११-१३
८ माता पिता बन्धु गुरु देवा। तुम तजि ध्यान न जानहु सेवा॥
तुम दयाल तुम पतित हु तारा। अघसरूपमय पिता हमारा॥ जैमिनी पुराण पृ०६५
९ म०, विराट०, ३४।१३

है किन्तु 'धनंजय-विजय' में अर्जुन की सम्मति की चर्चा नहीं है।[1] संक्षेप में, इस काव्य मे परिस्थिति-जन्य शौर्य की अभिव्यंजना तो हुई है, किन्तु चारित्रिक विकास नहीं हुआ।

नैषध काव्य (गुमान मिश्र) १८६५ ई०

'महाभारत' के नलोपाख्यान पर आधारित तेईस सर्गो के इस प्रबन्ध-काव्य में नायक-नायिका के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा को ही ग्रहण किया गया है। यह काव्य अत्यन्त सामान्य कोटि का है। कथाविकास मूल ग्रन्थ के अनुरूप ही हुआ है, पर कवि ने नगर, उद्यान, विरह आदि के वर्णन मे कल्पना के योग से यत्र-तत्र विस्तार किया है। काव्य-शैली की एक विशेषता यह है कि प्रारम्भिक दोहों मे समस्त सर्गो का कथासार सूचित कर दिया गया है।[2] कुण्डिनपुर, नखशिख तथा स्वयंवर सभा के राजाओं के वर्णन में कवि की मौलिकता अवश्य दिखाई देती है।

अथविजय मुक्तावली (छत्र कवि) १८६६ ई०

यह काव्य पौराणिक शैली में महाभारतीय कथानक के आधार पर लिखा गया है। कवि ने तैंतालीस शीर्षकों मे 'महाभारत' के शान्ति-पर्व तक की कथा का संक्षेप किया है। कथा-विकास की दृष्टि से इस काव्य की कोई देन नहीं, क्योंकि सम्पूर्ण कथानक को लघु आकार में समाविष्ट करने के लोभ से पात्रांकन प्राचीन परिपाटी पर ही हुआ है। कवि ने महाभारत-कालीन भोगवादी प्रवृत्ति[3] का उद्‌घाटन किया है। किन्तु वह उसके मूल को व्यवस्थित रूप मे व्यक्त न कर सका, इस कारण उस काल के प्रधान पात्र सामान्य कामुक की सीमा में व्यक्त हुए है।[4]

आल्हा-महाभारत भीष्म पर्व (गंगा सहाय गौड़) १८६८ ई०

इस ग्रन्थ का विषय भीष्मपर्व है। आल्हा छन्द में लिखा यह काव्य कथानुवाद मात्र है। कवि ने लोक-जीवन में व्याप्त 'महाभारत' की विस्तृत कथा को सक्षेप मे गाया और घटनाओ को ग्रहण करने और छोड़ने में पूर्ण स्वतत्रता का उपयोग

---

१. धनंजय विजय, पृ० ४

२. प्रथमसर्ग में वर्णियो, नरपति नल अवतार।
सकल सुमति जन यह कथा, सुनियो चित्त सभार ॥ नैषध-काव्य, पृ० १

३. निरखि निरखि आसक्त है, कही बात मुनिराय।
मोहितोंहि मृगलोचनी, सुरतिहोय सुखपाय ॥
दे रति कै लेहिशाप अवेतिय, नाहि रह्यो कछु धीरज मोहिय।
आतुर ह्वै ऋषिराज दईरति, ताहि प्रसन्न भयो सुमहामति ॥
—अथविजय मुक्तावली, पृ० ५

४. अथविजय मुक्तावली, पृ० ८

किया है। इस काव्य का महत्व इसी में है कि जनता के समक्ष 'महाभारत' के प्रमुख पात्र अपने मौलिक आदर्शों के साथ व्यक्त होते हैं। 'महाभारत' के वीरोचित वातावरण के निर्माण में कवि पूर्णरूपेण असफल रहा है। कवि का कोई ऐसा सामाजिक, जातीय, राष्ट्रीय या सांस्कृतिक उद्देश्य नहीं जिसके आधार पर कथाविकास और चरित्र-चित्रण हो। भीष्म और अर्जुन के शौर्य की अभिव्यंजना ही प्रमुख उपलब्धि है। इस रचना का महत्व केवल ऐतिहासिक है।

कृष्णायण (बिसाहूराम) १९०३ ई०

कृष्ण-चरित्र पर आधारित यह रचना 'भागवत' और 'महाभारत' से प्रभावित है। आरम्भिक काण्डों का कथानक 'भागवत' से लिया गया है, और पाण्डवकाण्ड में कुरुवंश की कथा है। कृष्ण-काव्यों की सामान्य परम्परा के अनुसार मथुरा की कथा का हस्तिनापुर से जोड़कर कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन किया है। महाभारतीय कथा सूचनात्मक शैली में विन्यस्त करके, पात्रों का यथार्थ आलेखन हुआ है। कवि का दृष्टिकोण भक्तिपरक है, अत पांडवों की कथा प्रसंग-वश ही आई है, मुख्य रूप से कथा का सम्बन्ध ब्रजवासियों से है।

संग्रामसार (कुलपति मिश्र) १९०५ ई०

यह ग्रन्थ महाभारत' के द्रोणपर्व का संक्षिप्त संस्करण है। इसकी रचना शोलापुरा मेरठ के निवासी चौबे राधेलाल जी की प्रेरणा से हुई थी। प्राचीन काव्य-परम्परा के अनुसार राजप्रशंसा[1] कवि प्रशंसा,[2] ग्रन्थ प्रशंसा,[3] के उपरान्त कथा का प्रारम्भ होता है। 'महाभारत' की कथा का सम्पूर्ण अनुवाद न कर, मुख्य पात्रों के मुख से मुख्य घटनाओं का वर्णन किया है। सम्पूर्ण काव्य में शैली वर्णनात्मक है, और कहीं-कहीं सूचनात्मक[4] भी। द्रोणपर्व की कथा का वर्णन विस्तार से है। शेष पूर्ववर्ती और परवर्ती कथानक संक्षेप में कहे गये हैं। सम्पूर्ण काव्य में अभिमन्यु-वध के प्रसंग में मार्मिकता आ पाई है। यह ग्रन्थ प्राचीन पात्रों, संस्कृति और जीवनादर्श के प्रति श्रद्धांजलि रूप से रचा गया है।

वीर-विनोद (श्री पद्मसिंह) १९०७ ई०

यह महाभारत' के कर्ण-पर्व के अनुसार रचित प्रबन्ध काव्य है। इसके वास्तविक रचयिता श्री स्वामी गणेशपुरी हैं किन्तु उन्होंने ग्रन्थ का प्रकाशन अपने पूर्वाश्रम के पिता श्री पद्मसिंह जी के नाम से किया।[5]

---

१ संग्रामसार, पृ० ३
२ संग्रामसार, पृ० ३
३ संग्रामसार, पृ० ४
४ संग्रामसार, पृ० ५
५ वीर-विनोद, पद्मसिंह, भूमिका पृ० ३

इस ग्रन्थ-रचना के समय 'महाभारत' की कथा को लेकर स्वतन्त्र कथा-विकास करने की प्रवृत्ति आविर्भूत हो चुकी थी। 'महाभारत' की प्रभाव-परम्परा में भी यह बात स्पष्ट है कि मूल कथा 'महाभारत' से ग्रहण कर रचयिता उसका इस प्रकार स्वतन्त्र आलेखन करता था कि मूल से तात्विक भेद भी न होने पाये और वह अपनी विचारधारा को भी अभिव्यक्त कर दे। 'वीर-विनोद' में कथा-चयन और विकास पूर्णत. 'महाभारत' की शैली पर हुआ है। केवल मध्य में यथा-स्थान कवि ने अपनी बात कहने की प्रवृत्ति अपनाई है। 'महाभारत' में संजय पहले धृतराष्ट्र को प्रधान सेनापति के मरने की सूचना देकर फिर सम्पूर्ण पर्व की कथा कहते हैं, उसी प्रणाली को 'वीर-विनोद' मे भी स्वीकार किया गया है।

ग्रन्थ-रचना की प्रेरणा कर्ण का उत्कट, साहसी, निश्छल और दानी जीवन है। भूमिका में इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि 'महाभारत' के महान् योद्धाओं के मध्य अटल स्वामिभक्ति, मैत्री, अनुपम परानपेक्षी वीरता, आमरण स्पष्ट एवं निश्छल व्यवहार, चरम उदारता आदि गुण सर्वाधिक रूप से कर्ण मे विद्यमान हैं।[1] ऐसे चरित्र का पुनर्गान समाज एव व्यक्ति की सास्कृतिक निष्ठा के पुन:स्थापन के लिए आवश्यक है। और यह उस समय और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब कि विदेशी शासक प्राचीन साहित्य के विषय में भ्रम फैलाते हों। सारांश यह है कि 'वीर-विनोद में कर्ण के प्रमुख गुणों का उद्घाटन किया गया है। यदि कवि स्वतन्त्र दृष्टि से किसी विचारधारा की प्रेरणा से रचना करता तो यह काव्य अधिक प्रभावशाली हो सकता था।

जयद्रथ-वध (मैथिलीशरण गुप्त) १९१० ई०

प्रस्तुत काव्य महाभारतीय कथानक पर आधृत है। द्रोणपर्व के अन्तर्गत अध्याय सत्तासी से एकसौ छियालीस तक यह कथा वर्णित है। वर्तमान युग मे महाभारतीय प्रसंगों पर खंड-काव्य-रचना की प्रवृत्ति का विकास उक्त रचना से हुआ है। इसने परवर्ती अनेक काव्यकारों को प्रेरणा दी।

'जयद्रथ-वध' में महाभारतीय कथा का विकास सात सर्गों में किया है। प्रथम सर्ग में अभिमन्यु-वध का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में पाण्डवों के शोक की विस्तृत अभिव्यंजना है। तृतीय सर्ग में कृष्ण द्वारा अर्जुन तथा पाण्डवों की सान्त्वना चित्रित है। चतुर्थ सर्ग में पाशुपतास्त्र-प्राप्ति का उल्लेख है। पंचम सर्ग में कौरव-पाण्डवों के भयंकर युद्ध का चित्रण है। छठे सर्ग में जयद्रथ-वध की घटना निरूपित की गयी है। सप्तम सर्ग में कथा का उपसंहार है जिसमें विजयी पाण्डवों का शिविर की ओर आगमन चित्रित किया गया है।

१. वीर विनोद, भूमिका पृ० २

इस खण्ड-काव्य मे कवि ने पूर्व-आख्यान को यथावत् स्वीकार किया है। कृष्ण परब्रह्म के अवतार हैं और पाण्डव दिव्यशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति। कवि ने प्राचीन कथा को वर्णनात्मक शैली मे रुचि-सम्पन्नता के साथ प्रस्तुत किया है, किन्तु कवि अतिप्राकृत तत्वो का युगीन बुद्धिवादी समाधान प्रस्तुत करने मे असमर्थ रहा है, और उनको ही विश्वसनीय मानकर चला है। डा० श्रीकृष्णलाल ने इसके ऐतिहासिक महत्व को इस प्रकार व्यक्त किया है—"'जयद्रथवध' मे मैथिलीशरण गुप्त ने परम्परागत प्रचलित काव्य-रूप मे अपनी मौलिक प्रतिभा का सम्मिश्रण कर एक अपूर्व काव्य की रचना की है।"[1]

शकुन्तला (मैथिलीशरण गुप्त) १९१४ ई०

'शकुन्तला' काव्य की रचना 'महाभारत' के 'शकुन्तलोपाख्यान' से प्रभावित है। यह कथा 'महाभारत' के आदिपर्व मे अध्याय ६८ से ७४ तक वर्णित है। दुष्यन्त-शकुन्तला वृत्त के आधार पर महाकवि कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की रचना की। मूल वृत्त 'महाभारत' का होते हुए भी अनेक उल्लेखनीय परिवर्तनो के कारण कथासूत्र का विकास मौलिकता लिये हुए है। यह काव्य महाभारतीय कथा से प्रभावित होते हुए, 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के कथासूत्र को लेकर विकसित हुआ है। उपक्रम के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि ने कथासूत्र 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' से ग्रहण किया है। महाभारत' का शकुन्तलोपाख्यान भी उस समय उनके मस्तिष्क-पटल पर विद्यमान था।

कवि ने दुष्यन्त-शकुन्तला की कथा को अनेक शीर्षको मे विभाजित किया है। 'जन्म और बाल्यकाल' मे शकुन्तला के जन्म का वृत्त है—कवि ने 'महाभारत' के श्लोक का छायानुवाद कर दिया है —

> कृतकार्या ततस्तूर्णमगच्छच्छक्रसंसदम्।
> त वने विजने गर्भ सिंहव्याघ्रसमाकुले ॥
> दृष्ट्वा शयान शकुना समन्तात् पर्यवारयन्।
> नेमा हिंस्युर्वने बाला क्रव्यादा मासगृद्धिन ॥[2]

कवि 'महाभारत' मे वर्णित वन की भयकरता का प्रकाशन नही करता किन्तु उसी रूप मे जन्म की स्थिति का चित्रण अवश्य करता है —

> किन्तु साथ ले गई तपोधन—मान मेनका मादमयी।
> हाय! हाय! उस कुसुम कली को वही विपिन मे छोड गई॥
> जिस पर निज पक्षो की छाया रक्खी शकुन्त द्विजवर ने—।
> मृदुकोपल-सी वह मृदु कन्या देखी कण्व मुनीश्वर ने—॥[3]

---

1 आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १०२-१०३
2 म० आदि०, ७२।११-१२
3 शकुन्तला, पृ० ६

'दर्शन' में शकुन्तला भेंट और पूर्वराग तथा 'पत्र' में दर्शन की पृष्ठभूमि के साथ पत्र-लेखन का वर्णन है। 'अवधि' में संयोग की स्थिति तथा अभिशाप में दुर्वासा का शाप वर्णित है। दुर्वासा के शाप की कल्पना भी कवि ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से ग्रहण की है। 'विदा' में बेटी की विदा और 'त्याग' मे पत्नी के परित्याग का चित्रण है। 'स्मृति' में दुष्यन्त को शकुन्तला की स्मृति और 'कर्तव्य' में इन्द्र की सहायता का प्रसंग भी 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से गृहीत है। 'मिलन' मे लौटते हुए दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन है।

'शकुन्तला' में प्रेम की मांगलिक उच्चता, आदर्श पत्नी का त्याग, नारी-चरित्र का उत्कर्ष अभिव्यजित है।

द्रौपदी-चीर-हरण (लोथेश्वर त्रिपाठी) १९१४ ई०

त्रिपाठीजी ने द्रौपदी-चीर-हरण प्रसंग पर आल्हा शैली में एक लघु-काव्य की रचना की। प्राचीन परम्परा के अनुसार काव्य का आरम्भ ईश्वरस्तुति और कवि-परिचय से होता है। दुर्योधन के पक्ष को अत्याचार का पक्ष सिद्ध करके पाण्डवों के साथ सम्पूर्ण सहानुभूति और आदर का प्रकाशन किया गया है। 'महाभारत' में द्रौपदी के उपहास का प्रसंग नहीं है, किन्तु इस काव्य में द्रौपदी के उपहास को प्रधानता दी है।[2] द्रौपदी और भवानी का वार्ता-प्रसंग कवि की मौलिक सूझ है। काव्य का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है।

अभिमन्यु का आत्म-बलिदान (कमला साद वर्मा) १९१८ ई०

प्रस्तुत काव्य का आधार 'महाभारत' की लोक-विश्रुत अभिमन्यु की कथा है। कवि ने अभिमन्यु को वीर युवक के अदम्य साहस और कर्तव्य-पालन के प्रतीक-रूप में चित्रित किया है। कवि की मूल प्रेरणा कर्तव्य-पालन है।[3] गुप्त नियम और मनुष्य, महाभारत का प्रारम्भ, रण-क्षेत्र मे भीष्म पितामह, चक्रव्यूह और अभिमन्यु का रण-प्रस्थान, चक्रव्यूह-संग्राम आदि शीर्षकों में सम्पूर्ण काव्य विभाजित है। उत्तरा-विलाप की योजना कवि की मौलिकता है।

---

१. द्रौपदी-चीर-हरण, पृ० १

२. म० सभा० ४७।६-१५ द्रौपदी-चीर-हरण, पृ० २

३. यह वीर करुणारस भरी अभिमन्यु विरदावलिकथा।
　हैं शोक से यद्यपि सनी, हृत्पिण्ड को देती व्यथा॥
　पर आर्य गौरव मान का बस एक यही दृष्टान्त है।
　उद्विग्न मन को कर्म पथ पर कर दिखाता शान्त है।
　　　　—अभिमन्यु का बलिदान, निवेदन पृ० १

कीचक-वध (शिवदास गुप्त) १९२१ ई०

'महाभारत' के विराटपर्व से सैरन्ध्री और कीचक के प्रसंग पर इस काव्य की रचना हुई है। यह काव्य 'जयद्रथ-वध' के अनुकरण पर लिखा गया है। कीचक कामुकता का प्रतीक है, अतः दंडनीय है। इस काव्य के माध्यम से स्त्री का पतिव्रत-धर्म, भीम का शौर्य और कामुक व्यक्ति की दुर्गति की अभिव्यक्ति हुई है। काव्य साधारण कोटि का है और चरित्र-विकास भी स्वतन्त्र रूप से नहीं हुआ है। कथा में कोई उपलब्धिपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता।

संगीत महाभारत (नत्थाराम शर्मा गौड) १९२४ ई०

इस काव्य में 'महाभारत' की सम्पूर्ण कथा को लोक शैली में गाया गया है। यह ग्रन्थ इस बात का प्रमाण है कि लोक-जीवन में 'महाभारत' की कथा को गाना कितना अधिक प्रचलित है। जिस प्रकार राम के जीवन पर आधारित राधेश्याम कथावाचक की 'रामायण' का प्रचार हुआ, उसी प्रकार अलीगढ और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में 'संगीत महाभारत' का प्रचार पाया जाता है। कवि ने 'आल्हा' छन्द और गीत शैली का प्रयोग किया है। सम्भवतः लोक-जीवन से श्रुत कथानक को ही काव्य का आधार बनाया गया है, 'महाभारत' की विधिवत कथा-ज्ञान का कोई प्रभाव ग्रन्थ पर उपलब्ध नहीं है।

अभिमन्यु-वध (रघुनन्दन लाल मिश्र) १९२५ ई०

मिश्रजी की यह रचना अभिमन्यु के वध की कथा के आधार पर हुई है। सामान्यतः कथा का विकास मूल ग्रन्थ के आधार पर हुआ है किन्तु अपने युग से प्रभावित होकर यत्र-तत्र कुछ सोद्देश्य परिवर्तन भी किए गये हैं। व्यूह-भेदन का निमन्त्रण देते समय दुर्योधन के दुस्साहस की सुन्दर व्यंजना हुई है।

या वेधैं मम रचित व्यूह, या जयतिपत्र लिखदें आकर[1]।

इस काव्य में भी उत्तरा के विदा-प्रसंग को स्थान दिया गया है। उत्तरा का विलाप अधिक करुण और हृदय-स्पर्शी बन पड़ा है। काव्य की समाप्ति अभिमन्यु के दाह-संस्कार के साथ होती है।

दुर्योधन-वध (जगदीश नारायण तिवारी) १९२६ ई०

दुर्योधन-वध की प्रमुख घटना से इस काव्य की रचना हुई है। कवि पृष्ठ-भूमि के रूप में पूर्ववर्ती-कथा का वर्णन करता हुआ मुख्य घटना को विस्तार से प्रस्तुत करता है। इस काव्य की प्रेरणा जातीय संघर्ष है। दुर्योधन अपने अहंकार के कारण पाण्डवों का अधिकार नहीं देता, यही स्वार्थपरता समस्त संघर्षों का मूल है। कवि की दृष्टि में व्यक्तिगत स्वार्थ ही सामाजिक एवं जातीय संघर्ष में मुख्य कारण होता

---

१ अभिमन्यु-वध, पृ० ४

है। कवि प्राचीन युद्ध के प्रसग से वर्तमान युग में व्यक्तिगत स्वार्थ और शोषण के शमन की कामना करता है। सत्य की रक्षा के हेतु असत्य का उद्घाटन अनिवार्य होता है, यही भावना काव्य में व्याप्त है। प्रवन्ध काव्य की दृष्टि से यह अत्यन्त अपरिपक्व विचारधारा और कथा शैथिल्य की रचना है। यहां तक कि महाभारतीय चरित्रों का गौरव भी अक्षुण्ण नहीं रह सका।

'सैरन्ध्री'(मैथिली शरण गुप्त) १६२७ ई०

'सैरन्ध्री' का कथानक 'महाभारत' के विराटपर्व से लिया गया है। पाण्डव द्यूत में निश्चित नियमानुसार राजा विराट के यहां अज्ञातवास का समय व्यतीत करते हैं। वहां सैरन्ध्री छद्म नामधारिणी द्रौपदी रानी की सेविका का कार्य करती है। रानी का भाई कीचक सैरन्ध्री पर मुग्ध हो जाता है। यहजानते हुए भी कि यह 'पंचगन्धर्वों की पत्नी' है वह कामासक्ति के मार्ग से पीछे नहीं हटता। सैरन्ध्री द्वारा रानी के समक्ष विनती करने पर रानी भी कीचक का पक्ष लेती है। अतः भीम सैरन्ध्री के रूप में एक दिन रात को कीचक को बुलाकर मार देते हैं।

यह काव्य वर्णनात्मक शैली मे लिखा गया है और कथाकथन मात्र कवि का उद्देश्य रहा है। काम की अधिकता को अव्यावहारिक और हानिकारक बताता हुआ कवि कीचक-वध का चित्रण करता है। किन्तु पर-पत्नी-रत दोष का सैद्धान्तिक विवेचन से जितना प्रस्तुत किया जा सकता था—कवि यह न कर सका। किन्तु तद् विषयक सिद्धान्त-वाक्यों और सूक्तियों की प्रचुरता अवश्य है। कवि अनेक स्थलों पर स्थूल उपदेशात्मक प्रवृत्ति से भी नहीं बच पाया है। उसने महाभारतीय कथानक में सामान्य किन्तु रोचक और सोद्देश्य परिवर्तन करते हुए, सतीत्व की रक्षा, और धर्म-निष्ठा का उत्कर्ष दिखाकर पाप-वृत्ति का विनाश निरूपित किया है। पराधीन और स्वार्थ परायण व्यक्ति जानते हुए भी विवशतावश दुष्प्रवृत्ति का सहयोगी होकर पाप-प्रवृत्त होता है—इस बात का निरूपण सुदेष्णा की स्थिति से होता है। अन्ततः कवि ने सत्य की विजय और असत्य की पराजय से उच्चधर्म की प्रतिष्ठा की है।

बक-संहार (मैथिली शरण गुप्त) १६२७ ई०

'बक-संहार' का प्रतिपाद्य 'महाभारत' की कथा है। मूल ग्रन्थ में यह कथा आदिपर्व के अध्याय एकसौ छप्पन से एकसौ तरेसठ अध्याय तक वर्णित है। लाक्षा-गृह से बचकर पाण्डव एक ब्राह्मण के यहां निवास करते हैं। आतिथेय की रक्षा के हेतु भीम को बक राक्षस का संहार करना पड़ता है। 'महाभारत' की कथा में कवि ने आशीर्वाद और विचारों की भिन्नता के कारण कतिपय परिवर्तन किए हैं। सभी परिवर्तन चरित्र-सृष्टि में सहायक हैं और कथा को नवीनता प्रदान करते हैं।

मुख्यघटना के आधार पर कवि ने कृति का नामकरण किया है, किन्तु कवि का प्रतिपाद्य अतिथि एवं आतिथेय धर्म का प्रतिपादन है। कवि वीरत्व का आदर्श

प्रस्तुत करने में उतना प्रवृत्त नहीं हुआ जितना कुन्ती के दानशील चरित्र के आख्यान में। प्रस्तुत रचना में पाण्डवों का लाक्षागृह से निकल कर एक ब्राह्मण परिवार में निवास, बक के हेतु उस परिवार से एक व्यक्ति के भेजने की समस्या, कुन्ती द्वारा अपने पुत्र को भेजने का प्रस्ताव, अनन्तर भीम द्वारा बक राक्षस का वध आदि घटनाओं को कथा-बद्ध किया गया है। बक-संहार सूच्यशैली में व्यक्त है। कवि ने त्याग के पारिवारिक आदर्श को उच्चता की पराकाष्ठा में चित्रित किया है। राज्य धर्म का आदर्शात्मक विवेचन कुन्ती के वचनों द्वारा हुआ है।

कुन्ती का अन्तर्द्वन्द्व इस रचना की विशेषता है। 'महाभारत' में इस द्वन्द्व की कोई स्थिति नहीं, क्योंकि कुन्ती अपने पुत्रों के दिव्य बल से परिचित है। कवि ने सहज नारी के रूप में कुन्ती को शोक-पाशों के मध्य प्रतिष्ठित किया है।

> भगवान, . .
> जाने उन्हें दूं इस तरह
> क्या मारने को ही उन्हें मैंने जना
>
> × × ×
>
> जो थी शिला सी निश्चला, अब रुंध गया उसका गला
> वह देर तक जड़ मग्न सी लेटी रही।"[1]

करुणरस-प्रधान इस काव्य में, प्रसंग रूप से वात्सल्य उत्साह, प्रेम आदि भावों की उत्कृष्ट अभिव्यंजना है। इस काव्य में कवि का प्रबन्ध-शिल्प विकसित हुआ है और चरित्र-चित्रण की दृष्टि में भी कुछ स्थिरता आई है।

वन-वैभव : (मैथिली शरण गुप्त) १९२७ ई०

'वन-वैभव' की कथा 'महाभारत' के वनपर्व के अन्तर्गत घोषयात्रा पर्व के दोसौ सैंतीसवें अध्याय तक ग्रहण की गई है। इस पर्व में युधिष्ठिर की अतिशय क्षमाशीलता और कौरवों की चरम दुष्टता की अभिव्यक्ति हुई है।

पाण्डवों को नीचा दिखाने के हेतु कौरव द्वैत वन में जाते हैं वहां चित्ररथ गन्धर्व से संघर्ष में पराजित होकर पाण्डवों की सहायता से छूटते हैं। इस घटना से कौरवों की शक्ति हीनता, युधिष्ठिर की उदारता और अन्य पाण्डवों की शक्ति का प्रकाशन होता है।

'वन-वैभव' में कवि ने दुर्योधन के धन के वैभव को चित्रित किया है। किन्तु यह वैभव भौतिक और अस्थिर है वास्तविक वैभव तो मन की उच्चता और आदर्शों की सात्विकता है। यह वैभव पाण्डवों को प्राप्त है। कवि ने धर्मराज के वैभव को चरित्रगत वस्तु के रूप में चित्रित किया है। युधिष्ठिर अपने धर्म से कदापि विचलित नहीं होते और मानवता के चरम आदर्श का पालन करते हैं। कवि का ध्येय

---

१ बक-संहार, पृ० ३४

युधिष्ठिर के चरित्र की प्रतिष्ठा है। इससे कवि मानवता की उपस्थापना करता है। सिद्धान्ततः परदुःखकातरता और त्यागशीलता के उच्चादर्श का आलेखन करता हुआ इन्हें अनुकरणीय मानता है।

कवि धर्म और कर्त्तव्य-पालन के क्षेत्र में युद्ध की अनिवार्यता को भी स्वीकार करता है। प्रतिशोध का सात्विक आवरण कवि ने अत्यन्त सुन्दरता से चित्रित किया है। कवि की जीवन दृष्टि अत्यन्त व्यापक रूप से अभिव्यक्त हुई है। यत्र-तत्र उल्लेखनीय परिवर्तन उसकी विचारधारा का प्रकाशन करते हैं।

अभिमन्यु-वध (रामचन्द्र शुक्ल 'सरस') १९३२ ई०

'महाभारत' के अभिमन्यु प्रसंग को कवि ने सरस और ओजस्विनी भाषा में प्रस्तुत किया है। कथानक के विषय में कवि ने स्वयं कहा है—"इस कथानक के इति-वृत्त को महाभारत के ही अनुसार चलाने का प्रयत्न किया है; जहां कल्पना से भी काम लिया गया है वहा भी घटनाओं के तथ्य पर ध्यान रखते हुए उसे यथोचित मर्यादा और सीमा के ही अन्दर रखा गया है, और अनीप्सित स्वच्छंदता नहीं दी गई।[1] काव्य का सबसे मार्मिक स्थल द्रोण का अन्तर्द्वन्द्व है। वे मन मे पार्थ कुमार की प्रशंसा करते हैं। वे विचार करते हैं, कि इस अवस्था में वे उसका अभिगमन नहीं कर सकते। कवि ने सूक्ष्म दृष्टि से रण के विषाक्त वातावरण के मध्य भी हृदय के पवित्र सरोवर के झलकने वाले अमृत जल को देखा, और एक ही बिन्दु पर प्रेम और निर्मम कर्त्तव्य की अभिव्यक्ति हुई। सम्पूर्ण काव्य का निर्माण खण्ड रूप में होने के कारण प्रबन्धत्व शिथिल है किन्तु चित्रण शक्ति की कान्ति मनोहर है।"

नल नरेश (प्रताप नारायण) १९३३ ई०

पुरोहितजी ने 'महाभारत' के नलोपाख्यान पर आधारित नल नरेश प्रबन्ध-काव्य की रचना की यह काव्य १९ सर्गों में विभाजित है। अब तक के लिखे गये नलोपाख्यानात्मक काव्यों की परम्परा में यह काव्य अधिक प्रौढ़ तथा विचारात्मक है। कवि ने 'महाभारत' की। कथा मे यथा सम्भव परिवर्तन और परिवर्द्धन किया इससे कवि की मौलिकता और उपाख्यान की आत्मा दोनों ही सुरक्षित रह पाई है। पुष्कर के चरित्र को यथार्थवादी भूमि पर चित्रित किया है। 'महाभारत' में नल विरोध का कारण कलि का प्रभाव बतलाया गया है। किन्तु नल नरेश मे छोटा भाई बड़े भाई के ऐश्वर्य से स्वभावज ईर्ष्या रखता है।[2] कवि की मौलिकता घटनाओं के परिवर्तन में न होकर, हेतुओं मे अधिक है। इस काव्य मे स्त्री के पतिव्रत धर्म और शक्ति का चित्रण अनिवार्य सामाजिक आवश्यकता के रूप में किया गया है।

---

१. अभिमन्यु-वध, पृ० २२

२. नल नरेश, पृ० ३२

पाण्डव यशेन्द्र चन्द्रिका (स्वरूप दास) १६३३ ई०

इस ग्रन्थ मे लेखक ने अलंकार और छद का वर्णन पाण्डवो की कथा के आधार पर किया है। पूर्वार्द्ध एक प्रकार से पिंगल शास्त्र का ग्रन्थ है। उत्तरार्द्ध मे मूल कथा प्रारम्भ होती है। 'महाभारत' के अध्याय ६३ के श्लोक ५८-५६ के आधार से कवि ने कथा प्रारम्भ की है।[1] पौराणिक सत्य को उसी रूप मे माना है। इसके बाद का कथा-विकास 'महाभारत' के अनुरूप है।

इस पुस्तक मे विचारणीय यह है कि कवि मध्य मे टिप्पणियो मे कथा समझाता चलता है। दो तीन पृष्ठो पर विस्तृत वंशपरम्परा का चित्रण है। कुछ श्लोक 'महाभारत' के आधार पर बनाये गये हैं।[2] इन कारणों से एक साहित्यिक प्रबन्ध-काव्य का रूप अक्षुण्ण नही रह पाया है।

कवि की दृष्टि मे स्वतन्त्र कथा विकास न होने के कारण पात्रो का चारित्रिक आलेखन भी नई दृष्टि से नही हुआ। ग्रन्थ सामान्य है, कोई सोद्देश्य उपलब्धि नही है। केवल परम्परागत पाण्डव कथा-चित्रण का मोह और उसे पिंगल शास्त्र के आधार पर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति के आधार पर काव्य की रचना हुई है।

महाभारत (श्रीलाल खत्री) १६३६ ई०

श्रीलाल खत्री ने 'महाभारत' की विशाल कथा को संक्षिप्त रूप मे दोहा चौपाई मे वर्णित किया है। ऐसे ग्रन्थ जिनमे कवि का उद्देश्य मूल ग्रन्थ का कथासार

---

१ तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्म शापाद्वराप्सरा ।
मीनभाव मनुप्राप्ता बभूव यमुना चरी । म० आदि० ६३।५८-५६
कवि का प्रारम्भ :—
सो भद्र केतु गन्धर्व राज, अद्रि का त्रिया सोमा समाज,
तिहि ऋषि सराय अरजो निपाय, उद्धार ऋषि दीनी बनाय,
× × ×
कोई मनुज वीर्य भजि पुत्रि होई, दपति निजगति लुभल हउदोई।
द्विज पराशर कहितान् काल,
मुहि पारकारहु मत नटहु बाल।
मयजुक्त नाव प्रेरी सुभाय,
कन्या लखि रिविभो बिवस काम,
इस काम के फलस्वरूप व्यास का जन्म हुआ और फिर व्यास से ही पाण्डव परम्परा चली।
—पाण्डव यशेन्दु चन्द्रिका, पृ० २४८, पाद टिप्पणी

२ "हा हा द्रोण। कुतोऽसितस्य 'भुवने वाच' समुद्रीर्चता।"

प्रस्तुत करना होता है—स्वतन्त्र दृष्टिकोण से नहीं लिखे जाते। इनमें प्रबन्ध काव्य के आवश्यक तत्वों का अभाव रहता है। इसमें 'महाभारत' कीभीष्म प्रतिज्ञा से लेकर स्वर्गारोहण तक की कथा 'महाभारत' के मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत ही वर्णित है।

इस प्रकार के भावानुवादों के द्वारा प्राचीन सांस्कृतिक कथा का प्रचार लोक जीवन मे होता है। इस अनुवाद में लेखक का और कोई उद्देश्य भी नहीं, वह कल्पना से चरित्र की नई सृष्टि न करके उसे मूल ग्रन्थ के आलोक में ही चित्रित करता है। इन ग्रन्थों का महत्व परम्परा से ऐतिहासिक है।

अभिमन्यु पराक्रम (देवी प्रसाद बरनवाल) १९४० ई०

इस काव्य की रचना प्रेरण अभिमन्यु का आत्म-बलिदान और लोकोपकार की भावना है। लोक-रक्षा के हेतु क्षत्रियत्व सर्वदा सजग रहता है। अतः उसकी स्मृति करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। सामान्यत. क्षत्रियत्व का प्रकाशन और अभिमन्यु के शौर्य की व्यंजना ही इस काव्य की प्राणधारा है। प्रमुख पात्र होने के कारण अभिमन्यु के चरित्र का समुचित विकास हुआ है।

नहुष (मैथिली शरण गुप्त) १९४० ई०

'महाभारत' के उद्योगपर्व में यह उपाख्यान दृष्टान्त कथा के रूप में आता है। मद्रेश शल्य धर्मराज को कष्टों की अनिवार्यता और धैर्य पूर्वक सहन करने की वृत्ति का उपदेश देते हैं। शल्य कहते है कि देवराज इन्द्र और इन्द्राणी पर भी विपत्ति आई थी, किन्तु उन्होने धैर्य पूर्वक उसको सहा तथा अन्त मे अपने वास्तविक ऐश्वर्य को प्राप्त किया।

मैथिलीशरण जी ने 'महाभारत' क कथा सूत्र को मौलिकता की छाप देकर अपने सिद्धान्तों के अनुसार विकसित किया है। 'महाभारत' में कथा-वर्णन प्रमुख एवं मानसिक स्थितियों का चित्रण गौण है। 'नहुष' में कथा का विकास ही मानसिकता की भूमि पर होता है। मूल-ग्रन्थ और 'नहुष' के कथा संदेश मे भी अन्तर है। 'महाभारत' मे यह आख्यान कष्ट सहिष्णुता के हेतु आया है। कवि ने इसमें व्यापक उद्देश्य की सिद्धि की है। गुप्तजी ने मानव का स्तवन किया है। मानव निज गुणों की उच्चता के कारण देवत्व पद प्राप्त करता है, पर उसकी दुर्बलताएं उसे अधोगामी बना देती है। इस पर भी कवि का संदेश है कि मानव को बार-बार गिरकर भी ऊपर उठने की भावना का त्याग नहीं करना चाहिए।

'नहुष' में समस्त कथानक सात शीर्षकों मे विभक्त है। शची-प्रसंग से कथा का प्रारम्भ होता है। शची के पतिवियोग और सतीत्व के आदर्श का चित्रण कवि की मौलिकता है। नारद के प्रसंग में मानव के कर्त्तव्य की अभिव्यक्ति तथा उर्वशी के प्रसंग मे देव विलास का सुन्दर चित्रण है। उर्वशी मानव की उद्योग शीलता की

अनिवार्यता को ही देवत्व से अधिक प्रतिष्ठित करती है। नहुष का प्रेम प्रसंग एवं वैधानिक तथ्य का प्रकाशन करता है और स्वर्ग की सभा भी उस वैधानिकता को चुनौती नहीं दे पाती। फलतः नहुष शची के पास जाता है किन्तु मार्ग में पतित हो जाता है। तथापि नहुष मानव का आदर्श है।

> आज मेरा भुक्तोज्झित हो गया है स्वर्ग भी।
> लेके दिखा दूंगा कल मैं ही अपवर्ग भी॥[1]

'नहुष' का प्रतिपाद्य 'काम का विरोध' है। असंयमित काम मानव-जीवन का घोर कलुष है। इस असंयम से स्वत्व की रक्षा करने पर स्वर्ग एवं अपवर्ग सभी कुछ प्राप्त होते हैं।

कृष्णायन (द्वारका प्रसाद मिश्र) १९४५ ई०

द्वारकाप्रसाद मिश्रजी ने 'कृष्णायन' का प्रणयन 'रामचरितमानस' की शैली में कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन चरित को आधार बनाकर किया। इस काव्य में महाभारत के योगिराज कृष्ण राधा-कृष्ण और बालगोपाल कृष्ण के जीवन-चरित का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। प्रस्तुत काव्य-कथा के विकास में— श्रीमद्भागवत', 'महाभारत' और 'सूरसागर' की कथा सामग्री को गुम्फित किया गया है। सम्पूर्ण काव्य 'मानस' के अनुरूप सात काण्डों में विभाजित है। अवतरण' काण्ड में मथुरा की पूर्व स्थिति और ब्रज की बालक्रीड़ा हैं। 'मथुरा' काण्ड की प्रमुख घटना कंस-वध है। 'द्वारका' काण्ड में शक्ति संचय के हेतु मथुरा त्यागने और पाण्डवों के सम्पर्क की कथा है।

तृतीय काण्ड से अन्तिम काण्ड तक, महाभारत की कथा, प्रमुख हो जाती है, और कवि प्रबन्ध योजना की अनिवार्यता के कारण उसे यत्र-तत्र मथुरा से जोड़े रखता है। 'पूजा' काण्ड की कथा राजसूय यज्ञ और द्यूत तथा सभोरम में वन एवं विराट-पर्व की कथा है। 'गीता' काण्ड में कवि ने गीता का छायानुवाद प्रस्तुत किया है। युद्ध काण्ड में महाभारतीय युद्ध का चित्रण है, किन्तु इन काण्डों में कथा-विकास इस रूप में होता है, कि कृष्ण का महत्व निर्विवाद रूप से अक्षुण्ण रहता है। 'आरोहण' काण्ड में कथा का उपसंहार है। भगवान् कृष्ण गृह कलह के उपरान्त मैत्रेय की ज्ञान विवेचना के बाद स्वर्गारोहण करते हैं।

'कृष्णायन' का महत्व कई कारणों से है। यह कृष्ण जीवन पर आधारित अवधी भाषा का प्रबन्ध काव्य है और इसमें 'महाभारत' के सांस्कृतिक, राजनैतिक

---

1 नहुष, पतन सर्ग पृ० २६

और दार्शनिक दृष्टिकोणों की रक्षा करते हुए एक आर्य राष्ट्र की संस्थापनार्थ राष्ट्रीय भावना पर बल दिया गया है। कवि बुद्धि-साम्राज्य की भर्त्सना करता है।[1]

नकुल (सियारामशरण गुप्त) १९४६ ई०

'नकुल' खण्ड-काव्य की रचना सियारामशरण गुप्त ने 'महाभारत' के वनपर्व के आधार पर की है। कवि ने मूल कथा वस्तु का स्वतन्त्र दृष्टि से विकास किया है। सम्पूर्ण काव्य प्रकृति की मनोमुग्धकारी शोभा से पूर्ण है, वन, पर्वत उपत्यकाएं, गंगातट —विशाल प्रकृति की क्रीडा-भूमि में काव्य-कथा का विकास होता है।

पाण्डव अज्ञात वास की तैयारी में संलग्न हैं कि एक छोटी किन्तु महत्वपूर्ण घटना होती है। यज्ञ की अरणि और मथनिका एक मृग ले गया। युधिष्ठिर तपस्वी की साधना पूर्ति हेतु धनुष बाण लेकर निकल पड़े। शेष पाण्डव द्रौपदी सहित इससे पूर्व ही अमृतह्रद दर्शनार्थ जा चुके थे। उधर दुर्योधन के चर उस ह्रद को विषाक्त कर चुके थे। युधिष्ठिर वहां पहुँचे और भाईयों को अचेत अवस्था में पाया। जब मणिभद्र की संजीवनी से केवल एक व्यक्ति के जीवन का प्रश्न युधिष्ठिर के समक्ष आया तो उन्होंने अकस्मात् नकुल के जीवन की याचना की—

"नकुल!"—उसी क्षण अनायास कह गये युधिष्ठिर।
उत्तर उनका वही प्रथम ही हो ज्यों सुस्थिर॥[2]

किन्तु अक्षय-बूंद के कारण सभी पाण्डव जीवित हो उठे —

यहां युधिष्ठिर और नकुल के चरित्र को नवीन रूप में उभारा गया है। और इस बात पर बल दिया है कि छोटे और बड़े दोनों ही एक दूसरे के लिये त्याग करें तभी धर्म का संरक्षण हो सकता है। कवि छोटे के लिए त्याग पर बल देता है :—

छोटे के भी लिए बड़े से बड़ा समर्पण—
किया जाय जब, तभी धर्मधन का संरक्षण॥[3]

कवि ने 'महाभारत' की कथा में स्वतन्त्र रूप से काव्योचित सम्भावना और औचित्य के साथ परिवर्तन किया है। काव्य की कथा का विकास स्वतन्त्र गति से होता है और कवि 'महाभारत' के अतिप्राकृत तत्वों को अत्यन्त सतर्कता से बौद्धिक रूप देकर विश्वसनीय बना देता है। कवि की सफलता कथा के महत्वपूर्ण परिवर्तनों तक ही सीमित नहीं है अपितु पात्रों के चरित्र-चित्रण में अनेक नूतन उद्भावनाओं के

---

१. बुद्धिभावना सन्तुलन, आर्य धर्म-आचार।
नष्ट भावना आज प्रभु! शेष बुद्धि व्यभिचार॥ कृष्णायन, पृ० ३१५

२. नकुल, पृ० ९८

३. नकुल, पृ १०१

कारण वास्तविकता का समावेश हो पाया है। कवि का मन सात्विक वृत्ति वाले पात्रो के चरित्र चित्रण मे अधिक रमा है।

'नकुल' की प्रमुख विशेषता कथा विकास, प्रबन्धत्व मे न होकर कवि-कल्पित कथा और महाभारतीय कथा के अद्भुत समन्वय मे व्यक्त हुई है। 'महाभारत' मे यह कथा यक्ष-युधिष्ठिर सवाद् के रूप मे है—कवि ने इसे खण्डकाव्योचित विस्तार देकर आदर्शात्मक काव्य की रचना की है।

कुरुक्षेत्र (रामधारीसिंह 'दिनकर') १९४६ ई०

'कुरुक्षेत्र' दिनकर का विचार-प्रधान काव्य है। 'महाभारत' की प्रख्यात कथा के एक अश का आधार लेकर कवि ने वर्तमान जीवन की मुख्य समस्या 'युद्ध' पर विचार किया है। युद्ध के साथ मानव अधिकार, समानता, शान्ति क्रान्ति आदि पर भी कवि के विचार अभिव्यक्त हुए हैं।

'कुरुक्षेत्र' मे कथा का अश अत्यन्त अल्प है। उसे कवि ने केवल इसलिए ग्रहण किया है कि विचारो की शृखला अविच्छिन्न रूप से व्यक्त हो सके। 'महाभारत' में युद्ध की समाप्ति पर धर्मराज के मन मे भयानक नर-सहार के कारण ग्लानि और अपने को उसका मुख्य कारण मानते हुए, पश्चाताप की भावना उदित होती है। उनका मन चिर-सचित वैराग्य और विरक्ति की भावना से भर जाता है। अपने आपका आश्वस्त करने के हेतु धर्मराज पितामह के पास जाते हैं और भीष्म युधिष्ठिर को नीति का उपदेश देकर जीवन की विविधताओ के मध्य शक्ति की महत्ता समझाते हैं और युद्ध की अनिवार्यता पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं। 'कुरुक्षेत्र' मे दुःशासन की भर्त्सना एव सुशासन का स्तवन है, साथ ही सुशासन की स्थापना के लिए युद्ध को विशेष परिस्थितियो मे आवश्यक भी माना है।

'कुरुक्षेत्र' का कवि 'महाभारत' मे प्रतिपादित जीवन-दृष्टि को युगानुरूप ग्रहण करता है। 'गीता' के कर्मवाद का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट रूप मे देखा जा सकता है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥[1]

'कुरुक्षेत्र' मे कठिन कर्म को अपरिहार्य मानकर उसका महत्व अंकित किया है—

कर्मभूमि है निखिल महीतल,
जब तक नर की काया।
तब तक है जीवन के अणु अणु,
मे कर्त्तव्य समाया ॥[2]

---

१ गीता, ३।५
२ कुरुक्षेत्र, पृ० १२७

'महाभारत' में प्राणियों के प्रति समभाव की व्यावहारिकता का प्रतिपादन किया है 'कुरुक्षेत्र' का कवि उस संकेत को ग्रहण कर आधुनिक संदर्भ में नवीन व्याख्या के साथ प्रस्तुत करता है।

> प्रिया-प्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु,
> कामं क्रोधं चलोभ च मानं चोत्सृज्य दूरत ।[1]

वह असमानता के आधार पर अव्यवस्था का चित्रण करके समानता का प्रतिपादन करता है।

> शान्ति नहीं तब तक जब तक
> सुख भाग न नर का सम हो,
> नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
> नहीं किसी को कम हो।[2]

'कुरुक्षेत्र' में दिनकर जी ने 'महाभारत' और वर्तमान-काल की परिस्थितियों को समकक्ष रखकर जीवन की गहन समस्याओं पर विचार किया है। 'महाभारत' से कथा की पृष्ठभूमि मात्र ग्रहण की गई है और कथा का विचारात्मक विकास किया गया है।

अंगराज (आनन्द कुमार) १९५० ई०

'अंगराज' की रचना का आधार कर्ण-चरित है। इसकी रचना के पीछे जातीय और सांस्कृतिक संरक्षण की भावना विद्यमान है। महारथी कर्ण के सम्पूर्ण जीवन पर आधारित यह अकेला प्रबन्ध काव्य है जो युद्ध सम्बन्धी पूर्ववर्ती एवं परवर्ती घटनाओं को भी अपनी सीमा में समेट लेता है।

कवि ने कथा का विकास पच्चीस सर्गों में किया है। इस से यह स्पष्ट है कि कवि अपनी प्राचीन संस्कृति का ही नहीं अपितु प्राचीन साहित्य प्रणाली का भी समर्थक है। इसी के अनुरूप मंगलाचरण, सरस्वती वंदना से काव्य प्रारम्भ होता है और माहात्म्य वर्णन से समाप्त होता है।

'अंगराज' की वर्ण्य-वस्तु 'महाभारत' की कथा है। किन्तु प्रस्तुत काव्य में कथा विकास यथावत् होते हुए भी चरित्र विकास में आमूल अन्तर उपलब्ध होता है। कौरव-पाण्डवों के जीवन और चरित्र के प्रति कवि का अपना मौलिक दृष्टिकोण है। यह विचारधारा परम्परागत विचार के प्रतिकूल है। कवि स्पष्ट शब्दों में कौरवों को न्याय-पक्ष-युक्त और पाण्डवों को अन्यथा घोषित करता है। वह पाण्डवों के मान्य चरित्र पर भी अनेक आपत्तिजनक आरोप लगाता है। भारत का संस्कारी व्यक्तित्व

---

१. म० शान्ति०, ९५।१०४

२. कुरुक्षेत्र, पृ० २५

उन सब तथ्यों को स्वीकार नहीं कर सकता। भूमिका में 'पाण्डवों का संक्षिप्त परिचय' उपशीर्षक में कवि पाण्डवों के पक्ष को छल, कपट और अधर्म का पक्ष बताता है।[1] पाण्डवों को असभ्य[2] और संयमहीन[3] की उपाधि देता है और अत्यन्त अशिष्ट शब्दों में पाण्डवों के चरित्र पर आक्षेप करता है।

"चारित्रिक दुर्बलता प्रायः प्रत्येक पाण्डव में थी। द्रौपदी को उन्होंने पंचायती पत्नी या कामचलाऊ स्त्री तो बना ही रक्खा था, सभी भाईयों के पास पत्नियों का अलग-अलग प्रबन्ध था।"[4]

सम्पूर्ण ग्रन्थ पाण्डवों के विरोध, एवं घृणा की भित्ति पर टिका है। कवि कर्ण को वीरत्व, दानशीलता, सच्चरित्रता का आदर्श मानकर उसके जीवन का स्वर्णिम रूप चित्रित करता है। कर्ण के प्रति कही गई युधिष्ठिर की कतिपय उक्तियों के आधार पर कवि युधिष्ठिर को कायर, अकर्मण्य, शिथिल कहकर अपमानित करता है।

सम्पूर्ण काव्य के कथा विकास में परिवर्तन, परिवर्द्धन की दृष्टि से मौलिकता दृष्टिगोचर नहीं होती। केवल चरित्र विकास कौरवपक्षीय वीरों में सात्विकता और पाण्डवों में विकृति दर्शायी गई है। कवि की दार्शनिक वैचारिक दृष्टि अगम्भीर है। सम्पूर्ण काव्यमें इतिवृत्तात्मक, वर्णनात्मकता की प्रबलता है। कौरव-पाण्डव संघर्ष में धर्म के जिस सूक्ष्म रूप की विवेचना 'महाभारत' में उपलब्ध है कवि उसकी गम्भीरता का स्पर्श नहीं कर पाया। एक विशेष प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रस्त यह प्रबन्ध-काव्य विशेष उपलब्धिपूर्ण रचना नहीं है।

हिडिम्बा (मैथिलीशरण गुप्त) १९५० ई०

'हिडिम्बा' खण्ड-काव्य 'महाभारत' के आदिपर्व की प्रासंगिक कथा के आधार पर रचित है। लाक्षागृह से बच निकलने के उपरान्त वन में भीम के सौन्दर्य पर हिडिम्बा राक्षसी मुग्ध होती है। वह परिणय की याचना करके एक पुत्र की प्राप्ति तक भीम का पतित्व स्वीकार करती है। माता की आज्ञा से भीम हिडिम्बा को पत्नी रूप में स्वीकार करते हैं।

परिणाम स्वरूप घटोत्कच प्राप्त होता है, जो कुरुक्षेत्र में एकघ्नी द्वारा मारा जाकर अर्जुन को अभयदान देता है।

मैथिलीशरण गुप्त ने प्रस्तुत कथा के स्थलों में तो विशेष परिवर्तन नहीं किया किन्तु उनकी चारित्रिक सृष्टि के स्तर नितान्त मौलिक हैं। उन्होंने हिडिम्बा को

---

१. अंगराज, पृ० २१
२. अंगराज, पृ० २२
३. अंगराज, पृ० २३
४. अंगराज, पृ० २३

राक्षसी के स्तर से उठाकर वैष्णवी-मानवी के रूप में चित्रित किया है। कुन्ती और हिडिम्बा के संवाद मे, आर्य-अनार्य, मानवता-राक्षसत्व, त्याग-प्रेम आदि विषयों पर कवि ने युग सापेक्ष विचार अभिव्यक्त किये है। कवि समस्त कथा को वर्णनात्मक शैली मे कहता हुआ चरित्र सृष्टि की ओर अधिक ध्यान देता है, इस हेतु उसने महत्व पूर्ण परिवर्तन किये है। युधिष्ठिर हिडिम्बा के चरित्र का आख्यान इन शब्दों मे करते है :—

"आई यातु वंश में हिडिम्बा किसी भूल से"
वैसे सुसंस्कार वह रखती है मूल से,
स्त्री का गुण रूप में है और कुल शील मे,
पद्मिनी की पंकजता डूबे किसी झील में।'[1]

हिडिम्बा की कथा मे गुप्तजी ने स्त्री के मातृत्व की सुन्दर अभिव्यंजना की है। चारित्रिक सृष्टि नवयुग की विचारधारा के अनुकूल है और मुखरित प्रेमाभिव्यक्ति को भी अत्यन्त संयमित रूप देकर प्रेय और श्रेय की समन्वित अभिव्यक्ति की गई है। प्राणी मात्र से प्रेम और समानता का व्यवहार इस काव्य का संदेश है।

जयभारत (मैथिलीशरण गुप्त) १९५२ ई०

'जय भारत' प्रबन्ध-काव्य का निर्माण 'महाभारत' की सम्पूर्ण कथा का आधार लेकर हुआ है। आदिपर्व से महाप्रस्थानिकपर्व तक की वृहत् कथा को कवि ने ४७ शीर्षको मे विभाजित करके संक्षिप्त किया है। 'जय भारत' की रचना-प्रेरणा खण्ड रूप मे उपलब्ध हुई है। कवि के हृदय मे रचना के आरम्भ से ही कथा एवं चरित्र की दृष्टि से अखण्ड कल्पना नही थी। उन्होने 'महाभारत' के विभिन्न प्रसंगों पर इससे पूर्व अनेक खण्ड-काव्यों की सृष्टि की। तदुपरान्त महाभारत का पूर्णालेखन करने के हेतु कुछ नवीन प्रसंगों की सृष्टि, और कुछ प्राचीन प्रसंगों से परिवर्तित करके ग्रहण किया। अतः कहा जा सकता है कि इस काव्य में कथा-संग्रथन है, प्रबन्ध योजना नही। 'जय भारत' अखण्ड प्रबन्ध के रूप में विन्यस्त न होने के कारण आख्यान खण्डों का संग्रथित रूप है।

'जयभारत' का प्रत्येक शीर्षक घटना, घटनास्थल और व्यक्ति के नाम से अभिहित किया गया है। प्रत्येक शीर्षक का पूर्वापर सम्बन्ध केवल इसी रूप में है कि सभी घटनाएं एक ही महाकाव्य से गृहित हैं अन्यथा प्रत्येक खंड की स्वतंत्र सत्ता विद्यमान है। इस पर भी 'जयभारत' का वृहत प्रबन्धत्व एक नायक युधिष्ठिर, सांस्कृतिक महोदय और मानवत्व की प्रतिष्ठा के कारण निर्विवाद है। कवि ने सांस्कृतिक एवं चारित्रिक उच्चता की अभिव्याप्ति को वर्ण्य-विषय बना कर कथासूत्र इस प्रकार ग्रंथित किया है कि यह नवीन शैली का साधारण काव्य बन पड़ा है।

---

१. हिडिम्बा, पृ० २८

'जयभारत' के कथा विकास में यत्र-तत्र उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। (इन पर विस्तार से कथा-प्रभाव के अध्याय में विचार होगा) चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह काव्य सफल है। इसमें महाभारतीय पात्रों की आत्मा की भी यथावत् रक्षा की गई है किन्तु प्राचीनतावादी होने के कारण कवि ने उन पात्रों की सर्वथा उपेक्षा कर दी है जिनमें आज के युग में अन्त संघर्ष की प्रबल उद्भावना की स्थिति स्वीकृत हो सकती है। डा० कमलाकान्त पाठक ने 'जय भारत' में कथा से अधिक जीवनदर्शन के व्यक्तिकरण को माना है।[1] कवि ने गीता-दर्शन की अभिव्यक्ति में कर्म, आत्म-समर्पण, निस्पृह भावना आदि प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। दार्शनिक दृष्टिकोण को कवि ने अत्यन्त सरल रूप से प्रस्तुत किया है, उसमें गम्भीर पैठ का अभाव है।

'जय भारत' का प्रतिपाद्य है —

सब सुख भोगें सब रोग से रहित हों।
सब शुभ पावें, न हो दुखी कहीं कोई भी।[2]

× × ×

जीवन यशस्, सम्मान, धन सन्तान सुख सब मम के
मुझको परन्तु शताश भी लगते नहीं निज धर्म के।[3]

चारित्रिक दृष्टि में कवि ने प्रमुख पात्रों का चित्रण यथावत किया है। कवि का संस्कारी हृदय किसी महत्वपूर्ण परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर पाया। कथा-परिवर्तन में कवि ने अधिक स्वतन्त्रता से काम नहीं लिया।

'जयभारत' की विशेषता इस बात में है कि कवि कर्मणा जाति का समर्थन करता है। कथा विकास में प्रमुखता अन्तकथाओं के सगुम्फन की है। प्रासंगिक वृत्तों की सूचना देता हुआ कवि शीघ्रता से मूल कथा के तत्व को ग्रहण कर लेता है।

रश्मिरथी (रामधारीसिंह 'दिनकर') १९५२ ई०

'रश्मिरथी' 'महाभारत' के प्रमुख पात्र कर्ण के जीवन पर आधारित खण्ड-काव्य है। इसकी रचना का श्रीगणेश कवि ने इस भावना से किया था कि कोई ऐसा काव्य लिखा जाय जिसमें विचारोत्तेजकता के साथ कथा का प्रवाह भी हो।[4] कवि लोक-जीवन में जिन आदर्शों की स्थापना करना चाहता है वे मूलत सामाजिक हैं —इस कारण सामाजिक विरोध को स्वीकार करके, जीवन में केवल अपने पुरुषार्थ के बल पर पग जमाने वाले — महाभारत' के पात्र कर्ण का चरित्र सर्वश्रेष्ठ है। अत कवि

---

१ मैथलीशरणगुप्त, व्यक्ति और काव्य, पृ० ३८६
२ जय भारत, युद्ध, पृ० ४००
३ जय भारत, कैशो की कथा, पृ० ३०८
४ रश्मिरथी-भूमिका, पृ० १

को अपने चिन्तन का आधार कर्ण के जीवन में मिला, और कर्ण खण्ड-काव्य का नायक बन सका।

कवि ने कर्ण को पीड़ित और दलितों का प्रतिनिधि माना है। उसका प्रमुख तर्क है कि कर्ण को सर्वथा अपमान एवं अवहेलना मिलती रही। जो आदर अर्जुन को कुलीन होने के कारण मिला, वही स्थान समान-वीरता सम्पन्न-कर्ण को अकुलीन होने के कारण न मिल सका।

'रश्मिरथी' की कथा का विकास सात सर्गों में हुआ है। प्रथम सर्ग में रंग-भूमि-प्रसंग, द्वितीय सर्ग में कर्ण एवं परशुराम प्रसंग, तृतीय सर्ग में कर्ण-कृष्ण का संवाद, चतुर्थ सर्ग में कवच-कुण्डल-प्रसंग में कर्ण की दानशीलता का परिचय, पंचम सर्ग में कुन्ती और कर्ण के संवाद में कर्ण की दृढ़ मैत्री, भाइयों के प्रति प्रेम, मां के प्रति आदर, षष्ठ सर्ग में द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में युद्ध और कर्ण की प्रमुखता और सप्तम सर्ग में कर्ण के नेतृत्व में भयंकर युद्ध का चित्रण किया गया है।

'रश्मिरथी' में दिनकर जी ने कर्ण के जीवन-चित्रण से मानवीय पुरुषार्थ का प्रतिपादन किया है। दिनकर जी विचार प्रधान कवि हैं उनकी वर्णनात्मक रचनाओं में भी विचार का प्रवाह अनवरत गति से प्रवाहित होता है। कवि ने कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या पर विचार किया था—'रश्मिरथी' में वह संघर्ष के धरातल पर सामाजिक जीवन की अनेक दुर्बलताओं की आलोचना करता है।

सावित्री (गौरीशंकर मिश्र) १९५३ ई०

द्विजेन्द्रजी ने 'महाभारत' के उपाख्यान के आधार पर इस काव्य की रचना की। रचना की प्रेरणा के पीछे सावित्री का उदात्त चरित्र है, जो मानव जाति को अन्त तक संघर्ष की प्रेरणा देता है। अपने मन पर दृढ़, कर्तव्य-निष्ठा और आपत्ति में यम से भी न डरने वाली सावित्री का उदात्त चरित्र गौरव की वस्तु है। आज के युग में नारी के हृदय में सावित्री के अन्तरालोक की पुनः स्थापना की आवश्यकता है।

कवि ने कथा का प्रारम्भ सावित्री की यात्रा से किया है। 'महाभारत' के वनपर्व के २९३ वें अध्याय में वर्णित अनेक देशों की यात्रा प्रसंग को न देकर संक्षिप्त यात्रा प्रसंग की रचना की है।[1] २९४ वें अध्याय के आधार पर सावित्री की दृढ़ता का प्रसंग है। कवि ने विवाह प्रसंग को प्रबन्ध के गौरव के अनुकूल विस्तृत रूप से चित्रित किया है, शेष समस्त कथा 'महाभारत' के आधार पर है।

शकुन्तला (भगवान दास शास्त्री) १९५४ ई०

शकुन्तला के उपाख्यान पर आधारित इस काव्य के कथा संग्रहण में कवि ने 'महाभारत' और 'पद्मपुराण' का आश्रय लिया है। स्वर्ण-खण्ड की कथा 'पद्मपुराण

---

१. म० वन०, अध्याय २९३, सावित्री पृ० १४-१५

से लेकर शेष कथा को 'महाभारत' के आदिपर्व और 'भागवत' के नवम स्कंध के आधार पर विकसित किया गया है। चारित्रिक महत्ता की रक्षा के हेतु कवि ने 'महाभारत' की स्पष्टोक्तियों से बचने का पूर्ण प्रयास किया है। मेनका का अन्तर्द्वन्द्व भी काव्य की मुख्य विशेषता है, इस पात्र में कवि ने स्वभावज गुणों की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिकता से की है।

शल्य वध (उग्रनारायण मिश्र) १९५४ ई०

यह खण्ड-काव्य 'महाभारत' के शल्यपर्व के आधार पर लिखा गया है। इसका नायक शल्य है, जिसकी वीरता, ओजस्विता का हृदयग्राही वर्णन ओजपूर्ण भाषा में किया गया है। प्रस्तुत रचना की प्रेरणा कठोर धर्म-पालन में है। शल्य अपने मन की भावनाओं के प्रतिकूल दुर्योधन के रण-निमन्त्रण को स्वीकार करते हैं, किन्तु कर्तव्य पालन की महत्ता को कलंकित नहीं होने देते। अतः शल्य का चरित्र अनुकरणीय है, और इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर इस रचना का निर्माण हुआ है। यह काव्य 'जयद्रथ-वध' की शैली में लिखा गया है।

पांचाली (डा० रांगेय राघव) १९५५ ई०

इस खण्ड-काव्य की रचना 'महाभारत' की एक घटना पर आधारित है। अज्ञात वास से पूर्व जब पाण्डव काम्यक वन में निवास करते हैं, तब एक दिन सिन्धुराज जयद्रथ उधर आता है और द्रौपदी से अपना प्रेम प्रकट करता है। द्रौपदी की प्रताड़ना से क्षुब्ध होकर उसे हर कर ले जाता है। पीछे से पाण्डव आते हैं और जयद्रथ को अपमानित करके, दुःशला के कारण छोड़ देते हैं।

कवि ने इस संक्षिप्त कथानक के आधार पर तत्कालीन दासप्रथा की विवेचना की है। युधिष्ठिर के चरित्र को मानवता का प्रतीक मान कर दास प्रथा के उन्मूलक के रूप में चित्रित किया है। युधिष्ठिर ने अपने जीवन में अनेक कष्ट उठाकर मानवता का पक्ष प्रशस्त किया और सिद्ध किया कि क्षुद्रत्व से ऊपर उठ जाना ही महत्ता का परिचायक है। इस प्रकार कवि ने प्राचीन कथा को आधुनिक प्रश्नों के साथ चित्रित किया है।

विदुलोपाख्यान (भगवतशरण चतुर्वेदी) १९५६ ई०

इस लघु खण्ड-काव्य की रचना महाभारतीय उपाख्यान के आधार पर हुई है। 'महाभारत' में कुन्ती भगवान् कृष्ण के हाथ अपने पुत्रों को वीरता से भरा प्रेरणादायक संदेश भेजती है। संदेश के रूप में विदुला का उपाख्यान प्रस्तावित है। 'विदुलोपाख्यान' का प्रारम्भ संजय की पराजय से होता है। पुत्र की पराजय से खिन्न माता वीरता भरे शब्दों में उसे युद्ध के लिए प्रेरित करती और भागकर आने के कारण पुत्र की भर्त्सना करती है। इस काव्य का संदेश है कि यह संसार नश्वर है

और क्षात्र धर्म की वास्तविकता यही है कि श्रुति-सम्मत कर्तव्य पालन करते हुए व्यक्ति या तो विजय प्राप्त करे या रणभूमि मे वीर गति को प्राप्त हो।

उद्योग करो, मेरे वेटा,
फलसुमधुर, मीठा होवेगा,
तेरा वैरी जो आज मस्त
कल रण में निश्चय सोवेगा।[1]

सती सावित्री (श्रीगोपाल श्रोत्रिय) १९५७ ई०

'महाभारत' के उपाख्यान पर आधारित सावित्री-सत्यवान् की कथा का चित्रण प्रस्तुत काव्य का विषय है। कवि ने कथा का विकास मूल-ग्रन्थ के अनुसार किया है।

ग्रन्थ रचना की मूल प्रेरणा स्त्री-शिक्षा है। जिस देश की रमणी शिक्षित न होगी, उसकी उन्नति नही हो सकती। सावित्री-जन्म, वर-चयन, विवाह तथा यमराज की वार्ता सभी प्रमुख प्रसंगों को यथावत् स्वीकार किया है। अति प्राकृत तत्वों को विश्वास के साथ स्वीकार किया गया है। सावित्री के कथन में सती का अटूट विश्वास अभिव्यक्त हुआ है। रचना सामान्य कोटि की है। कवित्व बिखरा और अपरिष्कृत है।

दमयन्ती (ताराचन्द हारीत) १९५७ ई०

'महाभारत' के वनपर्व में 'नलोपाख्यान' की कथा के आधार पर ही ताराचन्द हारीत ने 'दमयन्ती' प्रवन्ध-काव्य की रचना की। 'महाभारत' में यह उपाख्यान युधिष्ठिर की सान्त्वना के हेतु मुनि बृहदश्व सुनाते है। वे धर्मराज को आश्वस्त करते है कि द्यूत के कारण केवल तुम्हीं पर यह वनवास की विपत्ति नहीं आई, अपितु इनसे पूर्व राजा नल को भी इस विपत्ति का सामना करना पड़ा था। इस उपाख्यान में प्रमुख सन्देश यह है कि व्यक्ति के एक अपराध से विपत्ति आती तो है किन्तु वह सत्य और धर्मज्ञता से उस विपत्ति का निवारण करने मे समर्थ हो सकता है।

'महाभारत' में नलोपाख्यान विस्तार से वर्णित है, कवि ने इसमें और भी विस्तार करके कथा विकास में महत्वपूर्ण परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किये है। महाभारतकार की दृष्टि केवल द्यूत के उद्देश्य को लेकर चली और कथा अत्यन्त क्षिप्र गति से वर्णित हुई। हारीत जी ने इस कथा मे व्यक्ति के कष्टों का चित्रण करते हुए अपनी दृष्टि पूर्ण रूप से सामाजिक रक्खी है। दमयन्ती त्रस्त नारीत्व का प्रतिनिधित्व करती है जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के नियमों का शिकार है। इस पर भी उसका आहत नारीत्व न तो पुरुष के समक्ष झुकता है और न अलौकिक शक्ति से पराजय मानता है। दमयन्ती के चरित्र मे कवि स्त्री के सतीत्व, विश्वास, प्रेम और साहस की अनेकमुखी अभिव्यंजना करता है।

---

१. विदुलोपाख्यान, पृ० ८८

नल-दमयन्ती की प्रेम-कथा को स्त्री-पुरुष के अधिकार और समाज तथा स्त्री की सीमाओ के प्रकाश मे पल्लवित किया गया है। नारी की महत्ता को स्वीकारते हुए नल कहते हैं —

विधि की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि पुरुषत्व यहा है,
उसी शक्ति पर पूर्ण-विजय नारीत्व रहा है।
अबला हो तुम किन्तु, विपद मे बल हो तुम ही,
विश्व मरुस्थल है यह इसमे जल हो तुम ही।[1]

'दमयन्ती' की कथा को १४ सर्गों मे विभाजित किया गया है। इसमे कवि ने 'महाभारत' के सक्षिप्त इतिवृत्तात्मक स्थलों को जीवन की मार्मिकता के साथ चित्रित किया है।

एकलव्य (डा० रामकुमार वर्मा) १९५७ ई०

'एकलव्य' हिन्दी के प्रसिद्ध कवि डा० रामकुमार वर्मा द्वारा रचित प्रबन्ध-काव्य है जिसमे 'महाभारत' की एक प्रासगिक कथा को आधुनिक युग की विचार धारा के सदर्भ मे चित्रित किया गया है। 'महाभारत' मे एकलव्य की कथा ३० श्लोको मे अत्यन्त शीघ्रता से कही गई है। आदिपर्व की परिचयात्मक कथाओ के मध्य गौण पात्र, निषाद-पुत्र एकलव्य के चरित्र विकास को अधिक स्थान मिलना सम्भव भी नही था।

इतना होने पर भी डा० वर्मा ने एकलव्य के चरित्र को प्रबन्ध-काव्य के नायकत्व के योग्य समझा। स्वय उनका कथन है कि "'एकलव्य' ने जिस आचरण का परिचय दिया है, वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिए भी आदर्श है। वह 'अनार्य' नही 'आर्य' है, क्योकि उसमे 'शील' का प्राधान्य है। यही उसमे महाकाव्य का नायक बनने की क्षमता है, भले ही वह 'सुर' अथवा 'सद्वश' मे उत्पन्न क्षत्रिय नही है।"[2]

'महाभारत' की सक्षिप्त कथा का विकास कवि ने अत्यन्त कौशल के साथ किया है। दर्शन सर्ग मे द्रोणाचार्य द्वारा बीटा निकालने की कथा, परिचय मे द्रोण का परिचय एकलव्य की कथा मे पूर्वाभास रूप से विन्यस्त की गई है। अभ्यास मे पाण्डवों-कौरवों का अभ्यास और प्रेरणा मे एकलव्य की शक्ति का चित्रण है। प्रदर्शन मे रगभूमि का चित्र अकित करके, आत्म निवेदन मे एकलव्य की शिष्यत्व की प्रार्थना अभिव्यक्त की गई है। धारणा मे एकलव्य का साधनात्मक निश्चय, और उसके फलस्वरूप ममता मे माता का स्नेह तथा क्षोभ अभिव्यजित है। सकल्प और साधना

---

१ दमयन्ती, पृ० २२०

१ एकलव्य, आमुख पृ० ६

में कवि एकलव्य की मानसिक दृढ़ता और कर्म को स्पष्ट करता है। स्वप्न में अर्जुन और द्रोण की चिन्ता की अभिव्यक्ति, तथा लाघव में एकलव्य के कौशल का प्रदर्शन करके उसकी अद्वितीयता सिद्ध की है। द्वन्द्व मे अर्जुन एवं द्रोण का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है, और दक्षिणा मे एकलव्य का अंगूठा दान अत्यन्त भावपूर्ण स्थिति में चित्रित किया है।

'एकलव्य' की कथा-योजना के विषय में डा० वर्मा का प्रबन्ध-कौशल निश्चित ही स्तुत्य है। उन्होंने कथोचित सम्भावनाओ के आधार पर कथा के विराम चिन्हों मे सशक्त गति भरी है। एकलव्य अकुलीन होता हुआ भी तत्कालीन सांस्कृतिक संघर्ष का लक्ष्य होकर अपने अधिकार से वंचित होता है।

प्रस्तुत काव्य मे डा० वर्मा की प्रमुख उपलब्धि यह है कि वे एकलव्य के माध्यम से गुरु-शिष्य के मध्य की राजनैतिक प्राचीर को स्पष्ट कर पाये है। कर्ण को सारथी का पुत्र होने के कारण शिक्षा मिली। एकलव्य को शिक्षित केवल इसलिए नही किया गया कि कहीं, वह फिर से निषाद संस्कृति के अभ्युदय का कारण न बने।[1] गुरु द्रोण स्वीकार करते है कि प्रत्येक को शिक्षित होना चाहिये, पर वे तत्कालीन भीष्म-नीति से बंधे होने के कारण एकलव्य को शिष्यत्व न दे सके।

> राज गुरु हूं, विशेष पद की मर्यादा है।
> शिक्षा नीति राजनीति के पदों है चलती।
> शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में।[2]

कवि ने एकलव्य का चरित्र आशावाद से चित्रित किया है, उसमे अपने संकल्प के प्रति दृढ़ आस्था, विश्वास और शक्तिमय आग्रह है। कथानक में महत्वपूर्ण परिवर्तनों से एकलव्य तथा द्रोण की विवशता चित्रित की गई है। एकलव्य गुरु के मर्म को पहचान कर मौन है।

समग्रत. यह काव्य नये दृष्टिकोणों पर विचार करने का अवसर देकर एकलव्य के चरित्र के द्वारा सामाजिक समानता का समर्थन करता है।

कच-देवयानी (श्रीरामचन्द्र) १९५८ ई०

'महाभारत' के आदिपर्व के उपाख्यान पर आधारित इस काव्य में बृहस्पति के पुत्र कच और शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी की कथा वर्णित है। कच के शुक्र के पास आने और विद्या सीखकर देवयानी के प्रणय को अस्वीकार करके चले जाने तक की कथा चित्रित है।

कथा का विकास मूल-ग्रन्थ के अनुसार हुआ है। सार्वजनिक कल्याण के लिए छल को नीति का अंग माना गया है।

---

१. एकलव्य, पृ० ८९
२. एकलव्य, पृ० १२६

किसी एक को उठ आगे आना होगा,
छलबल कौशल से अवश्य लाना होगा।[1]

देवयानी के प्रणय-निवेदन मे मार्मिकता उभरी है। शेष काव्य अत्यन्त साधारण कोटि का है —

देवयानी कहती है —

कच ! क्या तू सचमुच लब्ध काम
उर को टटोल, कुछ नही शेष
कितनी पीडा दे चला हाय !
क्या तुमको कुछ भी नही क्लेश ![2]

किन्तु कच सन्तोष का उपदेश देकर जाना चाहता है। देवयानी के सामाजिक विद्रोह का समाधान भी कच आदर्शवादी विचार धारा मे करता है। गुरु-कन्या के प्रति प्रणय की अस्वीकृति से आदर्श की स्थापना करता है। कही-कही मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व भी उभरा है।

सेनापति कर्ण (लक्ष्मीनारायण मिश्र) १९५८ ई०

हिन्दी के यशस्वी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'कर्ण' के जीवन पर आधारित इस प्रबन्ध-काव्य की रचना की है। 'सेनापति कर्ण' मे मिश्र जी ने कर्ण का सम्पूर्ण चरित्र न लेकर युद्ध-सम्बन्धी जीवन को काव्य का आधार बनाया है। द्रोणाचार्य के सेनापतित्व मे कौरवो का दल युद्ध के लिए तैयार है, तभी दुर्योधन अपने अनन्य मित्र की ओर आशा से देखता है।

इस कथा की एक निराली विशेषता यह है कि समस्त कथा का विकास मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व के साथ होता है। कवि ने इस प्रकार कथा सघटन किया है, कि कथा का इतिवृत्त गौण और तत्सम्बन्धी प्रबन्ध-योजना बधी हुई प्रबन्ध परिपाटी के अन्तर्गत न होकर स्वतन्त्र रूप से विन्यस्त है।

कवि की दृष्टि सामान्यत निरपेक्ष रूप से कौरव-पाण्डवो के चरित्राकन मे व्यस्त रही है। इस पर भी यह स्पष्ट है कि सहानुभूति का प्रबल भाग कौरव पक्षीय वीरों को मिला है। कवि ने कथा मे कुछ परिवर्तन तो ऐसे किए है, जिनसे 'महाभारत' की प्रमुख घटना के विषय मे सदेह उत्पन्न हो जाता है। कवि अपने ज्ञान की सीमाओ मे अपने पक्ष के लिए तर्क भी करता है और सिद्ध कर देता है, कि वह सत्य है। हिडिम्बा के प्रसग मे कवि की मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक दृष्टि स्तुत्य है।

---

१ कच-देवयानी, पृ० ९
२ कच-देवयानी, पृ० ३२

सम्पूर्ण काव्य मन्त्रणा, चिन्ता, सृष्टिधर्म, विषाद और अर्घ्यदान इन पांच शीर्षकों में विभाजित किया गया है। मन्त्रणा में कौरव पक्ष की युद्ध सम्बन्धी मण्त्रणा, चिन्ता में दोनों ओर की चिन्ता, और सृष्टिधर्म में पाण्डवों के परिचय के साथ द्रौपदी के पांच पुत्रों का प्रश्न तथा विषाद में दुःशासन की पत्नी की मनोव्यथा और अर्घ्यदान में घटोत्कच द्वारा अपने को कर्ण से युद्ध के लिए प्रस्तुत करने का चित्रण किया गया है। आत्मकथा के प्रवाह मे अनेक मनोवैज्ञानिक स्थल उत्तम काव्य के द्योतक हैं। इसी कारण यह काव्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

दानवीर कर्ण (गुरुपद्म सेमवाल) १९५९ ई०

कर्ण की दानशीलता और उसके चरित्र के अन्य गुणों को ध्यान में रखकर 'महाभारत' की कथा के आधार पर इस काव्य की रचना हुई है। इस काव्य का मुख्य प्रश्न यह है कि क्या 'महाभारत' का युद्ध श्रीकृष्ण की वैज्ञानिक वृत्ति, कुन्ती की दुष्कर निर्दयता, दुर्योधन के लोभ, पाण्डवों का बलदर्प और कर्ण की आत्मश्रेष्ठता की भावना का ही परिणाम था या कुछ और ?

कवि काव्य-रचना के मध्य गद्य में टिप्पणियां देकर मूल कथा से सम्बद्ध कथाओं को स्पष्ट करता है। यह प्रबन्ध की दुर्बलता है—ये सारी बातें प्रबन्ध के अन्तर्गत अपेक्षित थीं।

कथा का प्रारम्भ दुर्वासा के भोज के लिए आने से होता है। दुर्वासा जाते समय वरदान देते हैं—कुन्ती सद्भाव-कर्म-विधान का वरदान मांगती है :—

> कुन्ती बोली ब्रह्म वर इतना अधिक वरदान है।
> हो स्व मन अन्तःकरण सद्भाव कर्म विधान है।[1]

दुर्वासा वरदान देते हैं और चेतावनी देते हैं :—

> हो विपद यदि जो जपो बिन धारणा, उपहास में।
> कर अनिष्ट महाविकटघन आन हो सब नाश में।[2]

कवि का विचार है कि 'महाभारत' में रंगभूमि का प्रदर्शन अर्जुन की प्रमुखता के लिए ही रखा गया था।[3] इसमें इन्द्र-कर्ण का प्रसंग विस्तृत रूप से चित्रित है। द्रौपदी स्वयंवर में भी कर्ण को जातीयता के कारण परास्त होना पड़ा। कवि ने कृष्णत्व पर आघात किया है।

> युद्ध को यदि रोक देते निज अतुल बल बुद्धि से।
> तो भला नहिं मानते जन ईश उनको सिद्धि से।[4]

---

१. दानवीर कर्ण, पृ० ६
२. दानवीर कर्ण, पृ० ९
३. दानवीर कर्ण, पृ० १०
४. दानवीर कर्ण, पृ० ४८

द्रौपदी (नरेन्द्र शर्मा) १९६० ई०

द्रौपदी खण्ड-काव्य की रचना 'महाभारत' की कथा के आधार पर हुई है। द्रौपदी के जीवन पर आधारित यह काव्य अन्य काव्यों की अपेक्षा अपनी पृथक सत्ता घोषित करता है। कवि ने अत्यन्त आस्थावादी दृष्टिकोण से द्रौपदी को जीवनी शक्ति के रूप में अभिव्यक्त कर उसे नारी शक्ति का दृप्त दीप्त प्रतीक माना है। 'महाभारत' के पात्रों का प्रतीक अर्थ लेकर पुरुष की उन्नति में नारी के बलिदान को प्रधानता दी है।

गुरु-दक्षिणा (विनोदचन्द्र पाण्डेय) १९६२ ई०

'महाभारत' के एकलव्य प्रसंग के आधार पर गुरु-दक्षिणा खण्ड-काव्य की सृष्टि हुई है। कवि एकलव्य को दलित और उपेक्षित मानता है, तथा आधुनिक युग की जागृति मूलक भावना से प्रेरित होकर एकलव्य की गुरु भक्ति को नमन करता है। 'महाभारत' का काल वर्ण-व्यवस्था का कट्टर समर्थक था वर्तमान काल में विज्ञान के आलोक में वर्ण-व्यवस्था का बंधन शिथिल हो रहा है, ऐसे समय में प्राचीन उपेक्षित पात्र की चारित्रिक विशेषताओं से वर्तमान काल का पतित व्यक्ति प्रेरणा प्राप्त करके अपने कर्म के बल पर उन्नति कर सकता है। यह कल्याण कारी भावना इस खण्ड काव्य में व्याप्त है।

कौन्तेय कथा (उदयशंकर भट्ट) १९६२ ई०

'महाभारत' के किरात और अर्जुन के युद्ध-प्रसंग को लेकर उदयशंकर भट्ट जी ने 'विजय पथ' नामक खण्ड-काव्य की रचना की। द्वितीय संस्करण में इसका नाम 'कौन्तेय कथा' रख दिया—पाण्डवों की कथा प्रमुख होने के कारण यह नाम करण उचित ही है।

इस काव्य में कवि ने प्राचीन काल में अनेक संस्कृतियों की पृथक् स्थिति की कल्पना की है। उनका विचार है कि इन संस्कृतियों में धीरे-धीरे समन्वय हुआ और शिव संस्कृति की प्रधानता रही। शिव संस्कृति ने अन्य जातियों में भेदभाव समाप्त कर प्रेम भावना का प्रचार किया।

'कौन्तेय कथा' में पाण्डवों की दुःखात्मक स्थिति की भावमूलक अभिव्यक्ति के मध्य अर्जुन एवं भीम के शौर्य की व्यंजना और युधिष्ठिर की सात्विकता के मध्य शक्ति की अनिवार्यता का प्रतिपादन हुआ है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राणों को लगाने वाले व्यक्ति की सहायता सभी शक्तियाँ करती हैं—इस आस्था के साथ आत्मदृढ़ता की भी अभिव्यक्ति हुई है। अपने लघु कलेवर में यह काव्य सांस्कृतिक उत्थान की महती भावना लिए हुए है।

आधुनिक हिन्दी काव्य-पूर्व महाभारत की प्रभाव-परम्परा

संस्कृत साहित्य

पालि-अपभ्रंश काव्य

हिन्दी साहित्य

1 आदिकाल

11 भक्तिकाल

111 पूर्व मध्यकाल

तृतीय अध्याय

आधुनिक हिन्दी काव्य-पूर्व महाभारत की प्रभाव-परम्परा

आधुनिक हिन्दी काव्य के पूर्व 'महाभारत' की प्रभाव परम्परा मे संस्कृत,[1] अपभ्रंश और हिंदी के अनेक प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों की एक अविच्छिन्न परम्परा प्राप्त होती है। इतने सुदीर्घ समय मे प्राप्त होने वाले काव्यो के अध्ययन से, प्रत्येक काल में विशेष विचारधारा के दर्शन होते हैं। प्रत्येक कवि अपने व्यक्तिगत जीवन दृष्टिकोण के आधार पर 'महाभारत' से प्रभावित हुआ है। 'महाभारत' की कथा को लेकर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन ऐसे काव्यो की स्वतन्त्र विशेषता है—जैसे भारवि ने 'किरातार्जुनीय' कथानक को शैवदर्शन के आलोक मे परिवर्तित किया और माघ ने महाभारतीय कथानक को वैष्णवी चिंतनधारा के प्रकाश मे चित्रित किया।

संस्कृत के काव्य : सामान्य विशेषताए

'महाभारत' के आख्यानो पर आधारित संस्कृत के विभिन्न काव्यो की कतिपय विशेषताए सामान्य हैं। प्रत्येक कवि ने 'महाभारत' की आत्मा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है, और महाभारतीय कथा सूत्र के साथ यदि कही अन्य स्रोतो मे कथा-रूप प्राप्त हुआ, उसे भी ग्रहण कर लिया गया। 'महाभारत' की चरित्र-सृष्टि को कवि ने अपने आदर्शों के अनुसार परिवर्तित किया है। ये पात्र उपाख्यानो मे यद्यपि स्वतन्त्र नायक के रूप मे आते हैं, तथापि उनका व्यक्तित्व मूल वस्तु से आवृत रहता है। संस्कृत के काव्यो मे नायको के व्यक्तित्व को स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि महाभारतकार के समक्ष धीरोदात्त, धीरललित, आदि नायक के भेदों की स्थिति नही थी—संस्कृत का कवि अपने चरित्र नायको को इसी सीमा मे अनुबद्ध रखना चाहता था, अतः उसने नायक के चरित्रांकन में जिस कथा-खण्ड को बाधक समझा, उसे छोड दिया और कथा के अन्तराल को कल्पना से भर दिया। कालिदास के दुष्यन्त, भारवि के अर्जुन, माघ के कृष्ण ऐसे ही नायक हैं। इसके अतिरिक्त सभी कवियों ने कथा के मध्य पात्रगत मानसिक द्वन्द्व की अवधारणा करके, पात्रो को अधिकाधिक मानवीय रूप दिया है। इन कवियो ने अति प्राकृत तत्वों को यथा सम्भव मूलग्रन्थ के अनुसार ही ग्रहण किया, और विरल रूप से परिवर्तन किया है। संस्कृत काव्य-परम्परा में सबसे प्रमुख विशेषता यह है, कि 'महाभारत' के उन

---

1 हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० १३६

आख्यानों को ही काव्य का आधार बनाया है जिनसे कवि किसी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण रख सके। क्षात्र-धर्म की पुनः स्थापना युद्ध-प्रधान काव्यों का मुख्य ध्येय रहा है।

पालि-अपभ्रंश काव्यों की विशेषताएं

'महाभारत' का प्रभाव पालि और अपभ्रंश ग्रन्थों पर भी पड़ा है। पालि के 'महावंश-दीप-वंश' और प्राकृत अपभ्रंश के 'पउमचरिउ' 'महापुराण (त्रिसट्ठा महा-पुरिस गुणालंकार) आदि ग्रन्थो में 'महाभारत' की शैली अपनाई गई है। प्राकृत अपभ्रंश के महाकाव्यों की रचना 'महाभारत' और 'पुराणों' के आधार पर ही हुई है। 'जैन महाभारत' तथा 'जैन पुराण' इस तथ्य के प्रमाण हैं।

अपभ्रंश काव्यो की मुख्य विशेषता कथा का परिवर्तन है। सामान्यतः सभी प्रबन्ध-काव्यों और महापुराणों में 'महाभारत' की एकान्त कथा न लेकर 'महाभारत' और 'रामायण' की सम्मिलित कथा का वर्णन किया गया है। इनमे अनेक स्थलों पर जैन-धर्म के अनुसार विचार धारा और कथा तथा पात्रों की स्थिति का चित्रण इस रूप में किया है कि 'महाभारत' से अपरिचित व्यक्ति उन्हें मूल रूप से जैन-धर्म के कथा और पात्र-समझ सकता है। उदाहरणार्थ 'पद्माभचरित्र' में 'महाभारत' से परीक्षित की कथा ली गई है, किन्तु परीक्षित एक जैन-मुनि के गले में माला डालता है। जैन-धर्म के प्रभाव मे लिखे गये 'महाभारत' से प्रभावित काव्यो द्वारा भारतीय वैदिक संस्कृति का विकास न होकर जैन-धर्म का प्रचार होता है। अतः अपभ्रंश के काव्यों का मूल्य साहित्यिक और ऐतिहासिक है।

हिन्दी-साहित्य

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ तक आते-आते पौराणिक शैली के महाकाव्य, अलंकृत महाकाव्य, विकसनशील महाकाव्य आदि विभिन्न काव्यरूपों की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। हिन्दी पूर्ववर्ती अपभ्रंश की काव्य-परम्परा को विषय वस्तु और शैली को आधार मानकर सन्धियुग में अनेक रचनाएं हो चुकी थी।[1] १० वी शताब्दी मे अपभ्रंश भाषा की अनेक रचनाएं अब उसी शैली में लिखी जा रही थी।[2] अतः हिन्दी साहित्य के प्रथम युग में इस मध्यवर्ती साहित्य के माध्यम से 'महा-भारत' का प्रभाव पड़ना नितान्त स्वाभाविक था। वीर-गाथा-काव्यो के अध्ययन करने से ज्ञात होता है, कि 'महाभारत' की शैली और युद्ध-वर्णन का प्रत्यक्ष प्रभाव रासो काव्यो पर पड़ा है। यत्र-तत्र कथा-खण्डों का प्रभाव भी स्पष्ट रूप मे मिल जाता है। वीरगाथाकाल की वीर भावना और वीर चरित्रों का निरूपण भी 'महाभारत'

---

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० १४७
२. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० १५१

की प्रभाव-परम्परा में अन्तर्गत हुआ है। महाभारत' की वीर भावना और वीर चरित्रो की सम्पूर्ण विशेषताए वीर-काव्य (रासो काव्य) मे उपलब्ध हैं।

आदिकाल के बाद पूर्व मध्यकाल के भक्ति आन्दोलन मे 'महाभारत' की विचारधारा का प्रत्यक्ष प्रभाव नही है। भक्ति के जिस रूप की चर्चा कृष्ण और विष्णु के साथ 'महाभारत' मे आई है, उसका विकास प्रभूत मात्रा मे परवर्ती पुराणो, विशेषकर 'भागवत पुराण' मे, हो चुका था। शकराचार्य के परवर्ती दार्शनिको ने इतने व्यापक रूप मे भक्ति सिद्धात का प्रचार किया कि 'महाभारत' मे प्राप्त भक्ति का विन्दु इस व्यापक प्रचार मे अन्तर्भूत हो गया, अत भक्ति-आन्दोलन को 'महाभारत' प्रतिपादित साधन-मार्ग से अप्रत्यक्ष प्रेरणा मिली। इसके साथ कतिपय भक्त कवियो की रचनाओ को दर्शन की दृष्टि से 'महाभारत' ने प्रभावित किया। तुलसी कृत 'रामचरित मानस' पर 'गीता' का प्रभाव स्पष्ट है। 'सूरसागर' के कुछ पदो म 'महाभारत' की अत कथाओ को लिया गया है।

भक्ति-काव्य-धारा के प्रसग मे प्रेमाख्यानक काव्य-परम्परा का उल्लेख करना परमावश्यक है। 'महाभारत' के नलोपाख्यान पर आधारित प्रेमाख्यानक परम्परा में अनेक काव्यो की रचना हुई। डा० सत्येन्द्र ने नल-चरित्र पर आधारित ६ रचनाओ की सूचना दी है।[1] इनके अतिरिक्त अनेक रचनाए सभा की खोज रिपोर्ट म उद्धृत हैं। नल-दमयन्ती की प्रेमगाथा सूफी और अन्य प्रेमाख्यानक परम्परा के कवियो को अधिक रुचिकर लगी, अत इस आख्यान पर आधारित काव्य रचना की विस्तृत परम्परा प्राप्त होती है।

१७ वी शती से १६ वी शती तक हिन्दी की रीति-काव्य-धारा पर 'महाभारत' का प्रभाव प्राय नही है, किन्तु इस युग मे कतिपय वीर-काव्यो की रचना हुई हैं। उन पर 'महाभारत' की विचार धारा का प्रभाव तत्कालीन राष्ट्रीयता की सीमा मे परिलक्षित होता है। यद्यपि इस काल के अन्तर्गत प्रेमगाथाए अधिक लिखी गई किन्तु 'महाभारत' के विभिन्न पर्वों के छायानुवाद की प्रवृत्ति भी व्यापक रूप से मिलती है और युद्ध प्रसग पर भी उल्लेखनीय रचनाए हुई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'महाभारत' की विषय वस्तु, शैली के प्रभाव की एक अविच्छिन्न परम्परा विद्यमान है। अब उक्त परम्परा मे प्राप्त ग्रथो की सक्षिप्त समीक्षा की जा रही है।

सस्कृत-साहित्य

पचम वेद अर्थात् 'महाभारत' का प्रभाव भारतीय परवर्ती साहित्य पर इतना अधिक पडा कि यदि सस्कृत के महाभारत-दाय-सम्पन्न ग्रन्थों को अलग कर दिया जाय

---

१ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन, पृ०२३८
(इन रचनाओं का सांकेतिक उल्लेख इसी अध्याय मे आगे कर दिया गया है)

तो गिनती के कुछ ही उच्चकोटि के ग्रन्थ शेष रह पायेंगे। संस्कृत का उच्चकोटि का साहित्य महाभारतीय कथानकों पर आधारित है।

इस प्रभाव परम्परा में एक विशेष बात यह है कि प्रत्येक कवि ने निज का सीधा सम्पर्क 'महाभारत' से स्थापित किया, और महाभारतीय आख्यान तथा पात्र के मध्यवर्ती परिवर्तन पर ध्यान न देकर अपनी और महाभारतकार की मान्यताओं की संगति एवं असंगति का विचार किया है। उपलब्ध साहित्य के अनुसार संस्कृत के निम्नांकित कवि 'महाभारत' से प्रभावित हैं :—

भास—'दूत वाक्य' 'कर्णभार' 'दूत घटोत्कच' 'उरुभंग' 'मध्यम व्यायोग' तथा 'पंचरात्र' कालिदास—'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' भारवि—'किरातार्जुनीय' भट्टनारायण—'वेणी संहार' माघ—'शिशुपाल-वध' कुलशेखर-वर्मन—'सुभद्रा-धनंजय' नीतिवर्मन्—'कीचक-वध' राजशेखर—'बालभारत' क्षेमीश्वर—'नैषधानन्द' वत्सराज—'किरातार्जुनीय व्यायोग' श्रीहर्ष—'नैषधचरित' रामचंद्र—'नलविलास' 'निर्भय भीम'—अमरचंद्र—'बालभारत' देवप्रभसूरी 'पाण्डव-चरित' कृष्णानन्द-सहृदयानन्द, अगस्त्य—'बालभारत'।

दूत वाक्य :—यह नाटक एकांकी व्यायोग है। इसमें 'महाभारत' के उद्योग-पर्व से कथा ग्रहण की गई है। राजदूत भगवान कृष्ण शान्ति सन्देश लेकर कौरवों की सभा में जाते हैं। दुर्योधन के हठ के कारण भगवान को विफल मनोरथ लौटना पड़ता है। इस नाटक में भास ने महाभारतीय कथा को यथावत् ग्रहण किया।

कर्ण भार—'कर्ण-भार' एक अंक का नाटक है। इसकी कथा 'महाभारत' के वनपर्व के कुण्डलाहरण भाग से ग्रहीत है। इसमें महादानी कर्ण ब्राह्मण वेशधारी देवराज इन्द्र को अपना कवच-कुण्डल दान मे देते हैं। इस नाटक में कर्ण की दानवीरता की अभिव्यक्ति हुई है।

दूत घटोत्कच :—इस नाटक की कथा का आधार 'महाभारत' का द्रोणपर्व है। अभिमन्यु-वध के उपरान्त अर्जुन, जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करते हैं, और कौरव-पक्ष को सूचित करने के हेतु श्रीकृष्ण घटोत्कच को दूत बनाकर भेजते हैं। कौरव-शिविर में घटोत्कच का अपमान किया जाता है, तो वहां भयंकर युद्ध छिड़ जाता है। नाटककार ने 'महाभारत' के आधार पर कथा का स्वतन्त्र विकास किया है। घटोत्कच के दूतत्व की कल्पना नाटक को रोचक बना देती है।

उरुभंग :—इस नाटक की कथा गदापर्व से ग्रहीत है। भीम एवं दुर्योधन के युद्ध के उपरान्त दुर्योधन का करुणापूर्वक अन्त इस नाटक की अपनी एकान्त विशेषता है।

मध्यम व्यायोग :—इस एक अंक के व्यायोग में भीम के द्वारा एक ब्राह्मण कुमार की भयंकर राक्षस से रक्षा का कथानक ग्रहण किया गया है। इसको मध्यम व्यायोग इसलिए कहा गया है कि इसमें मध्यम पाण्डव की कथा चित्रित है।

पंचरात्र —'पंचरात्र' में नाटककार ने 'महाभारत' की विराटपर्व की कथा के आधार पर अपनी कल्पना से कथा को नितान्त भिन्न रूप में चित्रित किया है। द्रोण दुर्योधन से पाण्डवों को आधा राज्य देने का प्रस्ताव करते हैं। तो दुर्योधन सशर्त द्रोण के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। शर्त है (अज्ञातवास के समय) पाण्डव पांच रात्रियों के भीतर ही कौरवों को मिलें। द्रोण इस मिलन में सफल हो जाते हैं और पाण्डवों को आधा राज्य प्राप्त होता है। नाटककार ने कथा-विकास में अधिक स्वतन्त्रता का उपयोग किया है।

अभिज्ञान शाकुन्तल —संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि कालिदास ने 'महाभारत' के आदिपर्व में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान के आधार पर इस नाटक की रचना की है। 'महाभारत' की कथा को कालिदास ने नायक एवं नायिका की चरित्र भावना के कारण अपनी कल्पना-शक्ति से अद्भुत कथात्मक एवं चारित्रिक उत्कर्ष तथा परिवर्तन के साथ चित्रित किया है। 'महाभारत' में शकुन्तला स्वयं अपने जन्म की कथा कहती है, किन्तु 'शाकुन्तल' नाटक में उसकी सखियां यह कार्य सम्पन्न करती हैं। 'महाभारत' की शकुन्तला प्रगल्भ, स्पष्टवादिनी और निर्भीकमना स्त्री है, किन्तु कालिदास की शकुन्तला, लज्जाशीला, प्रेम-परायणा, स्वाभिमानिनी तरुणी है।

'महाभारत' में कण्व थोड़े समय के लिए अनुपस्थित हैं किन्तु नाटक में कवि ने ऋषि की लम्बी अनुपस्थिति के कारण घटनाओं की स्वाभाविक पृष्ठभूमि तैयार की है। इसी बीच कवि ने दुर्वासा के शाप की स्वतन्त्र कल्पना की जिसके आधार पर वह अपने नायक के चरित्र को दोषों से बचा गया। यह कथा निश्चित रूप से 'महाभारत' में गृहीत है। यह सर्व स्वीकृत तथ्य है कि 'पद्मपुराण' की रचना चाहे जब हुई हो किन्तु उसमें यह प्रसंग कालिदास के उपरान्त ही जुड़ा ज्ञात होता है।

कालिदास ने 'महाभारत' के पात्रों को आदर्शोन्मुख चित्रित किया है किन्तु वे सभी अपनी व्यक्तिगत विशेषता के साथ सजीव एवं स्वाभाविक हैं। दुष्यन्त धीरोदात्त नायक हैं। वे प्रभावसम्पन्न तथा मधुरभाषी हैं।

'अनुद्गम्भीरोदात्त निश्चतुर प्रियमालाप-प्रभावश निश लक्ष्यते'[1]

कालिदास ने दुष्यन्त के चरित्र को महाभारतीय सामन्तकालीन राजाओं की यथार्थ भावना से पृथक् रूप में चित्रित किया है। उन्होंने अपने नायक की आहत प्रेममयी मूर्ति को भी कर्तव्यनिष्ठ चित्रित किया है।

येनयेन वियुज्यन्ते प्रजा स्निग्धेन बन्धुना ।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम् ।[2]

---

१ शाकुन्तल, २।१४

२ शाकुन्तल, ६।२०

'महाभारत' के दुष्यन्त में राज्योचित गर्व की भावना है[1] किन्तु 'शाकुन्तल' के दुष्यन्त एकनिष्ठ प्रेमी के रूप मे प्रिया से क्षमा याचना करते हैं।[2]

दुष्यन्त के चरित्र की भांति ही शकुन्तला के चरित्र में भी 'महाभारत' से अधिक स्वाभाविकता और सजीवता का समावेश है। 'महाभारत' में शकुन्तला दुष्यन्त के प्रणय को पुत्र के युवराजत्व की शर्त के साथ[3] स्वीकार करती है। यह शर्त शकुन्तला के प्रखर व्यक्तित्व की द्योतक है, और महाभारतकालीन राजपुरुषों के प्रणय के विषय में व्याप्त अस्थिरता की झलक देती है। राजपुरुष राज्य मद में प्रेम करके पुनः तृणवत् त्यागने की प्रवृति से युक्त रहे होगें, अतः 'महाभारत' की शकुन्तला भावुक प्रेयसी न होकर भविष्य की सुखद कामना करने वाली ऐसी स्त्री है, जिसकी व्यक्तिगत दूरदर्शिता असंदिग्ध है। कवि को 'महाभारत' की शकुन्तला का यह कठोर आवरण सुन्दर नही लगा, अतः उसने शकुन्तला के चरित्र को अधिक भावनामय, प्रेमपूर्ण और समर्पणात्मक चित्रित किया है। शकुन्तला के चरित्र मे तपस्विनी एवं गृहस्थी, ऋषि-कन्या एवं प्रेमिका, प्रकृति की शान्तता और स्वाभाविक चंचलता का अद्भुत सौन्दर्यपरक सम्मिश्रण किया गया है।

इस प्रकार कालिदास ने 'महाभारत' के कथानक को कवि-सुलभ भावुकता से परिष्कृत कर अभिनव रूप में उपस्थित किया है।

किरातार्जुनीय :—भारवि की कीर्ति का स्तम्भ 'किरातार्जुनीय' 'महाभारत' के वनपर्व की कथा के आधार पर रचित महाकाव्य है। द्यूत-क्रीड़ा मे हारकर पाण्डवों ने द्वैतवन मे निवास किया, जब उनको अपने गुप्तचर के द्वारा दुर्योधन की शासन-व्यवस्था का ज्ञान हुआ तो भीम और द्रौपदी ने युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित किया। किन्तु धर्मराज अपने वचन से विचलित नही हुए। व्यास जी के परामर्श से अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर पाशुपतास्त्र प्राप्त करने गये, वहां भगवान् शिव ने किरात-वेश मे अर्जुन के वीरत्व एवं धर्म की परीक्षा ली, और प्रसन्न होकर दिव्यास्त्र पाशुपत प्रदान किया।

प्रस्तुत काव्य के कथानक में कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। 'महाभारत' के संक्षिप्त कथा-रूप को महाकाव्योचित गौरव प्रदान करने के हेतु अनेक वर्णनों को स्थान दिया गया है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'महाभारत' के पात्र और भी अधिक सजीव हैं। अतिशय प्रभावपूर्ण चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत तिरस्कार से आहत द्रौपदी के हृदय की प्रतिशोध-ज्वाला के स्फुलिंगों को कवि ने उग्ररूप में चित्रित किया है। भीम का पराक्रम और पुरुषार्थ भी यथावत् सुरक्षित है। युधिष्ठिर की शान्ति प्रियता भी

---

१. म० आदि० ७४।१२४

२. शाकुन्तल, ७।२३

३. म० आदि०, ७३।१६-१७

अपने भव्य रूप में अंकित हुई है अन्तत अर्जुन का वीरत्व अपने चरम रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

वेणी-सहार —इस नाटक का कथानक 'महाभारत' के अनेक पर्वों से गृहीत है। नाटककार ने सभापर्व से द्रौपदी के केश खींचे जाने एव भीम की प्रतिज्ञा का कथानक लिया है। द्रोणपर्व से द्रोण-वध के उपरान्त अश्वत्थामा एव कर्ण का सवाद तथा वृषसेन के वध का वृत्तान्त लेकर, गान्धारी एव धृतराष्ट्र द्वारा दुर्योधन को सन्धि के लिए समझाने की कथा ग्रहण की है। गदापर्व से दुर्योधन के वध की घटना और शान्तिपर्व से चार्वाक के प्रसग को लेकर कथा का विराम किया है। कथा के कुछ अश 'महाभारत' से यथावत् ग्रहण करके कुछ अशों को नाटककार ने स्वतन्त्र रूप से उपस्थित किया है। सामान्यत कथा के क्रम में अनेक परिवर्तन किए हैं, यथा चार्वाक के प्रसग को दुर्योधन-वध की घटना के पूर्व चित्रित करके युधिष्ठिर की ग्लानि का चित्र उपस्थित किया है।

'महाभारत' में अश्वत्थामा एव कर्ण के कटु सवाद का अभाव है कवि ने इस प्रसग को सम्भावनाओं के आधार पर स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया है। गान्धारी और धृतराष्ट्र द्वारा दुर्योधन को समझाने का प्रसग भी अन्य स्थान से लेकर यहा गुम्फित है। चार्वाक के प्रसग में युधिष्ठिर का भ्रातृ-प्रेम और द्रौपदी का पतिव्रत अभिव्यक्त हुआ है। इसमें कर्ण एव दुर्योधन का चरित्र अधिक स्वाभिमान और तेजस्विता से चित्रित है। महाभारतीय विचारधारा से प्रतिकूल 'वेणी सहार' में दुर्योधन को भीम से अधिक मानवीय दिखाया है। कवि ने दुर्योधन का चरित्र इस प्रकार चित्रित किया, कि उसकी दुर्बलताए भी हमारे मन में महानुभूति उत्पन्न कर देती है।

शिशुपालवध —माघ द्वारा रचित यह काव्य 'महाभारत' के सभापर्व में प्राप्त शिशुपाल के प्रसग पर आधारित है। इसको कवि ने अनेक स्वरचित उपप्रसगों से सयुक्त करके महाकाव्य का रूप दिया है। 'शिशुपाल-वध' में बलराम-श्रीकृष्ण और उद्धव के मध्य राजनैतिक सवाद, नारद का उपदेश, शिव के दूत द्वारा अर्जुन का अपमान, और शिशुपाल तथा श्रीकृष्ण की सेना के युद्ध-वर्णन का विकास स्वतन्त्र रूप में हुआ है। 'महाभारत' में इन प्रसगों का अभाव है। कथान्तर्गत अनेक शून्यों को भरने के हेतु कवि ने आलकारिक चित्रों की अवतारणा की है।

प्रस्तुत काव्य में शिशुपाल का वीरत्व और दूत की वाक्चतुरता अत्यन्त सुदर रूप में व्यक्त है। कृष्ण का व्यक्तित्व सर्वोपरि है, उनमें देवत्व की भावना का समावेश आधार ग्रन्थ के अनुसार ही प्राप्त होता है।

सुभद्रा-धनजय—कुलशेखर वर्मन के 'सुभद्रा-धनजय' नाटक में अर्जुन और सुभद्रा के विवाह का कथानक है। इसमें लेखक ने अर्जुन की वीरत्व सम्पन्न प्रेम-मूर्ति का चित्रण किया है।

कीचक-वध :—नीतिवर्मा की रचना 'कीचक-वध' में 'महाभारत' के लोक विश्रुत विराटपर्व का कथानक ग्रहण किया गया है, इसमे कीचक की वासना निकृष्ट रूप मे और द्रौपदी का पतिव्रत अत्यन्त उत्कृष्टता से चित्रित हुआ है। स्त्री के सतीत्वधर्म की पुन प्रतिष्ठा ही इस रचना की प्रेरणा है।

बालभारत—'महाभारत' से प्रभावित राजशेखर के इस नाटक के दो अंक उपलब्ध है। इनमे द्रौपदी स्वयंवर और द्यूत का वर्णन है।

नैषधानन्दः—क्षेमीश्वर ने 'महाभारत' के नलोपाख्यान पर आधारित 'नैषधानन्द' नाटक की रचना की है। नल-दमयन्ती की कथा में नाटककार ने स्वतन्त्र विकास करते हुए भी 'महाभारत' के पात्रों की स्थिति में विशेष परिवर्तन नही किया, कही-कही चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है।

किरातार्जुनीय व्यायोग :—यह एक एकाकी व्यायोग है, जिसमे वत्सराज ने भारवि के प्रसिद्ध काव्य के आधार पर 'व्यायोग' की रचना की है।

नैषधचरित :—श्री हर्ष के 'नैषधचरित' का कथानक 'महाभारत' के विश्रुत नलोपाख्यान पर आद्धृत है। इसमे कवि ने २२ सर्गों मे नल-दमयन्ती के प्रेम की कथा सरस शैली में वर्णित की है। इस महाकाव्य मे 'महाभारत' की संक्षिप्त कथा का अत्यन्त विस्तार है। विस्तार के हेतु कवि ने सौन्दर्य-वर्णन, वस्तु-वर्णन आदि का आश्रय लिया है। सम्पूर्ण दशम सर्ग दमयन्ती के नखशिख वर्णन से पूर्ण है। यद्यपि दमयन्ती के सौन्दर्य-चित्रण मे द्वितीय सर्ग का पिष्टपेषण है।

'नैषध' का कथानक मानव के प्रेममय जीवन की एकातिकता का कथानक है, इसमे मानव-जीवन की समग्रता का अंकन नही हो पाया है।

'नैषध' के उपरान्त संस्कृत के श्रेष्ठ महाकाव्यों की परम्परा अवरुद्ध हो गई। तदनन्तर 'महाभारत' से प्रभावित कुछ नाटक और चरितकाव्यों की रचना हुई। परवर्ती रचनाकारो की रचनाओं में 'महाभारत' के कथानक का उपयोग किया गया है ; किन्तु उन्होने कथा-विकास और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती कवियों का ही अनुसरण किया है।

१४ वी शताब्दी में भी 'महाभारत' के प्रभाव की परम्परा प्रचलित रही। वासुदेव कवि के 'युधिष्ठिर विजय' और 'नलोदय' प्रसिद्ध काव्य है। इसी शती में अगस्त्य का २० सर्गों का काव्य 'बाल-भारत' अत्यन्त प्रसिद्ध है।

१५ वी शताब्दी का वामनभट्ट द्वारा रचित 'नलाभ्युदय' काव्य नल-दमयन्ती की कथा पर आधारित है। इसके अतिरिक्त 'महाभारत' से प्रभावित काव्यों और नाटकों की परम्परा चलती रही, पर शेष संस्कृत-साहित्य में उल्लेखनीय रचना नहीं हुई।

रिट्ठणेमिचरिउ-हरिवंश पुराण (स्वयंभू) ८ वीं शती

प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने जैन धर्मानुसार 'महाभारत' की कथा का वर्णन किया है। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृत काव्यों की परम्परा अपभ्रंश में भी जीवित रही और परवर्ती साहित्य इस परम्परा का ऋणी है। इस महाकाव्य में ११२ संधियां और १९३७ कडवक हैं। यह काव्य चार काण्डों में विभाजित है।[1] यादव काण्ड में कृष्ण का जीवन, कुरुकाण्ड में परम्परा का विकास और वंश चित्रण, युद्ध काण्ड में महाभारत का युद्ध और उत्तर काण्ड में विचार पक्ष की प्रधानता है।

ग्रंथ का प्रारम्भ प्राचीन परिपाटी के अनुसार किया गया है। कवि सरस्वती से प्रेरणा प्राप्त करके काव्य-रचना में प्रवृत्त होता है। यादव काण्ड में कृष्ण का जीवन पौराणिक रूप से चित्रित है। 'महाभारत' की कथा का प्रभाव कुरुकाण्ड से प्रारम्भ होता है। कवि कौरव पाण्डवों के जन्म, बाल्य-काल, शिक्षा, परस्पर कटुता, वनवास की कथा का विस्तार से वर्णन करता है। इन प्रसंगों में वह महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं करता। युद्ध काण्ड में प्रमुख विषय दोनों वंशों का युद्ध है पाण्डवों की विजय और कौरवों की पराजय मूल ग्रन्थ के अनुसार अभिव्यक्त है।

कथा का मूल स्रोत 'महाभारत' है किन्तु धार्मिक विचारधारा के अनुसार कुछ परिवर्तन भी किए गए हैं। एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन इस प्रकार है —

'महाभारत' में द्रौपदी स्वयंवर में मत्स्यवेध की प्रतिज्ञा है किन्तु 'हरिवंशपुराण' में केवल धनुष चढ़ाने की प्रतिज्ञा का उल्लेख है। सम्भवतः जैन धर्म की अहिंसा के कारण ऐसा परिवर्तन किया गया है।

महापुराण (पुष्पदंत) १० वीं शती

पुष्पदंत द्वारा रचित 'महापुराण' में मुख्य रूप से राम की कथा वर्णित है। समस्त कथा का विकास, अनेक नामावलियां कवि ने जैन धर्मानुसार परिवर्तित की है। 'महापुराण' में कवि ने जैन धर्मानुकूल ६३ महापुरुषों की कथा में 'रामायण' और 'महाभारत' की कथा का अंतर्भाव किया है। इस कारण इस रचना को भी 'महाभारत' से प्रभावित ग्रन्थों की श्रेणी में रक्खा जा सकता है।

'महापुराण' के तृतीय खंड में ८१ से ९२ संधियों तक मुख्य रूप से 'महाभारत' की कथा वर्णित है। इसे 'हरिवंश पुराण' भी कहा गया है। इसमें विशेषता यह है कि 'महाभारत' की कथा से सम्बद्ध पात्रों की पूर्व जन्म की कथाओं का चित्रण भी कवि ने किया है। मगध देश के राजगृह की शोभा का चित्रण 'महाभारत' से गृहीत है।

> जहिं दीसइ तहिं मल्लइ णयरु णवल्लउ ससिरवि अन्त विभूसिउ।
> उवनि विलंबिय तरणि हे सग्गे धरणि हे णावइ पाहुडु पेसिउ ॥[2]

---

1 अपभ्रंश साहित्य, पृ० ६७

2 म० पु० १-१५ उधृत, अपभ्रंश साहित्य पृ० ७८

हरिवंश पुराण (धवल) ११ वीं शती

जैन कवियों की महाभारतीय कथा-परम्परा में धवल का 'हरिवंश' जैन कवियों की रचनाओं के समान ही समादृत है। इसमे कवि ने 'हरिवंश पुराण' के आधार पर जैन धर्मानुसार 'महाभारत' की कथा का संक्षिप्त और परिवर्तित रूप प्रस्तुत किया है।

'हरिवंशपुराण' की कथा का रूप स्वयंभू की कथा के समान ही है। पात्रों एवं घटनाओं की परिणति जैन धर्म के सिद्धान्तों की स्वीकृति में हुई है। युद्ध-चित्रण सजीव है :—

> महा चंड चिन्ता, भडा छिणणा गत्ता,
> धनू बाण हत्था, सकुता समत्था,
> पहारंति सूरा, ण मज्जंति धीरा,
> सरोसा सतो सा, सहासा स आसा,[1]

पाण्डव पुराण (यशः कीर्ति) ११ वीं शती

यश.कीर्ति का ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्त लिखित प्रतियां आमेर शास्त्र-भंडार मे और एक देहली के पंचायती मंदिर मे विद्यमान है।

'पाण्डव पुराण' में कवि ने ३४ सन्धियों द्वारा पाण्डवों की कथा का चित्रण किया है। कथा को कवि ने जैन-धर्म के अनुसार परिवर्तित रूप में वर्णित किया है। कहीं कही पर 'महाभारत' की मूल कथा नितान्त पृथक् रूप में परिवर्तित कर दी गई है। कवि का उद्देश्य 'महाभारत' की कथा को अपने अनुसार चित्रित करके जैन-धर्म का प्रसार रहा है।

पांचाली का वर्णन द्रष्टव्य है :—

> मणिमय कणि कुण्डल रयण मेहला, सीस मउलि सारा।
> करेज्झण झणिय कंकणा, तो सिया जणा, कंठ मुत्तहारा ॥[2]

हरिवंश पुराण (यशः कीर्ति) ११ वीं शती

यश.कीर्ति द्वारा रचित 'हरिवंश-पुराण' भी अप्रकाशित रचना है। इसमें कवि ने १३ सन्धियों और २६७ कड़वकों में 'महाभारत' की जैन-कथा का सीधा वर्णन किया है।

तीर्थंकरों के स्तवन के उपरान्त कथा का प्रारम्भ और काव्य का प्रयोजन दिया है। कथा का प्रारम्भ पौराणिक शैली में किया गया है। कथानक के धर्मानुकूल परि-

---

१. हरिवंश पुराण ६०।४, उधृत, अपभ्रंश साहित्य, पृ० १०७
२. उधृत, अपभ्रंश साहित्य, पृ० १२०

वर्तन के अतिरिक्त नगर-वर्णन, नारी-सौन्दर्य-वर्णन हृदय स्पर्शी हो पाये हैं।

हरिवंश पुराण (श्रुतिकीर्ति) सं० १५५३

श्रुतिकीर्ति के 'हरिवंश पुराण' में ४४ संधियों में 'महाभारत' की कथा का वर्णन है। इसमें कथा का परिवर्तित रूप होते हुए भी अन्य रचनाओं से 'महाभारत' की समीपता अधिक है। कथा का प्राचीन रूप काफी सुरक्षित रहा है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का आदि महाकाव्य माना जाता है। यह काव्य विकासशील महाकाव्यों में आता है क्योंकि विकासशील महाकाव्यों की सम्पूर्ण विशेषताएं इसमें उपलब्ध हैं।[1] इस काव्य में लोक-कंठ में व्याप्त गाथाचक्रों को कवि के द्वारा सुव्यवस्थित रूप देकर अनेक निजंधरी कथाओं का समावेश किया गया है। 'पृथ्वीराज-रासो' का नायक भी अन्य विकसनशील महाकाव्यों के नायकों की भांति कालान्तर में निजंधरी व्यक्तित्व बन गया और उसके जीवन के साथ अनेक प्राकृत, अतिप्राकृत गाथाओं को सम्बद्ध कर दिया गया है। 'रासो' ग्रन्थ का प्रमुख कवि चन्दवरदाई है किन्तु चारण परम्परा में लिखा जाने के कारण इस काव्य में अनेक परिवर्तन होते रहे। यही कारण है कि 'रासो' के बृहत्तर रूपान्तर में अनेक ऐसे कथानकों का समावेश है, जो इतिहास के साक्ष्य से पृथ्वीराज-परवर्ती हैं।[2] डा० गियर्सन[3] और चिन्तामणि विनायक वैद्य[4] रासो को 'महाभारत' के समान ही विकसनशील काव्य मानते हैं।

---

१ दे० हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २४०-२४४

२ दे० हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २४६

३ "The authenticity of the work, as we have it now, has of late years been seriously doubted, and the truth probably if that like the Sanskrit Mahabbharata the text is so encumbered by spurious additions that it is impossible to separate the original from its accretions"
—*Imperial Gazetteer of India, Sir G Grierson,*
Vol II, p 427

४. 'हमारे मत से कई महत्वपूर्ण बातों में, विशेषतया मौलिकता और प्राचीनता के सम्बन्ध में, रासो का 'महाभारत' से बहुत कुछ सादृश्य है। हमारी समझ में इस महाकाव्य का मूल भाग प्रामाणिक, मूल लेखक की कृति और प्राचीन है, वर्तमान उपलब्ध महाभारत व्यास के मूल महाभारत का दुबारा सौति द्वारा परिवर्तित रूप है (पहली बार वैश-

इस आधार पर यह माना जा सकता है कि सम्भवतः 'रासो' के रचयिता के मन में 'महाभारत' के अनुरूप काव्य रचना की भावना विद्यमान रही हो। 'महाभारत' के कथानक का प्रत्यक्ष प्रभाव तो 'रासो' पर नहीं है किन्तु वस्तु संयोजन, वस्तु व्यापार वर्णन की दृष्टि से 'पृथ्वीराजरासो' पर 'महाभारत' का प्रभाव तो है ही।[1] इसके अतिरिक्त राजनीति-शास्त्र, योग-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, और अध्यात्म-विद्या का शास्त्रीय वर्णन भी 'महाभारत' के ढंग से हुआ है।[2] 'महाभारत' के समान ही वंश-वर्णन और प्राचीन ज्ञान सम्बन्धी विषयों का भंडार 'पृथ्वीराज रासो' को माना जा सकता है। रासो-कार ने 'महाभारत' की ही भांति अपने ग्रन्थ के लिए प्रशस्ति वचन कहा है।

> ब्रह्मन् वेद रहस्यं च यच्चान्यत स्थापितं मया।
> सांगोपनिषदां चैव वेदाना विस्तर क्रिया ॥[3]
>
> × × ×
>
> उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं।
> षट् भाषा पुराणं च कुरानं कथित मया ॥
> काव्य समुद्र कवि चन्द कृत मुगति समप्पन ग्यान।
> राजनीति बोहित सुफल पार उतारन यान ॥[4]

'महाभारत' के प्रभाव को युद्ध-वर्णन के रूप में स्पष्टतः देखा जा सकता है। 'महाभारत' में व्यूह-वर्णन सर्वाधिक है। सूची व्यूह,[5] गरुड़ व्यूह,[6] गरुड़ और अर्ध-चंद्राकार व्यूह,[7] चक्रव्यूह,[8] आदि अनेक व्यूहों का निर्माण 'महाभारत' की विशेषता है। रासोकार के व्यूह वर्णन की शैली 'महाभारत' से प्रभावित है।[9] सेनापति और अन्य सहायक वीरों की युद्ध स्थिति 'महाभारत' के व्यूह-वर्णन के समान ही है।

स्पायन ने मूल महाभारत को बढ़ाया था) उसी तरह मूलरासो चन्द ने रचा, फिर उसके पुत्र ने उसे कुछ बढ़ा दिया और सोलहवीं सदी के लगभग किसी अज्ञात कवि ने उसमें अपनी रचना भी मिला दी है।"
—हिन्दूभारत का उत्कर्ष याराजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास, सी० वी वैद्य, काशी, स० १९८६

१. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २९३
२. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २९४
३. म० आदि० १।६२
४. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ० १८
५. म० भीष्म० ५०।१
६. म० भीष्म० अध्याय ५६
७. म० भीष्म० अध्याय ६८
८. म० द्रोण० अध्याय ३३
९. चन्दवरदाई और उनका काव्य, पृ० ९२

'महाभारत' के गरुड-व्यूह वर्णन और 'पृथ्वीराज रासो' के गिद्ध व्यूह वर्णन मे पर्याप्त समानता है। दोनो व्यूह वर्णनो को देखकर रासोकार के 'महाभारत' के युद्ध वर्णन शैली का व्यापक ज्ञान स्पष्ट होता है।[1]

पंच पाण्डवरास (शाली भद्र सूर्य) १५ वीं शती

रासो काव्य की परम्परा मे 'महाभारत' के कथानक से प्रत्यक्ष प्रभावित पच-पाण्डवरास' के विषय मे प्रकाशित गुर्जर रासावली से परिचय प्राप्त होता है। अन्य विद्वानो ने भी इस कृति पर प्रकाश डाला है।[2] प्रस्तुत रास मे पाचो पाण्डवो के चरित्र के रूप मे सम्पूर्ण महाभारत का सार है। समस्त कथा 'महाभारत' के अनुरूप तो है किन्तु कवि ने अनेक स्थलो पर प्रमुख पात्रो को जैन-धर्म के अनुसार परिवर्तित किया है। सामान्यत जैन-धर्म से प्रभावित काव्यो मे 'महाभारत' के हिंसात्मक स्थलो को या तो छोड दिया या परिवर्तित कर दिया गया है। किन्तु इस ग्रन्थ मे राधावेध

---

१ गारुड च महाव्यूह चक्रे शान्तनवस्तदा।
पुत्राणा ते जयाकाक्षी भीष्म कुरुपितामह ॥
गरुडस्य स्वय तुण्डे पिता देवव्रतस्तव।
चक्षुषी चभरद्वाज कृतवर्मा च सात्वत ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षं मास्ता यशस्विनौ।
त्रैगर्तस्य कैकेयैर्वाटधानैश्च सयुगे ॥
भूरिश्रवा शल शल्यो भगदत्तश्च मारिष।
मद्रका सिन्धु सौवीरास्तथा पाचनदाश्च ये ॥
जयद्रथेन सहिता ग्रीवाया सनिवेशिता।
पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदर्यै सानुगैर्वृत ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यो काम्बोजाश्च शकै सह।
पुच्छमासन् महाराज शूरसेनाश्च सर्वश ॥ म० भीष्म० ५६।२-७

× × ×

तब जद्दव कुरभ, राय रावल प्रति वद्धिय।
चामरछत्र रषत्त, गृद्ध व्यूह रचि गद्दिवय।
एक पष बलिभद्र, एक पष जामानिया
चुचुकध पुडीर, सैन समूह सुरतानिया।
पर्गापिड सिंघ आहुटुपत्ति, पु छ रत्ति मारू महन।
वामन अग पृथिराज के, सुमर जुद्ध भत्तो गहन ॥
—पृथ्वीराज रासो, समय ६६, छद १००८

२ आपणा कवियों, श्री के० का० शास्त्री, पृ० २६६

(मत्स्य-वेध) का चित्रण है ।[1] कवि ने सम्पूर्ण 'महाभारत' की कथा को ७९५ छंदों में गाया है,[2] तथा अनेक परिवर्तनों में अपभ्रंश की परिवर्तित परम्परा का उपयोग किया है । नेमिनाथ के प्रसंग में पाण्डवों का उल्लेख सभी जैन काव्यों मे हुआ है ।[3] इस प्रकार 'पंच पाण्डवरास' का कथानक अपभ्रंश की परम्परा में है । अपभ्रंश के काव्य में जिन परिवर्तनों का उल्लेख है प्रस्तुत काव्य मे भी वही परिवर्तन उपलब्ध है । जैन धर्मानुसार परिवर्तित घटनाएंइस प्रकार है .—गगा का शान्तनु की अहेर वृत्ति का विरोध,[4] द्रौपदी के स्वयंवर मे पांचों पाण्डवों के गले मे माला पड़ना,[5] युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में शान्ति जिनेन्द्र की प्रतिमा की स्थापना[6] और पाण्डवों को नेमिनाथ के उपदेशों से निर्वेद होना तथा अन्त में निर्वाण प्राप्ति ।

इस प्रकार आदिकाल की रासो परम्परा मे 'महाभारत' का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । युद्ध-प्रधान ग्रन्थ होने के कारण, और अपभ्रंश के जैन पुराणों की परम्परा के परिचय के कारण, इन ग्रन्थों का 'महाभारत' की युद्ध और विचार सामग्री से प्रभावित हो जाना अत्यन्त स्वभाविक था ।

भक्तिकाल

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है भक्ति आन्दोलन के विकास और उसके स्वरूप निर्माण में 'महाभारत' का प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं है । किन्तु दार्शनिक दृष्टि से 'महाभारत' की विचारधारा का प्रभाव भक्तिकाल के कुछ कवियो पर व्यापक रूप

---

१. लोह पुरुष छइ चक्रि ममंत पंचवाणि आहणइ तुरंत ।
   राधावेधु करी दिखाई तिसन कोई तीण अखा नइ ॥ ठवणि ४ पद्य ८
२. आपणा कवियों, श्री के० का० शास्त्री, पृ० ११७
३. महापुराण उत्तर पुराणम्, भारतीय ज्ञानपीठ काशी संस्करण, पृ० ३८०
   श्लोक ७३-९०
४. आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य, पृ० ११८
५. "Then the reference as to this strange incident is made to Sage, who was there. He narrates the previous births of Draupadi and informs how she staked all her merit for a full determination of realizing five husbands in the next birth."

   —G. O. S. C XIII.; p. 352.
६. "According to the Jain tradition, the Rajsuya ceremony consist in raging a temple dedicated to one of the Tirthankars, where the kings are invited".

   G. O. S. C XIII; p. 354.

में पड़ा है। कथानक की दृष्टि से तो इस काल में किसी प्रबन्ध-काव्य की रचना नहीं हुई किन्तु यत्र-तत्र 'महाभारत' की अन्तर्कथाओं का अनेक कवियों ने दृष्टान्त और उपमा के माध्यम से प्रयोग किया है। 'गरुड पत्र जस मारा' पंक्ति से जायसी के 'महाभारत' ज्ञान का आभास मिलता है। प्रत्यक्ष अध्ययन से न सही, लोकजीवन के आधार पर ही, 'महाभारत' की कथाओं का इस प्रकार का संदर्भ उनके व्यापक प्रभाव को सिद्ध करता है। तुलसीदास के 'रामचरित मानस' पर 'महाभारत' का प्रभाव वक्ता शैली के आधार पर माना जा सकता है। तुलसी की दार्शनिक विचार-धारा और धर्म-विधि की समीक्षा करते हुए अनेक स्थलों पर 'महाभारत' और 'गीता' से तुलना की गई है। इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन तुलसी पर 'गीता' के प्रभाव को स्वीकार करने का पुष्ट प्रमाण है। महाभारतकार[1] ने जिस विशिष्ट अर्थ में राजा को ईश्वर का अंश कहा है उसी रूप में तुलसी ने राजा को ईश अंश माना है।[2] तुलसी का 'रामचरित-मानस' निगमागमपुराणसम्मत है। अतः वह 'महा-भारत' के प्रभाव से किस प्रकार मुक्त रह सकता है। 'गीता' के अधिकांश दार्शनिक विचार तुलसीदास को स्वीकार्य हैं।[3] परब्रह्म[4] परमेश्वर सत्ज्ञान-स्वरूप[5] अनादि,[6] अनन्त,[7] सर्व-व्यापक,[8] निर्गुण और सगुण और गुणों का आश्रय है।[9] उनके जन्म-कर्म दिव्य होते हैं। वह दुष्टों के विनाश और धर्म के संस्थापन के लिए अवतरित होता है।[10] तुलसी ने भी इन सब मान्यताओं का संस्थापन किया है। डा० उदयभानुसिंह ने 'गीता' और 'रामचरितमानस' की सिद्धान्त प्रतिपादन शैली में भी सादृश्य माना है।[11] उन्होंने तुलसी के उत्तमर्ण ग्रंथों में 'गीता' को स्वीकार किया है।[12] इस प्रकार हिन्दी

---

१ म० शान्ति० ६८। ५९

२ साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस अंस भव परम कृपाला। रा० ॥ २८।४

३ तुलसी दर्शन मीमांसा, पृ० ३५५

४ गीता, २।१७

५ गीता, १३।१७

६. गीता, १३।१२

७ गीता, ११।१६

८ गीता, १३।१३

९ गीता १३।१२-१७

१० गीता, ४।७-९

११ तुलसी दर्शन मीमांसा, पृ० ३५८

१२ तुलसी दर्शन मीमांसा, पृ० ३५९

साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसी 'महाभारत' के दर्शन से प्रभावित है। 'सूरसागर' 'श्रीमद्भागवत' से प्रभावित है, किन्तु उसके कतिपय पद्यों में 'महाभारत' वर्णित कथा खण्डों का स्पर्श हुआ है। व्यास जन्म,[1] कृष्ण का दूतत्व[2] द्रौपदी चीर हरण[3] भीष्म प्रतिज्ञा[4] धृतराष्ट्र का वैराग्य और वन गमन[5] आदि महाभारतीय प्रसंगों पर सूरदास ने पद्य रचना की है। 'सूरसागर' में कच-देवयानी का प्रसग विस्तार से वर्णित है।[6] सूरदास के पदों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'महाभारत' के वे ही प्रसंग गृहीत हैं जिनमे भगवान कृष्ण का महत्व प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षतः व्यंजित है। भक्तिकाल के प्रमुख कवियों ने 'महाभारत' के आधार पर स्वतन्त्र काव्य-रचना तो नहीं की, किन्तु प्रसगत उनका प्रभाव विद्यमान है।

उत्तर मध्यकाल

१६ वी शताब्दी मे भक्ति के व्यापक प्रचार और प्रमुख भक्त कवियों के कारण 'महाभारत' के कथानक से प्रभावित ग्रन्थों का सामान्यतः अभाव है। १४ वी शती से १६ वी शती तक विभिन्न भक्ति-सिद्धान्तों के प्रभाव-स्वरूप साहित्य की रचना होती रही। सत्रहवी शती के पूर्वार्ध मे यह परम्परा कुछ शिथिल हुई और काव्य-धारा शृंगार और अलकरण की प्रवृत्ति मे मुखरित हुई। सत्रहवी शती के मध्य 'भुआल' कवि की एक रचना 'अर्जुन गीता' की एक हस्तलिखित प्रति काशीनागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। इस में कथा का अभाव है, और भगवान् कृष्ण के उपदेश को भाषा बद्ध किया गया है।

१८ वी शताब्दी में 'महाभारत' से प्रभावित अनेक काव्य लिखे गये। इनमें सबलसिंह चौहान की 'महाभारत' छत्रसिंह की 'विजय मुक्तावली' कुलपति मिश्र का 'द्रोणपर्व' रामनाथ पंडित का 'नलोपाख्यान' रावोदास का 'पाण्डु चरित्र' आदि रचनाएं उपलब्ध हैं। इस काल की रचनाओं मे 'महाभारत' के भावानुवाद की प्रवृत्ति अधिक है। भाषा लालित्य और काव्य-छटा पर इन रचनाओं मे विशेष ध्यान नहीं दिया गया

---

१. सूरसागर, दूसरा खंड, प्रथम स्कंध, पद २२९
२. सूरसागर, दूसरा खंड, प्रथम स्कन्ध, पद २३८
३. सूरसागर, दूसरा खण्ड, प्रथम स्कन्ध, पद २५४-२५५
४. सूरसागर, दूसरा खण्ड, प्रथम स्कन्ध, पद २७०
५. सूरसागर, दूसरा खण्ड, प्रथम स्कन्ध, पद २८४
६. सुक्र सुतादेवयानी नाम। नवगुन-पूर्न रूप-अभिराम।
सुरगुरु सुत को देख लुभाई। देखैं ताहि पुरुष की नाई।
काल वितीतकितिक जब भयो। गाइ चरावन कों सो गयो।
असुरन मिलि यह कियौ विचार। सुरगुरुसुत कौं डारैं मार॥
—सूरसागर, दूसरा खंड नवमस्कंध, पद ६१७

हैं। एक प्रमुख बात यह अवश्य है कि कथा का विकास करते समय ये कवि मूलग्रन्थ और लोक जीवन के गाथाचक्र का ध्यान रखते हैं। परन्तु उसमें विशेष बुद्धिसम्मत या युगसे प्रभावित परिवर्तन कुछ ही ग्रन्थों में मिलते हैं। महाभारत से प्रभावित इस शताब्दी के काव्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

महाभारत (सबलसिंह चौहान) सं० १७१८-१७८१

चौहान का 'महाभारत' व्यासकृत 'महाभारत' का पद्य बद्ध अनुवाद है।[1] कवि ने कथा विधान की मौलिक चेष्टा नहीं की और न ही इस ग्रन्थ में काव्यत्व की छटा विद्यमान है।[2] 'महाभारत' की कथा सीधी सादी भाषा में कही गई है। किन्तु भगवान् कृष्ण के चरित्र की रक्षा करने में कवि असमर्थ रहा है। वह पाण्डवों की विजय में उनके छल को मुख्य कारण मानता है। यह परिवर्तन ऐसा है जिससे तत्कालीन वातावरण और मनोवृत्ति का आभास हो जाता है। यह तो सर्वविदित है कि रीतिकाल में पौराणिक चरित्रों के प्रति भक्ति कालीन सम्मान की भावना में कुछ शिथिलता आ गई थी। सम्भवतः यह परिवर्तन उसी भावना का परिणाम है।

संग्राम सार द्रोणपर्व (कुलपति मिश्र) सं० १७३७

इस ग्रन्थ की हस्त लिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। इसमें द्रोणपर्व की कथा कही गई है। यह ग्रन्थ न तो अनुवाद है और न स्वतंत्र प्रयास ही है।

कवि ग्रन्थ के प्रारम्भ में द्रोणपर्व से पूर्व युद्ध की स्थिति का संक्षिप्त चित्रण करता है, तदुपरान्त मूल कथा प्रारम्भ होती है।

भीषम सर सज्जा परे, कौरव कुल के तात,
क्षत्रधर्म चत तेज मति, जिन ही विरात विलात।
मगन मगन वरन कीह, ग्रंथ रचन पुनि कीन,
परिच्छेद पहिले कह्यो कुल पति मिश्र नवीन।[3]

मूल कथा के साथ कवि अनेक अन्तवर्ती कथाओं को भी ग्रहण करता हुआ चलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मिश्र जी की रचनाओं में 'द्रोणपर्व' का नाम दिया है।[4] सभा की प्राप्त प्रति में रचनाकाल अज्ञात है, अतः ऊपर शुक्ल जी के समय को ही माना गया है।

पाण्डु चरित्र (राघोदास) १७३९ वि०

इस ग्रन्थ का उल्लेख हस्त लिखित हिन्दी ग्रन्थों के सम्वदश त्रैवार्षिक विवरण

---

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०१
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०१
3 द्रोणपर्व, पृ० ६
4 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२६

के पृ० ३०५ पर हुआ है। इस काव्य में दुर्वासा के शाप से पाण्डवों को बचाने की कथा वर्णित है।

कथा-वर्णन में कवि ने नंददास की 'रास पंचाध्यायी' की शैली अपनाई है। परन्तु आरम्भिक पदों के लुप्त होने के कारण कथा के प्रारम्भ का ज्ञान ठीक प्रकार से नहीं होता।

महाभारत कर्णार्जुनी (ठाकुर कवि) १८ वीं शती पूर्वार्द्ध

'महाभारत' के कर्ण एवं अर्जुन युद्ध के आधार पर रचित ठाकुर कवि की 'महाभारत कर्णार्जुनी' की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में प्राप्त है। इसके रचनाकाल और लिपि काल अज्ञात हैं।[1] कवि ने दोहा और चौपाई में महाभारत की कथा वर्णित की है, जिसका विकास मूलग्रन्थ के आधार पर हुआ है

कथा-प्रवाह और युद्ध-चित्रण सामान्य कोटि का है। दुर्योधन से कर्ण की आत्म प्रशंसा का एक चित्रण द्रष्टव्य है।

करन कहा सुनु कुरपति राऊ
धन्वा पर्स राम गुरु पाऊ
भुजयी तामैं कालीउ चरो,
पँडव भारी नी पण्डव करो ॥[2]

प्रसंग-रूप में कर्ण और परशुराम की कथा का भी संकेत है।[3] 'महाभारत' में कर्ण और कर्ण-पत्नी के विस्तृत वार्तालाप की कथा नहीं; किन्तु 'कर्णाजुनी' में इस युद्ध-पूर्व संवाद की स्वतंत्र योजना है।

नलोपाख्यान (रामनाथ पंडित), १८ वीं शती अनुमानतः

नलोपाख्यान की एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में उपलब्ध है, जो अत्यन्त खंडित और अत्यन्त अस्पष्ट है। कहीं कहीं कुछ पंक्तियां स्पष्ट रूप से पढ़ी जा सकती हैं। उनके अनुसार कथा का विकास 'महाभारत' के अनुरूप है। उसमे विशेष परिवर्तन नहीं है केवल कहीं-कहीं वर्णन में स्थिति का सामयिक परिवर्तन है, जिससे पाठक को ऐसा लगता है कि वह सब कुछ अपने ही वातावरण में देख रहा है।

वनवास के अवसर पर दमयन्ती की व्याकुलता का चित्रण मार्मिक है।

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तीन ठाकुर कवियों की चर्चा की है।
—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४६

२. महाभारत कर्णार्जुनी, पृ० ११

३. महाभारत कर्णार्जुनी, पृ० १६

दीन वचन भाषे तेहि काला, भैमी नल बिनु ग्रहिति बहाला।
प्रीतम तजि हम कहाँ कत गहउ, अति विपक्ष विधि मोपर भयउ।
परि विपत्ति अति बन मह आये, नल से प्रीतम सहम गवाये।
मो सम परम अभागी नाही, अपर कोउ कत हू जग माही।[1]

कथा के अन्त मे देवताओ के आशीर्वाद की योजना भी मूल ग्रन्थ के अनुसार है

जैमिनि पुराण (जगत मणि) १७५४ स०

जगत मणि के 'जैमिनि पुराण' का विवरण हस्त लिखित हिन्दी ग्रन्थो के चौदहवें त्रैमासिक खोज रिपोर्ट मे प्राप्त है। इसम 'महाभारत' की कथा से अश्वमेध यज्ञ की कथा ग्रहण की गई है, किन्तु कथा का विकास मूल ग्रन्थ के आधार पर पौराणिक शैली मे हुआ है।

विजय मुक्तावली (छत्रसिंह) १७५७ स०

छत्रसिंह के आश्रय दाता अमरावती के कोई कल्याणसिंह जी थे।[2] इन्होने 'महाभारत' की कथा को एक स्वतन्त्र प्रबन्ध काव्य के रूप मे प्रस्तुत किया है। इस मे काव्य गुण यथेष्ट मात्रा मे विद्यमान हैं, और कथा विकास मे मौलिकता का आभास भी मिलता है। 'महाभारत' के वीरोचित वर्णनो मे कवि ओज की रक्षा कर पाया है और अनेक स्थलो पर कविता प्राणवन्त है।[3] इनके प्रबन्ध-काव्य के कुछ हस्त-लिखित भाग काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे सुरक्षित है।

पाच पाण्डव चौपाई (लाल वर्धन) १८ वी शती

लालवर्धन द्वारा लिखित 'पाच पाण्डव चौपाई' की एक हस्त लिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे सुरक्षित है। इसकी भाषा राजस्थानी मिश्रित है जिसकी लिपि अधिक सरलता से नही पढी जाती।

इस ग्रन्थ मे पाचो पाण्डवो की कथा को 'महाभारत' के अनुसार वर्णित किया गया है। जहा कहीं स्पष्टता से पढा जाता है वहा से पता चलता है कि कवि की परम्परागत सहानुभूति पाण्डवो के दिव्य चरित्र के प्रति है।

ग्रन्थ मे प्रकृति-चित्रण अत्यन्त मनोरम है, वसन्त का वर्णन द्रष्टव्य है —

उस अवसर परगट भई रितु वसति वन पति।
वृक्ष फूल फलमजरी बहु विध सोभाअति॥
कोइल बोले मधुप सुर गुजै षटपद सूह।
परिमल फूल सुगध जुई सीतल पवन समूह॥[4]

---

१ नलोपाख्यान, पृ० २८
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०२
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०२
४ पांच पाण्डव चौपाई, पृ० ८

विदुर प्रजागर (कृष्ण कवि) सं० १७६२

'विदुर-प्रजागर' कृष्ण कवि की नीति-प्रधान रचना है। जो अभी अप्रकाशित है और काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। 'महाभारत' में विदुर ने अनेक स्थानों पर धृतराष्ट्र तथा पाण्डु-पुत्रों को नीति का उपदेश दिया है। यह ग्रन्थ नीति तत्वों का संकलन माना जा सकता है। कवि ने उद्योग-पर्व के ३३ वें अध्याय से ४० वें अध्याय तक के उपदेश को प्रमुख रूप से लिया है।

राजा का कर लेना:—

जैसे भौंरा फूल को राखत रस के हेत।
ऐसे नृपति प्रजानतें राखि राशि धन लेत।
फूले फूल नु लेइचुनि करै न जरते नास।
दरविलेई हिंसा बिना सो नृप नीति निवास।[1]

ग्रन्थ के प्रारम्भ मे विदुर, धृतराष्ट्र और पाण्डु की जन्म कथा संक्षेप में वर्णित है।

पुनि जा नृप के सुत तीनी भए, मुनि व्यास कृपा करि आपु दए।
धृतराष्ट्र सुपाडु बली मनिये, विदुरो हरि भक्तन मे गुनिये।[2]

पाण्डवों और कौरवों के जन्म का वृतान्त संक्षेप में देकर दोनों दलों के संघर्ष की ओर भी कवि उन्मुख होता है। इस संघर्ष के मध्य विदुर द्वारा नीति की शिक्षा दी जाती है। कुन्ती द्वारा पुत्रों को अन्य स्थान पर ले जाने का कारण कवि दुर्योधन की ईर्ष्या को मानता है।

दुर्योधन कृत ईरषा अधिक अनीति निहारि
नगर छोड़ि सुत लै चली कुन्ती समो विचारि[3]

इसी प्रसंग मे विदुर की नीति की अभिव्यक्ति हुई—

सब नीतिनु की नीति यह राव रंक जो कोई।
सुखी देषि के अनुसरैं अन्त सुखी वह होई।[4]

लाक्षा-गृह-दाह तथा अन्य घटनाओं का भी चित्रण है। कथा का वर्णन सूचनात्मक रूप में हुआ है कवि ने घटनाओं को तीव्र गति से विकास करते हुए मध्य में नीति-तत्वों का वर्णन किया है।

---

१. विदुर प्रजागर, पृ० ४६-५०
२. विदुर प्रजागर, पृ० २
३. विदुर प्रजागर, पृ० ५
४. विदुर प्रजागर, पृ० ५

नल चरित्र (मुकुन्द सिंह)१७९८ स०

यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है। 'महाभारत' के नलोपाख्यान पर आधारित मुकुन्द सिंह ने काव्य की रचना की। इसकी एक अपूर्ण प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में प्राप्त है।

कवि ने काव्य का प्रारम्भ 'श्री गणेशायनम। अथ नल चरित्र लिष्यते' लिख कर किया है। प्राचीन शैली में वंश परिचय और पुन: भवानी की स्तुति के उपरान्त कथा का प्रारम्भ है। यह रचना दोहा-चौपाई में की गई है।

सर्व प्रथम नल का परिचय इस प्रकार है —

निषध नाम एक देश ललामा,
अमरावती सरिस सो ठामा।
वीरसेन तह भूपति राजै,
नीत वन जसुजुत छवि छाजै।
दुई पुत्र सो पाए राजा,
जेठो नल छवि नीति जहाजा।[1]

उक्त परिचय पर 'महाभारत' के उस श्लोक का प्रभाव स्पष्ट सिद्ध है

आसीद्राजा नलो नाम वीरसेन सुतो बली
उपपन्नो गुणैरिष्टे रूपवानश्व कोविद।[2]

'महाभारत' में नल के गुणों का परिचय 'अश्व कोविद' कहकर दिया है। नल चरित्र में 'नीतिवन', नीति के जहाज आदि कहकर चित्रित किया है।

नल का परिचय देने के उपरान्त कवि राजा भीम का परिचय देता है। दमन ऋषि द्वारा वरदान प्राप्ति और सन्तान उत्पत्ति का प्रसंग मूलग्रन्थ के अनुरूप है। कथा सामान्य गति से आगे चलती है। कवि कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं करता, केवल अत्यन्त सीधे रूप में नल की कथा को कहता चलता है। यद्यपि कहीं-कहीं मूल ग्रन्थ के रूप में क्रम विपर्यय भी है।

वन के संकटों का चित्रण मार्मिक रूप में हो पाया है। नल दमयन्ती को छोड़ते अवश्य हैं पर वे अपने अभाव में स्थिति की कल्पना में प्रकम्पित हो जाते हैं।

वन वन फिरहिं दुख अति पाए,
क्षुधा पियासन्हि अतिहि सताए।
कहा करो एहि औसर माहीं,
कछु उपाय अब टहरत नाहीं।

---

1 नल चरित्र, पृ० ३
२. म० वन० ५३।१

वाम विधाता जाहि तहि सकल रोग तहि होय।
भार होए तहि प्रान निज कहै भूप एह रोय।।[1]

कवि ने कथा-विकास मे घटनाओं का यथावत् चित्रण किया है। 'महाभारत' मे भावों का चित्रण कम और कथा-वर्णन अधिक है, किन्तु इस काव्य में कथा-चित्रण के साथ कवि भावना में गोते लगाता है। स्थिति का मन पर पड़ने वाला प्रभाव अत्यन्त भावुकता से व्यक्त होता है। कवि चित्र को भावनामय बनाकर अधिक संवेद्य और प्रभावशाली बनाता है।

१९ वी शताब्दी में 'महाभारत' के कथानकों पर काव्य रचना की प्रवृत्ति १८ वीं शती से अधिक व्यापक रूप मे मिलती है। वैसे तो 'महाभारत' के विभिन्न कथा-खण्डों पर आख्यान काव्यों का प्रणयन हुआ किन्तु इस काल का विशेष आकर्षण नलोपाख्यान और अभिमन्यु का कथानक रहा। इस काल की सामान्य प्रवृत्ति भी 'महाभारत' के कथानक को यथावत् ग्रहण करना ही रही है। एक विशेषता पूर्ववर्ती शती से अधिक यह रही कि उस शती मे युद्ध चित्रों में पर्याप्त सजीवता नहीं थी, किन्तु इस युग में, युद्ध चित्रण ओजस्वी और सजीव हुए हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज पत्रिका के अनुसार अनेक ऐसे काव्य ग्रन्थ (जिनकी हस्त लिखित प्रतियां भी लेखक ने सभा में देखी है) जिनके लेखक के नाम के अतिरिक्त रचनाकाल और लिपि काल अज्ञात हैं। भाषा और छन्द की दृष्टि से उन सभी रचनाओं को १९ वीं शती के मध्य के आस पास माना गया है। इन में ईश्वरदास कृत 'सत्यवती' घिस्यावनदास कृत 'कृष्ण चरित' गोपालदास कृत 'कृष्ण चरित' गंगाराम कृत 'महाभारत' (शल्य और गदापर्व) हैं। सं० १८०५ में लिखित सरजूरात पंडित के 'जैमिनी पुराण भाषा' नामक ग्रन्थ का उल्लेख शुक्ल जी के इतिहास में हुआ है।[2] इस पुराण में कवि ने 'रामायण' और 'महाभारत' की कथाएँ अपने अनुसार वर्णित की हैं। 'महाभारत' के आधार पर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का ही वर्णन मिलता है। इस प्रकार के सम्मिलित कथा ग्रन्थों की परम्परा आगे चल कर शिथिल हो गई।

ऊपर दिये गये अज्ञात रचनाकाल वाले काव्यों के समान ही कुछ काव्य ऐसे है जिनका लिपिकाल ज्ञात है, किन्तु रचना काल के विषय में स्पष्ट ज्ञान नहीं। 'अवधि' नामक कवि का 'महाभारत विराटपर्व' और 'सभापर्व' (लिपिकाल सं० १८६४-८४) 'चक्रव्यूह' (लिपिकाल १९ वीं शती प्रारम्भ), देवदत्त का 'द्रोणपर्व भाषा' सं० १८१८ जनदयाल का 'धर्म संवाद' सं० १८३३, केवलकृष्ण की 'दमयन्ती नल की कथा' सं० १९३३, सेवासिंह का 'नल चरित' सं० १९३४, 'अभिमन्यु-कथा' और अभिमन्यु-वध'

---

१. नल चरित्र, पृ० १८१
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३३

१६ वी शती उत्तरार्ध, आदि अनेक रचनाएं हैं, इनका संक्षिप्त परिचय लिपिकाल के क्रम से दिया जा रहा है।

महाभारत (शल्य और गदापर्व) १६ वी शती पूर्वार्ध

श्री गंगाराम 'गंग' कृत महाभारत शल्यपर्व एव गदापर्व की हस्तलिखित एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे सुरक्षित है। इसमें शल्य और गदापर्व की कथा का संक्षिप्त वर्णन है। इसके प्रारम्भिक पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं। कथा का प्रारम्भ 'महाभारत' के अनुसार है। दुर्योधन चिन्ता करता है कि अब कर्ण की मृत्यु के उपरान्त कौन सेनापति होगा।

रन समर्थ देख उनहि कोई।
अब सेनापति कौनहि होई ॥[1]

यह सुनकर अश्वत्थामा शल्य का प्रस्ताव रखते हैं।

राजहि बहुरि कहे अस्थामा,
सुनहु नृपति करवउ तुम कामा।
शल्य महानृप बल कइ रासी।
विद्या निपुन शस्त्र अभ्यासी।
तेहिवर कहो सिखापन सत्य महाबल एक।
सौंपी सेन आदर सो करहु जाय अभिषेक।[2]

फलस्वरूप शल्य सेनापति बने। इसके आगे का वर्णन कवि ने पूर्णत 'महाभारत' के आधार पर किया है। कवि कथा के स्वाभाविक विकास के मध्य युद्ध का भयकर चित्रण सफलता से कर पाया है। 'महाभारत' के वर्णन को यथावत चित्रित करने का प्रयास किया है। कथा मे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही, समस्त कथा को आस्था के साथ स्वीकार किया गया है।

महाभारत विराटपर्व तथा सभापर्व १६ वीं शती प्रारम्भ

कवि अवधि की यह हस्तलिखितप्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में है। इन्होंने विराटपर्व तथा सभापर्व की कथा को काव्य-बद्ध किया है। प्रति खंडित है, प्रारम्भ के पन्ने अनुपलब्ध हैं। कथा कहने की प्रणाली 'महाभारत' की ही है, वैशम्पायन उवाच से कथा प्रारम्भ होती है।

नृप विराट के निकटहि गयो, देखत राजा विस्मित भयो।
ताहि देख बोल्यो रघुराउ, कौह याको पूछो जाऊ॥

१ महाभारत, (शल्य और गदापर्व) पृ० ३
२ महाभारत, (शल्य और गदापर्व) पृ० ४

मिथ के से कंध जाके जुवा सुन्दर रूप है,
न्द्रि के गधर्व राजा कियो यो कोउ रूप है।
नहीं देखो पुरुष ऐसो तेज को जनु भानु है,
परत नहीं विचार चित में किधों कोउ अस्थानु है।[1]

भीम के प्रवेश करने पर राजा विराट ने उक्त अभिव्यक्ति की। ऐसे ही सबके आने पर कवि उपमाओं से युक्त वर्णन करता चलता है।

कथा का विकास 'महाभारत' के अनुसार है और चरित्र-चित्रण भी इसी शैली में हुआ है।

चक्रव्यूह १९ वीं शताब्दी प्रारम्भ

काशीनागरीप्रचारिणी सभा में यह ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में उपलब्ध है। इसमें होली, पहेली नखशिख वर्णन आदि करने के उपरान्त कवि ने 'महाभारत' के आधार पर अभिमन्यु-संग्राम के प्रसंग को काव्य-बद्ध किया है। युद्ध का एक चित्र द्रष्टव्य है।

लगे बान कुरुपति सुत जाई, छोड़े रन चले दूरि लजाई।
तजे बान पारथ सुत अभी, घाये कीयो दसानन छभी॥
एक वीर के बान चलाए, कोटिन के तन घाव जनाए।
जैसे जल वर्षे जलद तिमि बरषत हैं बान।
मान लाख तुरंगदल जूझि परे मैदान।[2]

इस तरह अभिमन्यु के शौर्य की व्यंजना हो पाई है॥

द्रोणपर्व भाषा (देव दत्त) १८१८ वि०

कविवर देवदत्त द्वारा लिखित यह ग्रन्थ द्रोणपर्व का भाषा में अनुवाद है। अनुवाद शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि सम्पूर्ण कथा को यथावत कविता में चित्रित किया गया है।[3]

धर्म संवाद (जन दयाल) १८३३ वि०

इसका विवरण ह० हि० ग्रं० की त्रयोदश त्रैवार्षिक रिपोर्ट पृ० ३२२ पर है। इस ग्रन्थ का विषय 'महाभारत' से ही गृहीत है। इसमें लेखक ने धर्म द्वारा युधिष्ठिर

---

१. महाभारत, विराटपर्व तथा सभापर्व पृ० ३-४
२. चक्रव्यूह, पृ० ४६
३. इसका उल्लेख सन् १९०१ की हस्तलिखित खोज विवरण में पृ० ५६ पर हुआ है। परन्तु यह प्रति उपलब्ध नहीं हो पाई, अतएव उक्त विवरण खोज पत्रिका से उधृत है।

की परीक्षा का वर्णन किया है। धर्म चाडाल बनकर युधिष्ठिर की परीक्षा लेते हैं। कवि ने प्रारम्भ मे ही कथा का सम्बध हस्तिनापुर से जोड दिया है।

गुरु गोविंद की आज्ञा पाऊ, तो कथा पुरातन कहि समझाऊ।
राजा धरम हस्तिनापुर गाऊ, उत्तम कथा भई तिहि ठाऊ॥

और अत इस प्रकार किया है।

पिता पुत्र की सुनि कथा मुदित होय सब कोय,
जन दयाल सहजै मिलै, चारि पदारथ सोय।

कवि कथा की फल-श्रुति मे महाभारत' के अनुरूप ही विश्वास करता है।

कृष्णायन (श्री शिवदास जी) १८४५ वि०

शिवदास जी ने 'कृष्णायन' मे कथा का सकलन 'श्रीमद्भागवत और 'महाभारत' से किया है। कृष्ण के जीवन-चरित-गान मे प्रसग रूप से पाण्डवो की चर्चा और 'महाभारत' के कुछ प्रसग आये है। सुभद्रा हरण का प्रसग 'महाभारत' से गृहीत है।[1]

द्वारका काड के बाद कथा हस्तिनापुर की ओर चलती है। हस्तिनापुर की हलचल देखकर ऊधौ' सहित कृष्ण हस्तिनापुर जाते हैं।

हस्तनापुर हलचल सब साजा। बलिजहु बसी सबरे राजा।
ऊधौ सहित चले सब देखा। नृत धृतराष्ट्र के जात बिसेखा।
दुरयोधन भीषम सुन पाए, पूजे बलि तब हर्ष सुहाए।[2]

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे धनधान्य को आया देखकर, और शिशुपाल-वध को देखकर, शाल्व और दुर्योधन दुरभिसधि करते हैं। परिणामस्वरूप द्यूत के समय कृष्ण को शाल्व युद्ध मे उलझा लेता है और वे पाण्डवो की सहायतार्थ नही आ पाते। कवि ने अत्यन्त कौशल से इन दोनो घटनाओ को जोड कर चित्रित किया है।

धर्मगीता (जगन्नाथ दास) १८७२ वि०

इस पुस्तक का विवरण ह० हि० ग्र० चतुर्दश त्रैवार्षिक विवरण पृ० ३३६ से प्राप्त हुआ। इसमे युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश वर्णित है। 'महाभारत' मे अनेक स्थान पर धर्म युधिष्ठिर का अनेक रूप मे उपदेश देते हैं। इसमे उनका सार दिया हुआ है। ग्रन्थ गद्य पद्य दानो मे है।

पाण्डव पुराण (लाला बुलाकी दास) १८७४ वि०

इस ग्रन्थ का उल्लेख ह० हि० ग्र० १५ वा मे विवरण पृ० १०३ पर हुआ है। इस समय तक भी अपभ्रश के पुराण काव्यो की परम्परा मे 'महाभारत' की कथा

---

१ कृष्णायन, पृ० १२४
२ कृष्णायन पृ० १२६

को जैनमत के आलोक में वर्णित करने की प्रणाली विद्यमान रही। यह ग्रन्थ इसी का एक अंग है।

पाण्डव यशेन्दु चंद्रिका (स्वरूपदास) १८९२ वि०

इस ग्रन्थका उल्लेख हं० हि० ग्रंथों की १८ वीं मे रिपोर्ट के पृष्ठ ९२५ पर हुआ है। इसमें कवि ने 'महाभारत' के आधार पर कौरव और पाण्डवों की कथा का १६ मयूखों (अध्यायों) में वर्णन किया है। आदि के प्रथम और द्वितीय अध्याय में छन्द रचना के नियमों का उल्लेख है।

इसमें 'महाभारत' के सभी पर्वों को संक्षिप्त किया गया है। कथा का प्रारम्भ व्यास की उक्ति से होता है और वंश-परम्परा के वर्णन के उपरान्त मूल कथा प्रारम्भ होती है। सामान्यतः कथा का विकास 'महाभारत' के अनुसार ही हुआ है।

नल-दमयन्ती चरित्र-नलपुराण (सेवाराम) १९९३ वि०

यह रचना पूर्ण नहीं है। 'गणेश-खंड' के अनुसार कृष्ण-युधिष्ठिर-संवाद के आधार पर ५ अध्याय हैं।

'नल-दमयन्ती-चरित्र' अथवा 'नल-पुराण' में 'महाभारत' के उपाख्यान का वर्णन है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है, और इसकी एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है।

'महाभारत' के आधार पर कवि ने कथा का विकास स्वतन्त्र रूप में किया है। दमयन्ती और नल के जन्मादि के परिचय को न देते हुए, हंस की चतुरता का वर्णन करते हुए कथा प्रारम्भ की गई है।

हंस एक अति चतुर सयानो, मानसरोवर तें जु उड़ानो।
पीत वरन कंचन सो लसै श्रुति सुप्रीत वानी उर वसै।[1]

दमयन्ती का सौन्दर्य-चित्रण भी अधिक प्रभाव शाली है।

चित्रासंग सहेली सोहै, सुर नर देवन के मन मोहे।
वैठी उभै परसपर राजै अंग-अंग आभूषण साजै।[2]

'महाभारत' में हंस नल से मिलकर संदेश-वाहक के रूप में दमयन्ती के पास जाता है। किन्तु नलपुराण में उसका प्रथम मिलन दमयन्ती से होता है।[3] इसके अतिरिक्त अनेक छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ कवि ने सुन्दर प्रेम काव्य की रचना की है।

दमयंती के स्वयंवर की सूचना लेकर नारद का देवों के पास गमन और देवताओं का नल को दूत बनाने का प्रसंग, कवि ने मूलग्रन्थ के आधार पर वर्णित किया है। इन्द्र नल के पास जाकर दूतत्व के लिए कहते हैं—

---

१. नलपुराण, पृ० १
२. नलपुराण, पृ० २
३. म० वन० ५३।२०-२१, नलपुराण, पृ० ३

अहो नृपति नल नाम सुजाना, मम कारज कीजै सुनि दाना ।
दमयंती के निकट पुनि जइये, निज हमको नीके वर अइये ।
कहो पराक्रम सकल हमारो, मन वांछित फल करो तिहारो ।[1]

इन्द्र की उक्ति के बाद नल बिना किसी भावनात्मक द्वन्द्व के जाने की समस्या समक्ष रखते हैं। कवि का ध्यान कथा-वाचन की ओर अधिक रहा है। उसने पात्रो के भावनात्मक द्वन्द्व की उपेक्षा की है जिससे काव्य की संवेदनात्मकता उभर नहीं सकी। दमयन्ती के विरह मे कहीं-कही पर भावना का आवेश उभर पाया है।

हो कैसे नरवर मैं रहो कैसे सुख दरसन बिन लहो।
तुम मैं भजे तजे सब देवा, बालापन मे कीन्ही सेवा।
अब मो को क्यो तजत हो स्वामी, तीन लोक मे को है ठामी।[2]

काव्य की रचना दोहे चौपाई में हुई है। चरित्र-चित्रण सामान्य है। प्रेम-काव्य मे जिस जीवन-दृष्टि की अपेक्षा की जा सकती थी, वह इसमे नही है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि केवल कथा कहना चाहता है, उसका कोइ गम्भीर उद्देश्य नही है।

नल दमयन्ती कथा (अगद कवि) १९११ वि०

इसमे विविध छदो मे नल की कथा कही गई है। भट्ट अगदराय के कुछ कवित्त भी पीछे सग्रहीत हैं। रचना अगद की है। कुछ पद आलम के भी जान पडते हैं।

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखितप्रतिलिपि काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे प्राप्त हुई है। ग्रन्थ पूर्ण है।

ग्रन्थ का प्रारम्भ गणेश और दुर्गा की स्तुति से होता है। कवि 'महाभारत' के अनुसार नलोपाख्यान के प्रस्तावक वृहदश्व मुनि के आगमन से कथा प्रस्तावित करता है।

एक समै वृहदश्वरिपि धर्म सुवन के तीर।
आय गए अद्वैत बन सुमति समुद्र गभीर।[3]

धर्म राज के प्रश्न के उत्तर मे कहते हैं —

बहुत दुख बीतो नल ऊपर, एतो नाहि सुनो किसहू पर।
सो कहिबे मैं आवत नाही, जो नल राजसहो जग माही।[4]

---

१ नलपुराण, पृ० ७
२ नलपुराण, पृ० १९
३ नल दमयन्ती की कथा, पृ० २
४ नल दमयन्ती की कथा, पृ० ३

कवि की प्रेरणा का स्रोत राजा नल की सहिष्णुता और कर्तव्य-पालन की अद्भुत शक्ति है। सम्भवतः मध्य काल में जितना लोक प्रिय उपाख्यान नल का हुआ है, उतना अन्य कोई नही। 'महाभारत' और प्रस्तुत ग्रन्थ के नलोपाख्यान की प्रस्तावना की प्रेरणा समान है। कवि ने कथा-विकास, चारित्रिक उत्कर्ष, आपत्ति मे सहनशीलता की भावना का चित्रण 'महाभारत' के अनुरूप किया है। प्रेमोद्भावना के उपरान्त दमयन्ती की दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है।

उनव्याकुल अति ही भई हस वचन को पाइ।
दमयन्ती नल विरह सों दिन दिन सूखति जाइ।
सखिनु मध्य बैठी हती देखो उदित मयंक।
विरह ज्वाल धुरसीक है हाकति नल की अंक ॥[1]

कलि के प्रवेश की घटना का चित्रण 'महाभारत' के अनुरूप है।[2] कथा में परिवर्तन न करके उसे यथावत लिया है, परन्तु यह सामान्य कोटि का काव्य है।

पाण्डव-सत (विसनदास) १६१२ वि०

इस पुस्तक का विवरण हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का सत्रहवां त्रैवार्षिक विवरण पृ० ३८५ पर मिलता है। इसमें दुर्वासा मुनि के पाण्डव सम्बन्धी कथानक को लिया गया है।

दुर्वासा ऋषि एक समय कौरवों के पास आए, दुर्योधन ने उनको प्रसन्न करके पाण्डवों का नाश करने का आशीर्वाद मांगा। आशीर्वाद तो मुनि ने नही दिया पर पाण्डवों को आपत्ति के जाल में लाने का वचन दे दिया।

तदुपरान्त ऋषि युधिष्ठिर के पास वन में गये और वहां पृथ्वी से सद्यः उगा हुआ तथा पका हुआ आम खाने के लिये कहा। पाण्डव चिन्तित हुए, पर बाद में अपने अपने सत्य से मुनि के लाए हुए फलों को उन्ही के अनुसार उगाकर पकाकर भोजन कराया। मुनि आशीर्वाद देकर चले गये। पाण्डवों के सत्य के चमत्कार के कारण पुस्तक का नाम 'पाण्डव-सत' रखा है।

'महाभारत' में यह प्रसंग इस प्रकार है कि दुर्योधन पाण्डव नाश का वरदान मांग कर केवल उनके पास भेज देता है और द्रौपदी के पुकारने से कृष्ण आकर नदी के तट पर दुर्वासा को तुष्ट कर देते है। अन्ततः दुर्वासा प्रसन्न होते है और दुर्योधन की इच्छा पूर्ण नही होती।

---

१. नल दमयन्ती की कथा, पृ० १६
२. नल दमयन्ती की कथा, पृ० ४६

बभ्रूवाहन की कथा[1] (जन प्रान नाथ) १९२१ वि०

'बभ्रूवाहन की कथा' अप्रकाशित काव्य है। इसकी एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। काव्य का प्रारम्भ भवानी की स्तुति से होता है।

जगतमातु पितु संभु भवानी,
करहिं कृपा सुत सेवक जानी।
जसु तनै जग विदित गनेसा,
मोह अपिलनाम मन हृदि नेसा।[2]

कवि ने दोहा चौपाई में अर्जुन और बभ्रूवाहन के युद्ध का चित्रण किया है। शैली वर्णनात्मक है।

सुनहु परिछिता भूप कुमारा, हरि चरित्र अति अगम अपारा।
वेन भारल जोरि जुग पानी, कहा पारथ सों मंजुल बानी।[3]

इस प्रकार कवि ने कहीं कहीं कथा को संवादात्मक रूप में वर्णित किया है। युद्ध के अनेक दृश्य अत्यंत सजीव बन पड़े हैं।

बानन तन चरनी भयो करनि बरनी न जाई।
बरसत बाना उनी अती भटचकोर हरषाई॥[4]

× × ×

पारथनंदन परम उदारा वदनघाय बहि श्रोनित धारा।
पारथनंदन गदा सभारा गदा जुधाव सेस सरदारा।[5]

इसमें कवि ने 'महाभारत' की कथा का संक्षेप मात्र किया है और कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया। कथा का अन्त अत्यन्त उल्लसित वातावरण में किया गया है

बभ्रूवाहन की कथा (राम प्रसाद) १९२५ वि०

इस ग्रन्थ का विवरण ह० हि० ग्र० त्रयोदश त्रैवार्षिक विवरण पृ० ५६६ पर प्राप्त हुआ है। इस में अर्जुन-पुत्र बभ्रूवाहन की कथा का वर्णन है। अश्वमेधयज्ञ के प्रसंग में बभ्रूवाहन ने अर्जुन का सिर काट डाला, फिर नाग लोक से मणि लाकर अर्जुन को जीवित किया। काव्य का अन्त इस प्रकार किया गया है।

प्रद्युम्न महि। जियत सब बीरा, वर्षे सब प्रति अमृत नीरा।
जेकर जाइ भय रन मरना सब जीव गर्हहिं टेकहिं हरि चरना।

दमयन्ती नल की कथा (केवल कृष्ण) लिपि काल सं० १९३३

इस प्रति का विवरण हस्तलिखित हिंदी ग्रन्थों के सत्रहवें त्रैवार्षिक विवरण के पृष्ठ २५१ पर विद्यमान है। इसमें नलदमयन्ती की प्रसिद्ध कथा का गान किया है।

---

१ खोज रिपोर्ट १९१२, पृ० १६१
२ बभ्रूवाहन की कथा, पृ० १
३ बभ्रूवाहन की कथा, पृ० ५
४ बभ्रूवाहन की कथा, पृ० ६
५ बभ्रूवाहन की कथा, पृ० १६

नल चरित (सेवा सिंह) लिपिकाल १९३४ वि०

सेवा सिंह के 'नल चरित्र' का विवरण हि० ह० ग्रं० १८ वी त्रैवार्षिक रिपोर्ट से उपलब्ध हुआ। इसमें नल दमयन्ती का चरित्र गाया गया है।

कथा का विकास 'महाभारत' के अनुसार ही हुआ है। मुनि वृहदश्व के आगमन से कथा प्रारम्भ होती है।

एक समै वृहदश्व ऋषि धर्म सुवन के तीर।
आय गये अद्वैत वन सुमति सरल गंभीर।[1]

वृहदश्व नलोपाख्यान सुनाते हैं और युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हैं। वनवास के समय नल दमयन्ती की वार्ता का एक चित्र देखिए :—

दमयन्ती ये पथिक जन कुण्डन पुर को जात।
यह मारग अति सरल है कुछ न हो उतपात।[2]

दमयन्ती नल की बात समझ जाती है :—

निषधनाथ की बात सुनि भीमसुता अकुलाइ।
जानि गई पति चातुरी कहन लगी समझाई।[3]

नल नारी की महत्ता को स्वीकार करते हैं :—

भीमतनूजा सत्य तुम कही बात निरधारि।
दुष सुप की संगिनी मुनि येक विश्वसों नारि।[4]

इस रूप में कवि ने नारी की शक्ति का गुण गान किया है।

अभिमन्यु-कथा—अभिमन्यु-वध

इन दोनों ग्रन्थों का उल्लेख ह० हि० ग्रं० १८ वां त्रै० विवरण के पृ० ९३६ पर हुआ है। दोनों ग्रन्थों की प्रतियां काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हैं।

अभिमन्यु-कथा की भाषा राजस्थानी है और अभिमन्यु-वध की भाषा अवधी है। अभिमन्यु-वध में संग्राम का प्रारम्भ द्रष्टव्य है :

वरषत वान वृन्द अधिकाई। मघा नक्षत्र मनहुं करि लाई।
सुभट सुशर्मा टरै न टारे। जिमि हरि भजन विनास दुखारे।
वाजे सूरवीर दहु वोरा। हा हा कार मचावत घोरा।
इतही उत जैद्रथ दोहाई। महा मारु संग्राम मचाई।[5]

---

१. नल चरित, पृ० १
२. नल चरित, पृ० ७
३. नल चरित, पृ० ७
४. नल चरित, पृ० ११
५. अभिमन्यु वध पृ० ४

महाभारत की कथा का प्रभाव

सम्पूर्ण कथा प्रभावित काव्य
घटना प्रधान काव्य
चरित्र प्रधान काव्य

चतुर्थ अध्याय

महाभारत की कथा का प्रभाव

महाभारत' प्रभावित आधुनिक प्रबन्ध काव्यों के कथा-सग्रहण के आधार पर तीन वर्ग किए जा सकते हैं।

प्रथम वर्ग —सम्पूर्ण कथा का सार सक्षेप करने वाले प्रबन्ध काव्य। यथा—'कृष्णायन', 'जयभारत', अगराज', आदि।

द्वितीय वर्ग —मुख्य घटना को लेकर चलने वाले काव्य जिनमे प्रसग रूप मे अन्य कथा भी समाविष्ट कर ली गई है। यथा—'रश्मिरथी' 'कुरुक्षेत्र' 'कौन्तेयकथा'

तृतीय वर्ग '—किसी पात्र विशेष के जीवन-चरित पर आधारित काव्य। यथा 'पाचाली', 'एकलव्य', 'हिडिम्बा' आदि।

इन सभी काव्यों मे विशेष द्रष्टव्य यह है कि कवि का वैयक्तिक दृष्टिकोण काव्य प्रणयन की मूल प्रेरणा रहा है। अत हमने मुख्य प्रबन्ध काव्यों की विवेचना पृथक रूप मे की है। और लघु वृत्तो पर आधारित काव्यो की समीक्षा सम्मिलित रूप मे प्रस्तुत करके यह बताने की चेष्टा की है, कि किस सामाजिक अथवा सामयिक विचार से प्रभावित होकर कवि ने 'महाभारत' की मूल कथा मे परिवर्तन किया है और उन परिवर्तन की उपलब्धि क्या है?

सामान्यत 'महाभारत' के उन्ही आख्यानो और कथाशो को ग्रहण किया है जिनके माध्यम से कवि अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति कर सके। अत कवि के वैयक्तिक दृष्टिकोण को समझते हुए ही समीक्षा की गई है। जब हम महाभारतीय कथा पर आधारित प्रबन्ध काव्यो का विश्लेषण करते हैं, तो स्पष्ट होता है, कि आज के साहित्यिक विषयो मे आमूल परिवर्तन हुआ है। साहित्य के सभी अगो पर सामाजिक समस्याओ का प्रभाव अत्यन्त गम्भीर और व्यापक रूप मे पडा है। भारतीय जीवन मे सास्कृतिक उत्थान एव नवजागरण के सभी सामाजिक और राजनैतिक उपादानो ने प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से आधुनिक काव्य को प्रभावित किया है, इसमे सन्देह नही। नवचेतना और नवजागरण के स्वाभाविक परिणामस्वरूप भारतीय जीवन की मान्यताओ मे परिवर्तन आया। शताब्दियो से एक परम्परावादी दृष्टि से चरित्रांकन की नीतिया बदलने लगी। इस युग मे एक दूसरे रूप से ही अतीत के निरीक्षण-परीक्षण की पद्धति स्वीकार की गई। आस्था का स्थान तर्क ने और श्रद्धा का स्थान विवेक ने लिया। सम्पूर्ण साहित्य जड परम्पराओ से मुक्ति का स्वरघोष करने लगा। कविता समाज की इस महती आवश्यकता का अनुभव करके अतीत के

पुनरालेखन की ओर सजग हुई। 'रामायण' 'महाभारत' 'भागवत' के कथानकों को लेकर लिखे जाने वाले सभी काव्यों ने प्राचीन घटनाओं को नवीन आलोक में प्रस्तुत किया। इस समय अछूतोद्धार का आन्दोलन सफलतापूर्वक चल रहा था। व्यक्ति-पौरुष और वंशगत वैभव का संघर्ष यद्यपि सनातन है, किन्तु इस युग में आकर व्यक्ति के पौरुष को अधिक बल मिल रहा था। इस सामाजिक आन्दोलन के कारण कवियों के दो वर्ग बने। एक वर्ग वह था, जिसने प्राचीन आदर्श की यथावत स्थापना की, और उसमें सामयिक आदर्शवादी परिवर्तन करके ही सन्तुष्टि प्राप्त की। दूसरा वर्ग था, जिसने उपेक्षित पात्रों के जीवन की मुख्य घटनाओं के मर्म को समझा और उनको मानवता का प्रतीक मानकर चित्रित किया। 'रामायण' और 'महाभारत' के आदर्श के स्थापना की महती आवश्यकता से प्रेरित होकर आधुनिक कवियों ने उन काव्यों की मार्मिक कथाओं पर स्वतंत्र दृष्टि से रचनाएं की। इन रचनाओं में इन ग्रन्थों का पूर्ण प्रभाव है, किन्तु कवि ने प्रभाव को युगीन परिवेश में ग्रहण किया है। 'महाभारत' का प्रमुख प्रतिपाद्य 'धर्म' है। 'महाभारत' की युद्ध-कथा भी धर्म-कथा के रूप में परम्परा से व्यवहृत है। आधुनिक साहित्य में 'महाभारत' की कथा को लेकर लिखे जाने वाले काव्यों का प्रतिपाद्य भी 'धर्म' ही है। कवि आधुनिक जीवन की व्यवस्था में सांस्कृतिक उत्थान के लिए 'महाभारत से कथा ग्रहण कर, युगीन विचार-धारा के आलोक में परिवर्तित कर, अतीत के माध्यम से वर्तमान में सुधार का स्वर-घोष करता है। 'महाभारत' का 'धर्म' आज के युग में 'मानवता' के पर्याय के रूप में स्वीकृत है, अतः इन सभी काव्यों में अतीत के अनुकरण पर, 'नवीन मानवतावाद' की प्रतिष्ठा की गई है।

अब हम सम्पूर्ण महाभारतीय कथा पर आधारित प्रबन्ध-काव्यों का कथा-प्रभाव की दृष्टि से विश्लेषण करेंगे।

कृष्णायन

भारत के जातीय और सांस्कृतिक जीवन के संरक्षण की महती एवं यथार्थ भूमिका जितनी कृष्ण के चरित्र और कार्यों में प्राप्त होती है, उतनी इस देश के किसी अन्य महापुरुष में उपलब्ध नहीं। जीवन स्वतः अन्तर्विरोधों और संघर्षों से पूर्ण होता है, उसी अनुपात से सांस्कृतिक मूल्यों में अन्तर्विरोध और जातीय स्थिति में संघर्ष की भावना उभरती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी कृष्ण का चरित्र अधिक प्राचीन और अपेक्षाकृत कम काल्पनिक माना गया है। कृष्ण के चरित्र की प्रमुख विशेषता यह है कि वह एक ओर तो मुख सौन्दर्य की पूर्णता का आधार है, दूसरी ओर सम्पूर्ण सांस्कृतिक रीति नीति, शास्त्र, मर्यादा, जीवन-दर्शन और राष्ट्रीयता का प्रतीक है। पुराणों में कृष्ण का मधुर और 'महाभारत' में लोकरक्षक रूप सुरक्षित है। वस्तुतः इन दोनों भावधाराओं के समुचित समन्वय में ही 'महाभारत' के कृष्ण का अध्ययन अपेक्षित है।

साहित्य मे कृष्ण-चरित्र के तीन प्रमुख रूप विद्यमान है

१ धर्म सस्थापक रूप।

२ गोपीजन वल्लभ, राधाकृष्ण रूप।

३ बालगोपाल रूप।

ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्ण-चरित्र का प्रथम रूप अधिक प्रामाणिक और प्राचीन है। कृष्ण का द्वितीय गोपीजन वल्लभ 'रूप' 'हरिवश पुराण' और 'भागवत' की देन है। शनै शनै कवियो, धार्मिको और दार्शनिको ने योगीराज कृष्ण के स्थान पर उक्त रूप की प्रतिष्ठा की। 'गीतगोविन्द' और गौडीय वैष्णवो द्वारा प्रतिष्ठित कृष्ण-स्वरूप का प्रभाव, भक्ति और रीतिकाल से विकसित होता आया। इस स्वरूप-विकास का मुख्य कारण भक्ति-सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा थी। वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग मे कृष्ण चरित के बालगोपाल रूप को मान्यता मिली। इससे ममता की साकार मूर्ति के रूप मे ईश्वर की प्रतिष्ठा की गई।

सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य मे कृष्ण के तीनो रूपो को लेकर साहित्य सृजन हुआ। सामान्यत धर्म-सस्थापक कृष्ण का रूप मध्यकाल मे उपेक्षित रहा और शेष दो रूपो की प्रधानता रही। आधुनिक काव्य तीनो रूपो से समृद्ध है। खडी बोली, व्रज-भाषा और अवधी तीनों भाषाओं मे कृष्ण चरित्र पर आधारित रचनाए उपलब्ध हैं, जिनके दो वर्ग हैं —सम्पूर्ण कृष्ण-चरित-काव्य और राधावल्लभ रूप। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत 'कृष्णायण', जैसे काव्य हैं। द्वितीय वर्ग मे 'प्रियप्रवास' और 'उद्धव शतक' आदि काव्यो के साथ गीतिकाव्यान्तर्गत विपुल साहित्य रचा गया। भारती युद्ध से सम्बन्धित कृष्ण-चरित्र की महत्वपूर्ण रचना 'कृष्णायन' है। 'कृष्णायण' मे विसाहूराम का दृष्टिकोण भक्त्यात्मक है किन्तु 'कृष्णायन' मे मिश्र जी की विचार-धारा मे भक्ति-भावना और सुधार-वादी राष्ट्रीय भावना का समन्वय है। मिश्र जी का दृष्टिकोण विशुद्ध सास्कृतिक धरातल पर पुरुषोत्तम भगवान कृष्ण के जीवन को प्रस्तुत करना है, जिससे राष्ट्र निर्माण और आर्यत्व की प्रतिष्ठा हो सके। इसी दृष्टिकोण के कारण मिश्र जी ने कृष्ण के तीनो रूपो मे समन्वय कर सम्पूर्ण 'महाभारत' की कथा का सार सक्षेप लेकर महाकाव्य की रचना की है।

मिश्र जी के 'कृष्णायन' मे 'महाभारत' का साराश कृष्ण के साथ अत्यन्त सुन्दरता से सम्बद्ध है। समस्त ग्रन्थ मे महाभारतीय वीर युग का वातावरण स्पष्ट रूप से मुखर हुआ है और उसी प्रकाश मे कृष्ण की कथा का विकास और कृष्ण का चरित्र-चित्रण हो पाया है।

कथा-सग्रहण

'कृष्णायन' मे कवि 'महाभारत' की समस्त जीवन-परम्परा को चित्रित करना चाहता है अत प्रथम तीन काण्डो मे कथा का सग्रहण महाभारतेतर ग्रन्थो मे करके, अन्तिम चार काण्डो की कथा के हेतु 'महाभारत' पर आश्रित रहा है। वह कृष्ण के

जीवन की उस महत्ता, विशुद्धता और विकासमयी प्रेरणा को प्रत्यक्ष करना चाहता है जो 'महाभारत' मे प्राप्य है। इसके पूर्व कृष्ण का बालचरित, गोपियों के साथ क्रीड़ा आदि घटनाएं भूमिका रूप मे प्रस्तुत की गई हैं।

"अवतरण काण्ड" की कथा 'महाभारत' से गृहीत नही है। इसमें कवि ने कृष्ण पूर्व मथुरा की स्थिति, जन्म, अलौकिक कर्म और कंस-विरोध का चित्रण किया है। इस कथानक का आधार मूलतः 'भागवत' और 'सूरसागर' है।

"मथुरा काण्ड" का मुख्य विषय कस का वध और देवकी का उद्धार है। कवि ने युग के अनुरूप कथा में निमग्न हो जाने वाले कतिपय परिवर्तन अवश्य किए है। कृष्ण के विद्याध्ययन में गुरुकुल प्रणाली की श्रेष्ठता व्यक्त की है। इस काण्ड की कथा के आधार 'भागवत' 'सूरसागर' और अन्य 'पुराण' है।

"द्वारका काण्ड" का कथानक कवि ने लगभग पूर्ववर्ती आधारग्रन्थों से ग्रहण किया है। इसमें तत्कालीन राज्य व्यवस्था के आधार पर सामयिक राजनैतिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। इस काण्ड से कथा संग्रहण में कवि 'महाभारत' की ओर आया है।

आदिपर्व :—'कृष्णायन' के द्वारका काण्ड के पृ० २५४ से 'महाभारत' की कथा प्रारम्भ होती है। रुक्मणि-विवाह के प्रसंग मे कृष्ण सुफलकसुत को पाण्डवों की कुशल लाने भेजते है। इस प्रसंग के उपरान्त कवि पाण्डव-कौरव परिचय देता है। कृष्णायन' में वारणावत प्रसंग से पाण्डवों की कथा प्रारम्भ होती है।

आदिपर्व के आधार पर मिश्रजी ने निम्न प्रसंगो की अवतारणा की है। १२५ और १२६ वें अध्यायों के आधार पर कवि ने पाण्डवों का परिचय दिया है। अध्याय १३३ के अनुसार रंगभूमि प्रसंग तदुपरान्त अध्याय १३७, १३६, १४० से १४८ तक के आधार पर लाक्षागृह प्रसग की रचना है।[1] स्वयंवरपर्व, वैवाहिकपर्व और विदुरागमन राज्यलम्भपर्व का संक्षेप पृष्ठ २६७ से ३२१ तक हुआ है। 'कृष्णायन' में भी इन घटनाओं का संक्षिप्त चित्रण है। अर्जुन वनवासपर्व, और सुभद्राहरणपर्व के आधार पर द्वारका काण्ड का अन्तिम भाग रचित है।

सभापर्व :—इस पर्व से कृष्णायन' में सभा-निर्माण प्रसंग लिया गया है और 'कृष्णायन' के पूजा काण्ड मे सभापर्व के प्रमुख प्रसग संक्षिप्त किये है। जरासंध-वध पर्व के आधार पर जरासंध के वध-प्रसंग की सृष्टि करके राजसूयपर्व, शिशुपाल-वध पर्व के संक्षेप में पाण्डवों की कथा में कृष्ण की महत्ता का चित्रण किया है। द्यूत-पर्व तथा द्रौपदी वस्त्रहरण प्रसंग को अत्यन्त मार्मिक रूप मे ग्रहण किया गया है।

वनपर्व :—पृष्ठ ४३४ से पूजा काण्ड के अन्ततक की कथा वनपर्व से ली गई है। वनपर्व के अध्याय ४, ५ तथा १४ से २१ तक के अध्यायों का संक्षेप शाल्व-वध की कथा

---

१. कृष्णायन, पृ० २७१-२७८

के रूप मे किया है। अध्याय ३७ के आधार पर अर्जुन का वनगमन और द्रौपदी-हरण और अध्याय २६३ के आधार पर दुर्वासा के वृत्त का समावेश किया है। 'कृष्णायण' मे वनपर्व की मुख्य घटनाओ का वर्णन है।

विराटपर्व विराटपर्व की समस्त कथा को सांकेतिक रूप मे दो दोहो मे चित्रित किया है। अध्याय २५ से ६६ तक की विस्तृत कथा संकुचित रूप मे नारद से कहलवाई है। 'कृष्णायण' मे कीचक-वध प्रसंग लिया है।

उद्योगपर्व उद्योगपर्व मे कवि ने रणचर्चा का आधार ग्रहण किया है। उद्योगपर्व के ७ वें अध्याय के आधार पर गीताकाण्ड के प्रारम्भिक प्रसंग 'कृष्ण की सहायता' का वर्णन है। संजयान पर्व, यानसंधिपर्व, भगवद्यानपर्व का संक्षिप्त गीताकाण्ड मे है। 'कृष्णायण' मे इस पर्व से कृष्ण दूतत्व का प्रसंग गृहीत है।

भीष्मपर्व . भीष्मपर्व मे गीताकाण्ड की विषय वस्तु का चयन किया गया है। श्री मद्भगवद्गीता पर्व का अनुवाद १०७ वें दोहे से इस काण्ड के अन्त तक किया है। इस पर्व के युद्ध का वर्णन जयकाण्ड के प्रारम्भ मे विन्यस्त किया है।

द्रोणपर्व . इस पर्व से अभिमन्युवध, जयद्रथवध, घटोत्कचवध की घटना को कवि ने जयकाण्ड के पृ० ६७१ से ७३० तक चित्रित किया है। इस प्रसंग मे कवि ने युद्ध जैसी भौतिक वस्तु को नैतिक धरातल पर चित्रित करने का प्रयास किया है। 'कृष्णायण' मे युद्ध-चित्रण अत्यंत संक्षिप्त रूप से किया है।

कर्णपर्व : शल्यपर्व और सौप्तिकपर्व का संक्षेप जयकाण्ड के उत्तरार्ध मे किया है। कवि घटनाओं का सांकेतिक चित्र उपस्थित करता हुआ कथा को अन्त की ओर अग्रसर करता है।

शान्तिपर्व अनुशासनपर्व और आश्वमेधिकपर्व, की कथा का संक्षेप आरोहण काण्ड मे किया है। इन पर्वो मे कथा कम और विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तो का विवेचन अधिक है। लेखक ने आधार ग्रन्थ से राजनैतिक व्यवस्था के उपदेश ग्रहण किए हैं। 'महाभारत' के केवल राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले प्रसंगो को संक्षिप्त किया गया है। आश्वमेधिक पर्व से यज्ञ का चित्रण किया गया है।

मौसलपर्व इस पर्व के आधार पर कवि ने यदुवंशियो के गृहकलह का चित्रण किया है। इस प्रकार 'महाभारत' के प्रमुख प्रसंगों को लेकर अन्त तक कृष्ण की जीवन-गाथा के साथ अत्यन्त कुशलता से जोड़ा गया है।

कथा-विकास—परिवर्तन · परिवर्धन

यह हम पहले ही निर्देश कर चुके हैं कि 'कृष्णायन' सम्पूर्ण रूप से महाभारतीय आख्यान से प्रभावित नहीं है तथापि उसमे 'महाभारत' का कथानक प्रधान रूप से विद्यमान अवश्य है—'महाभारत' के विभिन्न पर्वो से प्रमुख आख्यानों को कृष्ण के जीवन से सम्पृक्त करके विकसित किया गया है।

अब हम 'महाभारत' से गृहीत प्रमुख प्रसंगों के आधार पर 'कृष्णायन' के परि-वर्तन एवं परिवर्धन पर विचार करेंगे।

कौरव-पाण्डव-परिचय और रंगभूमि-प्रसंग : आधार ग्रन्थ के अनुसार 'कृष्णा-यन' में संक्षिप्त वंश-परिचय दिया है। 'महाभारत' में वंश-परिचय विस्तृत है, 'कृष्णा-यन' में सांकेतिक।[1] 'महाभारत' में अक्रूर के आगमन एवं सब सम्भ्रान्त व्यक्तियों से मिलन की चर्चा नहीं है, 'कृष्णायन' में पाण्डवों की सुधि लेने अक्रूर आते हैं और सब से मिलते हैं।

प्रभु प्रेरित अक्रूर, पहुंचे उत कौरव पुरी[2]

× × ×

द्रोणाचार्य समीप, गवने पुनि सुफलक सुवन[3]

रंगभूमि के प्रसंग को 'कृष्णायन' में आधार ग्रन्थ के सदृश चित्रित किया गया है। अक्रूर की उपस्थिति निश्चित ही कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध की जा सकती है। कृष्ण के अभ्युदय से अन्ध नृपति और दुर्योधन की चिन्ता को स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है।

'महाभारत' में भीम-दुर्योधन के द्वन्द्व का प्रदर्शन विस्तार से किया गया है। 'कृष्णायन' में सांकेतिक चित्रण कर भीम की महत्ता प्रदर्शित की है। अर्जुन के शस्त्र प्रदर्शन के अवसर पर 'महाभारत' में वर्णित अनेक शस्त्रों का नामोल्लेख 'कृष्णायन' में नहीं है। इसके उपरान्त कर्ण का प्रवेश, वाकयुद्ध और दुर्योधन की मित्रता के प्रसंग 'कृष्णायन' में 'महाभारत' से यथावत ग्रहण किए गए है। इन प्रसंगों में लेखक किसी भी दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं कर पाया। जाति पूछे जाने पर कर्ण की मानसिक स्थिति का क्षोभपूर्ण चित्रण 'कृष्णायन' में 'महाभारत' की अपेक्षा अधिक मनोवैज्ञानिक हो पाया है। 'महाभारत' में स्थिति घटनात्मक है 'कृष्णायन' में मनोवैज्ञानिक। कुन्ती की स्थिति का चित्रण समान रूप से प्रभावशाली है।

कुन्ति भोजसुता मोहं विज्ञातार्था जगामह[4]

× × ×

गिरीधरणि अकुलाय, धाय संभारेउ कुल तियन[5]

कवि महाभारतीय स्वर के साथ सहमत होता हुआ पाण्डव पक्ष की वीरता और कौरवों की उद्दण्डता का चित्रण करता है।

---

१. म० आदि० अध्याय ६८, ११०, १२३-१२४, कृष्णायन पृ०२५४

२. कृष्णायन, पृ० २५४

३. कृष्णायन, पृ० २५६

४. म० आदि० १३५।२७

५. कृष्णायन, पृ० २६८

वारणावत प्रसग 'महाभारत' मे विदुर पाण्डवो से मिलकर रहस्योद्घाटन करके पुरवासियो के समक्ष म्लेच्छ भाषा मे युधिष्ठिर को समझाते हैं, 'कृष्णायन' मे विदुर दूत द्वारा यह कार्य करते हैं।[1]

विदुर द्वारा सुरग निर्माण के हेतु दूत का भेजना, लाक्षागृह मे एक वर्ष की अवधि का कार्यक्रम, गगापार होना, कौरवो की शोकाभिव्यजना आदि प्रसगो को कृष्णायनकार ने छोड दिया है। कवि ने कृष्ण की कथा के लिए आवश्यक प्रसगो को लिया है और शेष की उपेक्षा कर दी है। वारणावत प्रसग का उल्लेख द्रौपदी स्वयवर की विशाल कथा की पृष्ठभूमि के रूप मे चित्रित हुआ है।

स्वयवर प्रसग 'महाभारत' मे द्रौपदी-स्वयवर विवाह-प्रसग विस्तृत रूप से आया है। यह 'महाभारत' की प्रमुख घटना है जिससे पाण्डवो को द्रुपद की मित्रता प्राप्त हुई और राजनैतिक सन्धियों के कारण शक्ति और प्रभाव मे वृद्धि हुई। 'कृष्णायन' मे यह प्रसग इस विस्तृत भूमिका के साथ चित्रित न हो सका। आधार ग्रथ मे इस प्रसग के उल्लेख के साथ अनेक सामाजिक और दार्शनिक प्रसगो की तात्विक विवेचना की गई है। महाभारत' के विस्तृत प्रसगो के लिए कृष्णायनकार ने सक्षिप्त शैली ही अपनाई है।

परिवर्तन-परिवर्धन उक्त प्रसग को कवि ने महाभारतीय आख्यान के अनुसार ही चित्रित किया है, किन्तु कृष्ण की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए निम्नाकित परिवर्तन किए है।

'महाभारत' मे कृष्ण लक्ष्यवेध से पूर्व पाण्डवो को पहचान कर बलराम से कहते हैं, किन्तु 'कृष्णायन' मे कृष्ण यादवो को लक्ष्यवेध मे विरत कर देते हैं।[2]

"करै न यादव शूर कोउ, मत्स्यभेद उद्योग"[3]

'महाभारत' मे कर्ण परास्त होकर ब्रह्मतेज को अजेय मानकर युद्ध-विरत होता है, 'कृष्णायन' मे भी वह इसी रूप मे परास्त होता है।

कर्ण का प्रश्न है—

> किं त्व साक्षाद् धनुर्वेदो रामो वा विप्रसत्तम।
> अथ साक्षाद्धरिहय साक्षाद् वा विष्णुरच्युत ॥[4]

---

1 म० आदि० १४४।२०-२७, कृष्णायन, पृ० २७७

2 म० आदि० १८८। २२

3 कृष्णायन, पृ० २९६

4 म० आदि० १८६। १०-१५

को तुम विप्रणुहि कायावाना,
जन्मे विप्र रूप भगवाना ?
शक्रहितो नहि महितनुधारी ?
अथवा प्रकट आपु त्रिपुरारी ?'[1]

दोनों ग्रन्थो में अर्जुन की अद्वितीय वीरता की प्रतिष्ठा होती है। क्षात्रतेज का चमत्कार ब्राह्मणत्व का आधार पाकर अधिक प्रतिष्ठित हो सकता है, 'महाभारत' की इस भावना की परोक्ष अभिव्यक्ति भी इस प्रसंग में हो पाई है। इसके उपरान्त धृष्टद्युम्न द्वारा गुप्त शोध, कुन्ती द्वारा पंचभोग का वरदान, यथावत लिया गया है।

महाभारतकार ने द्रौपदी के पंचपतित्व की आदर्शात्मक प्रतिष्ठा के लिए व्यास और कृष्ण के द्वारा अनेक धार्मिक सिद्धान्तों का विवेचन किया है। इनमें पूर्व जन्म की कथा को प्रमुखता दी है। 'कृष्णायन' में 'महाभारत' के निम्न स्थलों की उपेक्षा की गई है।

१. विवाह के लिए पाचों पाण्डवों का विचार।[2] 'महाभारत' में पांचों भाइयों के द्रौपदी के सौन्दर्य पर मुग्ध होने का प्रसग यथार्थ रूप से आया है। कवि ने उसकी चर्चा नहीं की। वह 'महाभारत' की यथार्थवादी दृष्टि से समझौता नहीं कर सका।

२. पाण्डवों के शील स्वभाव की परीक्षा।[3]

३. विवाह के लिए युधिष्ठिर एवं द्रुपद का वार्तालाप।[4] धर्मराज एवं द्रुपद का वार्तालाप भी यथार्थ स्थिति को स्पष्ट करता है। युधिष्ठिर यह मानते हैं, कि द्रौपदी अर्जुन ने जीती, पर विवाह तो उनका एवं भीमसेन का प्रथम होना चाहिए अतः पाचों का विवाह एक साथ हो।

सर्वेषां धर्मतः कृष्णा महिषी नो भविष्यति।
आनुपूर्व्येण सर्वेषां गृह्णातु ज्वलने करान्॥[5]

'महाभारत' मे युधिष्ठिर की व्यक्तिगत इच्छा धर्म सम्पन्न मानकर अभिव्यक्त की गई है। 'कृष्णायन' में केवल व्यास पूर्व-जन्म-वृत्त के आधार पर द्रुपद को पांचों पाण्डवो के साथ विवाह करने का परामर्श देते हैं।[6] 'कृष्णायन' में विवाह की सामाजिक स्थिति को लेकर विस्तृत विवेचन नहीं किया गया। कवि इस प्रसंग का कोई

१. कृष्णायन, पृ० ३०५
२. म० आदि० १९०। १२-१६
३. म० आदि० १९३।१२
४. म० आदि० १९४। २१-२७
५. म० आदि १९४।२६
६. कृष्णायन, पृ० ३१६

मुसलमान समाधान खोजने में भी असफल रहा है। व्यासजी के दिव्य दृष्टि- से प्राचीन कथा के प्रदर्शन को,[1] अलौकिक कथांश को 'कृष्णायन' में अव्यावहारिक जान कर छोड़ दिया गया है।

राज्य-प्राप्ति-प्रसंग इस प्रसंग में कौरवों के पक्ष में कर्ण, भीष्म द्रोण का वार्तालाप तथा अन्त में पाण्डवों की राज्य प्राप्ति प्रमुख रूप से चित्रित है। कर्ण शक्ति से पाण्डवों को परास्त करने की सम्मति देता है और भीष्म तथा द्रोण विरोध करते हैं। 'कृष्णायन' में यह प्रसंग परिवर्तित है। महाभारत' में वह पहले दुर्योधन को सम्मति देता है 'कृष्णायन' में सामूहिक रूप से भीष्म एवं द्रोण की निन्दा करता है।[2]

'महाभारत' में सामूहिक रूप से निन्दा का प्रसंग भी बाद में विस्तार से चित्रित किया है। 'कृष्णायन' में समस्त चित्र संक्षिप्त शैली में अंकित हैं। वार्ता के इस प्रसंग में जीवन के एक व्यावहारिक रूप की ओर कवि ने दृष्टि डाली है। कि किसी भी मध्यवर्ती व्यक्ति की प्रतिष्ठा तभी तक हो सकती है जब तक दोनों पक्षों में संघर्ष हो, अतः वह व्यक्ति संघर्ष की स्थिति सदा ही बनाये रहता है। कर्ण की स्थिति कौरव-पाण्डव संघर्ष में ऐसी ही चित्रित की गई है।

जबलगि मिलत न पाण्डव कुरुजन।
यहि कुल तबहिं लागि तुव पूजन॥[3]

अतः कर्ण के परामर्श और संघर्ष को उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। वह केवल प्रतिकार की भावना से कौरव पाण्डव विरोध का वातावरण बनाये रहता है। पाण्डवों की राज्य प्राप्ति का चित्रण कवि ने अत्यन्त संक्षेप में किया है।

अर्जुन-वनवास एवं सुभद्राहरण पाण्डवों की राज्य-प्राप्ति के उपरान्त कथा को कृष्ण के साथ प्रवाहित करके कवि अर्जुन-वनवास के प्रसंग का चित्रण करता है।

ब्राह्मण की प्रार्थना सुनकर पाण्डव क्षत्रिय धर्म का पालन करते हैं और वन-वास के हेतु जाते हैं। इस प्रसंग में कवि ने 'महाभारत' के आधार पर धर्म की रक्षा और पालन की सफलता पर बल दिया है। धर्मराज के क्षमा करने पर अर्जुन कहते हैं—

---

१ म० आदि० २०१।११-१२, कृष्णायन, पृ० ३१८

२ म० आदि० २०१।६, कृष्णायन, पृ० ३१६

३ कृष्णायन, पृ० ३२०

वचन-वद्ध हम पाँचहु भाई।
उचित न धर्म साथ चतुराई॥[1]

अर्जुन-वनवास से सम्बद्ध निम्न प्रसंगों को 'कृष्णायन' में छोड़ दिया गया है। गंगा द्वार में उलूपी मिलन,[2] मणिपुर में चित्रागदा से विवाह,[3] वर्गा अप्सरा का ग्राह योनि से छुटकारा।[4] इन प्रसगों को इसलिए छोड़ दिया गया है कि इनका व्यक्तिगत सम्वन्ध केवल अर्जुन से है।

अर्जुन का द्वारका आना और सुभद्रा को देखकर आसक्त होना दोनों ग्रन्थों में समानरूप से है।

परिवर्तन-परिवर्धन : 'महाभारत' मे कृष्ण स्वयं अर्जुन की इच्छा को जान जाते है और सुभद्रा का परिचय देते है। 'कृष्णायन' में कृष्ण जान जाते है कि अर्जुन का मन मुग्ध हो गया है पर वे कुछ वोलते नही।[5]

'महाभारत' मे अर्जुन स्पष्ट कामाभिव्यक्ति करते है, 'कृष्णायन' मे वे अपने आपको कामासक्त जानकर मन मे धिक्कारते हैं।[6] 'महाभारत' में अर्जुन के कहने पर कृष्ण अपने पिता से स्वयं वात करने की स्वीकृति देते है, 'कृष्णायन' मे अर्जुन कहता है कि "याचहुँ पितु ढिग जाय कुमारी" तो कृष्ण उत्तर देते है "मांगे मिलत कवहुँ कछुनाहीं।"[7]

'महाभारत' में कृष्ण के परामर्श को अर्जुन तत्काल मान जाते है, 'कृष्णायन' में वे इसे विश्वासघात की संज्ञा देते हैं और फिर कृष्ण के समझाने से मानते है[8] और दूत द्वारा धर्मराज की स्वीकृति पाकर सुभद्रा का हरण करते है। इस घटना के उपरान्त वलराम के क्रोध पूर्ण उद्‌गार हैं, किन्तु सभी यदुजन कृष्ण के समझाने से मान जाते है।

इस प्रसंग से कवि ने यादवों और पाण्डवो के अभिन्न सम्वन्ध की स्थिति को प्रकाशित करके एक शक्ति के रूप में चित्रित किया है। स्त्री-हरण प्रसंग को क्षत्रियों का अधिकार बताकर इसका समर्थन किया है।

---

१. कृष्णायन, पृ० ३४८
२. म० आदि० अध्याय २१३
३. म० आदि० अध्याय २१४
४. म० आदि० अध्याय २१५
५. म० आदि० २१८।१६-१६, कृष्णायन, पृ० ३५८,
६. म० आदि० २१८।२०, कृष्णायन, पृ० ३५८ "धिकधिक मोहि कामपथ गामी।
७. म०, आदि० २१८।१७, कृष्णायन, पृ० ३५८-३५६
८. म० आदि० २१८।२३, कृष्णायन, पृ० ३५६,

राजसूय प्रसग मे जरासध-वध राज्य प्राप्ति और अर्जुन के आगमन के उपरान्त कृष्ण एक राष्ट्र के निर्माण की भूमिका बनाते हैं। इस कारण राजसूय यज्ञ की प्रतिष्ठा होती है। इस यज्ञ से पाण्डवो का उत्कर्ष सब सिद्ध हो जाता है, और अप्रत्यक्ष रूप से कृष्ण की अलौकिक शक्ति की प्रतिष्ठा होती है।

'महाभारत' मे नारद युधिष्ठिर को शिक्षा देते हुए राजसूय यज्ञ का परामर्श देते हैं। कृष्णायन' मे इस विस्तृत प्रसग का साकेतिक उल्लेख किया गया है।

नारद कृष्ण के पास जाकर उनको युधिष्ठिर के पास भेजते हैं कि वे राजसूय की स्थिति निर्मित करें।[1]

'महाभारत' मे वर्णित अनेक लोकपालो की सभाओ का चित्रण-प्रसग कवि ने त्याग दिया है। 'महाभारत' मे राज्य-विजय-हेतु जरासध तथा अन्य राजाओ को परास्त करने की बात प्रबल रूप से आती है। 'कृष्णायन' मे नारद और कृष्ण द्वारा एक राष्ट्र के अथ सस्कृति के आदर्श की स्थापना के कारण दिग्विजय पर बल दिया जाता है।[2]

'महाभारत' म दिग्विजय का उल्लेख विस्तृत है, 'कृष्णायन' मे सक्षिप्त शैली मे उसकी सूचना मात्र दी है।[3] 'महाभारत' मे जरासध की उत्पत्ति का विस्तृत प्रसंग वर्णित है 'कृष्णायन' मे उसकी उपेक्षा की गई है।[4] इन्द्रप्रस्थ से मगध की यात्रा तक का प्रसग यथावत है। इस कथा के विकास मे कवि विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन नही कर पाया। इस प्रसग से शक्ति के साथ नीति का सामर्थ्य चित्रित किया गया है। लडने से पूर्व जरासध अतिथिगृह मे सबको ठहराता है। इस प्रसग से शत्रु के साथ भी उच्च आदर्श का प्रकाशन किया है और भारतीय परम्परा की उज्ज्वलता दिखाई है।

'महाभारत' मे जरासध युद्ध मे पूर्व अपने पुत्र के राज्याभिषेक की घोषणा करता है, 'कृष्णायन' मे कृष्ण सहदेव के साथ पहले क्रिया करते हैं, तब उसेर ाज्याधिकारी बनाते हैं।[5] कृष्ण के द्वारा जरासध की अन्त्येष्टि मे कवि उच्च सास्कृतिक आदर्शों की स्थापना करता है। 'महाभारत' मे सहदेव के द्वारा अनेक रत्न आदि भेंट मे देने का प्रसग आता है, कवि ने उसे अत्यन्त सक्षेप मे चित्रित किया है। 'महाभारत' मे भयभीत सहदेव को कृष्ण अभयदान देते हैं[6] 'कृष्णायन' मे इस प्रसग को न लेकर केवल भेंटादि का कार्यक्रम सम्पन्न कराया है।

---

१ म० सभा० ५।२५, कृष्णायन, पृ० ३७४
२ म० सभा० १६।१५-१७ कृष्णायन, पृ० ३७७
३ म० सभा० अध्याय २५-३२ कृष्णायन, पृ० ३७६
४ म० सभा० अध्याय १७-१६
५ म० सभा० २२।३१, कृष्णायन, पृ० ३८८
६ म० सभा० २४।४२-४३ कृष्णायन, पृ० ३८६

शिशुपाल-वध प्रसंग : इस कथांश में युधिष्ठिर के द्वारा अनेक राजाओं को निमंत्रण ।[1] राजाओं का आगमन एवं ठहरने की व्यवस्था[2] युधिष्ठिर का शिशुपाल को समझाना ।[3] भीष्म द्वारा अनेक अवतारों के कारणों पर प्रकाश ।[4] शिशुपाल द्वारा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन आदि प्रसंगों का अभाव है । इसका प्रमुख कारण यह है कि कृष्णायनकार अपने प्रबन्ध की सीमा मे केन्द्रवर्ती घटना का चित्रण करना चाहता है । यद्यपि 'महाभारत' में इन प्रसंगों के द्वारा कृष्ण के ईश्वरत्व और अवतार रूप का प्रतिपादन किया गया है, और कृष्णायनकार कृष्ण के ईश्वरत्व को स्वीकार करता है, किन्तु इस प्रसंग की उद्भावना इस स्थल पर अपेक्षित नहीं समझी गई ।

'महाभारत' के शिशुपाल-जन्म-वृत्तान्त को कवि ने छोड़ दिया है ।

परिवर्तन-परिवर्धनः 'महाभारत' में शिशुपाल द्वारा भीष्म की निन्दा का प्रसंग अध्यायों के विस्तार में चित्रित है । 'कृष्णायन' में उसे संक्षिप्त रूप से चित्रित किया है ।[5] 'महाभारत' में शिशुपाल कृष्ण से युद्ध करने के लिए अनेक राजाओं को तैयार करता है । 'कृष्णायन' में वह अकेला आवेश में आकर तलवार निकालता है ।[6]

'महाभारत' में वर्णित प्रसंग के अनुसार अनेक राजा शिशुपाल की ओर हो जाते हैं । यह उस समय के एक वर्ग की भावना को प्रकाशित करता है कि राजाओं का आसुरी वृत्ति सम्पन्न वर्ग युधिष्ठिर के धर्म-युक्त राज्य के आधीन नहीं होना चाहता था । कृष्णायनकार ने तत्कालीन राजनैतिक स्थिति की गहराई और गम्भी-रता को समझ कर भी इस प्रसंग को छोड़ना उचित समझा । वह चरित्र नायक के प्रति प्रमुख विरोध के साथ, अन्य राजाओं की महत्ता स्वीकार करना नहीं चाहता । कृष्ण शिशुपाल का वध करते हैं, और सब राजा आतंकित होकर शान्त हो जाते हैं । 'कृष्णायन' में वध के समय की अलौकिक घटनाओं को बौद्धिक समाधान के अभाव में छोड़ना उचित समझा गया ।

परिवर्धन : इस प्रसंग में युधिष्ठिर के वैभव के कारण, दुर्योधन की चिन्ता स्वाभाविक रूप से उभर सकती थी । 'महाभारत' में मानसिक ग्लानि के रूप में इन चिन्ता का चित्रण किया गया है । इस प्रसंग को लेकर कृष्ण के उत्कर्ष से शाल्व तथा दन्तवक्र को क्षोभ हुआ । आधार ग्रन्थ में इस क्षोभ का चित्रण नहीं है । कृष्णायन कार ने सम्भावना के आधार पर इन दोनों स्थितियों का चित्रण किया है । यज्ञ के

---

१. म० सभा० अध्याय २३
२. म० सभा० अध्याय ३४
३. म० सभा० ३७।४
४. म० सभा० अध्याय ३७
५. म० सभा० अध्याय ४१, ४४, कृष्णायन पृ० ३९९
६. म० सभा० ३९।१२-१४, कृष्णायन, पृ० ४०१

मध्य शिशुपाल-वध के उपरान्त दन्तवक्र एव शाल्व, दुर्योधन से मिलते है और उसको पाण्डव विरोधी अभियान के लिये तैयार करते हैं।

उत लै दन्तवक्र निज साथा,
गवनऊ शाल्व जहा कुरुनाथा।

× × ×

अरि तुम्हार ये पाण्डुसुत, मम अराति यदुराय।
सकत दुहुन मैं नासि जो, कुरुजन करहि सहाय ॥[1]

मिश्र जी ने शत्रुओ के इस मिलन को अत्यन्त मनोवैज्ञानिक स्थिति मे चित्रित किया है। शाल्व का ऐसा प्रस्ताव कुरुनाथ कैसे ठुकरा सकते थे। दुर्योधन की चिन्ता का चित्रण परिवर्धित रूप है। पर शाल्व और दन्तवक्र की चेष्टाए कवि की नूतन उद्भावना है।

द्यूत-प्रसग "द्यूत" 'महाभारत' का अत्यन्त मार्मिक प्रसग है। मिश्र जी ने यथाशक्ति महाभारतीय मार्मिकता की रक्षा करते हुए इस प्रसग का सुदर चित्रण किया है।

द्यूत प्रसग की प्रमुख घटनाओं को कवि ने यथावत ग्रहण किया है। 'महाभारत' मे शाल्व और दन्तवक्र की कुमत्रणा नही है, किन्तु कृष्णायनकार ने इस प्रसग मे विशेष स्थिति की सयोजना की है। दुर्योधन को शाल्व और दन्तवक्र युद्ध की प्रेरणा देते हैं तो कर्ण असुरो की मित्रता को अव्यावहारिक तथा हानिप्रद बताता है। उसके कथन का सार यह है, कि असुरो की मित्रता से कृष्ण स्पष्ट शत्रु हो जायेंगे और यह राजनैतिक गठबधन उचित नही है। कवि इस प्रसग से, यह उद्घाटित करता है कि आर्य युद्ध में अनार्यों का सहयोग उचित नही है।

वैर उचित नहि कृष्णसग, उचित न असुरन प्रीति।
सकत समर महि पाण्डु सुत एकाकिहि मैं जीति ॥[2]

द्यूत सम्बन्धित 'महाभारत' के निम्नलिखित प्रसग 'कृष्णायन' मे नही है।

दुर्योधन द्वारा युधिष्ठिर के वैभव का वर्णन, धृतराष्ट्र के समक्ष युधिष्ठिर के अभिषेक का विस्तृत वर्णन, धृतराष्ट्र को उकसाना, धृतराष्ट्र का दुर्योधन का समझाना।

इन प्रसगो को विस्तार भय के कारण नहीं लिया गया। द्यूत के विषय मे लेखक अनेक विवेचनात्मक विचार प्रस्तुत कर सकता था किन्तु कथा-प्रवाह के मध्य इस विचार के लिए उसने स्थान नही निकाला।

---

१ कृष्णायन, पृ० ४०३

१ म० सभा० अध्याय ५६-५७, कृष्णायन, पृ० ४०७

'महाभारत' में धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर धर्मराज को द्यूत के लिए बुलाने जाते है। कवि ने आधार ग्रन्थ का ही अनुकरण किया है। किन्तु 'महाभारत' के विस्तृत संवाद की उपेक्षा की है।[1]

'महाभारत' में युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की आज्ञा से अधिक शकुनि की ललकार को महत्ता देते हैं, 'कृष्णायन' में वे केवल धृतराष्ट्र की आज्ञा मानते है। 'महाभारत' में विदुर के साथ वार्ता के उपरान्त युधिष्ठिर हस्तिनापुर आ जाते हैं। 'कृष्णायन' में अर्जुन एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछते हैं :

सुजन शिरोमणि तुमयहि देशू
लाये कस अस निंद्य सन्देशू।[2]

विदुर विवशता से उत्तर देते हैं—

कुरुजन अन्न रुधिर तन माही
भाखि न सकेउ 'अन्त' मुख नाही ॥[3]

विदुर की विवशता का मनोवैज्ञानिक चित्रण अत्यन्त सुन्दर रूप में किया गया है। द्यूत के मध्य निम्न प्रसगों को 'कृष्णायन' मे स्थान नही मिला है।

शकुनि-युधिष्ठिर संवाद, विदुर जी का तीव्र विरोध, दुर्योधन का विदुर जी को फटकारना, विकर्ण का धर्म-सम्मत बात कहना। द्यूत-क्रीड़ा और द्रौपदी के अपमान का प्रसंग समान है। प्रतिकामी के साथ न आने पर दुःशासन भेजा जाता है और उस का अपमान होता है। द्रौपदी के प्रश्न और उत्तर को कवि ने अत्यन्त संक्षिप्त शैली में सांकेतिक रूप से चित्रित किया है। 'कृष्णायन' के कथा-विकास में इस समस्या का सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवेचन नहीं किया गया। द्रौपदी के वस्त्रवर्धन की अलौकिक घटना का कवि कोई युगसम्मत बौद्धिक समाधान प्रस्तुत न कर सका। उसे उसी अलौकिक आस्था के रूप में चित्रित किया है।

वन-प्रसंग : द्यूत में हार कर पाण्डव वन गये। इस प्रसंग को कृष्णायनकार ने अत्यन्त संक्षेप मे पूजाकाण्ड के उत्तरार्द्ध में चित्रित किया है।

वन में जाते समय पुरवासियों की अवस्था, कुन्ती का हस्तिनापुर रहने का निश्चय, द्रोणाचार्य का कौरवों को आश्वासन आदि प्रसंगों को छोड़कर कवि ने सांकेतिक रूप से निम्न प्रसंग लिए है :

---

१. म० सभा० ५८। १६, कृष्णायन, पृ० ४१६
२. कृष्णायन, पृ० ४१५
३. कृष्णायन, पृ० ४१६

व्यास के परामर्श से अर्जुन का दिव्यास्त्र प्राप्ति हेतु जाना,[1] इन्द्र और शिव की आराधना,[2] पाण्डवों का अन्यतीर्थों में भ्रमणार्थ गमन।[3] 'महाभारत' के वन एवं विराट पर्व की कथा केवल सांकेतिक रूप में ग्रहण की गई है क्योंकि कृष्णायन कार की कथा का विकास कृष्ण के साथ चलता है, पाण्डवों के साथ नहीं। इसके लिए कवि ने नारद का निर्वाचन किया। नारद ही कृष्ण के पास आकर पाण्डवों के अज्ञात वास के उपरान्त प्रकट होने की सूचना देते हैं। दुर्वासा का प्रसंग, अज्ञातवास प्रसंग, उत्तरा का विवाह-प्रसंग, प्रारम्भिक तैयारी, द्रुपद के पुरोहित का दूतरूप में हस्तिना-पुर जाना आदि प्रसंगों को कृष्णायनकार ने अत्यन्त द्रुतगति से चित्रित किया है। इन स्थलों पर कथा-विकास अत्यन्त विरल और गतिमान होकर चला है।

रण उद्योग एवं सन्धि-प्रयास 'महाभारत' का उद्योग पर्व रण के उद्योग और सन्धि-प्रयासों की घटनाओं से परिपूर्ण है। इस सम्पूर्ण पर्व में दोनों पक्षों की रण-तैयारी, अनेक दूतों का आवागमन और अन्ततः भगवान कृष्ण का दूतत्व प्रमुख रूप से चित्रित हुआ है। 'महाभारत' के कथा-प्रवाह में प्रासंगिक इतिवृत्त अधिक हैं, किन्तु 'कृष्णायन' में उनको स्थान नहीं दिया गया। उक्त अवान्तर कथाएं 'कृष्णायन' के प्रबन्ध संयोजन से पृथक् होने के कारण उपेक्षित हुई हैं।

'कृष्णायन' के गीताकाण्ड का प्रारम्भ भी अर्जुन और दुर्योधन के द्वारा भगवान कृष्ण से युद्ध में सहायता की प्रार्थना से होता है। सहायता की याचना और भगवान के दूतत्व के मध्य अनेक अवान्तर कथाओं को छोड़ कर कवि विस्तार से भगवान के दूतत्व का चित्रण करता है। यहां पर कवि युद्ध की भयंकरता का चित्रण करता है और शान्ति की आवश्यकता पर बल देता है।

परिवर्तन-परिवर्धन 'महाभारत' में दुर्योधन गुप्तचरों से पाण्डवों की चेष्टाओं एवं कृष्ण के द्वारका लौटने का पता लगाकर सहायता प्राप्त करने पहुंचता है। 'कृष्णायन' में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं दिया गया और दोनों की उपस्थिति से गीता काण्ड प्रारम्भ किया है।[4] 'महाभारत' में दुर्योधन और अर्जुन के प्रवेश का पृथक् वर्णन किया है[5] किन्तु 'कृष्णायन' में यह प्रसंग छोड़ दिया गया है। तथापि श्री कृष्ण की सहायता का वर्णन दोनों ग्रन्थों में समान है।

'महाभारत' में दुर्योधन सेना प्राप्त कर बलराम के पास जाते हैं तो बलराम का स्वर आशीर्वादात्मक होता है। कृष्णायनकार ने बलराम के मुख से दुर्योधन को

---

१ कृष्णायन, पृ० ४४३
२ कृष्णायन, पृ० ४४४
३ कृष्णायन, पृ० ४४६
४ म० उद्योग ७। ३-४, कृष्णायन, पृ० ४६७
५ म० उद्योग, ७। ८

फटकार दिलाई है। यद्यपि 'महाभारत' के प्रसंग में बलराम दुर्योधन को सहायता की अस्वीकृति देते हैं पर उदार वचनों में—

नहि सहाय' पार्थस्य नापि दुर्योधनस्य वै।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्यह।[1]

"मैं श्रीकृष्ण की ओर देखकर इस निश्चय पर पहुँचा हूं कि मैं न तो अर्जुन की सहायता करूंगा और न दुर्योधन की"

कृष्णायनकार के बलराम का स्वर अत्यन्त उग्र है।

दुर्योधन का प्रश्न है :

करि हैं अब न समर यदुरायी।
नकत नाथ मोहि सहज जितायी।।[2]

यह प्रश्न सुनकर बलराम रुष्ट होकर जो उत्तर देते हैं, उससे उनकी उग्रता प्रकट हो जाती है।

सुनत कुमत उर रोष अपारा।
बरसे राम वदन अंगारा।
"विभव-मूर्ति पूजक अविचारी"।
वैस्वन्हितुमु निज कुल जारी।

भयहु तुमहि सन्तोष नहीं, गृह सौहार्द नसाय।
चहत सोई भीषण अनल, यदुकुल देन लगाय।[3]

दुर्योधन की चित्तवृत्ति की इससे अधिक भीषण व्याख्या और क्या हो सकती है। कृष्णायनकार ने बलराम के द्वन्द्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति की है।

दुर्योधन के लौटने पर कृष्ण पाण्डवों के पास जाते हैं। वहां संजय दूत बनकर आता है और युद्ध की हानि बताता है। 'महाभारत' में संजय का दूतत्व विस्तार से चित्रित है। कृष्णायनकार ने उसे अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इस प्रसंग से कवि ने इस बात पर बल दिया है कि स्वत्व मांगने से नहीं मिलता, उसके लिए संघर्ष आवश्यक है। यदि याचनामात्र से अधिकार मिल जाए तो युद्ध की स्थिति ही न रहे। पाण्डव सन्देश देते हैं कि या तो हमारा अधिकार दो अन्यथा संघर्ष होगा।

'महाभारत' के निम्न प्रसंग छोड़ दिये गये हैं :

धृतराष्ट्र का संजय को सन्देश देना, दुर्योधन की कटूक्तियां, युधिष्ठिर के पृथक् सन्देश।

---

१. म० उद्योग ७। २६
२. कृष्णायन, पृ० ४७६
३. कृष्णायन, पृ० ४६६-४७०

इन प्रसगो मे युद्ध के अनुकूल एव प्रतिकूल प्रभावो की विस्तृत चर्चा की गई है। सजय अनेक दुर्गुण बताकर युधिष्ठिर को युद्ध से विरत करने की चेष्टा करते हैं। युधिष्ठिर भी यही चाहते हैं किन्तु क्षत्रिय भिक्षावृत्ति को कैसे अपना सकता है ? अत अधिकार प्राप्ति के लिए युद्ध अनिवार्य हो जाता है।

युद्ध की विस्तृत कथा का सक्षेप करने के लिए कवि ने प्रजागर पर्वान्तर्गत कथा को छोड दिया है और सजय के उत्तर को सक्षिप्त करके भगवान के दूतत्व को प्रारम्भ किया है।

'महाभारत' के निम्न प्रसग 'कृष्णायन' मे नहीं लिए गये

धृतराष्ट्र को विदुर का उपदेश,[1] धृतराष्ट्र को सनत्सुजात का उपदेश,[2] व्यास एव गाधारी का परामर्श,[3] भीष्म जी के द्वारा पाण्डवो के गुण एव शक्ति का परिचय[4]।

कृष्ण के दूतत्व से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओ का सक्षेप किया है और पात्रो के विस्तृत विवाद को नहीं लिया गया इस प्रसग में निम्न स्थल छोड दिए हैं

युधिष्ठिर एव कृष्ण का विस्तृत वार्तालाप, कृष्ण और भीम की वार्ता, भीम का शान्ति सन्देश तथा कृष्ण का उन्हें उत्तेजित करना। अर्जुन एव नकुल का कथन।

इन प्रसगो को छोडकर कवि ने द्रौपदी के कथन का मार्मिक चित्रण किया है। 'महाभारत' मे द्रौपदी कृष्ण को अपने अपमान की स्मृति दिलाती है और कहती है कि शान्ति तथा सन्धि करते हुए मेरे पूर्व अपमान को न भूलिएगा ——

अय ते पुण्डरीकाक्ष दु शासन करोद्धृत
स्मर्तव्य सर्वकार्येषु परेषा सधिमिच्छता।[5]

× × ×

करन लगहि अरि-सग जब, सधि आपु विन्वेश।
दुस्सासन कर्षित प्रभो। बिसरहि नहिं ये केश।[6]

भगवान की यात्रा, मार्ग के शुभाशुभ शकुन और वृक स्थल पर आकर ठहरने तक की कथा दोनो ग्रथो मे समान रूप से मिलती है। 'महाभारत' मे दुर्योधन कृष्ण के लिए मार्ग मे विश्राम-स्थलो की व्यवस्था करता है। 'कृष्णायन' मे वह स्वागत के

---

१ म० उद्योग० अध्याय ३४
२ म० उद्योग० अध्याय ४२
३ म० उद्योग० अध्याय ६७
४ म० उद्योग० अध्याय ४६
५ म० उद्योग० ८२।३६
६ कृष्णायन, पृ० ४८३

हेतु अस्वीकृति देता है और यह कार्य धृतराष्ट्र अन्य पुत्रों से करवाते हैं ।[1] यद्यपि इस कथा परिवर्तन का कोई महत्त्वपूर्ण कारण नही कहा जा सकता फिर भी इससे कवि की कौरवों, विशेषतः दुर्योधन के प्रति भावना स्पष्ट हो जाती है। वह किसी प्रकार की उदारता की सम्भावना भी दुर्योधन के चरित्र मे स्वीकार नही करता ।

'कृष्णायन' में भीष्म द्रोण और विदुर दुर्योधन की भावना के विरोध मे सभा-त्याग कर चल देते है। इस प्रकार का कोई संकेत 'महाभारत' मे नही है। भगवान कृष्ण कुन्ती के पास जाकर कुशल पूछते है और पुनः दुर्योधन के पास जाते है। वह भोजन का निमंत्रण देता है किन्तु कृष्ण स्वीकार नही करते। वे विदुर के यहा जाकर सब परिस्थिति से अवगत होते है। विदुर प्रेम मे वशीभूत होकर भगवान को लौटने की प्रार्थना करते हैं पर कृष्ण उनको अपने दूतत्व का महत्व समझाते है।

उक्त कथांश दोनों ग्रन्थो मे समान है । अन्तर केवल विस्तार और संक्षेप का है । कृष्णायनकार ने अत्यन्त सक्षिप्त शैली मे 'महाभारत' के पांच अध्यायों की कथा चित्रित की है। दुर्योधन और कृष्ण का सवाद 'कृष्णायन' मे भावानुवाद के रूप में मिलता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है। 'महाभारत' में दुर्योधन का निमंत्रण पाकर कृष्ण स्पष्ट उत्तर देते हैं :

सम्प्रीति भोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः ।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम् ।[2]

अर्थात भोजन प्रीति मे या आपत्ति मे होता है और हमारे साथ तुम्हारी प्रीति नही तथा आपत्ति में हम नहीं है ।

परि विपत्ति अथवा वश प्रीति
खात परान्न सुजन जग रीति
मोहि संग प्रीति तुम्हारि नहि, विपत्ति ग्रस्त मैं नाहि ।
केहि कारण भोजन करहुं, कस निवसहुं गृहमाहि ॥[3]

'महाभारत' के एक श्लोक में व्यक्त भाव को कवि ने चार पंक्तियों में अभि-व्यक्त किया है। इस प्रसंग के उपरान्त विदुर के घर भोजन तथा सभा-प्रवेश का चित्रण समान रूप से श्लाघ्य है।

'महाभारत' में भगवान कुलक्षय की भीति दिखाकर कौरवों को युद्धविरत करने की चेष्टा करते हैं किन्तु 'कृष्णायन' में कुल क्षय के साथ एक राष्ट्र निर्माण की भावना पर बल दिया गया है। कृष्ण का कथन है कि कुरुओं को सम्राट स्वीकार करके हमने

---

१. म० उद्योग ८५।११, १४, १५, १७, कृष्णायन, पृ० ४८६
२. म० उद्योग, ९१।२५
३. कृष्णायन पृ० ४९०

अपने वंश के एकछत्रराज्य की कामना त्याग दी है, जो बलिदान हमने किया है वह इस संघर्ष के कारण व्यर्थ नहीं जाना चाहिए।[1]

भगवान के वक्तव्य के पूर्व अनेक अवान्तर कथाओं को छोड़ दिया गया है। इस प्रबन्ध में इनकी कोई उपयोगिता नहीं थी। परशुराम द्वारा दम्भोद्भव की कथा में नरनारायण स्वरूप अर्जुन एवं कृष्ण के महत्व का प्रतिपादन,[2] कण्व मुनि द्वारा दुर्योधन को समझाना।[3] मातलि का उपाख्यान।[4] गरुड का गर्व-भंजन।[5] गालव विश्वामित्र का उपाख्यान।[6] ययाति का स्वर्गपतन।[7]

'महाभारत' में सर्वत्र प्रसंगों के द्वारा भगवान कृष्ण की लोकव्यापी महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। आधार ग्रन्थ के इस विस्तार को 'कृष्णायन' में स्थान नहीं मिला। संकेत रूप में कवि ने कृष्ण की महत्ता को स्वीकार कर यथा समय उसकी अभिव्यक्ति की है।

कृष्ण के वक्तव्य के उपरान्त धृतराष्ट्र, भीष्म तथा अन्य व्यक्ति दुर्योधन को समझाते हैं, किन्तु वह किसी की बात नहीं मानता 'महाभारत' में दुःशासन कृष्ण की बात सुनकर कहता है कि ऐसा लगता है जैसे भीष्म, द्रोण आदि हमको बांधकर पाण्डवों के आधीन कर देंगे। 'कृष्णायन' में ऐसा प्रसंग नहीं है।[8] गान्धारी के द्वारा दुर्योधन को समझाने का प्रसंग भी 'कृष्णायन' में छोड़ दिया गया। सात्यकि के द्वारा दुर्योधन की कुटिलता की सूचना और कृष्ण का विराट दर्शन कृष्णायनकार ने यथावत चित्रित किया है।

भगवान के दूतत्व के प्रसंग को लेकर कृष्णायनकार ने एक विशेष बात पर बल दिया है। वह एक राष्ट्र के निर्माण की महती आवश्यकता समझता है। एक राष्ट्र, एक संस्कृति-निर्माण के लिए छोटे-छोटे राज्यों को स्वार्थ का त्याग करना होता है, तभी विराट और शक्तिशाली राष्ट्र की स्थापना होती है।

युद्ध प्रसंग 'महाभारत' में वर्णित युद्ध प्रसंग को तीन भागों में विभाजित किया गया है

१ सैन्य निर्माण।

---

१ म० उद्योग० ९५। २३-२५, कृष्णायन, पृ० ४९७
२ म० उद्योग० अध्याय ९६
३ म० उद्योग० अध्याय० ९७
४ म० उद्योग० अध्याय० १०३
५ म० उद्योग० अध्याय १०५
६ म० उद्योग० अध्याय १०६
७ म० उद्योग० अध्याय १२१
८ म० उद्योग० १२८। २३-२४

२. अर्जुन-मोह।
३. रणस्थली।

मिश्रजी ने सैन्य-निर्माण का चित्रण अत्यन्त संक्षेप मे किया है। शेष दो भागों का विस्तार से वर्णन हुआ है। सैन्य-निर्माण मे दोनों शिविरों के सेनापतियों का चुनाव, भीष्म के प्रसंग में कर्ण का युद्ध से विरत होना। उलूक का दूतत्व तथा अपने वीरो का वर्णन प्रमुख है।

'महाभारत' में पहले पाण्डवों के सेनापति के चुनाव का प्रसंग है 'कृष्णायन' में कौरव पक्ष को प्रथम रक्खा गया है। युधिष्ठिर क्षणभर को इस युद्ध प्रसंग से क्षुब्ध होते है पर कृष्ण उनको कर्तव्य का ज्ञान करा कर उत्साहित कर देते है। यह प्रसंग दोनों ग्रन्थों मे समान है।

'महाभारत' में भीष्म कर्ण के साथ युद्ध करने के लिए स्पष्ट अस्वीकृति देते हैं। 'कृष्णायन' में भीष्म कर्ण के नायकत्व पर आपत्ति करते हुए उसे अर्धरथी बताते हैं तो कर्ण स्वयं युद्ध से विरत होता है।[1] 'कृष्णायन' मे कुरुक्षेत्र के मेले के कारण कथा-प्रवाह युद्ध से पृथक् होकर क्षण भर के लिए आनन्दित वातावरण में हो जाता है। यह कवि की उद्भावना है। इससे वह राजनीति की एक विशेषता बताना चाहता है कि पवित्र त्योहार पर युद्ध जैसा जघन्य कार्य भी रोका जा सकता है।

उलूक के दूतत्व का कवि ने यथावत चित्रण किया है। 'महाभारत' का उलूक दुष्ट और उद्दण्ड है 'कृष्णायन' का दूत मूल रूप में विनीत है।[2] युद्ध का यह प्रसंग 'कृष्णायन' मे संक्षेप मे चित्रित है। द्वितीय प्रसंग अर्जुन का मोह है। दोनों सेनाओं के मध्य रथारूढ़ होकर वह मोह-ग्रस्त हो जाता है और कृष्ण मोह के बादलों को विच्छिन्न करने के हेतु, ज्ञान का उपदेश देते हैं। इस प्रसंग में कथा का अभाव है अतः इस प्रसंग के प्रभाव पर धर्म-दर्शन नामक अध्याय में प्रकाश डाला जायेगा।

रणस्थली : 'महाभारत' के सम्पूर्ण युद्ध का वर्णन कवि ने जय काण्ड मे किया है। इसमें कवि की विशेषता यह है कि इसनेकिसी भी रूप में कृष्ण को चित्रपट से हटने नही दिया। युद्ध की प्रमुख घटनाओं को कृष्ण के प्रभाव के अन्तर्गत चित्रित करते हुए पाण्डव-विजय की घोषणा धर्म-विजय के रूप में की है।

परिवर्तन-परिवर्धन : 'महाभारत' में युधिष्ठिर आज्ञा मांगने जाते है तो अर्जुन नकुल, सहदेव आदि उनको रोकने की चेष्टा करते हुए पूछते है कि राजन् क्या कर रहे हैं ? 'कृष्णायन' मे धर्मराज को शत्रुपक्ष की ओर जाते देखकर सब भयभीत होकर कृष्ण से पूछते हैं।[3]

---

१. म० उद्योग० १५६ । २४, कृष्णायन, पृ० ५१०
२. म० उद्योग० १६१ । १०, कृष्णायन, पृ० ५२८
३. म० भीष्म० ४३ । १६-१८, कृष्णायन, पृ० ६१६

कृष्ण के उत्तर दोनों ग्रन्थों मे समान है।

एषभीष्म तथा द्रोण गौतम शल्यमेव च।
अनुमान्य गुरून सर्वान योत्स्यते पार्थिवोऽरिभि ।[1]

× × ×

धर्म युद्ध हित बद्धकटि, धम निधान नरेश
गुरुजन ढिग गवनेलहन, आशिष समर निदेश ।।[2]

'महाभारत' मे, द्रोण आदि ने आज्ञा न लेने पर शाप देने की बात कही। 'कृष्णायन' में इस प्रसग को नहीं लिया गया।[3] 'कृष्णायन' मे अत्यन्त सौहार्द पूर्ण वातावरण मे इस स्थिति का चित्रण है।

दूरहि ते लखि स्यदन त्यागा
गत रण राग, दृगन अनुरागा

× × ×

विगत निमेष, विलोचन निश्चल
विस्मृत क्षण, रण क्षेत्र सैन्य दल।[4]

भीष्म की स्थिति का प्रकाशन कवि ने मार्मिकता से किया है। मानसिक आसक्ति, व्यावहारिक विवशता का एक साथ व्यक्ति के हृदय पर आक्रमण और सयम के साथ इन सब परिस्थितियो को स्वीकार कर युद्ध करने की बलवती भावना का प्रकाशन सजीव रूप मे हुआ है। कवि ने 'महाभारत' की स्पष्टोक्तियो को उदार समर्पण मे परिवर्तित कर दिया है। इस स्थल पर कवि पाठक के हृदय को अधिक प्रभावित कर सका है।

इस प्रेममय मिलन के उपरान्त भीषण युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। कवि ने युद्धोन्माद का हृदय-ग्राही चित्रण किया है। भीष्मपतन तक के शेष युद्ध का चित्रण कृष्णायन कार सांकेतिक शैली में करता है। वह घटनाओ की सूचना देता हुआ मुख्य घटना पर आकर विराम लेता है।

'महाभारत' में दुर्योधन भीष्मपतन तक कर्ण से विशेष चर्चा नहीं करता। किन्तु दोनों ग्रन्थों मे आठवें दिन कर्ण दुर्योधन को ताने देता है कि समुचित समय आने पर तुमने भीष्म को अधिनायक बनाकर मेरा अपमान कर दिया।[5]

१. म० भीष्म० ४३।२२
२ कृष्णायन पृ० ६१६
३ म० भीष्म० ४३। ३८, ५३, ७६
४ कृष्णायन, पृ० ६१६,
५ कृष्णायन, पृ० ६३७,

मूलग्रन्थ में दुर्योधन अपनी सेना को भागता देखकर युद्ध-भूमि में ही कर्ण के साथ अन्य निश्चय की घोषणा करता है। 'कृष्णायन' में वह पहले कर्ण के पास, बाद में भीष्म के पास जाकर, ऐसी अभिव्यक्ति करता है।[1] सेना के पराजय की स्थिति में कर्ण के पास परामर्श हेतु जाना और भीष्म से ऐसा प्रस्ताव करना परिस्थिति के अनुकूल मनस्थिति का परिचायक है। यह प्रसंग कवि की मौलिक निजी सूझ है। इससे प्रथमतः कर्ण के प्रति दुर्योधन का अटूट विश्वास प्रकट होता है, दूसरे परास्त व्यक्ति की द्वन्द्वात्मक मनोवृत्ति का उद्घाटन होता है।

'महाभारत' मे बाणों से आच्छादित रथ को देखकर कृष्ण रथ से कूद पड़ते हैं, 'कृष्णायन' में अर्जुन की शिथिलता के कारण कृष्ण चतुराई से रथ चलाते हैं। और दुर्योधन घेरा डालता तब वे रथ से कूदते हैं। इससे भक्त के प्रण की रक्षा होती है। अर्जुन मे शक्ति का सचार होता है।

दसवें दिन के युद्ध मे निम्न प्रसगों को छोड़ दिया है।

भीष्म से मृत्यु का उपाय पूछना, भीष्म दुर्योधन संवाद, महारथियों का द्वन्द्व युद्ध। इन प्रसंगों को छोड़ कर कवि सीधा अर्जुन-भीष्म युद्ध का चित्रण करता है। 'कृष्णायन' मे पहले वह स्वयं युद्ध के लिए आता है और पुन. अर्जुन से रक्षित होकर आता है।

> एवं ते पाण्डवा. सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
> विव्युध समरे भीष्म परिवार्य समन्ततः ॥[2]

भीष्म शिखण्डी से कहते है :—

> तिनहु संग नहिं रणकरत, रहे पूर्व जे नारि।[3]

इस कारण युद्ध-विरत भीष्म पार्थ के बाणों से घायल होकर गिर पड़ते है। पतन से पूर्व शिखण्डी के मुख से प्राचीन बातो की पुनः स्मृति और भीष्म द्वारा यह सोचना कि, वास्तव मे धन के आधार पर पले इस शरीर को अब गिर जाना चाहिए, कवि की मौलिक सूझ है। इससे सिद्धान्त रुप में पराधीन व्यक्ति की मनस्थिति स्पष्ट होती है।

> महात्याग ममगौरव धामा, दास्यहि आजु तासु परिणामा।[4]

पतन के उपरान्त अर्जुन मे उपधान और कर्ण-मिलन प्रसंगों में पूर्ण साम्य है। कवि ने 'महाभारत' के इन विस्तृत प्रसंगों को अत्यन्त संक्षेप मे प्रस्तुत किया। भीष्म

---

१. म० भीष्म० ५८।३६, कृष्णायन पृ०, ६४६
२. म० भीष्म० ११६।१
३. कृष्णायन, पृ० ६५६
४. कृष्णायन, पृ० ६६१

एव कर्ण के वार्तालाप मे कर्ण की दृढ मैत्री और नियति-शक्ति की स्थापना हुई है। कर्ण के हृदय मे भीष्म के प्रति उदारभाव उदित होते हैं और भीष्म कर्ण को सदुपदेश देकर उसके जन्म की कथा कह कर, सन्धि की चेष्टा करते हैं। कर्ण स्थिति की वास्तविकता को समझा कर युद्ध के लिए आज्ञा लेकर चल देता है।

'महाभारत' मे नारद द्वारा कर्ण-जन्म-वृत्तभीष्म को बताने की बात कही गई है, 'कृष्णायन' मे नारद का प्रसग नही, केवल व्यासजी का नाम है।[1] 'महाभारत' का कर्ण अधिक भावुक नही होता 'कृष्णायन' मे कर्ण भावना मे निमग्न होकर अपने जन्म की घटना को दैवगति बनाता है।

पै न जननि प्रति ममउर रोषा
देत सदा मैं भाग्यहि दोषा।[2]

कर्ण तथा अन्य मान्य महारथियों के परामर्श से द्रोणाचार्य सेनापतिपद पर विभूषित होते हैं। इस स्थल पर निम्नस्थ प्रसगो को छोड दिया है। राजाओ द्वारा कर्ण का स्मरण[3] कर्ण की शूरता का वर्णन[4] कर्ण की रथयात्रा[5] भीष्म जी के प्रति कर्ण के वचन।[6] द्रोण के सेनापतित्व को लेकर 'महाभारत' मे उक्त प्रसग विस्तार से चित्रित है 'कृष्णायन' मे मूल उद्देश्य दूसरा होने के कारण इन विस्तृत प्रसगो की सूचना भी नही दी गई।

परिवर्तन-परिवर्धन दुर्योधन द्वारा युधिष्ठिर को जीवित पकडने की याचना दोनो ग्रन्थो मे समान है। 'महाभारत' मे दुर्योधन अपना मन्तव्य स्पष्ट कर देता है। 'कृष्णायन' मे केवल "पाठ जो मातुल पूर्व रटावा" कहकर कुरुराज के मन्तव्य की परोक्ष अभिव्यक्ति की है। कृष्णायनकार 'महाभारत' जैसी स्पष्टता का प्रकाशन नही कर सका और आधार ग्रन्थ के प्रभाव को ग्रहण करने मे भी आशिक रूप से सफल हुआ है। मूल ग्रन्थ मे द्रोण उद्घोषणा के साथ युधिष्ठिर को बाधने की प्रतिज्ञा करते हैं 'कृष्णायन मे वह केवल कुरुराज को विश्वास दिलाते हैं और प्रयत्न की प्रतिज्ञा करते हैं

कृत-प्रण करि हो यत्न पै, गहन हेतु कौन्तेय।[7]

सघर्ष के प्रारम्भ मे सकुल युद्ध होता है। अर्जुन द्रोण को रोकने के लिए बढते है तो चिरप्रतिक्षित कर्ण सामने आ जाता है। उससे युद्ध करके धमराज की

---

१ म० भीष्म० ११९। ६, कृष्णायन, पृ० ६६६
२ कृष्णायन, पृ० ६६७
३. म० द्रोण० १। ४४
४ म० द्रोण० १। ४७
५ म० द्रोण० २। २९
६ म० द्रोण० ३। १०-१२
७ कृष्णायन, पृ० ६७२

रक्षा के निमित्त आगे बढ़ते है। 'कृष्णायन' में उक्त सम्पूर्ण वृत्त यथावत चित्रित किया गया है।

'महाभारत' में संशप्तकों की ललकार पर अर्जुन युद्ध क लिये तैयार होते हैं तो युधिष्ठर से वार्तालाप होता है। 'कृष्णायन' में कृष्ण ललकार मे किसी दुरभिसन्धि की स्थिति देखते, युधिष्ठिर की रक्षा के लिय सत्यजित को नियुक्त कर अर्जुन को युद्ध की आज्ञा देते है।[1] अर्जुन और संशप्तकों का भंयकर युद्ध होता है। संशप्तकों की पराजय होती है किन्तु वे नारायणी सेना का सहारा पाकर पुनः युद्ध करने के लिये स्थिर होते जाते है।

'महाभारत' मे नारायणी सेना की उपस्थिति का चित्रण है।[2] 'कृष्णायन' मे संशप्तकों की प्रथम पराजय के उपरान्त दुर्योधन द्वारा नारायणी सेना भेजने का संकेत है।

विचलित कछुक त्रिगर्त जब कुरुपति ताही काल,
पठयो नारायण अनी, हरि प्रदत्त विकराल ॥[3]

सत्यजित के वध का चित्रण करके शतानीक, क्षेत्र, वसुदान आदि के वध का संकेत किया गया है। गुरुद्रोण के भंयकर युद्ध के समय सात्यकि आदि उन्हें घेर लेते हैं तो अर्जुन का शङ्खनाद सुनाई देता है। अर्जुन का आगमन और भगदत्त की गजसेना के विनाश तथा भगदत्त-वध का प्रसंग कवि ने मार्मिकता से चित्रित किया है। 'महाभारत' के विस्तृत प्रसंग को संक्षिप्त करके भीम-भगदत्त और अर्जुन-भगदत्त-युद्ध का सजीव वर्णन किया है।

सोऽर्करश्मिनिभांस्तीक्ष्णांस्तोमरान् वै चतुर्दश।
अप्रेषयत् सव्यसाची द्विधैकैकमथाच्छिनत ॥[4]

× × ×

प्रेरेतोमर पै तबहुं, प्रबल प्राच्य अवनीश।
करतविफल काटउ विजय, अर्धचन्द्र शर शीश ॥[5]

उक्त प्रसंगों के कथाप्रभाव में कवि ने महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किए। उसकी दृष्टि महाभारतीय दृष्टि से समान है अतः उद्देश्य की समानता के कारण भारतीय आख्यान का परिवर्तन सीमित रूप मे ही हो पाया है।

---

१. म० द्रोण० १७। ३८-४४, कृष्णायन, पृ० ६७८
२. ततस्ते संन्यवर्तन्त संशप्तकगणा: पुनः।
नारायणाश्चगोपाला मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥ म० द्रोण० १८।३१
३. कृष्णायन, पृ० ६८०
४. म० द्रोण० २६।७
५. कृष्णायन पृ० ६८४

अभिमन्यु-वध-प्रसग 'कृष्णायन' मे गुरुद्रोण के चक्रव्यूह-निर्माण को देख कर युधिष्ठिर चिन्तित हो उठते हैं और भीम से अपनी चिन्ता प्रकट करते हैं। आधार ग्रन्थ मे युधिष्ठिर सीधे अभिमन्यु से बात करते हैं।[1] 'महाभारत' मे युधिष्ठिर अभिमन्यु के व्यूह-भेदन ज्ञान से परिचित हैं और व्यूह-भेदन मे समर्थ व्यक्तियो मे अभिमन्यु का नाम भी लेते हैं।

'कृष्णायन' मे अभिमन्यु स्वय अपनी शक्ति का परिचय देता है।

त्व वार्जुनो वाकृष्णोवा भिन्द्यात् प्रद्युम्न एव वा।[2]

कृष्णायनकार ने—

वृथहि शोक उद्विग्न तात मन।

करि मैं सकल व्यूह विध्वसन[3] —कहलाकर अभिमन्यु की शक्ति और साहस का परिचय दिया है। आधार ग्रन्थ मे धर्मराज की चिन्ता की मात्रा अधिक दिखाई गई है। 'कृष्णायन' मे कवि अपने महान चरित्र को अधिक चिन्तित रूप मे प्रस्तुत नही कर सका।

परिवर्तन-परिवर्धन 'महाभारत' मे द्रोणाचार्य के द्वारा अभिमन्यु की प्रशसा करने पर दुर्योधन पक्षपात का आरोप लगाता है। 'कृष्णायन' मे लक्ष्मण-वध के उपरात वह आचार्य पर आरोप लगाता है।[4] यह परिवर्तन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। महाभारत' मे दुर्योधन के सतत सदेहशील चरित्र का प्रकाशन होता है कृष्णायनकार ने पुत्र के दुख से दुखी पिता के हृदय का क्षोभ इन पक्तियो मे स्पष्ट किया है।

लेहि प्रथम मम सुत प्रतिशोधा,
प्रविशन देहि व्यूह तब योधा।[5]

'कृष्णायन' मे द्रोणाचार्य चाहते हैं कि अन्य पाण्डव व्यूह मे प्रवेश कर जायें जिससे वे जीवित युधिष्ठिर को पकड सकें। पर दुर्योधन सुत-प्रतिशोध की ज्वाला से ज्वलित किसी को अन्दर प्रविष्ट न कराने की आज्ञा देता है। वह समझता है कि इन सबके आने से अभिमन्यु का पक्ष प्रबल हो जायेगा और लक्ष्मण का प्रतिशोध न लिया जा सकेगा। द्रोणाचार्य कुरुराज के मन की अवस्था को जान लेते हैं और विवशता मे अभिमन्यु पर सामूहिक आक्रमण करते हैं। कवि ने अपनी सूझ से यह उल्लेखनीय परिवर्तन किया है।

---

१ म० द्रोण० ३५।१७, कृष्णायन पृ०६८५
२ म० द्रोण० ३५।१५
३ कृष्णायन, पृ० ६८६
४ म० द्रोण० ३६।१८
५ कृष्णायन, पृ० ६६१

अभिमन्यु वारी-वारी से कर्ण शल्य आदि को परास्त करता है। अन्त में अभिमन्यु दुःशासन-सुत के गदाप्रहार से धराशायी हो जाता है। इस प्रसंग को कवि ने पूर्ण प्रभाव के साथ चित्रित किया है :

दौःशासनिरथोत्थायकुरूणां कीर्ति वर्धनः।
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्य ताडयत् ॥[१]

'महाभारत' में दुःशासन पुत्र के कार्य को 'कुरुणां कीर्तिवर्धन' कहा है, किन्तु कृष्णयानकार अधर्म युद्ध करने वाले को कुलांगार कहकर सम्बोधित करते हैं।

दुःशासन सुत पुनि उठेउ, उठिनहि सकेऊ कुमार।
कुलांगार कीन्हेउ उठत, शिशु शिर गदा प्रहार ॥[२]

युद्ध की समाप्ति पर अर्जुन लौटते हैं। 'महाभारत' में अर्जुन के हृदय में आशंका का उदय होता है। अमंगल सूचनाएं मिलती हैं और वे कृष्ण से किसी अनिष्ट की आशंका व्यक्त करते हैं, कृष्ण बार-बार भाइयों की सुरक्षा का आश्वासन देते हैं।[३] 'कृष्णायन' में लौटते हुए अर्जुन युयुत्सु द्वारा किसी शिशु के मरने की बात जानकर आशंका-ग्रस्त होते हैं।

को यह शिशु जेहि समर संहारी,
हास उलास शत्रु दल भारी।
कुशल तो तात सुभद्रा-नन्दन।[४]

कृष्णायनकार ने विस्तार कम करने के हेतु युयुत्सु की घोषणा के आधार पर अर्जुन की आशंका व्यक्त की है। इससे कवि ने दो प्रसंगों को एक रूप होने के कारण एक कथांश में मिला दिया है।

'महाभारत' में जयद्रथ-वध[५] की प्रतिज्ञा क्रोध और प्रतिशोध की पृष्ठभूमि में हुई है। 'कृष्णायन' में कवि ने इस प्रसंग में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन किया है। अर्जुन कहते हैं कि 'जो मोह कृष्ण के ज्ञानोपदेश से दूर नहीं हुआ वह पुत्र-वध से दूर हो गया। मुझे ज्ञान हो गया है कि इस संसार में कोई भी जन्मगत सम्बन्धी नहीं है।'

दे न सके जो तुम प्रभु ज्ञाना।
दीन्ह सुवन करि निज बलिदाना ॥[६]

---

१. म० द्रोण० ४६।१२
२. कृष्णायन, पृ० ६९६
३. म० द्रोण० ७२।६७
४. कृष्णायन, पृ० ६९७
५. म० द्रोण० ७३।२०,२१,४६,४७
६. कृष्णायन, पृ० ७०१

समभेउ आजहि तात मैं, व्यर्थ जगमगल नात।
सहज बन्धु नहि कोउ जगत, सुजनहि सुजनन भ्रात।[1]

जयद्रथ-वध-प्रसग कृष्णायनकार ने कृष्ण की महत्ता प्रदर्शन हेतु इस कथाश मे जो परिवर्धन किया है वह इस प्रकार है। 'महाभारत' मे अर्जुन की प्रतिज्ञा असफल होने की अवस्था मे कृष्ण क्या करेंगे ? ऐसा प्रसग नही है। 'कृष्णायन' मे कृष्ण अपने सारथी दारुक को बुलाकर कहते हैं कि पार्थ-हित युद्ध के लिए कल रथ ले आना, और जब मैं शखनाद करू तो उस रथ को मेरे पास ले आना जिससे यदि अर्जुन प्रतिज्ञा पूर्ति मे असफल हो जाता है तो मैं जयद्रथ तथा अन्यो का विनाश कर दूंगा।[2]

यह परिवर्धन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कवि यह बताना चाहता है कि कृष्ण ने जो कुछ किया वह आर्य-राष्ट्र सस्थापनार्थाय किया। यदि अर्जुन असुर-वृत्ति-सम्पन्न रिपु को मारने मे समर्थ नही होते तो कृष्ण को यह कार्य करना उचित होगा। उसमे कृष्ण की महत्ता की स्थापना स्वत हो जाती है।

प्रारम्भ मे आचार्य और शिष्य का युद्ध होता है, अर्जुन कृष्ण के सकेत से द्रोण को बिना परास्त किए आगे बढ जाते हैं। दुर्योधन यह देखकर आचार्य को कटुवचन कहता है, किन्तु आचार्य का रौद्र रूप देखकर विनम्र हो जाता है। तब आचार्य उसे कवच बाधकर अर्जुन से युद्ध करने भेजते हैं। दुर्योधन अनेकबार परास्त होता है। अर्जुन उल्लेखनीय व्यक्तियो का वध करते हुए बढ जाते हैं। अम्बिष्ठ, नियतायु दीर्घायु आदि का वध होता है। इस प्रसग मे कवि 'महाभारत' के एक-एक अध्याय की कथा का एक-एक दोहे मे अन्तर्गत सक्षेप करता हुआ द्रुतगति से आगे बढता है। मध्य मे युधिष्ठिर की आकुलता का चित्रण किया गया है।

विन्द अनुविन्द के वध-प्रसग मे 'कृष्णायन' मे 'महाभारत' के अतिप्राकृत तत्व-अर्जुन द्वारा जलाशय निर्माण और नारद-आगमन प्रसग का अभाव है।[3] इस प्रसग को कवि ने अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे चित्रित किया है।[4] 'महाभारत' मे विन्द अनुविन्द प्रसग के उपरान्त कर्ण एव भीम के युद्ध का विस्तृत चित्रण है। 'कृष्णायन' मे कवि इस प्रसग के उपरान्त दुर्योधन द्वारा कर्ण से की गई प्रार्थना का वर्णन करता है। कवि मध्य के प्रसगो को छोड कर युधिष्ठिर की चिन्ता-विमोचन-हेतु देवदत्त का उद्घोष

---

१. कृष्णायन, पृ० ७०१

२ सकि है जो नहि हति रिपुहि, पार्थ रहत दिन शेष।
 करिहौं पूर्ण वयस्य प्रण, बधि मे सिन्धु नरेश।
 बाजहि जेहिक्षण स्वर ऋषभ, पाँचजन्य महघोर।
 हाँकेउ सुननहितात सुम रथ सेवेगमम ओर . कृष्णायन, पृ० ७०५

३ म० द्रोण० ६६।५६-६२

४ कृष्णायन, पृ० ७१७

प्रस्तुत कराता है। 'महाभारत' में भूरिश्रवा और सात्यकि के प्रसंग से पूर्व आये अनेक लघु वृत्तों को छोड़ कर कृष्णायनकार सीधे भूरिश्रवा के हाथ कटने और वध का चित्रण करता है।[1] हरि सूर्य को अस्तोन्मुख दिखाते हैं और जयद्रथ का वध होता है। यहां कवि ने भक्ति भावना से आलोड़ित होकर कृष्ण के ईश्वरत्व का संकेत किया है। कृष्ण के द्वारा अस्तोन्मुख रवि दिखाने की अति प्राकृत घटना को युग सम्मत रूप देने का प्रयास न करके यथावत चित्रित किया है।[2]

"द्रोण-वध. जयद्रथ-वध के पश्चात कवि रात्रियुद्ध का सांकेतिक चित्रण कर घटोत्कच-वध की सूचना देता है। 'महाभारत' के इस प्रसंग को कवि ने आख्यानवद्ध नही किया।

'महाभारत' में द्रोण का पराक्रम सर्वोपरि प्रदर्शित किया गया है। वहां युधिष्ठिर के असत्य भाषण से द्रोण विचार निमग्न होते है तो धृष्टद्युम्न उनका शिर-च्छेदन करता है। 'कृष्णायन' में कवि ने अपनी मौलिकता से इस प्रसंग को परिवर्तित किया है।

भीम गुरु के प्रति कटु वचन कहते है उनको सुनकर ग्लानि से द्रोण का ब्राह्मणत्व जागरूक होता है[3] और अन्तः प्रेरणा शरीर त्यागने को कहती है। वे विचार करते ही होते है कि उनका सिर काट डाला जाता है।[4]

इस परिवर्तन से कवि ने युधिष्ठिर के चरित्र पर लगे कलंक को धोने की चेष्टा की है। और यह सिद्ध किया है कि अन्ततः स्वधर्म पालन ही श्रेयस्कर होता है। ब्राह्मण क्षत्रिय वृत्ति को अपनाकर ब्राह्मत्व की पवित्रता से वंचित हो जाता है। अश्वत्थामा का नारायणास्त्र भी कृष्ण के चातुर्य से विफल हो जाता है। नारायणास्त्र के प्रतिकार स्वरूप भीम के शक्ति प्रदर्शन को कृष्ण रोक देते हैं। यह प्रसंग दोनों ग्रन्थों में समान है।[5]

---

१. चहेउ करन जसछिन्न शिर काढि कराल कृपाण।
शिष्य दयित अर्जुन तजेउ, ताहिक्षण क्षुर वाण। कृष्णायन, पृ० ७२२

२. अस्तोन्मुख रवि हरि दरसावा॥ कृष्णायन पृ० ७२४

३. विषम वृकोदरवाणि, अक्षर अक्षर मर्मविद,
उपजी भीषण ग्लानि, ज्ञान-खानि आचार्य उर॥ कृष्णायन पृ० ७२६

४. कृष्णायन, पृ० ७३०

५. एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद् भूमिमवर्तयन्।
निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोध संरक्त लोचनम्॥ म० द्रोण० २००।१८
× × ×
ज्वाला वलयित भीम तनु, लखिधाये यदुराय।
गदा छीनि कीन्हेउ विरथ, संतत भक्त सहाय॥ कृष्णायन, पृ० ७३१
(कवि इस प्रसंग में 'महाभारत' के श्लोकों का भावानुवाद करता दिखाई देता है)

सबके परामर्श से कर्ण सेनापति बनता है। 'महाभारत' में प्रथम दिन के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। 'कृष्णायन' में इस प्रसग का प्रारम्भ कर्ण द्वारा आत्म-प्रशसा और शल्यको सारथी रूप मे मागने से होता है।[1] कवि ने सत्रहवें दिन के युद्ध की कथा पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है। इस दिन की प्रमुख घटना है कर्ण-वध।

कर्ण-वध से पूर्व कवि अनेक घटनाओ का चित्रण करता है। पर्याप्त अनुनय विनय के उपरान्त शल्य सारथ्य स्वीकार करते हैं। वे उत्तर म मनमाने वचन कहने की छूट प्राप्त कर लेते हैं। दोनो ग्रथो मे यह प्रसग समान है। 'महाभारत' मे दुर्योधन शल्य की समानता कृष्ण से करता है 'कृष्णायन' मे इस प्रकार की समता का उल्लेख नहीं है।

'कृष्णायन' मे भीम द्वारा दु शासन-वध का प्रसग अत्यन्त मार्मिक है। 'महाभारत' मे भीम पहले दुशासन से पूछता है कि किस हाथ से उसने द्रौपदी के बाल खींचे। दु शासन का गर्व पूर्ण उत्तर पाकर भीम उसका हाथ उखाड कर उससे ही मारता है पुन वक्ष का रक्तपान करता है। 'कृष्णायन' के चित्र मे इतनी भयकरता नहीं आ पाई जितनी 'महाभारत' में चित्रित है।

कर्णार्जुन का द्वैरथ प्रारम्भ होता है तो अर्जुन कर्ण के आत्मज को मारकर अपने पुत्र का बदला लेता है।[2] कवि 'महाभारत' के आधार पर दोनो वीरो की तुलना करता है। कर्ण-वध के प्रसग मे कवि 'महाभारत' मे वर्णित कथा मे दो अशों को लेता है। कर्ण द्वारा सर्पमुख वाण का प्रहार और कृष्ण के सचालन कौशल से अर्जुन की रक्षा तथा कर्ण के रथ का पहिया धसना तथा अर्जुन द्वारा वध। इन प्रसगों को कवि ने अत्यन्त सक्षेप मे चित्रित किया है। 'महाभारत' मे आये अश्वसेन और कर्ण के वार्तालाप, शल्य और कर्ण की वार्ता को कवि ने छोड दिया है। सर्पमुख बाण के प्रसग को लेकर कर्ण के चारित्रिक उत्कर्ष की स्थिति का प्रकाशन हो सकता था पर सम्भवत कवि को उसके हेतु न तो अवकाश रहा होगा और न विचारधारा। 'महाभारत' मे वर्णित शल्य और कर्ण के प्रसग को भी अवाछित समझ कर छोड दिया गया क्योंकि इस प्रसग से वीरता के कटुरूप का प्रकाशन होता है।

कर्ण-वध के उपरान्त जयकाण्ड की शेष कथा महाभारत' के अन्तिम दिन एव रात्रि की घटनाओ पर आधारित है। निम्न प्रसग दोनों ग्रन्थों मे समान है।

कर्ण-वध के उपरान्त सेनाओ का पलायन। कृपाचार्य का सधि के लिए दुर्योधन को समझाना। शक्ति एव सामर्थ्य की असमर्थता को देखकर कृपाचार्य कुरुराज से सधि के लिए कहते हैं।

---

१ हमरे दल महं कृष्ण सम, रथनागर मद्रेश,
जीतहुँ अर्जुन जो लहहुँ, सारथि शल्यनरेश। कृष्णायन, पृ० ७३३

२ कृष्णायन, पृ० ७३४

३ कृष्णायन, पृ० ७४५

ते वयं पाण्डु पुत्रेभ्यो हीना: स्मवल शक्तित: ।
तदत्र पाण्डवः सार्वसन्धिं मन्ये क्षमं प्रभो ।[1]

× × ×

करत सन्धि इन संग कुरुराई
नहीं कछु लाज न जगत हंसाई ।[2]

दुर्योधन कृपाचार्य के सन्धि-प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देता है । 'अस्वीकृति' के कारण दोनों ग्रन्थों में समान है । 'महाभारत 'में इस अवस्था में भी दुर्योधन का स्वरूप क्षत्रियोचित और गर्व-युक्त रहता है । 'कृष्णायन' में उसे विवश और निरुपाय भाग्य-वादी के रूप मे चित्रित किया है । प्रतिशोध की अग्नि भंयकर होती है । इस तथ्य का प्रकाशन सशप्तकों की अभिव्यक्ति में हो जाता है । 'महाभारत' मे यह प्रसंग नही है । कवि ने तत्कालीन सम्भावना के आधार पर सशप्तको से दुर्योधन को युद्ध के लिए प्रेरित किया है । इस मौलिक उद्भावना का कारण यह है कि अपनापक्ष उचित हो अथवा अनुचित, मान एवं प्रतिष्ठा की रक्षार्थ अन्तिम श्वांस तक युद्ध करना क्षत्रिय का कर्तव्य है । दुर्योधन की चिन्ता और क्षोभ को देखकर सुशर्मा कहता है: ।

जायगेह निज चहत जो जाना ।
करहिं कुरुपतिहु विपिन प्रयाण ।
एकहु संशप्तक जियत जब तक महितल मांहि ।
अरि विनाश प्रणबद्ध हम तजि हैं संगर नांहि ।[3]

कुरुराज को इन शब्दों से प्रेरणा मिली और अश्वत्थामा ने शल्य के सेनाप-तित्व का प्रस्ताव किया और सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ ।[4]

परिवर्तन परिवर्धन : 'महाभारत' में शल्य वीरता पूर्वक सेनापति के पद को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं । 'कृष्णायन' में शल्य प्रथम कुरुराज के मन से भय निवारण करते हैं तब सेनापति पद स्वीकार करते हैं । शल्य कहते है कि तुम जिसको सेनापति बनाते हो कृष्ण उसी का वध करा देते हैं और कर्ण-वध से तुम्हारे मन भी परास्त हो

---

१. म० शल्य० ४।४४
२. कृष्णायन, पृ० ७५०
३. कृष्णायन, पृ० ७५२-५३
४. अयं कुलेन रूपेण तेजसा यशसा श्रिया ।
सर्वगुणैः समुदित शल्यो नोऽस्तु चमूपतिः । म० शल्य० ६।१६

× × ×

सेनप निजकर मद्रपति, वधहु शत्रु रणमाहि । कृष्णायन, पृ० ७५४

गये हैं। अत केवल मृत्यु मात्र का वरण करने के लिए मैं सेनापति नहीं बनता।[1] इस परिवर्तन से कवि ने उस समय उपस्थित व्यक्तियों की मानसिक स्थिति का स्पश तो किया है किन्तु आधार ग्रन्थ के शल्य का चरित्र दुर्बल हो गया है। 'महाभारत' की भावना इस दोहे में स्पष्ट है।

> चहत युद्ध पै आपुजो, वद्धरक्ष तजि मौनि।
> सक्त अबहु मैं कृष्ण सह, पाण्डु सुतन रणजीनि।[2]

शल्य के निश्चयानुसार युद्ध होता है। कृष्ण भेद की नीति समझाते हैं और परिणाम स्वरूप कौरव दल विघटित हो जाता है। 'महाभारत' में शल्य वध के लिए कृष्ण युधिष्ठिर को प्रेरणा देते हैं। 'कृष्णायन' म कृष्ण अर्जुन को प्रेरणा देते हैं किन्तु "प्रकटेउ विक्रम धर्म नरेशा 'लहि एकाकि बधेउ मद्रेशा" के अनुसार धमराज मद्रेश को समाप्त करते हैं। नकुल द्वारा कर्ण के पुत्रों का वध, सहदेव के द्वारा शकुनि का वध और कुरराज का पलायन—उक्त प्रसग साकेतिक रूप मे वर्णित हैं।

अपने सभी प्रमुख वीरों के वध से व्याकुल होकर दुर्योधन रण से भाग कर एक तालाब मे आकर छिप जाता है। 'महाभारत' मे व्याध कृपाचार्य और दुर्योधन का सवाद सुनते हैं कृष्णायन' मे व्याध दुर्योधन को हृद मे प्रवेश करते देखते हैं। यह परिवर्तन सम्भवत इस हेतु किया कि धमराज का पुष्ट सूचना मिले। कृष्ण सात्यकि तथा सभी पाण्डव आकर हृद को घेर लेते हैं। 'महाभारत' मे पहले युधिष्ठिर और दुर्योधन का सवाद है, 'कृष्णायन' मे भीम प्रारम्भ म ही कुरराज को ललकारते हैं।[3] उत्तर का विस्तार से वर्णन किया गया है। 'कृष्णायन' मे दुर्योधन भीम की एक ललकार सुनकर हृद से बाहर आ जाता है।

'कृष्णायन' मे निम्न प्रसगो को छोड दिया है।

युधिष्ठिर की उदारता से पाचो मे से एक के साथ युद्ध करने की अनुमति। युधिष्ठिर को कृष्ण की फटकार, कृष्ण द्वारा भीम की प्रशसा। इस स्थल पर बलराम

---

१ सेनप पद करि मोहि प्रदाना, चहत जो केवल मम बलिदाना।
सक्ति मे न ताहि क्योंकि जदपि वृद्ध मोहि प्राण न भारो॥
कृष्णायन, पृ० ७६२

२ कृष्णायन, पृ० ७५५

३ स ते दर्पो नर श्रेष्ठ सच मान कवते गत।
यस्त्व सस्तभ्य सलिल भीतो राजन् व्यवस्थित। म० शल्य० ३१।२०
सतत निज भुजशोर्य प्रलापी, लाज न पक दुरत अघपापी।
कृष्णायन पृ० ७६१

महाभारत की द्रौपदी—

तस्य पाप कृतो द्रौणेर्न चेदद्य त्वया रणे ।
ह्रियते सानुबन्धस्य युधि विक्रम्य जीवितम् ॥
इहैव प्रायमासिष्ये तन्निबोधत पाण्डवा ।
न चेत् फलमवाप्नोति द्रौणि पापस्य कर्मण ॥'[1]—कहकर स्पष्ट करती है—

'यदि रण मे सम्बन्धियो सहित द्रोण कुमार के प्राण नही हर लेते तो मैं अनशन करके प्राण त्याग दूगी । किन्तु कृष्णायन मे—

छमहुनाथ यह दासि अभागी याचति प्राण दान द्विज लागी ।
बधेउ इनहि निज सुत, पितु भाई, सकति न नाथ बहुरि मे पायी
दैवविहित यह दुख मम भागी, करहु न अब गुरतियहि अभागी ।'[2]

द्रौपदी के चारित्रिक उत्कर्ष हेतु कवि का यह परिवर्तन मौलिक और श्लाघ्य है। इससे वह नारी के हृदय की शाश्वत करुण भावना और दया का प्रकाशन करता है ।

आरोहण काण्ड की कथा को कवि ने अनेक स्रोतो से ग्रहण करके 'महाभारत' से गृहीत कथा को अत्यन्त सक्षेप मे चित्रित किया है। युधिष्ठिर विजयी होकर पुरी मे प्रवेश करते हैं और चार्वाक के कारण उनके मन मे ग्लानि का भाव आविर्भूत होता है। कृष्ण ग्लानि का शमन करते हैं। विजय समारोहो मे अधिक उल्लास नहीं आ पाता, युधिष्ठिर भीष्म से राजनीति का उपदेश ग्रहण करते हैं। 'महाभारत' मे राज, दान धर्म के अनेक नीति तत्वों का वर्णन है। 'कृष्णायन' मे केवल राजनैतिक स्थलो की क्रमबद्धता मिलती है। अपने काव्य ग्रथ मे चरित-नायक के जीवन की पूर्णता के कारण कृष्ण का स्वर्गारोहण जिस दार्शनिक पृष्ठभूमि मे कराया गया है वही लेखक का उद्देश्य व्यक्त करता है। अन्तिम समय मे मैत्रेय की उपस्थिति 'भागवत' से प्रभावित है।

परिवर्तन-परिवर्धन 'महाभारत' मे युधिष्ठिर धृतराष्ट्र को आगे करके हस्तिनापुर मे प्रवेश करते हैं।[3] 'कृष्णायन' मे धृतराष्ट्र युधिष्ठिर के स्वागत की तैयारी नगर मे रह कर ही करते हैं। कवि ने स्वागत की तैयारी का चित्र आकर्षक रूप मे अकित किया है

आपु वृद्ध नृप स्वागत हेतु
विद्यमान द्विजसचिव समेतू'[4]

'महाभारत' मे युधिष्ठिर के अभिषेक के उपरान्त सबको यथायोग्य पद देने की चर्चा बहुत बाद मे आती है, 'कृष्णायन' मे पहले यही कार्य होता है। 'महाभारत' मे

१ म० सौप्तिक० ११।१४-१५
२ कृष्णायन, पृ० ७७७-७७८
३ म० शान्ति० ३७।३०, कृष्णायन पृ० ७८४
४. कृष्णायन, पृ० ७८५

चार्वाक धर्मराज को अपशब्द कहता है और मारा जाता है 'कृष्णायन' में वह सीधे अपशब्द न कहकर व्याज स्तुति से निन्दा करता है। मूल ग्रन्थ में चार्वाक कहता है :

कि तेन स्याद्धि कौन्तेय कृत्वेमं ज्ञाति संक्षयम् ।
घातयित्वा गुरुंश्चैव मृतं श्रेयो न जीवितम् ॥[1]

'कृष्णायन' का चार्वाक अभिव्यक्ति में अधिक पटु है—वह धर्मराज को नीतिज्ञ होने और बन्धुबान्धवों के मरवाने की कला पर धन्यवाद देता है और कहता है :

अरिन सहित तुमनेहि हु अनगन, जोर स्वार्थ यज्ञजनु ईन्धन ।[2]

चार्वाक के वचनों से उसकी दुष्टता प्रकट हो जाती है और वह मारा जाता है। भगवान कृष्ण युधिष्ठिर को चार्वाक के शब्दों पर ध्यान न देने का परामर्श देकर उन्हें समझाते हैं। इस स्थल पर कवि ने धर्मराज के हृदय का स्वाभाविक चित्रण किया है, किन्तु 'महाभारत' का धर्मराज अधिक शंकालु और जिज्ञासु है 'कृष्णायन' में इसका संकेत मात्र है।

उक्त प्रसंग के उपरान्त 'महाभारत' की कथा 'कृष्णायन' में शिथिल हो जाती हैं। भीष्म कृष्ण का स्तवन करते और कृष्ण के परामर्श से धर्मराज को नीति का उपदेश देना स्वीकार करते हैं। मूलग्रन्थ में युधिष्ठिर को उपदेश प्राप्ति की आज्ञा व्यास जी देते हैं। 'कृष्णायन' में कृष्ण, भीष्म, धर्म, लोकधर्म राज्य-धर्म, रण-धर्म आदि का उपदेश देते हैं। कवि ने 'महाभारत' में वर्णित राज्य धर्मानुशासन पर्व का संक्षेप कर दिया है इस पर भी अनेक महत्वपूर्ण विषय छूट गये हैं। उदाहरण के लिए दण्डधर्म की जो व्यापक व्यवस्था 'महाभारत' में है वह 'कृष्णायन' में नहीं हो पाई।

अश्वमेध के कारण अर्जुन की यात्राओं का वर्णन, द्वारका में गोपालों के द्वारा अश्व को रोकने और यज्ञ का चित्रण यथावत किया गया है। 'महाभारत' के एक श्लोक के आधार पर कवि ने द्वारका के गोपालो की वीरता का संकेत किया है। यज्ञ होता है और कवि पाचों पाण्डवों में कृष्ण की शक्ति चित्रित करता है इस प्रकार कृष्ण की अद्वितीय महत्ता की घोषणा कर देता है। उपसंहार का प्रसंग 'भागवत' से प्रभावित होने के कारण हमारी विवेचना के क्षेत्र मे नहीं आता।

कृष्णायण : मिश्रजी के अतिरिक्त कृष्ण जीवन पर आधारित विसाहूराम की यह रचना भी 'महाभारत' के कथानक से प्रभावित है। यद्यपि कथा संग्रहण और विकास की दृष्टि से उसका महत्व अधिक नहीं है। तथापि कृष्ण की ब्रज और

१. म० शान्ति० ३८।२७
२. कृष्णायन, पृ० ७९२

द्वारका सम्बन्धी घटनाओं का महाभारतीय प्रसगो के साथ सुन्दर समन्वय किया गया है। इसमे कवि ने बालकाण्ड, रहस्यकाण्ड, मथुरा काण्ड, मगलकाण्ड, पाण्डवकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तर काण्ड शीर्षको में कृष्ण के समग्र जीवन को चित्रित किया है। मिश्र जी की दृष्टि राष्ट्रीय और सास्कृतिक पुनरुत्थान की ओर रही है किन्तु विसाहू राम की दृष्टि परम्परागत भक्ति-भावना से युक्त है। उन्होने 'महाभारत' के कृष्ण के जीवन की मुख्य घटनाओ को लेते हुए राधाकृष्ण पर अधिक बल दिया है। यहा पर समस्त घटनाए भगवान कृष्ण के ईश्वरत्व की छाया मे घटित होती है।

'महाभारत' की कथा, मगल काण्ड, पाण्डव काण्ड और युद्धकाण्ड मे आयी है। मगल काण्ड की कथा पाण्डवो के सक्षिप्त परिचय से प्राप्त होती है।[1] इसमे वारणावत यात्रा,[2] द्रौपदी विवाह,[3] खाण्डव दाह,[4] सभानिर्माण[5] आदि प्रसगो को लिया गया है। इन स्थलों मे कथा साकेतिक वर्णनात्मक रूप मे व्यक्त हुई है। पाण्डव काण्ड मे भीष्म और अम्बा की कथा से युद्ध पूर्व तक की समस्त कथा का सक्षेप किया है।[6] इस स्थल पर शिखण्डी[7] कर्ण-जन्म[8] पाण्डु मृत्यु[9] हिडिम्ब-वध[10] और द्रौपदी स्वयवर[11] प्रमुख घटना हैं। उक्त समस्त प्रसग 'महाभारत' के अनुकरण पर अपरिवर्तित रूप में चित्रित हैं। इन कथा-खण्डो का उद्देश्य भगवान कृष्ण के महत्व का प्रतिपादन और भारती युद्ध मे उनके व्यापक भाग का प्रदर्शन है। द्रौपदी-चीरहरण जैसे मार्मिक प्रसग को भी सूचनात्मक शैली मे प्रस्तुत किया है।

कृष्ण के दूतत्व प्रसग मे कवि कर्म की महत्ता को जन्मगत वैशिष्ट्य से महान बताता है और जातिगत भेदाभेद का विरोध करता है। यही एकमात्र स्थल ऐसा है जहा पर कवि वर्णनात्मकता को छोडकर विचार-प्रधान होकर तात्विक विवेचना करता है।

युद्ध का समस्त वृत्त भगवान कृष्ण की अलौकिक छत्रछाया मे वर्णित है और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी कवि किसी अन्य पात्र को प्रधानता नही देता निष्कर्ष

---

१. कृष्णायण, पृ० २५४
२ कृष्णायण पृ० २५४
३. कृष्णायण पृ० २५५
४ कृष्णायण पृ० २६२
५ कृष्णायण पृ० २६५
६ कृष्णायण पृ० ३१३
७ कृष्णायण पृ० ३१६
८ कृष्णायण पृ० ३२९
६ कृष्णायण पृ० ३१७
१० कृष्णायण पृ० ३२२
११ कृष्णायण पृ० ३२५

यह है कि इस रचना में सामयिक, राजनैतिक या किसी अन्य सांस्कृतिक उद्देश्य के लिए प्राचीन कथा को परिवर्तित नही किया गया। कवि का मुख्य ध्येय राधाकृष्ण का लीला-गान है। प्रबन्ध की सीमा में होने के कारण और ईश्वरत्व के प्रतिपादन हेतु कृष्ण के महाभारतीय जीवन के साथ पाण्डवों का वृत्त भी आ गया है।

जयभारत

'महाभारत' की विस्तृत कथा के प्रमुख प्रसंगों को क्रमबद्ध रूप में उपस्थित करके मैथिलीशरण गुप्त ने 'जयभारत' प्रबन्धकाव्य की रचना की है। इस वृहत काव्य के सैंतालीस खण्ड एक समय में नही लिखे गये, तथापि वृहतकाव्य की योजना के कारण एकरूपता आ गई है। गुप्त जी के जीवनादर्श के लिए युधिष्ठिर प्रमुख आधार के रूप में व्यक्त है, इसके लिए कवि ने उन्ही प्रसंगों को लिया है जिनमे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षः धर्म की स्थापना हो सके। पात्रों का चरित्र-चित्रण, कथाविकास और यत्र तत्र परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य एक व्यापक सांस्कृतिक व्यक्तित्व की उपस्थापना है जो धर्मराज युधिष्ठिर के चरित्र मे स्थापित होकर उच्चता के शिखर का स्पर्श करता है।

'महाभारत' की कथा के तीन खण्ड किए जा सकते है—प्रथम खण्ड प्रारम्भ से वनवास तक द्वितीय उद्योग से युद्ध तक और तृतीय युद्ध के उपरान्त। इसमे प्रथम खण्ड प्रस्तावना द्वितीय विकास और तृतीय खण्ड जीवन-दर्शन के रूप में विद्यमान है। युद्ध की व्यावहारिकता शान्तिपर्व और अनुशासन पर्व मे सिद्धान्त पक्ष के रूप में व्यक्त होकर 'धर्म-विजय' की घोषणा करती है। 'जयभारत' उस धर्म-विजय का पुनरालेखन करता है।

कथा संग्रहण

आदिपर्व : गुप्त जी ने आदिपर्व से विभिन्न शीर्षकों का कथा संयोजन किया है। सम्भवपर्व के ७८ से ८५ अध्याय तक राजा ययाति की कथा 'युद्ध और पुरु' शीर्षक में वर्णित है। 'योजनगन्धा' शीर्षक में अध्याय १०० का वृत्त प्रस्तुत है। इस सर्ग का प्रतिपाद्य भीष्म-प्रतिज्ञा है। अध्याय १०१ से १२५ तक कौरव-पाण्डव-जन्म का विस्तृत वृत्त कौरव पाण्डव शीर्षक में सूचना रूप मे चित्रित किया है। १२७ के आधार पर बन्धु विद्वेष, १२९ अध्याय के आधार पर द्रोणाचार्य" १३१ अध्याय के आधार पर "एकलव्य" की कथा वर्णित है। "परीक्षा" शीर्षक में १३३ अध्याय की कथा कही गयी है। १३७ अध्याय से "याज्ञसेनी" का वृत्त लिया गया है।

जतुगृह पर्व के १४१ से १४७ सर्ग तक की कथा लाक्षागृह में चित्रित है।

"हिडिम्बा" शीर्षक में हिडम्बा वध पर्व का समस्त वृत्त संक्षेप मे वर्णित है। "वक संहार" की कथा बकवध पर्व से ली गयी है। चैत्ररथपर्व को कवि ने छोड़ दिया है और "स्वयंवर पर्व" के लक्ष्यवेध मे तथा गन्धर्वो की मित्रता और कल्मापपाद के वृत्त में सांकेतिक रूप से चित्रण किया है।

'इद्रप्रस्थ" शीर्षक मे "विदुरागमन राज्यलम्भव पर्व' के १९९, २०१, २०५, २०६ अध्यायो के विस्तृत वृत्त को सक्षेप मे कहा गया है। 'वनवास" मे अर्जुन वनवास पर्व का सक्षेप किया गया है। और "सुभद्रा हरण पर्व" को इसी मे जोड दिया है। आदिपर्व के विभिन्न अध्यायो की कथा को कवि ने वर्णनात्मक रूप मे प्रस्तुत किया है। यद्यपि किसी प्रमुख कथाश को छोडा नही गया फिर भी अनेक स्थलों पर कवि ने घटना का वर्णन नही किया, उसका सकेत भर कर दिया है। अधिकाश स्थलो मे सकेतात्मक चित्रो का बाहुल्य है।

सभापर्व सभापर्व के 'राजसूयारम्भ" पर्व के अध्याय १३ से १६ तक तथा जरासधवध पर्व और 'दिग्विजय पर्व", 'शिशुपालवध" पर्व की विस्तृत कथा को साकेतिक रूप से 'राजसूय" शीर्षक मे चित्रित किया है। "द्यूतपर्व" का सक्षेप "द्यूत" मे है। द्यूतपर्व के ७८ से ८० अध्यायो की कथा वनगमन का आधार है।

वनपर्व वनपर्व के "कैरातपर्व" और "इन्द्रलोकाभिगमन पर्व" के क्रमश अध्याय ३९, ४० और ४३, ४५ के आधार पर कवि ने "अस्त्रलाभ" शीर्षक की कथा का चयन किया है। तीर्थयात्रा पर्व का सक्षिप्त वृत्त "तीर्थयात्रा" शीर्षक मे वर्णित है। इसमे अनेक ऋषियो के पूर्व वृत्तो को प्रासगिक जानकर छोड दिया गया है। किन्तु साकेतिक रूप मे नहुष और हनुमान का वृत्त भीम से सम्बद्ध होने के कारण दिया गया है। द्रौपदी और सत्यभामा प्रसग को अध्याय २३३-३५ के आधार पर आयोजित किया है। घोष यात्रा पर्व क आधार पर सक्षेप मे वनवैभव और दुर्योधन का दुख शीर्षको की कथा का चयन हुआ है। इन प्रसगो मे अध्याय २३९-२४१ २४६ तथा २५० अध्यायो का समेत है। "वनमृगी" प्रसग सृष्टि का आधार २५८ वा अध्याय है। जयद्रथ प्रसग की उदभावना २६४, २६७, २७१ और २७२ अध्यायो के आधार पर की गई है। यह समस्त वृत्त अत्यन्त साकेतिक प्रणाली मे चित्रित है। "अतिथि और आतिथेयी" का प्रसग अध्याय २६३ के आधार पर वर्णित है इस कथाश का स्थानान्तरण किया गया है। आरण्येय पर्व के आधार पर "यक्ष" प्रसग उद्गीत है।

विराटपर्व विराट पर्व के प्रथम और द्वितीय अध्याय की कथा 'अज्ञात वास' मे वर्णित है। "कीचक वध पर्व' का सक्षेप "सैरन्ध्री" शीर्षक मे किया गया है। अध्याय ३६, ३७, ३८, ४० की कथा "बृहन्नला" शीर्षक मे वर्णित है। "उद्योग" प्रसग मे विराट पर्व के अन्तिम अध्यायो और उद्योग पर्व के प्रारम्भिक दो अध्यायो का सक्षेप किया गया है।

उद्योगपर्व प्रजागर पर्व के ३३ से ३६ अध्यायो की कथा 'विदुरवार्ता" मे चित्रित है। "रणनिमत्रण" मे कवि ने अध्याय ७ की कथा को लिया है। कवि ने रणनिमत्रण को विदुर वार्ता के उपरान्त रखा है। यह कथा का स्थानान्तरण किया गया है। "अनाहूत" प्रसग मे कवि ने रुक्मी की कथा प्रस्तुत की है। "मद्रराज" प्रसग मे अध्याय ८ का सक्षेप किया है। 'भगवद्यान" पर्व के ८२ वे अध्याय के आधार पर "केशो

की कथा वर्णित है। और इसी पर्व का संक्षेप "शान्ति सन्देश' में किया गया है। इसी पर्व के अध्याय १४४ से १४६ तक की कथा कुन्ती और कर्ण शीर्षक में विन्यस्त की गई है, उससे सम्बद्ध प्रासंगिक आख्यान के आधार पर "युयुत्सु" की पृथक प्रसंग-सृष्टि की है। "समर सज्जा" प्रसंग में युद्ध की तैयारी का चित्रण है। यह उद्योग पर्व के अन्तिम अध्यायों के अनुसार किया गया है। इस पर्व के प्रारम्भिक अध्याय ११, १२ और १३ को "नहुष" में संक्षिप्त किया है, जो 'जयभारत' का प्रथम सर्ग है।[१]

भीष्म पर्व : भीष्मपर्वीय श्री भद्भगवद्गीता के आधार पर 'अर्जुन का मोह' रचित है। इसमें गीता की दार्शनिकता का आख्यान है। इसके उपरान्त "युद्ध" प्रसंग अतिविस्तार से लिखा गया है। जिसमें अन्य पर्वों का युद्ध भी समाविष्ट है। भीष्म के सेनापतित्व के युद्ध के दसवें दिन की घटनाओं का चित्रण अधिक है। इसके साथ कृष्ण का शस्त्र ग्रहण, भीष्म-देहपात और अर्जुन की वीरता का चित्रण है।

द्रोण पर्व : 'जयभारत' के ३७९ से ३८८ पृष्ठ तक द्रोणपर्व के युद्ध का चित्रण किया गया है। इसमें सांकेतिक रूप से अभिमन्यु, जयद्रथ, द्रोण-वध को वर्ण्य विषय बनाया है। युद्ध की भयंकरता का आभास भी यदा कदा मिल जाता है।

कर्ण पर्व : ३८८ से ३९५ तक के पृष्ठों में कर्ण के सेनापतित्त्व के युद्ध का चित्रण है। शल्य कर्ण कटुसंवाद, घटोंकच-वध और अन्ततः कर्ण-वध इसका वर्ण्य विषय रहा। इसमें कवि ने दुःशासन-वध के वीभत्स चित्र को स्थान दिया है और कर्ण-वध का चित्र भी विशेष रूप से चित्रित हुआ है।

शल्य पर्व : शल्य पर्व के युद्ध को सत्रह पृष्ठों का विस्तार मिला है। इसमें शल्य के युद्ध के उपरान्त भीम और दुर्योधन के गदा युद्ध का भी पर्याप्त विस्तार है। प्रमुख रूप से बलराम का क्रोध, युधिष्ठिर का दुःख आदि घटनाओं को भी विन्यस्त कर दिया है।

सौप्तिक पर्व : इस पर्व का संक्षेप "हत्या" में अभिव्यक्त है। प्रमुख रूप से अश्वत्थामा का रात्री में पाण्डव-पुत्रों की हत्या, दुर्योधन-मरण, ब्रह्मास्त्रों का युद्ध और मणि छीनने की घटना को यथारूप विस्तार मिला है।

स्त्री पर्व : इस पर्व से "विलाप" और "कुरुक्षेत्र" की कथा का चयन किया है। विलाप में सामूहिक रुदन का विशेष रूप धृतराष्ट्र-विलाप का चित्रण है। "कुरुक्षेत्र में रण भूमि में गान्धारी के विलाप, कृष्ण को शाप देने की घटना चित्रित हुई है।

शान्ति पर्व : इस पर्व का धार्मिक विवेचन यत्किंचित रूप से "अन्त" शीर्षक मे अभिव्यक्त है। कवि ने अत्यन्त संक्षेप में भीष्म के विचारों का चित्रण किया है।

अनुशासन पर्व : इस पर्व का चित्रण भी "अन्त" शीर्षक के नवे और दसवें पद्य में किया है। सांकेतिक रूप में कवि ने भीष्म का देह त्याग, युधिष्ठिर को कृष्ण का प्रबोध आदि प्रसंगों को लिया है।

आश्वमेधिक पर्व "अन्त" शीर्षक मे ही ग्यारहवें पद्य से इस पर्व की कथा का ग्रहण किया है। इसमे परीक्षित का जीवन 'अर्जुन द्वारा अश्वरक्षा' त्रिगर्तों की पराजय 'प्राग्ज्योतिषपुर का युद्ध, दु शला से मिलन, उलूपी, बभ्रुवाहन की कथा का सक्षेप किया गया है।

आश्रमवासिक पर्व "अन्त" शीर्षक के कुछ भाग मे इस पर्व की कथा का सक्षेप और गान्धारी, कुन्ती, धृतराष्ट्र आदि के वनवास की कथा का चित्रण है।

मौसल पर्व इस पर्व की कथा "अन्त" की १३ पक्तियों म वर्णित है। इसका प्रतिपाद्य कृष्णवंश का पतन और व्याधो से अर्जुन का युद्ध है।

महाप्रस्थानिक पर्व "अन्त" के ही चार पद्यो म इस पर्व की प्रमुख घटना युधिष्ठिर का राज्य व्यवस्था करके हिमालय जाने का वृत्त सक्षिप्त रूप से चित्रित हुआ है। कुछ घटनायें "स्वर्गारोहण" मे विन्यस्त की गई है। चारो भाइयो का पतन इसी सर्ग मे होता है।

स्वर्गारोहण पर्व इस पर्व का सक्षेप "स्वर्गारोहण" शीर्षक मे किया गया है। इसमे धर्मराज के पुन युधिष्ठिर की नरक-यात्रा, शरीर-त्याग, दिव्य मिलन का चित्रण है।

'जयभारत' की कथा-सग्रहण-प्रवृत्ति का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि कवि ने सम्पूर्ण महाभारत का आख्यान नहीं किया है। इसमे वर्णित प्रसग व्यवस्था के अनुरूप एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, अन्यथा उनकी स्वतन्त्र सत्ता भी विद्यमान है। कवि ने कुछ पर्वों की कथा को विस्तार से और कुछ पर्वों की कथा का अत्यन्त सक्षेप मे ग्रहण किया है। उसने युद्ध के उपरान्त 'महाभारत' के धर्म-दर्शन सम्बन्धी विवेचन को सक्षिप्त रूप भी नहीं दिया, उसका उल्लेख मात्र किया है। यदि कवि 'महाभारत' के दार्शनिक प्रसगो की ओर अधिक विवेचनात्मक दृष्टि रखता तो जीवन-दर्शन की दृष्टि से 'जयभारत' और भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ हो सकता था। घटना-चित्रण मे कवि ने सोद्देश्य परिवर्तन किए हैं, जिनमे युग धर्म की सटीक अभिव्यक्ति हो पाई है।

परिवर्तन-परिवर्धन नहुष से कौरव पाण्डव तक 'जयभारत' का प्रारम्भ नहुष के आख्यान से हुआ है। यद्यपि यह कथानक उद्योग पर्व के अन्तर्गत आया है फिर भी कवि ने पाण्डव-कौरव-वश-परम्परा की क्रमबद्धता के कारण इस कथा का स्थानान्तरण किया है। नहुष से ययाति और ययाति से यदु-पुरु तथा उसके उपरान्त वशपरिचय की कथा कौरव-पाण्डव शीर्षक तक चलती है। इस कथा खण्ड मे कवि ने निम्न परिवर्तन किए हैं

'महाभारत' के वृत्त-बध का सांकेतिक चित्रण किया है।[1] 'महाभारत' मे नारद-नहुष वार्तालाप नहीं है किन्तु कवि ने मानव की शक्ति की विवेचना के हेतु

---

१ म० उद्योग० १०।३८-७७, जयभारत, पृ० १०

इस प्रसंग की सृष्टि की है। 'महाभारत' में नहुष की दृष्टि इन्द्राणी पर उपवन में पड़ी पर 'जयभारत' मे नहुष उसे स्नान करते देखता है।[२] 'महाभारत' मे नहुष देखते ही शची की प्राप्ति का आदेश देते हैं पर 'जयभारत' मे वे यह विचार करते हैं, कि मैंने स्वयं शची की उपेक्षा की है।[३] 'महाभारत' मे देवता नहुष को समझाते है पर नहुष इन्द्र के पूर्व कर्मो का स्मरण दिलाता हुआ अपने वचन पर दृढ रहता और शची को बुलाने की रीति पूछता है।[४]

यदु और पुरु के प्रसंग में कवि ने 'महाभारत' के कुछ प्रसंगों को छोड़ दिया है, वे ये हैं :

कच-देवयानी प्रसंग,[५] देवयानी को ययाति का कुए से निकालना,[६] शुक्राचार्य और वृषपर्वा का वार्तालाप,[७] यदुको ययातिका शाप।[८]

निम्न प्रसंग संक्षिप्त रूप से चित्रित हुए हैं।

शर्मिष्ठा और देवयानी का कलह,[९] शर्मिष्ठा का दासत्व,[१०] ययाति को वृद्धत्व-प्राप्ति।[११]

कवि ने इन प्रसंगों को संक्षेप में चित्रित करके अतिभोग का विरोध किया है। आख्यान की लघुता के कारण सांकेतिक चित्रण की प्रधानता रही। 'योजनगन्धा' के प्रसंग में कवि ने दो पद्यों मे शान्तनु तक की वंश-परम्परा का परिचय दिया है। शान्तनु और योजनगन्धा के प्रथम परिचय और प्रेम-प्रकाशन को 'महाभारत' से यथावत स्वीकार किया गया है[१२] 'महाभारत' में शान्तनु प्रेम-निवेदन के समय अपने राजा रूप को छिपाते नहीं किन्तु 'जयभारत' में वे पहले न बता कर बाद में बताते हैं।[१३] 'महाभारत' में शान्तनु स्वयं अपनी इच्छा को भीष्म के समक्ष रखते हैं, किन्तु 'जय-

---

१. जयभारत, पृ० ११
२. म० उद्योग० ११।१७-१८ जयभारत, पृ० १२
३. म० उद्योग० ११।१८ जयभारत, पृ० १५
४. म० उद्योग० १२।३-८ जयभारत पृ० १६
५. म० आदि० ७७।२३-३८ जयभारत पृ० २३
६. म० आदि० ७८।२१-२२
७. म० आदि० ८०।२-४
८. म० आदि० ८४।६
९. म० आदि० ७८।६-११
१०. म० आदि ८०।२२
११. म० आदि०, ८३।३७
१२. म० आदि० १००।४८-५०, जयभारत पृ० ३१-३२
१३. म० आदि० १०० । ४८-५०, जयभारत, पृ० ३२

भारत' मे देवव्रत भीष्म को परोक्ष रूप से पिता की अवस्था का ज्ञान होता है और वे प्रतिज्ञा करते हैं।[1]

'कौरव पाण्डव' प्रसग मे कवि धारा शैली से दोनो वशो का परिचय देता है और 'महाभारत' के विस्तृत आख्यानो को भी सक्षिप्त करता हुआ भीष्म और अम्बा के प्रसग को साकेतिक रूप मे प्रस्तुत करता है। अम्बा की तपस्या और शिखण्डी रूप का परिचय, उसी रूप मे देकर कवि व्यास से पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुर की उत्पत्ति और परवर्ती सन्तान-परम्परा का उल्लेख करता है।

इस प्रसग मे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही, किन्तु 'महाभारत' के आधार पर समस्त कथा का वर्णन है। पाण्डवों के जन्म-प्रसग मे अतिप्राकृत तत्व को बचाने की चेष्टा अवश्य की है।[2] इस अलौकिक रूप का कोई बौद्धिक परिवर्तन न करके कवि ने उसे विश्वास से पुष्ट करने का प्रयास किया है।

बन्धु-विद्वेष से लाक्षागृह तक बन्धु-विद्वेष को कवि ने 'महाभारत' के अनुरूप चित्रित किया है। दुर्योधन का भीम को विष देना, भीम का नागलोक पहुच कर वापिस आना आदि प्रसग सक्षेप मे कहे गये हैं। कवि ने इन प्रसगो मे एक उल्लेखनीय परिवर्तन किया है। 'महाभारत' मे भीम का नागो के पास जाना और वहा की सभी घटनाए अलौकिक सत्य के रूप मे चित्रित की गई है, पर कवि ने "उन्हें सत्य या स्वप्न कहें" कहकर अपने आपको बचा लिया है।[3]

परिवर्तन इस प्रसग मे कवि ने निम्नाकित परिवर्तन किए हैं।

कुए मे अगूठी गिरने की घटना को कवि ने छोड दिया है और द्रोण द्वारा राजकुल मे रहने की याचना नही कराई, 'महाभारत' मे भीष्म द्रोण को लेने आते हैं, पर 'जयभारत' मे द्रोण कुमारों के साथ जाते हैं।[4] द्रुपद की कथा यथावत सक्षिप्त की गई है और शस्त्र-शिक्षाका सक्षेप करके अर्जुन की वीरता को प्रधानता दी गई है।

एकलव्य के प्रसग मे कवि ने कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही किया। एकलव्य की प्रार्थना पर द्रोण की अस्वीकृति वशभेद के कारण रही, किन्तु एकलव्य ने गुरुभक्ति का चरम रूप उपस्थित किया।[5] यह तत्कालीन सम्भावना के आधार पर किया गया है, किन्तु महाभारतीय सत्य न होने के कारण कवि इस विषय पर अधिक

---

१ म० आदि० १०० । ५६-७३, जयभारत, पृ० ३३, ४२
२ जयभारत, पृ० ४२
३ म० आदि० १२७ १२८ जयभारत, पृ० ४६
४ म० आदि० १३० । ३८-३६, जयभारत, पृ० ५०
५ जयभारत, पृ० ५७

ओर समुचित प्रकाश न डाल सका है। युधिष्ठिर की उक्ति में भावी युद्ध की सम्भावना व्यक्त कर दी गई है।

इसके उपरान्त राजकुमारों की परीक्षा का वृत्त आता है। इस वृत्त में 'महाभारत' की घटनाओं का यथावत चित्रण किया गया है। पृथक् रूप से सबने शस्त्र-कौशल दिखाया। मुख्यरूप से अर्जुन और कर्ण का प्रसग आया। कर्ण अगराज बना। यहां कवि ने साकेतिक रूप मे कर्ण का जन्म, परशुराम से शिक्षा और भाग्यहीनता की चर्चा चार पंक्तियो मे की है।

'महाभारत' मे कर्ण को अग-राज विधिवत् प्रदान किया जाता है, किन्तु 'जयभारत' मे बीच मे ही भीम के बोलने और अधिरथ के आ जाने से यह प्रसंग रुक जाता है।[1] 'महाभारत' मे नकुल युधिष्ठिर की वार्ता नहीं है किन्तु 'जयभारत' में युधिष्ठिर का उत्कर्ष दिखाने के लिए इस प्रसग की सृष्टि की गई।[2]

'जयभारत' मे कौरवों के सघर्ष का सकेत किया है।[3] आदिपर्व के १३७ वें अध्याय मे द्रुपद की तपस्या का वर्णन नहीं है किन्तु कवि ने इस प्रसंग-सृष्टि से द्रुपद की प्रतिशोधात्मक भावना का प्रकाशन किया है।

लाक्षागृह प्रसग 'जयभारत' मे अत्यन्त संक्षेप मे वर्णित है। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के हित के कारण युधिष्ठिर को वारणावत जाने का आदेश दिया। इस प्रसंग को यथावत् स्वीकार करके कवि ने विदुर की सदाशयता का चित्रण किया है।

इन प्रसंगों के चित्रण में कवि ने ऐसे परिवर्तन नहीं किए जिनसे उनकी विशेष दृष्टि प्रकाशित हो सके। 'महाभारत' के आख्यान को अपने शब्दों मे कहने और यदाकदा किसी विचार तन्तु को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति प्रमुख रही है। 'महाभारत' में अधिक विस्तृत कथा का रूप वर्णनात्मक रहा और कहीं कहीं ही संवेदनात्मक हो पाया है उसी रूप मे 'जयभारत' मे भी संवेदना के स्फुलिंग मिलते है। यदि प्रबन्ध-काव्य जैसी मार्मिकता की सृष्टि कथा के मध्य हो जाती तो यह प्रबन्ध और अधिक समादृत होता।

हिडिम्बा से द्यूत तक : 'महाभारत' के निम्न प्रसंग 'जयभारत' में विद्यमान नहीं है। हिडिम्ब द्वारा हिडिम्बा को मानव खोज का आदेश,[4] हिडिम्बा के उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति,[5] हिडिम्बा के विषय मे राक्षस एवं भीम की वार्ता।[6] युद्ध के समय

---

१. म० आदि० १३५। ३७-३८, जयभारत, पृ० ६७
२. जयभारत, पृ० ६५
३. आदि० १७, जयभारत, पृ० ६६
४. आदि० १५१।८-१४
५. आदि० १५१।२५-३०
६ आदि० १५२।२२-२७

हिडिम्बा की कुन्ती से वार्ता।[1] भीम द्वारा हिडिम्बा के वध की इच्छा और युधिष्ठिर की वर्जना।[2]

प्रसंग के विस्तार-भय से उपर्युक्त अंशों को छोड़ दिया गया है। शेष कथांश को यत्किंचित परिवर्तन के साथ ग्रहण किया गया है। 'महाभारत' में हिडिम्बा और भीम की वार्ता की स्पष्टता को कवि ने 'जयभारत' में सामान्य शिष्ट वार्तालाप में परिवर्तित कर दिया।[3] 'महाभारत' में हिडिम्बा सबको साथ लेकर भाग जाने का प्रस्ताव रखती है परन्तु 'जयभारत' में अकेले भीम से यह प्रस्ताव किया गया है।[4]

इन परिवर्तनों के साथ कवि हिडिम्बा को मानवीरूप देता हुआ भीम पत्नी के रूप में चित्रित करता है। सबकी सम्मति से दोनों व्योम विहार करते हैं।

हिडिम्ब-वध के उपरान्त एकचक्रा नगरी में भीमको बकराक्षस का वध करना पड़ता है। यह प्रसंग अतिथेयी की रक्षा हेतु उज्ज्वल रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रसंग में कुन्ती की करुणा, त्याग, वात्सल्य इस प्रकार वर्णित है कि सभी भावनाओं पर कर्तव्य की विजय होती है।

परिवर्तन-परिवर्धन 'महाभारत' के प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने अपने आदर्श एवं विचारों के कारण निम्नस्थ परिवर्तन किए हैं। 'महाभारत' में ब्राह्मण-परिवार के सभी सदस्य कर्तव्य-पालन के सिद्धान्त का उल्लेख करते हैं 'जयभारत' में इस विवेचन को स्थान नहीं दिया गया।[5] 'महाभारत' में ब्राह्मणी अपने मरने का प्रस्ताव रखकर पति के द्वितीय वरण का समर्थन करती है, पर 'जयभारत' में यह स्पष्टोक्ति नहीं है।

'महाभारत' में कुन्ती और ब्राह्मण की वार्ता के पूर्व ही भीम अपना निश्चय कर लेते हैं। 'जयभारत' में भीम को बाद में पता चलता है।[6] 'महाभारत' में कुन्ती भीम की अतिमानवीय शक्ति से परिचित है अतः वह ब्राह्मण को पूर्ण आश्वासन देती है, 'जयभारत' में माता का द्वन्द्व वर्णित है। कुन्ती के हृदय में प्रेम एवं कर्तव्य का संघर्ष साधारण मानवी के रूप में चित्रित हुआ है।[7]

लक्ष्य वेध लक्ष्यवेध प्रसंग में कवि ने 'महाभारत' के स्वतंत्र उपाख्यानका संक्षिप्त वृत्त दिया है। कल्माषपाद की क्रूरता और वशिष्ठ की उदारता से मनुष्यता

---

१ म० आदि० १५३।२-१०
२ म० आदि० १५४।१-२
३ जयभारत, पृ० ७५-७६
४ म० आदि० १५२।५-६ जयभारत पृ० ७८
५ म० आदि० १५७।५-२४, म० आदि० १५८।६-८
६ म० आदि० १५६।१६ जयभारत पृ० १०२
७ म० आदि० १६०।१४ जयभारत पृ० १००-१०१
म० आदि० १६१।२०-२१

का प्रतिपादन किया गया है। वशिष्ठ ने पुत्र के हत्यारे पर क्रोध न करके करुणा की, उस पर वह भी मानवता का आचरण करने लगा। इस प्रसंग में प्रतिशोध की तुलना में करुणा और क्षमा की महत्ता बताई है। सम्भवतः युधिष्ठिर की अत्यधिक सहनशीलता से महाभारतकार भी यही कहना चाहते हैं। 'महाभारत' में शक्ति के शाप का उल्लेख किया है, जिसके वशीभूत होकर कल्मापपाद ने वशिष्ठ के पुत्रों को खा लिया, किन्तु 'जयभारत' में वशिष्ठ-विश्वामित्र के संघर्ष का उल्लेख नहीं है।[1] 'महाभारत' में कल्मापपाद की आन्तरिक ग्लानि का चित्रण नहीं है 'जयभारत' में कवि ने इस उद्भावना को स्थान दिया है।[2]

द्रौपदी के लक्ष्यभेद-प्रसंग को कवि ने मूल भावना से यथावत स्वीकार किया है। द्रौपदी के जन्म आदि के प्रसंग को न लेकर पंचपतित्व का समाधान किया है। 'महाभारत' में द्रौपदी का पंचपतित्व धार्मिक आधार पर सिद्ध है, और 'जयभारत' में 'महाभारत' के अनुसार ही द्रौपदी के पंचपतित्व का समर्थन किया है।[3] मूल वृत्त के पूर्व जन्म की कथा को छोड़कर भी कवि ने उसके सत्य को स्वीकार किया है।

इस प्रसंग की विवेचना इन्द्रप्रस्थ खण्ड में की गई है। कवि द्रौपदी-विवाह की सामाजिक स्वीकृति के लिए आतुर है, अतः वह विरोधी उक्तियों की सम्भावनाओं पर विचार करता है। क्या यह विवाह "अनार्यता" है ? कवि इसे नहीं मानता, वह विकर्ण के मुख से "मन" को प्रमाण मानकर इस कार्य का समर्थन करता है। जिस कार्य को सामाजिक समर्थन प्राप्त हो जाय वह अधर्म नहीं। यह जीवन के अनेक रूपों में देखा जा सकता है। अतः द्रौपदी का विवाह धर्म-सम्मत ही है। कवि ने इसे धर्माचरण का अपवाद रूप माना है।

परिवर्तन : इस प्रसंग में कवि ने स्पष्ट परिवर्तन नहीं किया। व्यास जी द्वारा प्रस्तुत अतिप्राकृत विधान को, व्यास जी की सम्मति के रूप में स्वीकार कर उसे विवेक-सम्मत रूप दिया है।[4]

वनवास प्रसंग की सृष्टि पंचपतित्व की मर्यादा की व्यावहारिकता के हेतु की गई है। विप्र-गोधन-हरण के प्रसंग में नियम-भंग के कारण अर्जुन को वनवास मिला। बारह वर्ष के लिए अर्जुन ने यह वनवास ग्रहण किया। इस अवधि में मणिपुर में चित्रांगदा से विवाह, द्वारका में सुभद्रा-हरण मुख्य घटनाएं घटित हुई।

यहां पर निम्न प्रसंग छोड़ दिए गए हैं :

वर्गा का प्रसंग, अर्जुन द्वारा अप्सराओं की मुक्ति, इनके अतिरिक्त कवि ने

---

१. म० आदि० १७५।१३-१४-४०-४१, जयभारत, पृ० १०७
२. जयभारत, पृ० १०६-११०
३. जयभारत, पृ० ११८-१२०
४. जयभारत, पृ० १२५

'महाभारत' के वे सभी प्रसग छोड दिए हैं जो मध्यवर्ती लघुकथा के रूप मे चित्रित हुए हैं। वनवास के इस प्रसग मे अर्जुन के शौर्य का समुचित आख्यान हुआ है।

राजसूय यज्ञ के रूप मे कवि ने 'महाभारत' के आधार पर समस्त वृत्त को सक्षिप्त किया है। युधिष्ठिर के लिए यह यज्ञ आवश्यक था, क्योंकि चक्रवर्ती राजा की स्थिति देश के लिए अनिवार्य हो गई थी। चारो भाइयो ने दिग्विजय की और जरासन्ध को मारकर अनेक राजाओं को अपने पक्ष मे कर लिया गया। अर्घ्यदान प्रसग मे कवि ने अन्त मे एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। 'महाभारत' मे सभा भवन देखते हुए दुर्योधन का उपहास विस्तृत रूप मे है किन्तु कवि ने उसका सांकेतिक उल्लेख किया और आत्मजलन का दोष दुर्योधन पर ही डाल दिया।[1]

"द्यूत" का प्रसग अत्यन्त मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। कवि ने 'महाभारत' के समाधान को यथावत स्वीकार कर अपने युग की बौद्धिकता को भी सन्तुष्ट किया है।

त्यक्त प्रसग 'महाभारत' मे धृतराष्ट्र विदुर को इन्द्रप्रस्थ जाने का आदेश देते हैं, 'जयभारत' मे इस तरह की प्रस्तावना पर विचार नही किया गया।[2] 'महाभारत' मे दुर्योधन युधिष्ठिर के वैभव से जितना चिन्तित होता है 'जयभारत' मे दुर्योधन का उतना द्वन्द्व नही दिखाया गया।[3] भेंट मे मिली वस्तुओ की गणना भी कवि ने छोड दी है।[4] युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र की वार्ता का उल्लेख नही किया गया।[5]

विस्तार भय से दुर्योधन के मानसिक सन्ताप को व्यक्त करने की उक्त स्थितियो पर विचार न करने कवि ने द्यूत का सक्षिप्त चित्रण किया है और द्रौपदी के प्रसग को कुछ विस्तार से प्रस्तुत किया है।

द्रौपदी-प्रसग की अतिप्राकृतता के समाधान मे युग की बौद्धिकता का परिचय दिया है। कवि को कर्ण का उद्धत पशुत्व और दुःशासन का अत्याचार दोनो ही अस्वीकृत है। उसने व्यासजी की भाषा मे इनका विरोध किया है। 'महाभारत' मे कृष्ण ईश्वर रूप मे रक्षा करते हैं किन्तु 'जयभारत' मे इस प्रसग मे व्यासजी के समाधान को नहीं माना गया और दुःशासन के मन मे पाप का भय-सचार करके स्थिति को सभाला गया है।[6] 'महाभारत' मे द्यूत के समय गान्धारी आगमन नही है।

---

१ म० सभा० ४७।२-१५ जयभारत पृ० १४४

२ म० सभा० अध्याय ४६

३ म० सभा० अध्याय ५०

४ म० सभा० अध्याय ५० ५३

५ म० सभा० अध्याय ५५

६ म० सभा० अध्याय ४६, जयभारत, पृ० १४८

किन्तु गान्धारी की उपस्थिति से सभासदों के मत को चित्रित करके, स्थिति को विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया है।

द्यूत के उपरान्त अनुद्यूत के कारण पाण्डवों के बनवास का वर्णन किया गया। भीष्म ने इच्छा-मृत्यु को युधिष्ठिर के आधीन कर दिया। इस रूप में इस मार्मिक प्रसंग की समाप्ति हुई। द्यूत के प्रसंग में कवि ने युधिष्ठिर की नैतिकता-मानवता को सहनशीलता के अनुपम व्यवहार से अभिव्यक्त किया है।

वनगमन से उद्योग तक : वनगमन प्रसंग में कवि ने पाण्डवों का वनगमन और कृष्ण की वार्ता को संक्षिप्त रूप दिया है।[1] विदुर और कुन्ती का वार्तालाप छोड़ दिया गया है। कौरव-पक्ष की ओर से द्रोण के आश्वासन को यह कहकर चित्रित किया है, कि वे प्रेम के कारण न जा सके। 'महाभारत' में इस प्रसंग में कृष्ण आते हैं और शाल्व-वध की कथा सुनाते हैं पर 'जयभारत' में इस वृत्त को छोड़ दिया गया है। धृतराष्ट्र की चिन्ता भी कवि ने विषय से पृथक् रक्खी है। इस प्रसंग को 'महाभारत' का आधार मात्र मिला है। कवि ने पारिवारिक रूप से सुभद्रा का द्रौपदी के पुत्रों सहित द्वारका जाने का वर्णन किया है। द्रौपदी अपमान की कथा कहती है, और कृष्ण उचित समय की प्रतीक्षा के लिये समझाकर चले जाते हैं।

वन के समय का सदुपयोग करने के हेतु अर्जुन अस्त्र-लाभ के लिए यात्रा पर निकलते हैं। यह प्रसंग 'महाभारत' की कथा के आधार पर अपरिवर्तित रूप से चित्रित हुआ है। किरातार्जुन-युद्ध का संक्षिप्त चित्रण करके कवि अर्जुन को स्वर्ग की यात्रा पर ले जाता है। उर्वशी के प्रसंग में अर्जुन की नैतिकता की अभिव्यक्ति हुई है। वे एक साथ वीरत्व और तपस्या के धनी हो जाते हैं।

तीर्थ यात्रा-प्रसंग में निम्नस्थ प्रसंग छोड़ दिए गये हैं : 'महाभारत' में तीर्थ-यात्रा के प्रसंग में आने वाले प्रमुख उपाख्यान, अनेक तीर्थों के महत्व का वर्णन, भीम-पुलस्त्य संवाद, कुरुक्षेत्रवर्ती तीर्थों का वर्णन,[2] अनेक दिशाओं का वर्णन, आदि।

'महाभारत' में जिन वर्णनों को अधिक विस्तार मिला है कवि ने उनका सांकेतिक चित्रण किया है। अनेक तीर्थों के वर्णन की चर्चा भी अनुपयोगी समझी गई।

निम्न प्रसंगों का उल्लेख मात्र है :

सावित्री सत्यवान,[3] नल दयमन्ती,[4] लोमश मुनि का आगमन,[5] गोमती सरयू

१. म० वन० अध्याय ८१
२. म० वन० अध्याय, ८२
३. जयभारत, पृ० १६७
४. जयभारत, पृ०, १६७
५. म० वन० अध्याय ९०, जयभारत, पृ० १६८

में स्नान और गया में गमन, घटोत्कच द्वारा पाण्डवों की सहायता, नहुष का सर्पयोनि से छुटकारा, हनुमान से भेंट ।

तीर्थयात्रा प्रसंग के उपरान्त "द्रौपदी और सत्यभामा" की वार्ता में कवि ने पत्नीधर्म की व्याख्या की है। द्रौपदी पत्नी धर्म का उपदेश देती है। इस प्रसंग में कवि ने अर्जुन-द्रौपदी की प्रेमवार्ता, सत्यभामा द्रौपदी का संवाद, इन दो प्रसंगों को प्रधानता दी है। प्रेम-वार्ता का आधार इस पर्व का कोई एक अध्याय नहीं है, अपितु इतस्ततः विकीर्ण प्रेमोक्तियों के आधार पर इस वृत्त की कल्पना की गई है। सत्यभामा-द्रौपदी संवाद को कवि ने अध्याय २३३ के आधार पर तैयार किया है, किन्तु इसमें भी स्त्री-धर्म की वैसी विवेचना नहीं हो पाई जो 'महाभारत' में प्राप्त है। नारी के सात्विक प्रेम प्रदान को कवि ने अभिव्यक्त किया है, किन्तु स्त्री-धर्म के रूप में उस से भी अधिक तात्विक उक्तियां कही जा सकती थीं।

'वन वैभव" शीर्षक के अन्तर्गत कवि ने कौरवों की घोषयात्रा का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है। इस अंश में वर्णित कथा-संकेत इस रूप में दिये गये हैं

शकुनि का दुर्योधन को यात्रा का परामर्श देना, दुर्योधन का शिकार के हेतु धृतराष्ट्र से आज्ञा लेना, धृतराष्ट्र का पाण्डवों की उपस्थिति का संकेत देना कौरवों के आगमन की सूचना पाकर भीम का क्रुद्ध होना और युधिष्ठिर का उसे शान्त करना, चित्ररथ के साथ कौरवों का संघर्ष और परास्त होना, कुरुराज को बचाने के हेतु प्रार्थना पर भीम का क्रोध, किन्तु धर्मराज का शरणागत की महत्ता बताकर उसे शान्त करना, अर्जुन का चित्ररथ से युद्ध करके उसे छुड़ाना।

'महाभारत' में दुर्योधन मार्ग में ठहरता है और उसका अभिनन्दन होता है, 'जयभारत' में यह प्रसंग नहीं है ।[1] 'महाभारत' में दुर्योधन कर्ण को पराजय की सूचना देता है 'जयभारत' में वे स्वयं आकर राजा को धैर्य बधाते हैं।[2] 'महाभारत' में दैत्य दुर्योधन को बुलाकर पातललोक में समझाते है,[3] 'जयभारत' में यह प्रसंग छोड़ दिया गया है। कर्ण के दिग्विजय के प्रसंग को सूचनात्मक रूप में चित्रित करके कवि इस प्रसंग की इति कर देता है।

वनमृगों के प्रसंग को लेकर कवि ने आहार में संयम की प्रतिष्ठा की है और मानवीय करुणा को उभारा है। यह प्रसंग 'महाभारत' के वनपर्व के २५८ वें अध्याय का संक्षिप्त रूप है।

'महाभारत' में जयद्रथ दूर से द्रौपदी को देखकर अपरिचिता के रूप में उसका सौंदर्य-चित्रण करता है। 'जयभारत' में वह सीधे "प्रेयसि कृष्णा" कहकर बात का

---

१ म० वन० अध्याय २४७

२ म० वन० अध्याय २४८। ४ जयभारत, पृ० २१६

२ म० वन० अध्याय २५१-२५२

आरम्भ करता है।[१] 'महाभारत' में जयद्रथ पहले कोटिकास्य राजा को भेजता है। 'जयभारत' में स्वयं जाता है।[२] 'महाभारत' में धात्रेयिका पाण्डवों को लौटने पर सूचना देती है, किन्तु 'जयभारत' में पाण्डव द्रौपदी की पुकार सुनकर आ जाते हैं।[३] 'महाभारत' में पाण्डवों को कुटी पर आने से पूर्व अमंगल सूचनाएं प्राप्त होती हैं। 'जयभारत' में कवि ने ऐसा चित्रण नहीं किया। जयद्रथ का पकड़ा जाना और शंकर से वरदान प्राप्ति की विस्तृत कथा को कवि ने चार पंक्तियों में ही सूच्य शैली में प्रस्तुत कर दिया है।

दुर्वासा-प्रसग वर्णनात्मक रूप में अत्यन्त संक्षेप में चित्रित हुआ। 'महाभारत' के दो सौ बासठवें अध्याय को एक पंक्ति मे चित्रित करके, कवि पाण्डवों की चिन्ता का वर्णन करता है। 'महाभारत' में दुर्योधन दुर्वासा को सायास पाण्डवों के पास भेजता है। 'जयभारत' मे यह प्रसंग नही है। 'महाभारत' में चिन्ताकुल द्रौपदी कृष्ण का स्मरण करती है और कृष्ण आकर द्रौपदी की बटलोई के शाक को खाकर, दुर्वासा को तृप्त करते है; 'जयभारत' में मुनि के दो-चार शिष्य अपने गुरु के कृत्य पर रोष करते हैं और स्नान में ही तृप्त होकर युधिष्ठिर के पास तृप्ति की सूचना भेजते हैं।[४] कवि ने 'महाभारत' के अतिप्राकृत तत्व को बुद्धिसम्मत रूप देने का प्रयास नहीं किया और तृप्त होने के कारणों पर कोई प्रकाश भी नही डाला। हां, शिष्यों के क्षोभ में अनुचित कार्य का विरोध अवश्य किया है।

'महाभारत' के कीचक-वध-वृत्त को कवि ने सैरन्ध्री नाम से प्रस्तुत किया है। इस वृत्त को कवि वर्णनात्मक रूप से कह गया है। 'महाभारत' के निम्न प्रसंगों को छोड़ दिया है।

द्रौपदी का पाण्डवों के दु:ख से दु:खी होकर भीम के समक्ष विलाप।[५] भीम एवं द्रौपदी का संवाद।[६] उपकीचकों का सैरन्ध्री को बांधकर श्मशान भूमि में ले जाना और भीम का सबको मार कर सैरन्ध्री को छुड़ाना।[७]

निम्नस्थ प्रसंगों में परिवर्तन किया है :

'महाभारत' मे कीचक सैरन्ध्री से और बाद में बहन से बात करता है और फिर सैरन्ध्री से, 'जयभारत' में वह पहले सैरन्ध्री से और बाद में बहन से बात

१. म० वन० २६४। ११-१७ जयभारत, पृ० २२३
२. म० वन० २६५। ६ जयभारत, पृ० २२३
३. म० वन० २६६। २-६ जयभारत, पृ० २२६
४. म० वन० २६३। ७-१२ जयभारत पृ० २३०
५. म० विराट० १६। २०
६. म० विराट० अध्याय २१
७. म० विराट० अध्याय २३

करता है।[1] 'महाभारत' मे पर्व विशेषमे मदिरा ले जानेका कार्य सैरन्ध्री को सौंपा जाता है, 'जयभारत' में यह कार्य चित्र से कराया गया है।[2] 'महाभारत' मे सुदेष्णा सैरन्ध्री को रक्षा का वचन देती है, पर 'जयभारत' मे वह उसे भाभी शब्द से सम्बोधित करती है।[3]

'महाभारत' मे दरबार मे सैरन्ध्री के अपमान के समय बल्लभ भीम की उपस्थिति है और युधिष्ठिर सकेत से भीम को उत्तेजित होने से रोकते हैं। 'जयभारत' मे भीम इस वृत्त को सुनते हैं।[4] 'महाभारत' मे द्रौपदी भीम के सामने युधिष्ठिर के जुए से जीविका चलाने को भाग्य की विडम्बना मानकर दु खी होती है, 'जयभारत' मे ऐसा उल्लेख नही है।

सैरन्ध्री के लघु वृत्त मे कवि ने यही उल्लेखनीय परिवर्तन किये हैं। भीम कीचक को रात्रि मे बुलाकर मार देते हैं। यहा भी कवि ने सक्षेप किया है और 'महाभारत' के युद्ध के प्रसग को केवल चार पक्तियों मे चित्रित कर दिया है।

बृहन्नला के प्रसग को कवि ने पृथक्-रूप से व्यक्त किया है किन्तु इस प्रसग का कथा-विकास समुचित रीति से नहीं हो पाया। 'महाभारत' के गोहरण पर्व के कुछ स्थलो को लेकर यदि इस कथानक का विकास होता तो अधिक सुन्दर होता। कवि ने इस प्रसग मे निम्न परिवर्तन किए है

'महाभारत' मे त्रिगर्तों एव कौरवो के मत्स्यदेश पर हुए आक्रमण को केवल सूचनात्मक रूप मे दो पक्तियो मे कहा गया है।[5] 'जयभारत' मे 'महाभारत' के निम्न अन्य प्रसग भी उपेक्षित करके छोड दिए गये हैं।

त्रिगर्तों का भयकर युद्ध-चित्रण,[6] विराट का पकडा जाना और भीम द्वारा छुडाना,[7] राजधानी मे पाण्डवो का सत्कार।[8]

'महाभारत' मे द्रौपदी अर्जुन की सम्मति से बृहन्नला को सारथी बनाने की बात कहती है 'जयभारत' मे उत्तरा सीधे बृहन्नला से बात करती है।[9] कवि ने इस

---

१ म० विराट० १४। ३-७ जयभारत पृ० २४४, २४७
२ म० विराट० १५।६, जयभारत पृ० २५८
३. म० विराट० १५। १६, जयभारत पृ० २६०
४ म० विराट० १६। १६-१८, जयभारत, पृ० २७१
५ म० विराट० १३-३२ जयभारत पृ० २७८
६ म० विराट० अध्याय ३२
७ म० विराट० ३३।४२-४४
८ म० विराट० ३४।६
९ म० विराट० ३६।१३, १७-१६, जयभारत, पृ० २७०

प्रसंग में उत्तरा और बृहन्नला तथा बृहन्नला और उत्तर के संवादों को प्रमुखता दी है और अर्जुन के वस्त्र-परिवर्तन तक यह प्रसंग समाप्त कर दिया है। 'महाभारत' में युद्ध के उपरान्त कौरव अर्जुन को पहचान पाते हैं किन्तु 'जयभारत' में वस्त्र परिवर्तन मात्र से परिचय पा लेते हैं।[1]

उद्योग, विदुर वार्ता, और रण निमंत्रण शीर्षकों में कवि ने कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किए हैं। केवल 'महाभारत' की विस्तृत कथा को संक्षिप्त किया है। उत्तरा और अभिमन्यु के वैवाहिक सम्बन्ध की सांकेतिक सूचना देकर कवि द्रुपद द्वारा पुरोहित भेजने, हस्तिनापुर से संजय के आगमन एवं प्रत्यागमन का वर्णन करता है। विदुर वार्ता में विदुर नीति की बातें चित्रित की गई हैं। इसके आगे अनाहूत में रुक्मी का प्रसंग, मद्रराज में राजा शल्य का प्रसंग और केशों की कथा में भगवान के दूतत्व के पूर्व द्रौपदी के क्रोध की अभिव्यंजना की गई है।

स्थानान्तरण : उक्त प्रसंगों में कवि ने कथा-विकास में परिवर्तन नहीं किए, संक्षिप्तिकरण किया है। 'जयभारत' के कथा-संगठन की स्वाभाविकता के लिए कवि ने कथा-प्रसंगों में स्थानान्तरण किया है।

'महाभारत' में उत्तरा-अभिमन्यु का विवाह विस्तृत रूप से वैवाहिक पर्व के अन्तर्गत चित्रित है[2] और द्रुपद द्वारा पुरोहित को भेजने का प्रसंग उद्योग पर्व के अन्तर्गत आता है।[3] 'जयभारत' में इन दोनों प्रसंगों का उल्लेख एक ही अध्याय में किया है।[4] संजय का पाण्डवों के पास आगमन और वार्तालाप भी सांकेतिक रूप से चित्रित किया गया है। 'महाभारत' में संजय का दूतत्व, रण-निमंत्रण और शल्य-प्रसंग का परवर्ती भाग है 'जयभारत' में इस प्रसंग को सबसे पहले प्रस्तुतकिया है। रण-निमंत्रण और संजय-दूतत्व के स्थानान्तरण के अतिरिक्त मद्रराज और रुक्मी तथा विदुर-वार्ता का भी स्थानान्तरणकियाहै। रण-निमंत्रण के परवर्ती प्रसंग मद्रराज के मध्य कवि ने रुक्मी के प्रसंग को अनाहूत के रूप में प्रस्तुत किया है।

संजय के दूतत्व के स्थानान्तरण का मूल कारण है विग्रह के पूर्व सामान्यजनों के शान्ति प्रयासों का सांकेतिक वर्णन। विदुर वार्ता का स्थानान्तरण सम्भवत. इसलिए किया गया है कि संजय से सब कुछ जान लेने के उपरान्त धृतराष्ट्र निश्चय ही विदुर से परामर्श करेंगे।

इधर दुर्योधन रण की तैयारी में है, अतः उसने प्रथम काम कृष्ण से सेना प्राप्त करने का किया। अत. यह प्रसंग भी स्वाभाविक रूप से आया है। अर्जुन ने रुक्मी की

---

१. म० विराट० ३६।६, जयभारत, पृ० २८३
२. म० विराट० अध्याय ७२
३. म० उद्योग० ६।१३-१५
४. जयभारत, पृ० २८६-२८७

उपेक्षा की, और कृष्ण से सहायता प्राप्त करने पर दुर्योधन ने भी उसे अपने साथ नहीं लिया। अब उसे ऐसे सहायक की आवश्यकता नहीं थी जिसे उसके अपने सम्बन्धियों ने स्वयं नहीं अपनाया। कर्ण की विजय के लिए कृष्ण के समान सारथी मद्रराज को अपनी ओर करना आवश्यक समझा गया अतः रुक्मी की उपेक्षा के बाद मद्रराज की सहायता प्राप्ति का प्रयास भी स्वाभाविक जान पड़ता है।

परिवर्तन-परिवर्धन स्थानान्तरित प्रसंगों में कवि ने निम्नस्थ परिवर्तन किए हैं 'महाभारत' में उत्तरा का विवाह-सम्बन्ध पहले अर्जुन से मांगा जाता है पर अर्जुन के कहने पर अभिमन्यु से निश्चित होता है। 'जयभारत' में सीधे पुत्रवधू बनाने की कामना व्यक्त की गई है।[1]

आधार ग्रन्थ में संजय धृतराष्ट्र की विस्तृत वार्ता,[2] विदुर वार्ता का संक्षिप्त कर दिया गया है।[3] रुक्मी का प्रसंग यथावत् स्वीकार किया है। केवल अर्जुन एवं रुक्मी के संवाद को छोड़ दिया गया है। मद्रराज के प्रसंग को सूचनात्मक रूप में चित्रित किया है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर शल्य से कर्ण के पराक्रम को कम करने की मांग करते हैं 'जयभारत' में स्वयं शल्य ही इस ओर संकेत कर देते हैं।[4]

कृष्ण के दूतत्व में पूर्व भीम, अर्जुन एवं नकुल सहदेव द्वारा अभिव्यक्त विचारों को कवि ने छोड़ दिया है। द्रौपदी के करुणा से भरे विचारों के आधार पर केशों की कथा प्रसंग की सृष्टि की। 'महाभारत' में द्रौपदी विवशता के स्वर में कृष्ण से याचना करती है, 'जयभारत' में द्रौपदी का स्वर उग्र हो गया है।[5]

शांति संदेश से युद्ध तक उक्त प्रसंगों में कवि ने 'महाभारत' के आधार पर संक्षिप्त वृत्तात्मक आख्यानों की सृष्टि की है। शान्ति-संदेश में भगवद्यानपर्व का स्पर्श करके युद्ध में अठारह दिन के युद्ध का वर्णन किया है।

आधार ग्रन्थ के निम्न प्रसंगों को छोड़ दिया गया है—

श्री कृष्ण की स्वागत-विषयक तैयारियां,[6] विदुर-कृष्ण का वार्तालाप।[7] परशुराम जी द्वारा दम्भोद्भव-कथा की प्रस्तावना।[8] कण्व मुनि द्वारा मातलि का

---

१ म० विराट० ७२।१-७ जयभारत, पृ० २८४
२ म० उद्योग० अध्याय २२-२३
३ म० उद्योग० अध्याय ३३-४०
४ म० उद्योग० ८।४८ जयभारत, पृ० ३०६
५ म० उद्योग० ८२।३६ जयभारत, पृ० ३१७
६ म० उद्योग० अध्याय ८६
७ म० उद्योग० ६२।१
८ म० उद्योग० अध्याय ६६

उपाख्यान ।[१] गालव की कथा ।[२] ययाति का कथा ।[३] कुन्ती द्वारा विदुला की कथा ।[४] वस्तुतः 'जयभारत' की कथा-संयोजना में उक्त प्रासंगिक वृतों की आवश्यकता भी नही थी ।

परिवर्तन-परिवर्धन : 'महाभारत' में कृष्ण मार्ग में ऋषियों के दर्शन और विश्राम करते हुए जाते है, 'जयभारत' में सीधे राजधानी पहुँच कर दरबार में उपस्थित होते है ।[५] 'महाभारत' में कर्ण समरयज्ञ के रूपक के साथ युद्ध की अनिवार्यता पर बल देता है 'जयभारत' में अपने मन की विवशता से आधार पर पाण्डव-पक्ष को स्वीकार नहीं करता ।[६] शेप सभी प्रसंगों मे कवि ने संक्षिप्तिकरण की प्रवृत्ति अपनाई है और उल्लेखनीय परिवर्तन नही किया । "कुन्ती एंवकर्ण" के प्रसंग में 'महाभारत' की कथा को यथावत स्वीकार किया गया है, किन्तु आधार ग्रन्थ में कर्ण का स्वर अधिक उग्र और स्पष्ट है 'जयभारत' में वह आदि से अन्त तक विनीत रूप में अपनी विवशता का चित्रण करता है ।[७]

'महाभारत' में युयुत्सु रणभूमि में युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर पाण्डव-पक्ष ग्रहण करता है । 'जयभारत' में वह पहले कर्ण से परामर्श करता है ।[८]

स्थानान्तरण : युयुत्सु और समर-सज्जा प्रसंगों का स्थानान्तरण किया गया है । आधार ग्रन्थ मे युयुत्सु समरोद्यत सेनाओं के समक्ष पाण्डव-पक्ष में मिलता है । 'जयभारत' में यह कार्य पहले ही कराया गया है। 'जयभारत' में समर सज्जा का समस्त रूप सांकेतिक रक्खा गया है । अर्जुन के मोह में गीता के विचार पक्ष का आलेखन यथावत किया गया है । गीता में जिस रूप में पृथक्-पृथक् सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन है, 'जयभारत' का कवि उस गम्भीरता और व्यापकता का स्पर्श तो नही कर पाया किन्तु उसने युगानुरूप गीता के सिद्धान्तों का पर्यालोचन किया है । गीता के कर्मयोग का सार इस प्रसंग में स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है ।

युद्ध : 'महाभारत' के भीष्मपर्व से शल्य पर्व तक के युद्ध का संक्षेप युद्ध शीर्षक में किया है । 'महाभारत' के विशाल युद्ध-वर्णन को इतने संक्षेप में केवल सांकेतिक रूप

---

१. म० उद्योग० अध्याय ९७
२. म० उद्योग० अध्याय १०६
३. म० उद्योग० अध्याय ११६
४. म० उद्योग० अध्याय १३३
५. म० उद्योग० अध्याय ८३-८४ जयभारत, पृ० ३१९
६. म० उद्योग० अध्याय १४० जयभारत, पृ० ३३८
७. म० उद्योग० १४६।४ जयभारत, पृ० ३४१
८. म० भीष्म० ४३।९६ जयभारत, पृ० ३४६

मे ही चित्रित किया जा सकता था अत कवि ने प्रमुख घटनाओ का सकुचित वर्णन करके इस प्रसग की पूर्ति की है।

'महाभारत' के निम्न प्रमुख स्थल लिए गये हैं

कृष्ण का आयुध ग्रहण।[1] भीष्म का पतन और उपधान मागने पर अर्जुन द्वारा पूर्ति।[2] कर्ण भीष्म-मिलन।[3] अभिमन्यु-वध का सक्षिप्त वृत्त।[4] जयद्रथ वध के प्रसग मे युधिष्ठिर की रक्षा का प्रसग, अर्जुन का द्रोण की उपेक्षा करके व्यूह मे प्रवेश, भीम का पराक्रम।[5] युधिष्ठिर के असत्य-भाषण की पृष्ठभूमि मे द्रोण का वध।[6]

कर्ण का सेनापतित्व, शल्य का सघर्ष और दुर्योधन का शान्ति कराना।[7] घटोत्कच-मरण।[8] कर्ण के द्वारा चारो भाइयो की पराजय।[9] कर्णार्जुन युद्ध मे कर्ण की पराजय।[10] युधिष्ठिर द्वारा शल्य का पतन, नकुल सहदेव द्वारा उलूक एव शकुनि का वध।[11] कृपाचार्य द्वारा दुर्योधन को सन्धि का परामर्श, दुर्योधन का व्यथापूर्ण उत्तर और प्रस्ताव की अस्वीकृति।[12] चरो से सूचना पाकर पाण्डवो का ह्रद के पास जाना। भीमसेन की व्यग्योक्ति, युद्ध मे दुर्योधन का पतन बलराम का आगमन और क्रोधित होना।[13]

युद्ध के प्रसग मे कवि ने उक्त स्थलो का साकेतिक वर्णन किया है। दुर्योधन के पतन के उपरान्त युधिष्ठिर द्वारा स्नेह का प्रदर्शन युधिष्ठिर के चरित्र—विकास का एक रूप है। 'महाभारत' मे युधिष्ठिर दुर्योधन से क्षमायाचना नही करते 'जयभारत' मे धर्मराज क्षमा मागते हैं।[14]

हत्या से स्वर्गारोहण तक हत्या प्रसग की सृष्टि सौप्तिक पर्व के आधार पर की है। इसमे कवि ने आधार ग्रन्थ के निम्न प्रसगो को छोड दिया है।

---

१ जयभारत, पृ० ३७३।३७४
२ जयभारत, पृ० ३७६
३ जयभारत, पृ० ६७८
४ जयभारत, पृ० ३७९-८०
५ जयभारत, पृ० ३८१-३८३
६ जयभारत, पृ० ३८६
७ जयभारत, पृ० ३९०
८ जयभारत, पृ० ३९१
९ जयभारत, पृ० ३९४
१० जयभारत, पृ० ३९६
११ जयभारत, पृ० ३९७
१२ जयभारत, पृ० ३९८-४००
१३ जयभारत, पृ० ४०१-४०७
१४ जयभारत, पृ० ४१०

कृपाचार्य द्वारा दैव की प्रबलता का विवेचन।[1] अश्वत्थामा का अस्त्र-प्राप्ति हेतु भगवान शिव की स्तुति,[2] स्तुति के समय अग्निवेदी भूतों का प्राकट्य।[3]

इन प्रसंगों की उपेक्षा करके कवि ने अनावश्यक विस्तार और अतिप्राकृत तत्वों की उपेक्षा की है। शेष कथा 'महाभारत' के अनुसार सूचनात्मक रूप में कही गई है। पाण्डवों का शोक, भीम का अश्वत्थामा को मारने के लिए उद्यत होना और ब्रह्मास्त्र के भयंकर प्रयोगों की कथा, कवि ने दो पृष्ठों में संक्षिप्त रूप से वर्णित की है। इस कथा के विकास में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। अश्वत्थामा की क्रूरता और अमानवीय अत्याचार की अभिव्यक्ति के साथ द्रौपदी के चरित्र का उत्कर्ष-'वह भूला अपना मनुष्यत्व, तुम अपने को न भुलाना' कहला कर किया गया है। अर्जुन ब्रह्मास्त्र छोड़ते हुए प्रथम आचार्य पुत्र की कुशल याचना करते हैं, और तदुपरान्त अपने क्षेत्र की व्यवस्था करते हैं।

विलाप और कुरुक्षेत्र शीर्षकों में कवि ने स्त्रियों के विलाप और विशेषतः गान्धारी तथा कृष्ण के वार्तालाप को स्थान दिया है। 'महाभारत' के निम्न प्रसंग छोड़ दिये गए हैं:

गान्धारी द्वारा पाण्डवों को शाप देने की तैयारी और व्यास जी का उनको समझाना।[4] कृष्ण का धृतराष्ट्र को क्रोध करने पर फटकारना।[5] धृतराष्ट्र द्वारा भीम की लौह-प्रतिमा भंग होना।[6]

परिवर्तन-परिवर्धन: त्यक्त प्रसंगों के अतिरिक्त कवि ने निम्न परिवर्तन किए हैं। 'महाभारत' में संजय धृतराष्ट्र की दुर्बलता बताकर उन्हें समझाते हैं, 'जयभारत' में संजय-धृतराष्ट्र स्वयं पश्चात्ताप करते हैं।[7] 'महाभारत' में गान्धारी स्वयं कृष्ण वंश के नाश का शाप देती है। 'जयभारत' में वह प्रश्न वाचक रूप में पूछती है और कृष्ण उसकी स्वीकृति देते हैं।[8]

> त्वमप्युपस्थिते वर्षे षटत्रिंशे मधुसूदन।
> हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनेचरः॥[9]

---

१. म० सौप्तिक० अध्याय २
२. म० सौप्तिक० अध्याय ६
३. म० सौप्तिक० अध्याय ७
४. म० स्त्री० अध्याय १४
५. म० स्त्री० अध्याय १३
६. म० स्त्री० अध्याय १२
७. म० स्त्री० १।४३ जयभारत, पृ० ४१६
८. म० स्त्री० २५।३२-४५ जयभारत, पृ० ४२८
९. म० स्त्री० २५।४४

'जयभारत' मे

कुरुकुल सरीखा वृष्णि कुल भी लड परस्पर नष्ट हो ।
तो पूछती हू, कृष्ण क्या तुमको न इससे कष्ट हो ?[1]

महाभारत' के प्रसग मे जीवन की वास्तविकता की कटुता का रूप विद्यमान है । गान्धारी समस्त दोष कृष्ण पर थोपती है । सग्राम और अपने पुत्रो की हत्या का उत्तरदायी मानकर वह उनको शाप देती है । जयभारत' मे कटुता का स्वर उपेक्षित है । गान्धारी के चरित्र के उत्कर्ष के हेतु कवि ने प्रश्न करा दिया । इस प्रश्न मे यद्यपि गान्धारी की मानसिक वेदना का प्रतिकार अवश्य निहित था । आधार-ग्रन्थ मे गान्धारी का स्वर उग्र है, 'जयभारत' मे वह विनम्र है और अन्तत क्षमा याचना करती है ।

अन्त शीर्षक मे 'महाभारत' के शान्तिपर्व अनुशासनपर्व, आश्वमेधिक पर्व आश्रमवासिक पर्व, मौसल पर्व, महाप्रस्थानिक पर्व की घटनाओ का सक्षेप है । यह समस्त अध्याय सूचनात्मक है । कवि की लेखनी घटनाओ के घटित होने की सूचना देती हुई आगे चलती है ।

महाभारत' के निम्न प्रसगो का उल्लेख किया गया है

युधिष्ठिर द्वारा कर्ण को जलाजलि दान ।[2] भीष्म से ज्ञान प्राप्ति ।[3] अर्जुन द्वारा विभिन्न स्थलो की विजय, अश्वरक्षा,[4] त्रिगर्तों की पराजय,[5] प्राग्ज्योतिषपुर का युद्ध[6], उलूपीवभ्रुवाहन का प्रसग[7], धृतराष्ट्र आदि की वन-यात्रा[8], यादव-कुल सहार ।[9] पाण्डवो का हिमालय गमन ।[10]

उक्त समस्त प्रसगो का वर्णन सकुचित शैली मे किया है और कथा परिवर्तन एव परिवर्धन का अवसर ही कवि को प्राप्त नही हुआ । उक्त प्रसगो मे कवि ने चारित्रिक उत्थान की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है । युधिष्ठिर और सुभद्रा का वार्तालाप सुभद्रा के चरित्र का उत्कर्ष प्रस्तुत करता है । महाभारत' के विस्तृत युद्ध

---

१ जयभारत, पृ० ४२८
२ म० स्त्री० २७।१३, २६ जयभारत, पृ० ४२६
३ म० शान्ति० २५।२५५
४ म० आश्वमेधिक० अध्याय ७३ जयभारत, पृ० ४३१
५ म० आश्वमेधिक० अध्याय ७४ जयभारत, पृ० ४३१
६ म० आश्वमेधिक० अध्याय ७८ जयभारत, पृ० ४३२
७ म० आश्वमेधिक० अध्याय ७६, ८१ जयभारत, पृ० ४३४
८ म० आश्रमवासिक० अध्याय १५ जयभारत, पृ० ४३४
९ म० मौसल० अध्याय३ जयभारत पृ० ४३४
१० म० महा० ३।१५ जयभारत पृ० ४३४

के उपरान्त भी पाण्डव-विरोधी तत्व देश में बच रहे थे अतः उनका शमन भी आवश्यक था। इसके उपरान्त ही एक धर्मनिष्ठ राष्ट्र की पुर्नस्थापना सम्भव थी। अतः 'जयभारत' की पूर्णता के हेतु उक्त समस्त प्रसंगों को स्वीकार करना श्रेयस्कर रहा।

स्वर्गारोहण : स्वर्गारोहण शीर्षक मे कवि ने पाण्डवो की हिमालय-यात्रा और क्रमशः पतन तथा युधिष्ठिर का परीक्षोपरान्त स्वर्ग-गमन की कथा को विस्तार दिया है. पाण्डवों के पतन-प्रसग में कवि ने एक परिवर्तन किया है।

'महाभारत' मे गिरने का कारण भीमसेन पूछते है पर 'जयभारत' में स्वयं गिरने वाला व्यक्ति प्रश्न करता है।[1] इस प्रसंग मे कवि ने कथानक के विकास की ओर कम ध्यान दिया है और युधिष्ठिर की अतिमानवीयता का चित्रण किया है। समस्त पाण्डवो के पतन के उपरान्त इन्द्र के समक्ष धर्मराज कुत्ते को त्यागने की बात स्वीकार नही कर पाये। उन्होने स्वर्ग न जाना उचित समझा किन्तु अपने साथी कुत्ते को नही त्यागा।

अयंश्वा भूतभव्येश भक्तो मा नित्यमेवह।
स गच्छेत मया सार्धं मानृशंस्या हि मे मतिः॥[2]

\+ × ×

तुम जावो मेरा भाग्य नही
जो मैं सुदेव दर्शन पाऊं।
शरणागत अनुजाधिक सहचर
यह श्वान छोड़ क्यो कर जाऊं।[3]

कवि ने 'महाभारत' की मूल भावना के अनुरूप युधिष्ठिर के चरित्र को उन्नत रूप मे प्रस्तुत किया है। मूल ग्रन्थ में युधिष्ठिर कुत्ते को साथ ले जाने का आग्रह करते है और उनके अभाव मे स्वर्ग जाने की कामना नहीकरते 'जयभारत' में आधार ग्रन्थ की स्थिति को यथावत स्वीकार किया गया है।

धर्म की परीक्षा मे युधिष्ठिर सफल होते है। कवि ने मानव के उत्कर्ष की कथा को यहां समाप्त कर दिया है। इसके आगे वह 'महाभारत' के अतिप्राकृत स्थलो को नहीं ले पाया। यहां तक भी वह आस्था और विश्वास के साथ चलता रहा, आधार ग्रन्थ की अतिप्राकृत बातों को पूर्ण रूप से युगानुरूप रंग नही दे पाया। भक्ति की प्रबल भावना के कारण आधार ग्रन्थ की देवत्व सम्पन्न कथा को यत्किंचित परिवर्तन से ही चित्रित कर पाया है।

---

१. म० महा० २।५२, जयभारत, पृ० ४४०
२. म० महा० ३।७
३. जयभारत, पृ० ४४७

निष्कर्ष 'महाभारत' के पुनरुत्थान में 'जयभारत' की उपलब्धि सांस्कृतिक जीवन-दर्शन की स्थापना है। युधिष्ठिर अनासक्त सामाजिक, उच्चादर्श सम्पन्न राजा और धर्मपरायण व्यक्ति हैं। वे सर्वथा उस त्याग के लिए प्रस्तुत हैं जिससे मानव का कल्याण हो। ऐसे सात्विक त्याग के प्रतिपादन के लिए गुप्त जी ने युधिष्ठिर के आदर्श का जनता के समक्ष रखा। तथापि जीवन दर्शन की सटीक व्याख्या के क्षेत्र में यह काव्य दुर्बल है। महाभारत के जीवन दर्शन की पूर्णता का आभास मात्र मिलता है। कवि ऐसे स्थलों को भी छोड़ गया है जिनमें वह व्यापक रूप से अपने युग के आलोक में किसी सामाजिक जीवन-दर्शन की स्थापना कर सकता था।

महाभारत का कर्ण-प्रसंग

महाभारत' के कथा-प्रवाह के अनेक प्रमुख प्रसंगों में कर्ण की कथा व्यक्ति के पौरुष के संघर्ष की कथा है। कर्ण 'महाभारत' का अत्यन्त यशस्वी पात्र है। उसके जीवन से सम्बन्धित सभी घटनाओं में ऐसा मर्म विद्यमान है जो 'महाभारत' के प्रत्येक पाठक को आकर्षित करता है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में एक ओर वर्ण-व्यवस्था की सतर्क स्वीकृति, कर्म के अनुसार व्यक्ति की जाति, की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि प्राप्त होती है, तो दूसरी ओर कुल-जाति-विहीन पुरुषत्व का दर्शन कण्ठित गान भी अभिनन्दनीय है। धर्म की गति जितनी ही सूक्ष्म है उतनी ही सूक्ष्म उसकी व्यावहारिक उपचर्या। इसी आधार पर महाभारतकार ने कर्ण का चरित्रांकन किया है। कर्ण के जन्म से लेकर मृत्यु तक, उसके जीवन में कितने उत्थान-पतन आये 'यह नहीं कि 'महाभारत' के अन्य पात्रों का जीवन समरस रहा' किन्तु स्थिति सापेक्ष मानसिक सबलताएं और दुर्बलताएं जितनी कर्ण के समक्ष आईं उतनी किसी अन्य पात्र के सामने नहीं। पाण्डवों और कौरवों के संघर्ष में उनकी सम्पूर्ण आपत्तियां के उत्तरदायी वे स्वयं हैं। इसमें भी पाण्डवों के जीवन में कष्ट अधिक रहे। किन्तु कर्ण का इस संघर्ष के मध्य नाटकीय रूप से आना और प्रमुख बन जाना 'महाभारत' की असाधारण घटना है। इस असाधारण व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध महाभारत की असाधारण घटनाएं आज के कलाकार को युग-निरपेक्ष घटना के रूप में दिखाई देती हैं। इसके समक्ष कर्ण का चरित्र, कर्ण-जीवन की घटनायें, नवीन समस्या लेकर उपस्थित होती हैं। उच्चकुल में उत्पन्न होकर जो हीन जन्मा रहा, पौरुष की अदम्यता के कारण भी जो निरन्तर हारता रहा और अन्त में दैवीय छलना के फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हुआ, ऐसे कर्ण का जीवन वर्ण-व्यवस्था की नई व्याख्या की प्रेरणा देता है।

'महाभारत' में कर्ण की कथा का विकास जन्म-की कथान्तर।

महाभारत' में आदिपर्व से शान्तिपर्व तक कर्ण की कथा व्याप्त है। अनेक प्रसंग एक से अधिक स्थलों पर, कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं। एक ही कथा-प्रसंग कहीं संक्षिप्त, कहीं विस्तार से प्राप्त होता है। कर्ण के जन्म, कुन्ती और सूर्य द्वारा समागम और कुण्डल-हरण-कथा महाभारत' में दो कथान्तरों के साथ प्राप्त होती है।

यह प्रसंग मुख्यरूप से आदिपर्व और वनपर्वमें आता है। आदिपर्व वाला कथारूप संक्षिप्त और वनपर्व वाला वृहत्तर है। आदिपर्व मे भी पिता के घर आये दुर्वासा की सेवा और स्पष्ट रूप से पुत्र-हेतु वर-प्राप्ति की कथा दो स्थानों पर आई है।[1] दोनों प्रसंगो में एक भेद यह है कि प्रथम मे सामान्यत: वर देने की बात कही गई है, किन्तु द्वितीय प्रसंग में कुन्ती के भावी सकट की ओर सकेत कर दिया गया है।

तस्यै स प्रददौ मन्त्रमापद्धर्मान्वेक्षया।
अभिचाराभि संयुक्तमब्रवीच्चैव ता मुनि ।[2]

सम्भवत यह स्पष्टीकरण कुन्ती के चरित्र-रक्षा-हेतु किया गया है। कुन्ती वरदान मे प्राप्त मन्त्र की परीक्षा हेतु सूर्य का आवाहन करती है। सूर्य प्रकट होते है कुन्ती भयभीत हो जाती है, पर सूर्यदेव उसे स्थिति की गम्भीरता और देवत्व की अलौकिक शक्ति से अभिभूत कर उसके कन्यात्व की सुरक्षा का वचन देकर, पुत्र उत्पन्न करते है। पुत्र तत्काल उत्पन्न होता है। उसके उपरान्त एक समय सूर्य स्वप्न मे कर्ण को दर्शन देते है, और उसे कुण्डल न देने की चेतावनी भी। किन्तु वह अपनी दान-शीलता पर दृढ रहता है।[3]

कथा का द्वितीय वृहत्तर रूप 'महाभारत' वनपर्व मे वर्णित हुआ है।[4] सूर्य स्वप्न में कर्ण को दर्शन देकर इन्द्र को कवच-कुण्डल न देने की चेतावनी देते है। किन्तु कर्ण अपने प्रण पर दृढ़ रहता है। इस प्रसंग में सूर्य एवं कर्ण का संवाद है, फलस्वरूप सूर्य देवराज इन्द्र से एकघ्नी शक्ति मांग लेने का परामर्श देते है। इसे कर्ण स्वीकार कर लेता है। कथा का वृहत्तर रूप अधिक यथार्थ और मनोवैज्ञानिक है। कुन्ती सूर्य के साथ समागम करने से पूर्व मानसिक और सामाजिक भय का प्रदर्शन करती है। इस पर सूर्यदेव कुन्ती को अपने देवत्व और क्रोध से भयभीत करते है।[5] यहां पर कुन्ती द्वारा सामाजिक नियम की विवेचना अत्यन्त सुन्दर रूप मे हुई है। कुन्ती कहती है कि मेरे माता पिता तथा अन्य गुरुजन ही मेरे इस शरीर को देने का अधिकार रखते है। कि अपने धर्म का लोप नही करूंगी। स्त्रियो के सदाचार मे अपने शरीर की पवित्रता ही बनाये रखना प्रधान है और संसार में उसकी प्रशंसा की जाती है।[6] सूर्य उनके उत्तर मे कुन्ती को समझाते है और गर्भ-स्थापन करते है। कुन्ती को यह आश्वासन प्राप्त हो जाता है कि वह सूर्य से समागम के उपरान्त सतीसाध्वी रह सकती है।[7]

---

१. (क) म० आदि० ६७। १३२-१३३ (ख) म० आदि० ११०। ४-५
२. म० आदि० ११०। ६
३. म० आदि० ११०। दाक्षिणात्य श्लोक २६-२७
४. म० वन० अध्याय ३००-३१०
५. म० वन० ३०६। १८
६. म० वन० ३०६। २३
७ म० वन० ३०७। ११

इस प्रसग मे कथा की वास्तविकता की रक्षा करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। इन्द्र अमोघशक्ति देते समय कर्ण से कह देते हैं कि 'जिसको लक्ष्य करके तुम यह शक्ति माग रहे हो, वह तो पुरुषोत्तम, अचिन्त्यस्वरूप कृष्ण से सुरक्षित है।' यह जान लेने पर भी कर्ण उस शक्ति को लेता है। शक्ति देते समय इन्द्र एक शर्त यह जोड देते हैं कि इसका प्रयोग प्राण सकट की अवस्था मे ही करना श्रेयस्कर होगा, अन्यथा यह शक्ति उल्टी पडेगी।[1] इस प्रकार महाभारतकार ने वनपर्व मे यथार्थरूप से इस कथा का विकास प्रस्तुत किया है। ऐसा लगता है कि देवत्व और मनुजत्व के भीषण सग्राम मे देवत्व विजय प्राप्त करने के साधन सगृहीत कर लेना है। 'महाभारत' मे देवताओ से सम्बद्ध प्रत्येक आख्यान को धर्म सम्मत घोषित किया है। यह इसलिये हो सका है कि धर्म का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है।[2] इस रूप मे देवत्व से सघर्ष हुआ करता कर्ण अपने कर्त्तव्य पथ पर सर्वदा अडिग रहता दिखाई देता है। कर्ण का जन्म कितनी विकट परिस्थितियो मे हुआ और उससे भी अधिक भयकरताए उसके जीवन मे आईं। जन्म और कुण्डल-हरण के अतिरिक्त अनेक स्थलो पर कथा मे कर्ण की प्रधानता लक्षित होती है।

सक्रिय रूप से 'महाभारत' मे कर्ण का आगमन रगभूमि मे राजकुमारो के प्रदर्शन के समय होता है। जिस समय अर्जुन की जयकारो से सभा स्थल गूज रहा था तभी कर्ण आया[3] और अर्जुन की प्रतिद्वन्द्विता स्वीकार की। कुल को बीच मे रख कर दोनो का युद्ध तो रोक दिया गया किन्तु दुर्योधन ने अर्जुन के समान वीर को अपनाने का स्वर्ण अवसर नहीं खोया और कर्ण को अगदेश का राज्य दे दिया। प्रत्युपकार मे अटूट मैत्री का वर मिला।

द्रोणाचार्य को अपने से विमुख देखकर कर्ण शस्त्रास्त्र प्राप्त करने के हेतु ब्राह्मण बनकर परशुराम के पास गया[4] 'महाभारत' मे यह वर्णन शान्तिपर्व मे आता है वहा अन्तिम रूप से कर्ण को शाप मिला। फिर भी वह अपने पौरुष का स्वाभिमान रख कर लौट आया।

दुर्योधन को सन्तुष्ट करने के हेतु कर्ण दिग्विजय करने निकला[5] और अन्त मे यज्ञ मे स्वय पूजित हुआ। कर्ण की दिग्विजय उसके पराक्रम के प्रभाव को चारो ओर विस्तीर्ण करने के हेतु हुई। उद्योग पर्व मे कर्ण और कृष्ण तथा कर्ण[6] और कुन्ती दोनो के मार्मिक वार्तालाप हैं।[7] कृष्ण नीति से वार करते हैं और कर्ण नीति के आधार से

---

१ म० वन० ३०७।३२-३३

२ म० सभा० ६७।४७

३ म० आदि० अध्याय १३५

४ म० शान्ति० अध्याय ३

५ म० वन० अध्याय २५४

६ म० मन० अध्याय १४०-१४३

७ म० वन० अध्याय १४५-१४६

स्थिति मे एक वीर व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण क्या हो सकता है ? महाभारतीय सभी घटनाओ का यत्किचित परिवर्तन के साथ स्वीकार करते हुए आधुनिक कवियो ने कथा को युग सापेक्षता सामयिकता मे चित्रित किया है । कवि अपनी विचार-धारा के आधार पर ही प्राचीन कथा का प्रयोग किया करता है, कथा की प्राचीनता को कवि विचारो के नवीन आलोक से मडित कर उस काव्य की सामयिक आवश्यकता का प्रतिपादन करता है ।

रश्मिरथी

'रश्मिरथी' की रचना 'महाभारत' के कर्ण-प्रसग पर आधारित है । कवि की दृष्टि कर्ण-चरित्र के गुणो की सामयिक व्याख्या करते हुए, उनके पुन प्रतिष्ठित करने की कल्याणकारी भावना से पूर्ण है । मानव के कतिपय गुण दान, दया, धर्मपालन, ओजपूर्ण जीवन, वीरत्व अदम्य विश्वास, मैत्री आदि कर्ण के व्यक्तित्व के मुख्य आधार रहे है । इन्ही गुणो के कारण जाति मे उपेक्षित, समाज से तिरस्कृत कर्ण 'महाभारत' का यशस्वी पात्र बना । दिनकर 'महाभारत' की कथा के सदर्भ मे कर्ण के उक्त गुणो की स्थापना मानव-मात्र के हृदय मे करना चाहते हैं । इन स्वभावज मानवीय गुणो के अभाव मे व्यक्ति स्वय से दुखी, सामाजिक व्यवस्था से त्रस्त और जीवन से भयभीत है । अत एक उच्चादर्श सम्पन्न जीवन की कल्पना के लिए पुरुषार्थ के चरम आलोक की अपेक्षा है । यह आलोक 'महाभारत' के कर्ण मे विद्यमान है, जिससे प्रेरणा प्राप्त कर आज का जातिविहीन मानव गुणो के बल पर उन्नति की कल्पना कर सकता है ।

वस्तु सकलन

'रश्मिरथी' की कथा सम्पूर्ण 'महाभारत' का सक्षेप नही है । इसमे कवि ने कर्ण-जीवन से सम्बन्धित घटनाओ को कर्ण के नायकत्व मे वर्णित किया है ।

आदिपर्व 'रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग की कथा आदिपर्व के अध्याय ११०, १३५ १३६ से ग्रहण की गई है । कर्ण-जन्म के प्रसग को परिचयात्मक रूप मे चित्रित करते हुए कवि रगभूमि प्रदर्शन से कथा का विकास करता है । अध्याय १३५ के आधार पर कर्ण कृपाचार्य वार्ता और अध्याय १३६ मे भीम की कटूक्तिया और कुती की मूर्छा का प्रसग गृहीत है ।

सभापर्व इस पर्व की कथा प्रत्यक्षत कर्ण के जीवन से सम्बद्ध नही है अत कवि ने साकेतिक अभिव्यक्ति करते हुए कथा को आगे बढाया है ।

वनपर्व इस पर्व के अध्याय ३०९-३१० की कथा से चतुर्थ सर्ग की रचना की है । इन्द्र ब्राह्मण के वेष मे कवच-कुण्डल की याचना करने आते हैं और कर्ण सूर्य की चेतावनी की उपेक्षा करता हुआ दानव्रत पर अडिग रहता है ।

उद्योगपर्व : 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग की कथा उद्योगपर्व से गृहीत है। कृष्ण का दूतत्व, कर्ण से वार्ता और कर्ण-जन्म-रहस्य की कथा अनेक अध्यायों से संक्षिप्त की गई है। अध्याय १४० से १४२ तक का महाभारतीय कृष्ण और कर्ण संवाद और अध्याय १४४ से १४६ तक की कथा पंचमसर्ग के कर्ण-कुन्ती वार्तालाप में वर्णित है।

भीष्मपर्व : इस पर्व से केवल अध्याय १२२ के आधार पर षष्ठ सर्ग में कर्ण और भीष्म के सवाद की अवतारणा की है।

द्रोणपर्व : द्रोण के सेनापतित्व मे कर्ण ने युद्ध किया। इस पर्व के अध्याय ३३ से ४९ तक की कथा अभिमन्यु-वध, अध्याय ८७ से १४७ तक जयद्रथ-वध, अध्याय १६६ से १८१ तक घटोत्कच-वध को संक्षिप्त रूप से षष्ठ सर्ग में चित्रित किया है।

कर्णपर्व : 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग की कथा कर्णपर्व का सार है। अध्याय ३९ से ४५ तक शल्य-कर्ण-संवाद, अध्याय ६३ से चार पाण्डवों की पराजय, युद्ध और मृत्यु के उपरान्त कृष्ण-युधिष्ठिर संवाद से काव्य की समाप्ति होती है।

शान्तिपर्व : इस पर्व के द्वितीय और तृतीय अध्याय में भीष्म जी परशुराम के शाप का वृत्त युधिष्ठिर को सुनाते है। दिनकर ने प्रबन्ध-कथा-विकास की दृष्टि से इस वृत्त को द्वितीय सर्ग मे स्थान दिया है। इस प्रकार कर्ण के जीवन के मार्मिक प्रसगों से कवि ने वस्तु-विन्यास किया है, जिससे बीच-बीच मे विचारों की सैद्धान्तिक विवेचना भी हो सके।

वस्तु-विकास-परिवर्तन-परिवर्धन

'रश्मिरथी' की कथा का प्रारम्भ वीर की प्रशस्ति और कर्ण के जन्म-परिचय से होता है। रंगभूमि के प्रसंग मे कवि ने विशेष परिवर्तन नहीं किया। अर्जुन की सामूहिक प्रशंसा के मध्य कर्ण अपना पौरुष प्रकट करता है 'महाभारत' मे जब वह अपने को अर्जुन के समान योद्धा मानकर कहता है :

पार्थ यत ते कृतं कर्म विशेष वदहं ततः।
करिष्ये पश्यतां नृणां माऽऽत्मना विस्मयं गम.।[1]

'रश्मिरथी' का कर्ण इसी व्यग्य में कहता है :

तूने जो जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूं।
चाहे तो कुछ नई कलाएं भी सिखला सकता हूं॥[2]

'महाभारत' के कर्ण की उक्ति मे जो शक्ति परीक्षण की कामना और अर्जुन की शक्ति के प्रति व्यंग्य का भाव है, कवि ने इसे पर्याप्त सफलता से अंकित किया है। कर्ण अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध के लिए तैयार हो जाता है किन्तु बीच में कृपाचार्य कुल

१. म० आदि० १३५।९
२. रश्मिरथी, पृ० ३

परम्परा की आड लेकर कर्ण को हतप्रभ करते हैं। मूल ग्रन्थ मे कृपाचार्य के प्रश्न का उत्तर दुर्योधन देता है किन्तु 'रश्मिरथी' मे कर्ण का वीरत्व स्वत प्रदीप्त हो उठता है और वह कुल, गोत्र की व्याख्या इस प्रकार करता है।

जाति जाति रटते, जिनकी पूजी केवल पाषड,
मैं क्या जान जाति। जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।
× × ×
पढो उसे जो झलक रहा है मुझ मे तेज प्रकाश
मेरे रोम रोम मे अंकित है मेरा इतिहास।[1]

इसके उपरान्त दुर्योधन कर्ण की वीरता की प्रशसा करता हुआ उसे अगदेश का राज्य प्रदान करता है और भीम के व्यग्य का उत्तर देता है।

इस प्रसग मे कवि ने द्रोण और अर्जुन की विशेष मन स्थिति का चित्रण किया है। 'महाभारत' मे ऐसा कोई सकेत नही कि इसी स्थल पर अर्जुन और द्रोण को कर्ण के उत्कर्ष से चिन्ता हुई हो, किन्तु 'रश्मिरथी' मे दोनो का मन अस्वस्थ हो जाता है, जिसका निराकरण स्वय द्रोण इस प्रकार करते है कि "मैं—शिष्य बनाऊँगा न कर्ण को यह निश्चित है बात"—यही पर दिनकर एकलव्य से अगूठा लेने की बात पर प्रकाश डालते हैं। द्रोण के हृदय मे इस प्रकार की भावनाओ का जन्म नितान्त स्वाभाविक है—यह सम्भावना कथा का परिवर्धित रूप है।

रगभूमि की इस घटना के बाद कथाक्रम के निर्वाह की दृष्टि मे कवि ने शान्ति पर्व के नारदोक्त उपाख्यान को ग्रहण किया। शान्तिपर्व के द्वितीय और तृतीय अध्याय मे नारद जी युधिष्ठिर को बताते है, कि किस प्रकार से उनके अग्रज कर्ण को मुनि का शाप प्राप्त हुआ। कवि पहले परशुराम के व्यक्तित्व का वर्णन करता है। परशुराम के व्यक्तित्व म क्षात्रधर्म और ब्राह्मणधर्म का समन्वय है। धर्म और जीवन की रक्षा-हेतु यह समन्वय अत्यन्त आवश्यक है क्योकि उद्धत राजदड को केवल धर्म से नही रोका जा सकता, उसके लिए शक्ति की आवश्यकता है। कर्ण शस्त्र विद्या सीखने आता है किन्तु एक दिन की घटना के कारण उसे शाप मिलता है। 'महाभारत' मे कीडे के पूर्व जन्म की स्थिति का वर्णन है जिसमे घटना अलौकिक स्वरूप धारण करती है—परशुराम को काटने वाला कीडा दश नामक असुर था। उसे भृगु ने कीडे की योनि मे जन्म लेने का शाप दिया था। दिनकर ने 'रश्मिरथी' मे इसका कोई उल्लेख नही किया क्योकि इस युग का कवि इस प्रकार की अलौकिक बातो को स्वीकार करने म असमर्थ है। परशुराम ब्रह्मास्त्र भूलने का शाप देते हैं, और कर्ण पूरी शक्ति के साथ उसे स्वीकार करता है। दिनकर के परशुराम अपने शाप पर औचित्य की दृष्टि मे विचार करते हैं, मन और मस्तिष्क मे थोडा सघर्ष होता है किन्तु मस्तिष्क की कठोरता विजयी होती है।

---

१ रश्मिरथी, पृ० ८-५

आह बुद्धि कहती कि ठीक था, जो कुछ किया, परन्तु हृदय
मुझसे कर विद्रोह तुम्हारी मना रहा, जानें क्यों जय।'[1]

परशुराम के अन्तःसंघर्ष से कर्ण को कोई लाभ नहीं होता और वह लौट आता है।

तृतीय सर्ग में कवि कर्ण और कृष्ण के संवाद का चित्रण करता है। प्रसंग रूप में कवि दुर्योधन की दुरभिसन्धि का वर्णन करता हुआ कृष्ण और कर्ण-संवाद पर आ जाता है। यहां कवि ने कृष्ण के विराट रूप को पौराणिक विश्वास पर ही ग्रहण किया है। कृष्ण के स्वरूप में विष्णु-महेश, जलपति, धनेश दिखाई देते हैं।

भगवान कृष्ण कर्ण को समझाते हैं। कर्ण दुर्योधन के पक्ष को छोड़ना अस्वीकार करता हुआ पाण्डवों की जय का प्रतिपादन करता है। वह मित्रता की महत्ता का वर्णन करता है तथा युद्ध की अनिवार्यता पर बल देता है। 'महाभारत' में कर्ण अनेक अपशकुनों और पराजय सूचक स्वप्नों पर प्रकाश डालता है किन्तु 'रश्मिरथी' में संवाद का यह भाग नहीं लिया गया। कारण यह है कि कवि कथा की अलौकिकता को स्वीकार नहीं करता, वह कथा के सामान्य रूप को लेकर अपने विचारों का प्रतिपादन करता है।

चतुर्थ सर्ग में इन्द्र के द्वारा कर्ण के कवच और कुण्डल मांगने की कथा वनपर्व के कुण्डलाहरण पर्व से गृहीत है। इस सर्ग में कवि ने पहले दान की महत्ता का वर्णन किया है। दान की परम्परा को कवि गान्धी जी तक ले लेता है। दोपहर के समय कर्ण से दान मांगने विप्र-वेषधारी इन्द्र आते हैं। मूल ग्रन्थ में इन्द्र सीधे कवच कुण्डलों की याचना करते हैं। कर्ण उनको कुछ और लेने के लिए कहता है किन्तु देवराज अपनी नियोजित मांग से नहीं हटते। इस पर कर्ण उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप को प्रकाशित करके अपने अवध्य रूप के वध्य होने की आशंका प्रकट करता है। देवराज से कर्ण स्वयं उनकी शक्ति मांगता है। मूलग्रन्थ के वर्णन में इस प्रसंग में ऐसा लगता है जैसे इन्द्र और कर्ण में कोई समझौता हो रहा हो—

यदि दास्यामि ते देव कुण्डले कवचं तथा
वध्यतामुपयास्यामि त्वं च शक्राऽवहास्यताम्
तस्माद् विनिमयं कृत्वा कुण्डले वर्म चोत्तमम्,
हरस्व शक्र कामं मे न दद्यामहमन्यथा।[2]

दिनकर जी को यह राजनैतिक समझौता कर्ण के चारित्रिक उभार के हेतु उचित नहीं लगा अतः उन्होंने इस कथा रूप में परिवर्तन किया : इन्द्र विप्रवेष में पहले अत्यन्त मनोवैज्ञानिक रूप में कर्ण को वचन बद्ध कर लेते हैं और तब उससे कवच कुण्डल मांगते हैं :

१. रश्मिरथी, पृ० २८
२. म० वन० ३१० । १६-१७

भली भांति कसकर दाता को बोला नीच भिखारी।
धन्य धन्य राधेय! दान के अति अमोघ व्रतधारी,

× × ×

क्योंकि मांगना है जो कुछ उसको कहते डरता हूं,
और साथ ही एक द्विधा का भी अनुभव करता हूं।[1]

इन्द्र मांगते मांगते पुनः आत्मविश्लेषण करने लगते है, तो दानी कर्ण के हृदय मे अपने व्रत के प्रति और भी विश्वास हो जाता है—वह यहा तक कह देता है कि

विप्रदेव मांगिए छोड़ संकोच वस्तु मन चाही
मरू अयश की मृत्यु करूं यदि एकबार भी नाही[2]

इतनी उत्कठित उद्वेलना और इतनी निर्मम याचना। इन्द्र के मांगने पर कर्ण को वास्तविकता का ज्ञान होता है। कर्ण ने कवच कुण्डल दिये और साथ मे उसने नैतिक रूप से अर्जुन की पराजय भी घोषित की। कर्ण के कवच-कर्त्तन-दृश्य को देखकर इन्द्र सहम जाते है। उनके मन म ग्लानि और क्षोभ उत्पन्न होता है। यहा भी कवि ने कथा को मनोवैज्ञानिक मोड़ दिया और चरित्र मे अन्तःसघर्ष की स्थापना करके स्थिति को भावात्मक बनाया है। पाठक का साधारणीकरण निश्चित ही कर्ण की भावना के साथ होता है। वह मन मे यह अनुभव करता है कि इन्द्र ने छल के द्वारा कर्ण को दिव्य शक्ति से वंचित कर दिया। एकघ्नी का दान भी कर्ण के दान मे लघुतम है।

कर्ण और कुन्ती-वार्तालाप का प्रसंग अत्यन्त करुण रूप उपस्थित करता है। कुन्ती विनाश को निकट जानकर कर्ण के पास जाती है। मूल ग्रंथ म कुन्ती सीधे कर्ण से कहती है कि तू मेरा पुत्र है और अपने ही भाइयो से लड़ने के लिये उद्यत हो रहा है। कर्ण बात की सत्यता को समझ कर भी उसे नही मानता। वह माता पर आरोप लगाता है कि उचित समय पर उसने कर्ण की सुध नही ली। रश्मिरथी म कुन्ती का आत्म सघर्ष अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है।

एक ही गोद के लाल कोख के भाई,
सत्य ही, लड़ोगे हो दो ओर लड़ाई

× × ×

दो म जिसका उर फटे फटूगी मैं ही
जिसकी भी गरदन कटे कटूगी मैं ही।[3]

---

१ रश्मिरथी, पृ० ६७
२ रश्मिरथी, पृ० ६८
३ रश्मिरथी पृ० ८२

इस आत्म चिन्तन से प्रेरित हो कुन्ती कर्ण को वास्तविकता का ज्ञान कराती है— मूलग्रन्थ मे सूर्य कुन्ती के कथन का समर्थन करते है दिनकरने इस तथ्य को यथावत स्वीकार किया है ।

सत्यमाह पृथा वाक्य कर्ण मातृ वचः कुरु
श्रेयस्ते स्यान्नर व्याघ्र सर्वं माचरतस्तथा[1]

× × ×

इतने में आई गिरा गगन मण्डल से
कुन्ती का सारा कथन सत्यकर जानो,
मा की आज्ञा बेटा अवश्य तुम मानो[2]

कर्ण सूर्य की आज्ञा की भी अवहेलना करता है और अपने समस्त जन्म के दुख को बटोर कर कहता है

अब तक न स्नेह से कभी किसी ने हेरा
सौभाग्य किन्तु जग पडा अचानक मेरा ।[3]

और इसी प्रवाह मे कर्ण यहां तक कह देता है :

जोड़ने नही बिछुडे विधुवत कुलजन से
फोडने मुझे आई हो दुर्योधन से ।[4]

कर्ण के इस आरोप से कुन्ती का मातृत्व आहत हो उठता है और वह कर्ण के दान रूप की प्रशंसा करके अपने खाली लौटने पर विचार करती है । इधर कर्ण पिघल जाता है । कर्ण चार पाण्डवों के जीवन का दान देता है और पार्थ के साथ अपने युद्ध को 'महाभारत' का मूल युद्ध घोषित करता है ।

यह ऐसी स्थिति है जहा पर पाठक पूर्ण रूप से रससिक्त हो उठता है । दिनकर वात्सल्य मे डुबकी लगाना प्रारम्भ करते है । कर्ण और कुन्ती भावना के अतिरेक में बह निकलते है । कर्ण कुन्ती को पाच पुत्रो की माता ही बने रहने की बात कहता है । इसी प्रसंग मे कवि ने काल की प्रेरणा से युद्ध के स्वरूप पर विचार किया है ।

षष्ठ सर्ग मे कवि ने प्रारम्भ मे कर्ण और भीष्म का संवाद लिया है । द्रोण सेनापति बने । कर्ण भीष्म के पास युद्ध की आज्ञा लेने आता है भीष्म और कर्ण का वार्तालाप अत्यन्त भावना भरे रूप मे होता है । भीष्म कर्ण को देखकर कहते है :

---

१. म० उद्योग० १४६ । २
२. रश्मिरथी, पृ० ८६
३. रश्मिरथी, पृ० ६८
४. रश्मिरथी, पृ० ६८

बोले—क्या तत्त्व विशेष बचा
बेटा आँसू ही शेष बचा।[1]

इसके बाद भीष्म कर्ण को युद्ध की भयंकरता बताकर उससे विरत होने के लिये कहते हैं। भीष्म कहते हैं कि मेरे बलिदान से ही यदि यह युद्ध रुक जाये तो कितनी बड़ी बात हो। कर्ण इस पर उत्तर देता है कि मुझे भी युद्ध-धर्म का निर्वाह करने दीजिये और आज्ञा लेकर कर्ण युद्ध-भूमि की ओर बढ़ा। सारी सेना कर्ण की प्रतीक्षा कर रही थी।

कवि अभिमन्यु-वध का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करता है। अपने पुत्र के वध की कथा सुनकर पार्थ दर्पदीप्त हो गया और जयद्रथ को मूल कारण मानकर उसके वध की प्रतिज्ञा करके दूसरे दिन उसे मारने चला। अर्जुन के युद्ध में पार्थ के द्वारा भूरिश्रवा का हाथ काटना, सात्यकि के द्वारा भूरिश्रवा का मस्तक काटना, आदि घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख मात्र किया गया है।

हाँ यह भी हुआ कि सात्यकि से जब लिपट रहा था भूरिश्रवा,
पार्थ ने काट ली अनाहूत, शर से उसकी दाहिनी भुजा।
औ, भूरिश्रवा अनशन करके जब बैठ गया लेकर मुनिव्रत,
सात्यकि ने मस्तक काट लिया जब था वह निश्चल योगनिरत।[2]

इस प्रसंग के साथ कवि संक्षेप में युद्ध-धर्म के औचित्य पर प्रकाश डालता है। युद्ध में रत दोनों पक्ष विजय हेतु अनैतिक साधनों को भी अपनाते हैं—कवि इस तथ्य पर विचार करता है। तदुपरान्त कथा में घटोत्कच का प्रवेश होता है। मूल ग्रन्थ में घटोत्कच का आगमन कृष्ण के परामर्श से होता है। कृष्ण उस दिन जान बूझ कर घटोत्कच को युद्ध के लिये प्रेरित करते हैं और अर्जुन को कर्ण के सामने नहीं ले जाते। घटोत्कच के आगमन को कवि ने उसी रूप में स्वीकार किया है। राक्षस राज ने भयंकर युद्ध किया, कर्ण के सारे उपाय विफल हो गये। दुर्योधन घबरा उठा और कर्ण को किसी भी प्रकार घटोत्कच को मारने के लिये प्रेरित करने लगा। कर्ण ने अन्ततः अपने भाग्य को ठोका और शक्ति घटोत्कच पर चला दी।

कर्ण ने भाग्य का ठोंक उसे आखिर दानव पर छोड़ दिया,
विह्वल हो कुरुपति को विलोक फिर किसी ओर मुख मोड़ लिया।[3]

इसके उपरान्त कवि मूलग्रन्थ के आधार पर विजयी और पराजित व्यक्तियों की स्थिति का चित्रण करता है। हारकर भी कृष्ण प्रसन्न हैं और जीतकर भी कर्ण दुःखी है। इस सर्ग के अन्त में कवि युद्ध में कौशल की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है।

---

१ रश्मिरथी, पृ० १२४
२ रश्मिरथी, पृ० १३७
३ रश्मिरथी, पृ० १४६

सप्तम सर्ग की अवतारणा कर्ण के सेनापतित्व के युद्ध को लेकर हुई है। कर्ण अपने पूर्ण उत्साह के साथ कृष्ण और अर्जुन को पकड़ना चाहता है कि युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव क्रमशः कर्ण के सामने आते हैं। उनका हल्का सा अनमेल युद्ध होता है और वे पराजित होते हैं। कर्ण उनको नहीं पकड़ता, इस पर शल्य पूछते हैं तो वह उत्तर देता है :

ये चार फूल प्रच्छन्न दान हैं किसी महाबल दानी के।[1]

कुछ देर बाद ही कर्ण और अर्जुन एक दूसरे के समक्ष आ जाते हैं दोनों में प्रथम वाक् युद्ध होता है फिर शस्त्र-युद्ध प्रारम्भ होता है। कवि 'महाभारत' के युद्ध-प्रसंग को अपनी सामर्थ्यानुसार यथावत चित्रित करता है। एक बार अर्जुन मूछित होता है, और इधर अश्वसेन साप कर्ण के पास आता है। पर कर्ण वीर-धर्म की महत्ता की स्थापना करता है, और अश्वसेन की प्रार्थना नहीं मानता। संघर्ष की विकरालता और भी बढ़ती है। कर्ण का रथ पृथ्वी में धंस जाता है, और शल्य उसे निकालने की चेष्टा करते हैं। कवि ने इस प्रसंग को दैवी आघात के रूप में ही ग्रहण किया है—कर्ण स्वयं रथ-चक्र को निकालने का प्रयास करता है पर असफल होता है—इसी समय कवि युद्ध-धर्म और अधर्म पर विचार करता है। कृष्ण कर्ण को अभिमन्यु-वध आदि घटनाओं की स्मृति दिलाते हैं और प्रतिपादित करते हैं कि अधर्म का नाश करने के लिये नीति की कुशलता अनिवार्य है। कर्ण के मत में युद्ध में सभी निम्न स्तर पर आ गये हैं।[2]

दिनकर इस स्थल पर कर्ण के हृदय की एक दुविधा का चित्रण करते हैं, कि उसे इस बात का पश्चाताप है कि उसने द्रौपदी के अपमान के समय दुर्योधन को क्यों नहीं रोका? इसी वार्तालाप के बीच अर्जुन कर्ण का वध करता है। सारी सेना में पाण्डव-पुत्र अर्जुन का जयकार होता है। युधिष्ठिर के सामने कृष्ण कर्ण के दान और वीरता की प्रशंसा करते हैं।

समीक्षा : 'रश्मिरथी' की समीक्षा के लिये भूमिका में कवि द्वारा उद्‌गीत विचार सहायक हो सकते हैं। दिनकर लिखते हैं कि यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है। अतएव् यह बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्र-भारती के जागरूक कवियों का ध्यान उस चरित्र की ओर जाये जो हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खड़ा रहा है।...... ...कर्ण-चरित के

---

१. रश्मिरथी, पृ० १७०

२. सुयोधन था खड़ा कल तक जहां पर,
न हैं क्या आज पाण्डव ही वहां पर?
उन्होंने कौन सा अपधर्म छोड़ा
किए से कौन कुत्सित कर्म छोड़ा। —रश्मिरथी, पृ० १९५

उद्धार की चिंता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके अपने सामर्थ्य से सूचित होता है।'[1]

दिनकर की यह उक्ति आधुनिक युग में साहित्य जगत के सामाजिक दृष्टिकोण के परिवर्तन की सूचना देती है। इस परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध सामाजिक क्रान्ति से जोड़ा जा सकता है। कर्ण के जीवन पर काव्य-रचना करते समय दिनकर की दृष्टि में दलितों और उपेक्षितों के उद्धार की भावना रही। दिनकर कर्ण की प्रशस्ति में मानवता के उन गुणों की प्रशस्ति करते हैं जो जन्म से नहीं, किन्तु कर्म से जाने जाते हैं। निःसन्देह कर्ण को वह कुछ नहीं प्राप्त हो सका जो स्वजन कर्ण के अन्य भाइयों का मिला। कर्ण की सम्पूर्ण उपलब्धियाँ उसके पौरुष के परिणाम स्वरूप हुईं। वह स्पष्ट रूप से अपने पौरुष की घोषणा रंगभूमि में करता है।

> पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
> रवि-समान दीपित ललाट से और कवच कुण्डल से।[2]

आधुनिक काव्यकार स्थिति और चरित्र दोनों को एक विशेष मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखना चाहता है। वह उसी घटना को काव्य-विषय के रूप में स्वीकार करता है जिसमें उसे सामाजिक संघर्ष के साथ मानसिक संघर्ष की उर्वर भूमि प्राप्त हो। इस दृष्टि से भी कर्ण का जीवन विविध संघर्षों से संकुल है। वह समाज से तो लड़ता ही रहा, किन्तु उसे अपने से भी लड़ना पड़ा। कर्ण के जीवन में एक विवाद का स्थान हो सकता है कि यदि कर्ण दलितों और उपेक्षितों का प्रतीक है तो उसने पाण्डव पक्ष क्यों नहीं अपनाया? वह राज्यपक्ष की ओर क्यों मुड़ा? 'महाभारत' में जितनी यातनाएँ पाण्डव पक्ष को प्राप्त हुईं उतनी कौरवों को नहीं। वह निरन्तर अर्जुन का प्रबल विरोधी क्यों बना रहा? और उसने अनेक स्थानों पर 'महाभारत' के युद्ध को अपना और अर्जुन का युद्ध क्यों कहा? इन सभी समस्याओं पर विचार करते समय यह देखना है कि आरम्भ से ही कर्ण को जो उपेक्षा प्राप्त हुई वह पाण्डवों के पक्ष से थी। रंगभूमि में अर्जुन से लड़ने को इच्छुक होने पर जाति का प्रश्न उसके समक्ष आया। यहाँ दिनकर ने कर्ण की मनोवृत्तियों का अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। कर्ण का मानसिक द्वन्द्व उसे पाण्डव विरोधी शिविर में ले आया और घटना की विशेष स्थिति के कारण वह कौरवों के पक्ष में आ गया। उसे स्पष्ट ज्ञान हो गया था कि कृष्ण पाण्डव-पक्ष का समर्थन करते हैं। सभी दिव्य शक्तियाँ पाण्डवों का पक्ष लेती हैं अतः यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो कौरवों का दुर्बल पक्ष कर्ण के पौरुष से जगमगा गया और इसी कारण कर्ण ने कौरवों का पक्ष लिया।

---

१ रश्मिरथी, भूमिका पृ० ख-ग

२ रश्मिरथी, पृ० ५

विचारधारा की इस पृष्ठभूमि में 'रश्मिरथी' की रचना हुई। इस काव्य की उपलब्धि कथानकों के परिवर्तन में न होकर कथा-विकास के मध्य विवेचित सिद्धान्तों के मूल्यांकन में है। कुछ परिवर्तन और मौलिक उदभावनायें पाठक को निश्चित ही काव्य-प्रतिभा के उच्च धरातल पर ले जाती है। कर्ण के प्रदर्शन पर द्रोण की चिन्ता, परशुराम द्वारा अत्याचारी राजा की लोलुपता और शक्तिशाली ब्रह्मत्व से उसका शमन, कर्ण की दानशीलता और ममत्व से पूर्ण चार भाइयों का प्राणदान आदि प्रसंग यह सिद्ध करते हैं कि दिनकर का उद्देश्य केवल मात्र कथात्मक काव्य की रचना नहीं है अपितु वह आधुनिक सामाजिक दर्शन की नवीन व्याख्या करते हैं। 'महाभारत' के मुख्य प्रसंगों के मध्य विचार-दर्शन इस काव्य की मुख्य उपलब्धि है। कर्ण ने ओजपूर्ण अभिव्यक्ति में जातिवाद का सशक्त विरोध किया है। दान को जीवन की अजस्र धारा और त्याग को जीवन की महनीय निधि माना है। कवि का जीवन-दर्शन इस तथ्य की उपस्थापना करता है कि व्यक्ति को गुण कर्म से सामाजिक उच्चता प्राप्त करके जाति बन्धन के अवरोध को समाप्त कर, पुरुषार्थ के बल पर उन्नति करनी चाहिए। अत वह समाज-व्यवस्था भी परिवर्तन योग्य है जिसमें उक्त सुविधाए अप्राप्त हो। सम्पूर्ण काव्य मे दिनकर की दृष्टि ऐसी समाज व्यवस्था के निर्माण मे रत है जो व्यक्ति के गुणो पर आधारित हो। मानव-मात्र की यही मंगल-कामना इस काव्य का महान उद्देश्य है।

सेनापति कर्ण

महारथी कर्ण के जीवन पर आधृत लक्ष्मीनारायण मिश्र जी का यह काव्य अपूर्ण है। इसमे उन्होंने 'महाभारत' से कर्ण-जीवन सम्बन्धी प्रासंगिक वृत्तों को ग्रहण किया है। इस प्रबन्ध काव्य की विशेषता यह है कि इसमे कथा का विकास पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व में होता है। प्रत्येक पात्र किसी विशेष स्थिति पर विचार करते हुए, उससे सम्बन्धित स्वयं की मानसिक स्थिति पर सोचने लगता है। इसी विचार शृंखला मे कथा का विकास होता चलता है। 'महाभारत' में जिस प्रकार संवादों के स्थलो पर कथा की गति मन्थर रहती है, उसमें द्रुत विकास नहीं होता, उसी तरह इस काव्य मे अन्तर्द्वन्द्व के समय कथा अत्यन्त मन्दगति से चलती है। कथा के क्रम विपर्यय से कवि ने मौलिक प्रबन्ध शिल्प का परिचय दिया है।

वस्तु-संकलन

प्रस्तुत काव्य में 'महाभारत' के आदिपर्व अध्याय १५१ से १५५ तक की हिडिम्ब-वध की कथा का संक्षेप चिन्ता सर्ग मे किया है। सभापर्व से द्यूत क्रीड़ा का प्रसंग लेकर द्रौपदी के अन्तर्द्वन्द्व को स्वतंत्रता से विकसित किया है और जरासंध-वध की सांकेतिक सूचना देकर, उद्योग पर्व के आधार पर भीष्म और कुन्ती का वार्तालाप, स्वनिर्मित रूपरेखा में प्रस्तुत किया है। कृष्ण के सन्धि अभियान का प्रसंग भी इसी पर्व

में गृहीत है। भीष्म पर्व से भीष्म एवं कर्ण का वार्तालाप, दुर्योधन द्वारा भीष्म के पराक्रम की प्रशंसा, युद्ध-नीति और कामदेव के प्रसंग में भीष्म की स्थिति की कथा ग्रहण की है। द्रोणपर्व से मन्त्रणा सर्ग की कथा का विकास करके द्रोण-वध के उपरान्त सबका शोक-मग्न होना और आगामी कार्यक्रम की चिन्ता का प्रसंग विन्यस्त किया गया है।

कर्ण पर्व का सम्पूर्ण आख्यान कवि नहीं ले पाया है। कर्ण पर्व के आधार पर कवि ने कर्ण के सेनापति पद पर अभिषेक, अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा और उधर पाण्डवों की चिन्ता का चित्रण किया है। घटोत्कच के उपाख्यान का अन्तिम भाग भी इसी के आधार पर विन्यस्त है। इस रूप में सेनापति कर्ण में कथा की दृष्टि से आदिपर्व, सभापर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व और कर्णपर्व से ही कथा-सूत्रों का चयन किया गया है। इन कथा-सूत्रों में भी कवि ने कथा-विपर्यय और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण अधिक किया है।

परिवर्तन-परिवर्धन : मन्त्रणा : मन्त्रणा सर्ग में कवि प्राचीन महाकवियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता है और कुरुक्षेत्र के युद्ध का स्मरण करते हुए उन वीरों के ओज और पौरुष का चित्रण करता है जिन्होंने निष्काम कर्म की भावना से युद्ध किया।

कथा का प्रारम्भ कौरवों के शिविर से होता है। द्रोण का वध हो चुका है, और शिविर में कुरुराज, शल्य, कृतवर्मा आदि चिन्ताग्रस्त हैं। दुर्योधन रोता हुआ, द्रोण के वध को असम्भव मानता हुआ, पूछता है कि गुरु किस प्रकार युद्ध में मारे गये? द्रोण के वध के साथ धर्मराज की उक्ति की आलोचना करते हुए कवि प्रसंग से पाण्डवों के जन्म की गाथा को लोकधर्म के विपरीत बताता है। यह प्रश्न भी विचारणीय है कि पाण्डव औरस सन्तान नहीं थे, तो क्या वास्तव में वे उत्तराधिकारी थे या नहीं? कवि की दृष्टि में कौरवों का पाण्डवों से विरोध का मूल प्रश्न यही था। कवि की सहानुभूति पाण्डवों के प्रति नहीं है अतः वह व्यंग से उनकी उत्पत्ति पर प्रकाश डालता है :

> पाण्डवों के जन्म की कहानी जानते हो जो
> विश्व जानता है, यह ग्लानि कुरुवंश की।[1]

ऐसा ज्ञात होता है कि कौरवों का समस्त विरोध केवल इसी बात पर आधारित है। महाभारतकार ने स्वयं अनेक स्थानों पर पाण्डवों के जन्म के औचित्य पर प्रकाश डाला है। अन्ततः पाण्डवों का जन्म धर्म-सम्मत घोषित किया गया। किन्तु मिश्र जी को इस निर्णय से संतोष नहीं। द्रोण-वध के उपरान्त नीति की व्यावहारिकता से प्रेरित दुर्योधन एक बार समस्त स्थिति का अवलोकन करता है। वह नई पुरानी सभी बातों पर विचार करता है। वह सोचता है कि युद्ध का परिणाम क्या हो सकता है? उसे पराजय दिखाई देती है। फिर भी उसे अपने वंश पर स्वाभिमान है, वह अपनी हार में केवल भाग्य की वामता मानता है।

---

१ सेनापति कर्ण, पृ० ७

दुर्योधन के क्षोभ को शान्त करने के लिए कृतवर्मा कहता है कि जनमत भी दुर्योधन के पक्ष मे था। 'महाभारत' मे कृष्ण से अर्जुन एव दुर्योधन दोनो ने सहायता मागी थी। परिणाम स्वरूप दुर्योधन को सेना और अर्जुन को निरस्त्र कृष्ण प्राप्त हुए थे।[1] कवि ने 'महाभारत' के इस अंश को सम्भावना के आधार पर इस रूप मे चित्रित किया है कि सभी यदुसेना कौरवों के पक्ष मे थी, अकेले कृष्ण पाण्डवों का पक्ष चाहते थे। कृष्ण ने जिस समय इन्द्र पूजा का विरोध किया तो इसी सेना ने उनकी सहायता की थी। कृतवर्मा कहता है कि विवाद के बाद यही निश्चित हुआ कि सेना कौरवों की ओर जाये और कृष्ण पाण्डु-पुत्रों की ओर रहे। कृष्ण की सहायता को इस रूप मे चित्रित करना कवि की मौलिकता है। 'महाभारत' मे ऐसा कोई सकेत नही है। इस कथा परिवर्तन का औचित्य इतना ही है कि कवि यह सिद्ध करना चाहता है कि पाण्डवों को जनसमर्थन कौरवों की अपेक्षा कम मात्रा मे प्राप्त था।

दुर्योधन और कृतवर्मा के मानसिक द्वन्द्व मे भीष्म की स्मृति और भी करुणा का आवेग प्रस्तुत कर देती है। भीष्म किस प्रकार परास्त किये गये ? वह छल पौरुष सम्पन्न था या केवल युक्तिसम्पन्न। धर्मयुक्त था या अवसर युक्त। इन सब प्रश्नो की विवेचना आचार के धरातल पर होती है। दुर्योधन भीष्म के विषय में कहता है—

और वे ही जा पड़े जो देखो काल मुख मे
नीति से, तुम्हारे कुलभूषण की नीति से।
माधव मुकुन्द, जो तुम्हारे दिव्य चक्षु है
देखते हैं स्वार्थ साधना जो सत नेत्र से।[2]

दुर्योधन कृष्ण के चरित्र पर आरोप लगाता है कि उन्होने कूटनीति से पाण्डवों को विजय दिलाई है। दुर्योधन के उत्तर में अश्वत्थामा का मत है कि दुर्योधन ने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं किया। उसे पाण्डवों का भाग देना चाहिए था। यही पर अश्वत्थामा की मानसिक अव्यवस्था मे कवि उससे धृष्टद्युम्न के वध की प्रतिज्ञा करवाता है।[3]

अपना मन्तव्य प्रकट करके अश्वत्थामा वसुसेन के पास आता है और दुर्योधन की चिन्ता अभिव्यक्त करता है। वह इसे रुदन का समय न मान कर दुगुने उत्साह से युद्ध की प्रेरणा देता है। कर्ण को द्रोणि के वचनों पर विश्वास नहीं होता वह उनके साथ शिविर मे आता है। कवि इस बात पर विचार करता है कि युद्ध मे पराक्रम के ऊपर नीति की विजय रही। कर्ण दुर्योधन को शान्त करता है, और धनंजय से युद्ध की प्रतिज्ञा को दुहराता है।

---

१. म० उद्योग० अध्याय ७

२. सेनापति कर्ण, पृ० २२

३. धृष्टद्युम्न महत्वाहं न विमोक्ष्यामि दर्शनम्।
अनृतायां प्रतिज्ञायां नाहं स्वर्गमवाप्नुयाम्। म० कर्ण० ५७।१६

चिन्ता चिन्ता सर्ग मे कवि स्थिति की सम्भावना के आधार पर पाण्डवो की मनस्थिति का चित्रण करता है। यह भी मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व के रूप मे चित्रित हुआ है। कौरवो की मानसिक अशान्ति का कारण द्रोण-वध है। पाण्डवो की चिन्ता का कारण कर्ण की एकघ्नी शक्ति है। पाण्डव-शिविर मे कृष्ण धर्मराज को समझाते हैं कि कल के युद्ध मे अर्जुन को कर्ण के सामने होने से रोका जाय। वे इसी युक्ति-सन्धान मे दत्तचित्त हैं कि भीम क्रोधित हो जाता है। भीम कहते हैं कि यदि कर्ण बली है तो हम पुन वन को चलें क्योंकि राज्य के लिए स्वत्व छोडना श्रेयस्कर नही है। भीम की युक्ति मे अदम्य शक्ति की ओजस्विता अभिव्यक्त है।

कवि ने कर्ण के सेनापतित्व को लेकर पाण्डवो की चिन्ता का चित्रण अत्यन्त कुशलता से किया है। सर्वशक्तिमान होते कृष्ण का साथ रहने पर भी, इन्द्र की अमोघ शक्ति के कारण यह चिन्ता स्वाभाविक है। 'महाभारत' मे इस स्थल के स्रोत कई रूपो मे मिल जाते हैं।

द्रोणपर्व के अन्तर्गत रात्रि-युद्ध मे युधिष्ठिर चिन्तित हो उठते हैं तो कृष्ण युक्ति से घटोत्कच को कर्ण से द्वैरथ के लिए प्रेरित करते हैं। इसके पूर्व भी घटोत्कच युद्ध मे भाग लेता रहा है। पर कर्ण से द्वैरथ युद्ध महत्त्वपूर्ण है। पाण्डवो की चिन्ता के साथ कवि, द्रौपदी के अन्तर्द्वन्द्व को कथा का मुख्य भाग बनाना चाहता है। 'महाभारत' मे द्रौपदी के पचपुत्रो का अनेक स्थान पर वर्णन है। उनके युद्ध को भी प्रमुख रूप से चित्रित किया गया है। इस पर भी मिश्र जी की आपत्ति है कि पाच पुत्रो का जन्म कब और कहा हुआ? वे इस बात को सत्य ही नही मानते और तर्क के अभाव मे भी यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि अश्वत्थामा पर उनकी हत्या का कलक मिथ्या है।[1] 'महाभारत' मे कौरव पाण्डवो की कथा की प्रधानता के कारण अभिमन्यु और द्रौपदी के पाच पुत्रो की जन्म-कथा साकेतिक रूप मे कही गई है। अभिमन्यु अपने वध के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया, जबकि द्रौपदी के पुत्र उतनी प्रधानता नही प्राप्त कर पाये। द्रौपदी का अन्तर्द्वन्द्व दो कारणो से है—

पहले उसे पाच व्यक्तियो की पत्नि बनने का क्षोभ है। इसे वह तत्कालीन नीति का आग्रह मानती है।

दूसरे उसे अपने सन्तान-विहीन होने का क्षोभ है।

—पितृदेव के निधन का
बदला न लू जो धृष्टद्युम्न के रुधिर से
तर्पण उन्हें कर, न सींचू धरातल को
शत्रुओं के शोणित से जाऊ मै नरक में। सेनापति कर्ण, पृ० ३०

१ सेनापति कर्ण, पृ० ६३

अर्जुन और द्रौपदी के वार्तालाप में इस अन्तर्द्वन्द्व को उभारना अधिक समीचीन नहीं, क्योंकि इस समय मस्तिष्क की समस्त शक्ति भावी संकट को टालने की युक्ति का अनुसंधान कर रही है। ऐसे मे उन बातो को उठाने से कोई लाभ नही जिनका कोई समाधान नहीं है। कवि स्वयं अपने ऊपर सत्यान्वेषण का उत्तरदायित्व लेकर सत्य का प्रकाशन करता है कि द्रौपदी को पंच पतियों की पत्नि होने का क्षोभ है।

पाच पति मेरे बलि मेरी जो हुई थी हा,
राजनीति दैवी या कि दानवी की तुष्टि को
जानती हूं मैं तो नही जानेगा भविष्य क्या।[1]

'महाभारत' मे किसी भी स्थान पर द्रौपदी के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण इस कारण नही है कि वह पांचों पाण्डवो की पत्नि है। यह सम्भावना कवि की अपनी है और इससे वह सिद्ध करना चाहता है कि पाण्डवों का एक द्रौपदी से विवाह भी कूटनीति का ही परिणाम था। व्यासजी ने धर्म के सूक्ष्म विवेचन से व्यावहारिक आदर्श के अनुरूप द्रौपदी के पंचपतित्व का समर्थन किया, व्यासजी ने इसके समर्थन मे प्राचीन कथा एवं पूर्वजन्म की कथा को भी सम्बद्ध कर लिया, फिर भी यह घटना अपने आप में एक ही रही। इसका सामाजिक, सैद्धान्तिक व्यवहार नहीं बन पाया। अतः इस विवाह को मिश्र जी ने तत्कालीन नीति का फल कहा है यह उचित भी हो सकता है।

दूसरे क्षोभ का कारण है सन्तान हीनता। कवि कहते है :

जन्म की कहानी उन पाण्डवों के पुत्र की,
जानता नही है लोक, पैदा वे कहां हुए,
इन्द्रप्रस्थ नगरी मे, वारणावत वन में।[2]

यह बात द्रोण का कलंक धोने के लिए कही गई है।

पाण्डवो की चिन्ता करते कवि का ध्यान घटोत्कच की माता हिडिम्बा की ओर जाता है। इस कथन में भी कवि सम्भावनाओ की बात करता है। 'महाभारत' में घटोत्कच द्रोणपर्व के युद्ध मे योद्धा के रूप में लड़ा, और उसका आना उतना नाटकीय नहीं है। कवि इस कथानक मे परिवर्तन करता है।

पहला महत्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि भीम और हिडिम्ब के युद्ध का कारण अनायास ही वन मे मिलना न मानकर कवि ने इस युद्ध का सम्बन्ध भीम एवं जरासन्ध युद्ध से जोड़ा है। हिडिम्ब जरासन्ध के वध का बदला लेना चाहता है और हिडिम्बा पहले से ही भीम पर अनुरक्त है।

---

१. सेनापति कर्ण, पृ० ६१
२. सेनापति कर्ण, पृ० ६४

भाई जो हिडिम्ब दानवेन्द्र बली मेरे थे,
सह न सके वे नरश्रेष्ठ की सुकीर्ति को,
× ×
मार जरासन्ध को यशस्वी भीमसेन है
आज बना किन्तु उसे मार के समर में,
लेना प्रतिशोध मुझको है मित्र वध का।[1]

यह प्रसंग 'महाभारत' में नहीं है किन्तु राक्षसों के विशाल परिवार की कल्पना करके ऐसी सम्भावना अनुचित नहीं है कि हिडिम्ब के मन में जरासंध के प्रतिकार की भावना हो।

दूसरा परिवर्तन है कि भीमसेन हिडिम्बा को निम्नवर्ग का जानकर त्याग कर चले। हिडिम्बा भीम के साथ नहीं रही यह 'महाभारत' का सत्य है, पर उसका कारण कवि ने अपनी मौलिक उद्भावना से दिया है।

हिडिम्बा के कथानक को कवि ने जिस रूप में प्रस्तुत किया है उसमें उसके कुछ उद्देश्य निहित हैं, जिनकी चर्चा समीक्षा के अन्तर्गत की जायेगी।

सृष्टिधर्म सृष्टिधर्म सर्ग में कवि कथानक को स्वर्ग में ले जाता है। प्राचीन प्रेम कथाओं की स्मृति करता हुआ भीष्म के ब्रह्मचर्य व्रत की प्रशंसा करता है। कामदेव देवराज इन्द्र से मानसिक व्यथा कहता है कि उसके बाण भीष्म को न बींध सके और वही व्रती भीष्म अब बाणविद्ध होकर इस रूप में पड़ा है।

इसमें कवि 'महाभारत' के कथानक के तात्विक अंश की रक्षा करते हुए कथाक्रम को अपने अनुसार उपस्थित करता है और उसमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन करता है। कर्ण भीष्म के पास वार्तालाप के उपरान्त लौटते हैं। कवि ने 'महाभारत' के इस कथांश को अधिक भावमय बनाने के कारण ये परिवर्तन किये हैं

कुन्ती भीष्म के पास आकर कर्ण जन्म की दुखद गाथा सुनाकर अपने द्वन्द्व को प्रकट करती है

हाय देव कैसे मैं कहूंगी किन्तु अब तो,
चाहती क्षमा हूं कुरु केतु पुत्र मेरा है,
कर्ण पृष्ठ धारी कर।
× × — —देव चाहें जो
आप यदि, कर्ण और अर्जुन का रण तो
रुक सकता है कल जन्म एक माता से
दोनों ने लिया है।[2]

---

१ सेनापति कर्ण, पृ० ८६
२ सेनापति कर्ण, पृ० ११९-२०

माता का ममत्व इतने दिनों तक सामाजिक आवरण में पीड़ित होता रहा पर जब वह अपने ही दोनों स्नेहाधारों को युद्ध मे लड़ने की सूचना सुनती है तो प्रकम्पित हो उठती है, और मानसिक द्वन्द्व भीष्म के समक्ष अभिव्यक्त हो उठता है।

इस स्थल पर कवि ने कर्ण की उपस्थिति को अत्यन्त नाटकीय रूप से प्रस्तुत किया है। यद्यपि कर्ण स्वयं कुन्ती के मुख से अपनी जन्म-गाथा सुन चुका है। पर इस अप्रत्यक्ष श्रवण के द्वारा उसके विश्वास को दृढ़ किया गया है। कर्ण पितामह की उपस्थिति मे स्वीकृत कुन्ती के इस सत्य को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार कर लेता है। कथा के द्वन्द्वात्मक स्थलों म इस प्रकार के अप्रत्यक्ष वार्तालाप अत्यन्त सहायक होते है। लौटते हुए कर्ण मिलता है, और अपने वचन को दुहराता है। यहा माता के ममत्व के साथ कर्ण के पौरुष की अभिव्यक्ति भी होती है। इस स्थल पर कवि कुल-वंश के विधान की विवेचना करता है। मिश्र जी 'महाभारत' के तात्विक विधान की रक्षा करते हुए स्थिति का भावमय चित्रण करने मे सफल है।

वध्यान् विषह्यान् संग्रामे न हनिष्यामि ते सुतान्
युधिष्ठिर च भीम च यमौ चैवार्जुनादृते।[1]

× × ×

मैंने था भरोसा दिया अर्जुन को छोड़ के।
आहत करूंगा नहीं और किसी भाई को।[2]

'महाभारत' में कर्ण इन्द्र की अमोघ शक्ति के कारण अपने को अजेय समझता था। जिस रूप में भीष्म ने अपने मरने की युक्ति पाण्डवों को बताई थी उसी रूप में कर्ण भी कुन्ती से कहता है :

फिर भी अमोघ शक्ति वासव की कल जो
अर्जुन न आये रोकने को मुझे तब तो
निश्चय यही जानो है निरापद समर में।[3]

इस रूप मे मिश्र जी ने 'महाभारत' के अंश की मूल भावना के विपरीत भी मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व की स्थापना की है।

विषाद : इस सर्ग का कथानक कवि की कल्पना का विस्तार है। 'महाभारत मे दुःशासन का कार्य-व्यापार दुर्योधन की छत्रछाया में सहायक रूप में रहा। वह अधिक महत्वपूर्ण नही हो सका। प्राचीन महाकाव्यों में सामान्य रूप से किसी बड़े व्यक्ति की मृत्यु के पूर्व होने वाली अमंगल सूचनाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अभिमन्यु से पूर्व उत्तरा को अमंगल सूचनायें इसी रूप मे वर्णित है। मिश्र जी ने उन्ही सम्भाव-

---

१. म० उद्योग० १४६। २०
२. सेनापति कर्ण, पृ० १२७
३. सेनापति कर्ण, पृ० १३१

नाओ के आधार पर विषाद सर्ग की कथा का निर्माण किया है। शिविर मे दुःशासन की पत्नि उन्हे दूसरे दिन युद्ध मे जाने से रोकती है। दुर्योधन की पत्नि उन्हे दूसरे दिन युद्ध मे जाने से रोकती है और इसका समर्थन करती है। इसी बीच मे मानव जन्म की वास्तविकता और युद्ध के औचित्य पर विचार होता है।

पाण्डव पक्ष मे भी विषाद की रेखा विद्यमान है। द्रौपदी सभी पाण्डवो का भयग्रस्त देख कर, व्यथित होकर अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे अपनी पुरानी कष्ट कथाओ का स्मरण करती है। कवि ने पाण्डवो के मर्म का स्पर्श करने के लिए द्रौपदी के मुख से यह भी कहलवा दिया कि यदि ऐसा ही था तो स्वयवर मे मैंने कर्ण का वरण न करके भूल की थी—

काल पृष्ठ धारी है अकेला सुतराधा का,
तब तो स्वयवर मे वरती उसी को मैं।[1]

यह सुनकर अर्जुन का दर्प खौल उठता है। वह कर्ण वध की प्रतिज्ञा करता है। इस स्थल पर अर्जुन का शौर्य अभिव्यक्त हुआ है। इस मानसिक व्यथा के अन्धकार मे प्रकाश की रेखा लेकर घटोत्कच आता है। भीमादि सभी वात्सल्य म डूब जाते हैं, पर कृष्ण उनको मोह निन्द्रा से जगाकर सचेत करते हैं।

विषाद मे कवि ने कथा का विकास अल्पमात्रा मे किया है और उसके अन्तर्गत मानसिक व्यथाओ का अनावृत्त किया गया है। इसमें प्रत्येक पात्र मानव धरातल पर उतर युद्ध की विभीषिका के परिणामो पर विचार करता है।

अर्घ्यदान इस सर्ग मे कवि कर्ण द्वारा सूर्य की पूजा का चित्रण करता है। कर्ण कर्मनिष्ठ है। अत फल की याचना नही करता और पराजय के भय से विमुक्त होने का वर लेता है। दुर्योधन सेनापति पद पर कर्ण का अभिषेक करते है। द्रौणि द्रौपदी की सूचना देते हैं। यह कथा परिवर्धन है कि द्रौपदी स्वय रण मे जाने का उत्सुक होती है। इस प्रसग मे कवि हास्य की यत्किंचित योजना करता है। कर्ण अभिषेक के समय पुन हीन जन्म और परम्परा की विवेचना करता है। इस दृश्य मे सभी कर्ण के पौरुष की प्रशसा करते, और कर्म को जन्म से महान मानते हैं।

पाण्डव शिविर मे घटोत्कच सबको अभय देता हुआ वसुसेन के वध की प्रतिज्ञा करता है। वह द्रौपदी के वात्सल्य का आदर करता हुआ भी उसे उपेक्षित करता है। कृष्ण इस स्थल पर काल बल की प्रतिष्ठा करके, नीति की व्यावहारिक उपयोगिता की स्थापना करते हैं। यहा कृष्ण आत्मबल की उच्चता का प्रतिपादन करते हैं। और काव्य घटोत्कच के उद्घोष के साथ समाप्त हो जाता है।

---

१ सेनापति कर्ण, पृ० १६२

कथा-समीक्षा

'सेनापतिकर्ण' के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मिश्र जी का दृष्टिकोण 'महाभारत' की कथा को नवीन सम्भावनाओ के आधार पर प्रस्तुत करना है। मिश्र जी के परिवर्तन यद्यपि अधिक महत्वपूर्ण नही है तथापि उस काल की राजनैतिक स्थिति की विवेचना के लिए एक नई दृष्टि अवश्य देते है। मिश्र जी के मत मे दुर्योधन की शत्रुता का मुख्य कारण पाण्डवो का अनौरस होना था। उन्होने पाण्डवो के जन्म को कुरुवश की ग्लानि कहा है। इस दृष्टि से यह स्पष्ट है कि कवि मूलतः भारतीय आस्था के विपरीत अपने तथ्यो को लेजाकर तत्कालीन धर्म और सामाजिक व्यवस्था की नई व्याख्या करता है। 'महाभारत' मे पाण्डु-पुत्रो की उत्पत्ति एक ओर अलौकिक है, दूसरे उनसमय की सामाजिक व्यवस्था की एक झलक देती है। सन्तान उत्पन्न करने मे असमर्थ पाण्डु कुन्ती को अन्य पुरुष से सन्तान प्राप्ति का आदेश देते है।[1] कुन्ती पतिव्रत धर्म की विवेचना करती है[2] तथापि पति की आज्ञा से वश-परम्परा की रक्षार्थ देवताओ का आवाहन करके पुत्र प्राप्त करती है।[3] महाभारतकार इस व्यवस्था को धर्म-सगत मानता है। यदि यह व्यवस्था अधार्मिक होती तो इसकी भर्त्सना की जा सकती थी अथवा इनके विपरीत विचारो की अभिव्यक्ति होती। मिश्र जी का दुर्योधन अपने वंश पर गौरवान्वित और पाण्डवो को अनौरस कहता है, किन्तु धृतराष्ट्र के सौ पुत्रो की उत्पत्ति 'महाभारत' मे जिस प्रकार वर्णित है,[4] उसके अलौकिकत्व का कोई भी बुद्धि-सम्मत समाधान मिश्र जी प्रस्तुत नही कर सके है। वस्तुतः इन वंश-परम्पराओं के जन्म की जितनी अलौकिक घटनाएं है उनके विषय मे आज का कवि यातो आस्था से स्वीकृति दे या उनको अस्वीकार करे। किन्तु यह उचित नही है कि दो समानान्तर घटनाओं मे से, एक को मान लिया जाये और दूसरी को अनुचित सिद्ध किया जाय।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्धन है कृतवर्मा का भाषण। इस वक्तव्य से पाण्डवों के पक्ष की महाभारतीय जनप्रियता का मूल आधार ही समाप्त हो जाता है। कृष्ण ने अपनी सेना दुर्योधन को दी और स्वय पाण्डव पक्ष मे रहे। 'महाभारत' के इस तथ्य को मिश्र जी ने नवीन दृष्टि दी है। उनके अनुसार जनमत दुर्योधन के पक्ष मे था अतः विराट की सभा मे ही यह निश्चय हो गया था कि सेना दुर्योधन के पक्ष में रहेगी। यह सम्भावना कवि कल्पना की ऊची उडान तो है ही किन्तु इसको नितान्त अनुचित नही कहा जा सकता इसका कारण है कि उच्चादर्श सम्पन्न व्यक्तियों को दुर्योधन अपने पक्ष मे न कर सका था, किन्तु इतनी क्षमता तो उसकी मानी ही जा सकती है कि सामर्थ्य सीमा मे उसने पाण्डवों के वनवास का लाभ उठाकर अधिक राजनैतिक सम्बन्ध जोड लिए हो।

१. म० आदि० १२१।४८
२. म० आदि० अध्याय ११६
३. म० आदि० अध्याय १२१
४. म० आदि० अध्याय ११४

कृष्ण की नीतिमत्ता को पाण्डवों की विजय का मुख्य आधार मानकर मिश्र जी ने राजनीतिक कूटनीति को स्वीकार किया है जो प्रत्येक युग की नीति का एक अंग है। कर्ण की एकघ्नी शक्ति को लेकर पाण्डवों के आन्तरिक क्षोभ के चित्रण में कवि उन सबको मानवीय धरातल पर अवतरित करता है। 'महाभारत' का दिव्य वातावरण आज के युग की आवश्यकता के अनुरूप नितांत स्वाभाविक जान पड़ता है महाभारतकार के समक्ष पात्रों की मानसिक दशा के चित्रण का अधिक अवकाश नहीं था अतः इस स्थल पर कवि की प्रतिभा का चरम उत्कर्ष व्यंजित होता है।

द्रौपदी का विवाह राजनैतिक दृष्टि से निश्चय ही तत्कालीन सामन्तीय प्रथा की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। यदि द्रौपदी विवाह के धार्मिक पक्ष की उपेक्षा करके उसे राजनैतिक संदर्भ में देखा जाय तो भी विशेष हानि नहीं, क्योंकि जिस समाज व्यवस्था में नीति के कारण एक पुरुष के अनेक विवाह हो सकते हैं, उसमें उसी रीति के आग्रह से एक स्त्री के पांच पति भी विशेष परिस्थिति में स्वीकार्य हैं। तत्कालीन स्वयंवरों में शक्ति परीक्षण की शर्तें इसी राजनैतिक संदर्भ में होती हैं।

सेनापति कर्ण' का महत्वपूर्ण परिवर्तन हिडिम्बा प्रसंग में है। इस कथा में भीम और हिडिम्ब के युद्ध को जरासन्ध-वध से जोड़ना उस समय के एक व्यापक असुर राज्य की कल्पना के रूप में औचित्य पूर्ण है। इस परिवर्तन से भीम के चरित्र की रक्षा हुई है। हिडिम्ब मित्र वध के प्रतिकार के हेतु भीम से लड़कर परास्त होता है। हिडिम्बा और भीम के विवाह से महाभारतकालीन असुर वर्गीय स्त्रियों की स्वच्छन्द प्रियता की अभिव्यक्ति हुई है। मिश्र जी हिडिम्बा को आर्य स्त्री के गुणों से सम्पन्न और पतिव्रत धर्म की प्रतीक श्रेष्ठ नारी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। हिडिम्बा का समर्पण महान है, वह अपने पतिव्रत की रक्षा के लिए अपने पुत्र की आहुति देने को तत्पर है—वह सब कुछ देकर कुछ लेना नहीं चाहती। महाभारत' में जिस वातावरण में राजसूय हुआ था उसका प्रभाव कुछ राजाओं पर विपरीत रूप में पड़ा। नीति की व्यावहारिकता के कारण कुछ असुरों को दण्डकर समाप्त किया, कुछ को दस सम्बन्ध से पाण्डवों ने अपने पक्ष में किया। यह निश्चित है कि घटोत्कच के सभी सम्बन्धी पाण्डव पक्ष में मिलेंगे। हुआ भी यही, इससे कौरव पक्षीय असुरों के साथ युद्ध करने के लिए पाण्डवों की ओर भी असुर सेना की एक टुकड़ी हो गई। अतः इन सभी परिवर्तनों का उद्देश्य अन्ततः राजनैतिक है।

भीष्म और कुन्ती के वार्तालाप में कुन्ती के मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति नारी के ममत्व का उद्घाटन करती है। इस प्रसंग में कवि लोक मानवता के विराट आदर्श की स्थापना करता है कि कुरुकुल लक्ष्मी को एक पुत्र की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इस युद्ध में जितने भी युवक वीरगति प्राप्त हुए हैं वे राजमाता के पुत्र ही हैं। इस दृष्टि से कवि राजधर्म को वैयक्तिक सीमा से उठाकर विशाल भूमि पर उपस्थित करता है। कुन्ती और कर्ण के वार्तालाप में कर्ण के चरित्र की महानता व्यक्त

होती है, वह दान की उच्चतम भूमि पर अपने प्राणदान करता है और कुन्ती को वासव की शक्ति से सजग कर देता है। कर्ण जैसे महादानी के विषय में यह कल्पना अनुचित नहीं है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि इस काव्य मे मानसिक द्वन्द्वों के मध्य जीवन की प्रवृत्ति मूलक दृष्टि का समर्थन करते हुए, कवि ने पौरुष की दीप्ति को महनीय जीवन का आधार माना है। वह काल और नियति के आवरण की सशक्तता को स्वीकार करता हुआ भी कर्म-निष्ठता का प्रतिपादन करता है। यह काव्य की महान उपलब्धि है।

अंगराज

'महाभारत' की सम्पूर्ण कथा का संक्षेप करते हुए कवि ने इस काव्य मे कर्ण की प्रधानता रक्खी है। कवि की दृष्टि कर्ण के वीरतापूर्ण व्यक्तित्व पर रही है। 'महाभारत' मे प्राप्त कर्ण की कथा तथा अन्य सम्बन्धित कथा रूपों से यह कथा विन्यस्त की गई है। इस काव्य मे कर्ण का औदार्य पूर्ण जीवन ही सर्वथा सचेष्ट रहा है। प्रस्तुत काव्य की रचना के समय कवि का मन परम्परा से आदर प्राप्त पाण्डवों के प्रति क्षुब्ध और कौरवों के प्रति सहानुभूति पूर्ण है। भूमिका मे कवि ने अपनी दृष्टि से पाण्डवों के छलकपट अधर्म, असंयम, असभ्यता पर यथेष्ट लिखा है।[1] पाण्डवों के पक्ष को इस तरह असभ्य प्रदर्शित कर कवि ने कौरवों की उच्चता सिद्ध की है।

भारती नायक कर्ण के सद्गुणो का वर्णन करता हुआ कवि उसकी वीरता पर मुग्ध है उसके चरित्र में मानवीय गुणो का अपार भण्डार है। प्रबन्ध के विस्तार, व्यापकता और कथा-संगठन के रूप में 'अंगराज' निश्चित ही सुन्दर प्रबन्ध काव्य सिद्ध होता है। प्रस्तुत काव्य मे कर्ण नायक है जो भारतीय परम्परा के अनुसार सभी सदगुणो से युक्त है।[2] अत. इसके चरित्र पर प्रकाश डालने वाले प्रासंगिक वृत्तों का नियोजन कुशलता से किया गया है। जातीय गौरव की स्थापना कवि का मुख्य उद्देश्य है।

व्यक्ति के जीवन में आत्मनिर्भरता, वीरत्व, कर्म की शक्ति पर अडिग विश्वास प्रकट करने के लिए कथा का नियोजन किया है। वह कर्ण को मानवता का प्रतीक बनाना चाहता है। वह स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि मानवीय गुणों की पराजय देवत्व के समक्ष भी असम्भव है। और यदि मानव कभी हारता है तो केवल अदृश्य कार्य कलाप से। अपने कर्म मे अडिग विश्वास रखना मनुजता का चरम गुण होना चाहिए।

---

१. अंगराज, भूमिका, पृ० २१

२. अंगराज, भूमिका, पृ० ४०

वस्तु-सकलन

'अगराज' की कथावस्तु का सकलन सम्पूर्ण 'महाभारत' से हुआ है अत अठारह पर्वों का कथानक सक्षेप मे इस काव्य मे आ गया है।

आदिपर्व 'अगराज' के प्रथम सर्ग मे ६२ वें छन्द तक कवि ने महाभारत कालीन भारत देश का चित्रण किया है। तदुपरान्त आदिपर्व के एक सौ एक वे अध्याय के आधार पर कुरुकुल का सक्षिप्त परिचय देकर, द्वितीय सर्ग मे आदिपर्व के अध्याय ११०, १२५ १३६ को सक्षिप्त करके कर्ण जन्म अधिरथ को मजूषा की प्राप्ति, रगभूमि मे शस्त्रप्रदर्शन को चित्रित किया है। अध्याय १३७ से १४० तक की कथा को छोड दिया गया है। जतुगृहपर्व के १४१ से १४७ तक के अध्यायो के सक्षिप्त रूप मे लाक्षागृहदाह प्रसग का निर्माण करके, हिडिम्ब वकपर्व को छोड कर स्वयवर पर्व के आधार पर द्रौपदी-विवाह का प्रसग लिया है। अध्याय २०५ से २०६ तक की कथा के आधार पर राज्य प्राप्ति का वर्णन है।

सभापर्व सभापर्व की कथा का सक्षेप जरासन्ध वध, राजसूय यज्ञ, दुर्योधन का अपमान, प्रथम द्वितीय द्यूत और पाण्डव वनवास—शीर्षकों मे किया गया है। प्रमुख रूप मे जरासध वधपर्व, राजसूय पर्व, द्यूत पर्व और अनुद्यूत पर्व की कथाओ को छठे सर्ग के उत्तरार्ध मे चित्रित किया है।

वनपर्व वनपर्व के अध्याय २५३ से २५७ तक की कथा सक्षिप्त रूप से सप्तम सर्ग मे वर्णित है इसी पर्व के ३०० से ३१० अध्याय तक की कथा का सक्षिप्त नवम सर्ग मे किया है। इस कथा के कर्ण-जन्म-प्रसग को कवि ने दूसरे सर्ग मे चित्रित किया है।

विराटपर्व विराटपर्व की कथा का कवि ने विस्तार से वर्णन नहीं किया केवल अन्तिम घटनाओ को पाण्डवो के प्रकट होने के रूप से वर्णित किया है।

उद्योगपर्व उद्योगपर्व के आधार पर कवि ने दसवे सर्ग से पन्द्रहवें सर्ग तक की कथा का सयोजन किया है। उद्योगपर्व के प्रारम्भिक विचारो को कवि ने छोड दिया है और भगवद्यान पर्व के ७२ वे अध्याय से ८५ वें अध्याय तक की कथाओ को दसवें और ग्यारहवे सर्ग मे वर्णित किया है। मध्य के अनेक प्रासगिक स्वतन्त्र वृत्तो को छोडता हुआ कवि १४० से १४३ अध्याय तक की कथा के आधार पर कृष्ण-कर्ण सवाद की सयोजना करता है। अध्याय १४४ से १४६ तक की कथा से कर्ण-कुन्ती सवाद का अवतरण होता है।

भीष्मपर्व भीष्मपर्व की कथा का सक्षेप १६, १७, १८ सर्गों मे हुआ है। अध्याय १९, २५ के आधार पर कवि ने उभय पक्षो के बल का निरूपण किया है। प्रसग रूप मे अर्जुन के मोह का वर्णन करके युद्ध की प्रमुख घटनाओ को रचना बद्ध किया है।

द्रोणपर्व द्रोणपर्व के आधार पर कवि ने मुख्य रूप से संकुल युद्ध और अभिमन्यु, जयद्रथ तथा घटोत्कच-वध लिया है। कर्ण के युद्ध का प्रारम्भ यहीं से होता है। कवि ने अभिमन्यु-वध के पर्व को दो छन्दों मे संक्षिप्त कर दिया है। इसी प्रकार जयद्रथ-वध को तीन छन्दों मे संक्षिप्त कर दिया है। इसी स्थल पर कवि ने कर्ण द्वारा सभी पाण्डवों को छोड़ने की कथा का वर्णन किया है और घटोत्कच-वध के साथ सर्ग समाप्त किया है।

कर्णपर्व : कर्णपर्व का संक्षेप बीसवे और इक्कीसवे सर्ग मे किया गया है। कर्ण पर्व के अध्याय ३२, ३५, ३६ के आधार पर कर्ण-शल्य-संवाद की संयोजना की गई है। अध्याय ७८ के आधार पर कर्ण के घोर युद्ध और पाण्डव सेना के पलायन का चित्र लिया है। अध्याय ८७ से ९१ तक कर्णार्जुन युद्ध को संक्षिप्त रूप से ग्रहण कर, युधिष्ठिर का युद्ध-दर्शन ९६ वे अध्याय पर रचित है।

शल्यपर्व : शल्यपर्व का संक्षेप तेईसवे सर्ग मे किया गया है। इसमे गदायुद्ध का प्रसंग भी वर्णित है।

सौप्तिकपर्व : इस पर्व का संक्षेप अश्वत्थामा द्वारा रात्रि में सम्पूर्ण सेना के संहार के रूप मे किया गया है। इसके उपरान्त दुर्योधन की मृत्यु होती है। सौप्तिक पर्व के १० वे अध्याय से १७ वे अध्याय तक की कथा से चौबीसवे सर्ग का निर्माण किया है।

स्त्रीपर्व : स्त्रीपर्व के आधार पर विशेष रूप से २१ वें अध्याय के आधार पर कवि ने रणभूमि मे कर्ण-पत्नि के विलाप का आयोजन किया है।

शान्तिपर्व : शान्तिपर्व मे प्रथम अध्याय से पंचम अध्याय तक कर्ण की कथा का वर्णन है। नारद जी कर्ण की परशुराम से शस्त्र-ज्ञान-प्राप्ति और जरासन्ध से युद्ध आदि का वर्णन करते हैं। कर्ण की सहायता से दुर्योधन कलिंगराज की कन्या का अपहरण करते हैं। कवि ने कथाक्रम के निर्वाह के कारण इस कथा को चौथे और पाचवे सर्ग मे अनुबद्ध किया है।

स्वर्गारोहण पर्व : इस पर्व के आधार पर पाण्डवो के देश निर्वासन की स्थिति की योजना की है।

सामान्यत: कवि ने उन्हीं प्रसगो को आख्यान बद्ध किया है जिनसे प्रत्यक्षतः अथवा परोक्ष रूप मे कर्ण के जीवन पर प्रकाश डाला जा सकता है। इस प्रयास मे 'महाभारत' की पूरी कथा का संक्षेप हो गया है। अन्यथा कर्ण-वध के साथ इस काव्य की समाप्ति हो सकती थी।

महाकाव्य होने के कारण प्रारम्भ से अन्त तक कथा-प्रवाह और वस्तु की धारावाहिकता सुरक्षित रही है। वस्तु के प्रबन्ध-निर्वाह की दृष्टि से कवि ने 'महाभारत' मे बाद मे आये वृत्तो को महाकाव्य के कथा-प्रवाह में यथास्थान सम्बद्ध किया है।

परिवर्तन-परिवर्धन : 'अंगराज' में कवि ने कथा का प्रारम्भ पौराणिक शैली में किया है। कवि सर्व प्रथम सूर्य का संक्षिप्त विवरण देता है। सूर्य स्वयं सूर्य लोक का परिचय देते हैं और संसार की अनेकता को ब्रह्म में प्रतिष्ठित करते हैं—

लोक दृष्टि में यहाँ ज्ञात होती अनेकता,
किन्तु प्रकट है मर्मस्वरूप में पूर्ण एकता,
एकमात्र हम प्रकृति चेतनाधार दृष्ट हैं,
लोक लोक में प्राण प्राण में हम प्रविष्ट हैं[1]

कथा के इस स्वरूप पर महाभारतीय जीवन दृष्टि का पूर्ण प्रभाव है। कवि प्राचीन आस्था के अनुसार सूर्य की स्थिति और सूर्य से कर्ण की उत्पत्ति की बात को मानकर कथा के दिव्य रूप को यथावत् स्वीकार करता है। इस सर्ग में महाभारत-कालीन भारत के संक्षिप्त वर्णन के उपरान्त पाण्डव-कौरव कुल का संक्षिप्त परिचय है। यहीं से मूलकथा आरम्भ होती है। कवि शान्तनु से लेकर पाण्डवों के जन्म तक की कथा को ६२ वें छन्द से ६७ वें छन्द तक वर्णित करता है। इस सर्ग में आदिपर्व के ९८ वें अध्याय से १०५ वें अध्याय तक पाण्डवों के जन्म से पूर्व अनेक व्यक्तियों के जन्म की विस्तृत कथा का संक्षेप किया गया है। पाण्डवों के जन्म के विषय में आदिपर्व के ११९ से १२१ अध्याय तक के पाण्डु कुन्ती संवाद को छोड़ दिया गया है। नियोग प्रथा से उत्पन्न सन्तान के सामाजिक स्वरूप पर विचार नहीं किया और अत्यन्त संक्षेप में केवल प्रक्रिया रूप जन्म की कथाओं का संकेत कर दिया है।

कर्णजन्म और रंगभूमि प्रसंग : कुन्ती के द्वारा कर्ण की उत्पत्ति और जल में प्रवाहित करने की कथा को संक्षिप्त रूप में लेकर रंगभूमि-प्रसंग का विस्तार किया है। मूल ग्रन्थ में कुन्ती की मनोव्यथा और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण मनोवैज्ञानिक रूप में हो पाया है। 'अंगराज' में वनपर्व से कुन्ती के विलाप को ग्रहण किया है—

जानती चाप्य कर्तव्यं कन्याया गर्भधारणम्
पुत्रस्नेहेन सा राजन् करुणं पर्यदेवयत्[2]

× × ×

रुदती पुत्रशोकार्ता निशीथे कमलेक्षणा
धात्र्या सह पृथा राजन् पुत्र दर्शनलालसा ।[3]

आत्मजात पुत्र को इस निष्ठुरता से बहा देना सरल कार्य नहीं है—इस घटना को इसी रूप में स्वीकार किया है। कहीं-कहीं 'महाभारत' के श्लोकों का छायानुवाद प्रस्तुत कर दिया गया है। एक श्लोक द्रष्टव्य है :

---

१ अंगराज, पृ० ७
२ म० वन० ३०८।१८
३ म० वन० ३०८।२३

पातुत्वां वरुणो राजा सलिले सलिलेश्वरः ।
अन्तरिक्षेऽन्तरिक्षस्थः पवनः सर्वगस्तथा ।[1]

× × ×

जल मे रक्षा करें वरुण इस दोषहीन की ।
नभ में रक्षा करें मित्र इस महादीन की ।[2]

कवि ने कथा का विस्तृत भाग काव्य-विषय के रूप में ग्रहण किया, अतः कुन्ती के विलाप के साथ न्याय नही हो पाया। यदि कर्ण के चरित्र को मानवीय धरातल पर सामयिक रूप में ही महत्ता देनी थी तो भी माता के इस कर्म के औचित्य और अनौचित्य पर कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता थी। कर्ण की पिटारी बहकर उधर चम्पापुरी में आ जाती है तो अधिरथ उसे पुत्र के रूप में स्वीकार करता है। इसके बाद कवि रंगभूमि की घटना का विस्तार से चित्रण करता है। कर्ण के आने के उपरान्त सभी पाण्डव फीके पड़ गये, और कर्ण ने भी वही कुछ कर दिखाया जो अर्जुन ने किया था। प्रतिस्पर्धा युद्ध तक पहुँच जाती कि कृपाचार्य ने कुल और वंश की आड़ ली। इस पर कर्ण कुछ समय के लिये चुप हो गया और दुर्योधन ने कृपाचार्य के प्रश्न का सम्यक उत्तर दिया।

आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये ।
सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति ।[3]

× × ×

जाति वंशधन नहीं पुरुष पौरुष विचार्य है
पंचगुणों मे जो गुणाढ्य है वही आर्य है ॥[4]

तदुपरान्त कवि ने अत्यन्त नाटकीय ढग से अधिरथ के रंगभूमि में आने और कर्ण द्वारा उनके सम्मान के प्रसंग का चित्रण किया है। इस प्रसंग में कवि 'महाभारत' के अधिरथ की रक्षा नही कर पाया है। ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे अधिरथ का आना और कर्ण द्वारा सत्कार एक यान्त्रिक क्रिया हो।

परशुराम से शिक्षा : शान्ति पर्व में नारद द्वारा सुनाये गये आख्यान से चौथे सर्ग की कथा का नियोजन किया गया है। कवि अत्यन्त सुन्दर रूप में परशुराम के महेन्द्र पर्वत स्थित आश्रम का सौन्दर्य-वर्णन करता हुआ, परशुराम के व्यक्तित्व का चित्रण करता है।

---

१. म० वन० ३०८।१२
२. अंगराज, पृ० २०
३. म० आदि० १३५।३५
४. अंगराज, पृ० २६

अश्व वेगानिल सा बलान्ध जो, रणांगणों मे अविराम दौडता।
द्विजाति चूडामणि शूरमा यही, गणाग्रणी श्री गणनाथ शिष्य है ॥[1]

कर्ण परशुराम के पास जाता है। मूलग्रन्थ मे कर्ण अपने को भृगुवंशी ब्राह्मण कहता है।

ब्राह्मणो भार्गवोऽस्मीति गौरवेणाभ्यगच्छत ॥[2]

'अंगराज' मे इस प्रसंग को परिवर्तित रूप मे दिखाया गया है। कर्ण अपने आपको 'दीन सगोत्र' व्यक्ति कहता है और उसके कवच कुण्डल देखकर परशुराम आगे कुछ नहीं पूछते। यह सम्भवत नायक के चरित्र-साधन की दृष्टि से किया गया है। वन मे द्विज धेनु-वध से मिले शाप की कथा को कवि ने यथावत स्वीकार किया है। कर्ण वहा द्विज से अपने द्विजत्व और परशुराम के शिष्यत्व की बात कहता है, पर ब्राह्मण शाप दे ही देता है। शाप की स्थिति से व्याकुल कर्ण आश्रम लौट आता है—

इत्युक्ता ब्राह्मणे नाथ कर्णो दैन्यादधोमुख ।
राममभ्यगमद् भीतस्तदेव मनसास्मरन् ॥[3]

× × ×

अरिष्ट आपत्ति वियोग चित्त मे
सखेद आया वह छात्रवास मे।[4]

आश्रम मे लौटकर परशुराम के साथ एक अन्य असाधारण घटना घटित होती है। मूल ग्रन्थ मे कीडे को दंश नामक राक्षस बताया है। कवि ने इस अतिप्राकृत रूप को ग्रहण नहीं किया। परशुराम कर्ण को शाप देते हैं कि तुम ब्रह्मास्त्र को चलाना भूल जाओगे। यहा कवि इस सिद्धान्त पर प्रकाश डालता है कि छलछद्म मे प्राप्त विद्या व्यक्ति के जीवन को किस रूप मे असफल बना देती है। कवि दण्ड को पाप के शोधक रूप मे मानकर, शाप के औचित्य का समर्थन करता है।

कलिंग प्रसंग परशुराम के आश्रम से लौटकर कर्ण, हस्तिनापुर आया और कलिंग प्रदेश की राजकुमारी के स्वयंवर की सूचना पाकर दुर्योधन सहित कलिंग गया। कर्ण की शक्ति-प्रदर्शन के हेतु यह अत्युत्तम अवसर था। हुआ भी ऐसा ही। कलिंग कुमारी दुर्योधन को मन से वरण कर चुकी थी किन्तु अन्य सशक्त राजाओं के बल के कारण जैसे ही उसके पास मे आगे बढी कि दुर्योधन न रोक लिया और बल-पूर्वक हरण कर लिया। कर्ण का अनेक राजाओं से युद्ध हुआ और जरासन्ध को

---

१ अंगराज, पृ० ८०
२ म० शान्ति० २।१५
३ म० शान्ति० २।२६
४ अंगराज पृ० ४८

परास्त कर कर्ण ने मालिनी नगर कर के रूप में प्राप्त किया। मूल ग्रन्थ की कथा को कवि ने अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे चित्रित किया है और इसमे सामान्य परिवर्तन किया—

दुर्योधनस्तु कौरव्यो नामर्षयत लंघनम्।
प्रत्यपेधच्च तां कन्यामसत्कृत्य नराधिपान्।[1]

× × ×

अतः त्याग उसको भी ज्यो ही बढ़ी कुमारी
उठा सुयोधन देख विवशता उसकी सारी
बोला वह रुक जा मुग्धे, तत्काल यही पर
जिसे हृदय दे दिया उसी को पति स्वीकृत कर॥[2]

'अगराज' मे कलिगकुमारी दुर्योधन के प्रति पूर्वरागिनी है जबकि 'महाभारत' में ऐसा कोई सकेत नही है। कवि ने इस स्थल पर कर्ण के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया है। कर्ण की वीरता से त्रस्त जरासन्ध मालिनी नगर कर के रूप मे दान कर देता है।

वारणावत और स्वयंवर प्रसग : इस घटना के उपरान्त वारणावत और यात्रा प्रसंग लिया गया है। मूल ग्रन्थ में वारणावत यात्रा दुर्योधन का कुचक्र था किन्तु प्रस्तुत काव्य मे वह पाण्डवों के कुचक्र का परिणाम है।

पाण्डु कुमारों को असह्य था दुर्योधन उत्थान
रहे कूट योजना बनाते नित वे पूर्व समान
कालान्तर में निज इच्छा से पाण्डव गण सोमंग
देशाटन को गये वहां से निज जननि के संग।[1]

पाण्डव वारणावत जाकर दुर्योधन के विरुद्ध प्रचार करने लगे। कवि ने युधिष्ठिर के ऊपर यह आरोप लगाया कि उन्होने राज्य विरुद्धप्र चार किये।[2] इस प्रसंग में 'महाभारत' का विरोध है। संस्कार-प्रबुद्ध पाठक का इस स्थिति में साधारणीकरण नही होता, वह केवल यह समझता है कि कवि की सहानुभूति कौरवों के पक्ष में है। यदि कवि को ऐसी स्थिति का चित्रण करना ही था तो प्रमाण केलिए कुछ अधिक सामग्री की अपेक्षा थी, उसके अभाव में ये चित्र निर्जीव और हठधर्मी युक्त लगते है।

---

१. म० शान्ति० ४।१२
२. अंगराज पृ० ५६
३. अंगराज पृ० ६३

वन में हिडिम्बा के प्रसग को कवि एक ही पद मे कहकर दौपदी-स्वयवर का विस्तार करता है। इस प्रमग मे हमे कवि के विचारो मे विरोध है। कवि के हृदय मे द्रौपदी के लिए आदर के स्थान पर घोर घृणा विद्यमान है। वह भूमिका मे विकृत बौद्ध जातका की कथा के आधार पर द्रौपदी को कामुक स्त्री के रूप म चित्रित करता है।[1] 'महाभारत' के अन्त साक्ष्य का निरस्कार कर वह मनमाने अर्थ निकालता है। द्रौपदी स्वयवर मे कर्ण को मना करती है, फिर विप्रवपधारी अर्जुन यह काय सम्पन्न करते हैं। यहा युद्ध होता है। मूल ग्रन्थ म अर्जुन सबको परास्त करते हैं।

पतिते भीमसेनेन शल्ये कर्णे च शङ्किते।
शङ्किता सर्वराजान परिवव्रुर्वृकोदरम्।[2]

'अगराज' मे कर्ण अर्जुन को ब्राह्मण समझ कर छोडता है। स्वयवर प्रसग के कुछ परिवर्तन उल्लेखनीय है

मूलग्रन्थ मे पाण्डव माता की आज्ञा को प्रमाण मान कर द्रौपदी का वरण करते है[3] किन्तु 'अगराज' मे युधिष्ठिर इस बात का शक्तिशाली प्रस्ताव रखते हैं कि अग्रज का विवाह पहले होना आवश्यक है।

'महाभारत' मे द्रौपदी चुप रहती है और कुन्ती तथा पाण्डवो की आज्ञा के अनुसार पाचो को पति स्वीकार करती है[4] 'अगराज' मे द्रौपदी स्वय पाच व्यक्तियो की पत्नि बनना स्वीकार करती है।

उचित नही हो अनुज विवाहित अग्रज हो अवधूत।
सहन करेंगे मानहानि हम कैसे होकर मूक।

इस पर कुन्ती कहती है

वेदवाक्य सी मान्य सदा है धर्मराज की उक्ति।

द्रौपदी को भी कवि ने धर्मराज की बात का समर्थन करते चित्रित किया है।

किन्तु द्रौपदी को प्रियवर थी धर्मराज की नीति।[5]

कथा परिवर्तन का उद्देश्य केवल युधिष्ठिर को चरित्र-भ्रष्ट रूप मे दिखाना दिखाई देता है। कवि अपनी व्यक्तिगत मान्यता की स्थापना करता है कि द्रौपदी का पच पतित्व पाण्डवों की वासनाजन्य दुष्प्रवृत्तियो का परिणाम था। यद्यपि द्रौपदी के पचपतित्व के समर्थन मे पौराणिक विश्वास के अतिरिक्त अन्य प्रमाण नही दिये जा सकते, किन्तु इस रूप मे चरित्र भ्रष्टता की कल्पना भी कल्याणकारी नही है।

---

१ अगराज, भूमिका पृ० २०
२ म० आदि० १८६।३०
३ म० आदि० १६४।३०
४ म० आदि० अध्याय १८६
५ अगराज, पृ० ६८

कवि ने द्रुपद की मानसिक ग्रन्थि को 'महाभारत' के आधार पर ही ग्रहण किया है। द्रुपद कृष्ण के समझाने से मान जाते हैं। यहां अतिप्राकृत घटनाओं की उपेक्षा श्लाघ्य है।

द्रौपदी और पाण्डवों के जीवन-सम्बन्धी विषय को लेकर आनन्दकुमार ने धर्मराज के चरित्र का पतन कराने के हेतु, एक परिवर्तन यह किया कि अर्जुन की ओर से शंकित होकर धर्मराज ने उस पर कल्पित दोषारोपण कर वनवास को भेज दिया। कथा का यह रूप कवि-कल्पित है 'महाभारत' में ऐसा कोई संकेत नहीं है।

पांडवाग्र श्यामा प्रति होकर अधिकाधिक आसक्त,
अर्जुन प्रति हो गया शीघ्र ही अतिशय ईर्ष्याग्रस्त ॥
समुन्नद्ध नृप ने कर कल्पित दोषारोप प्रचण्ड
दिया अनुज को एक वर्ष का राज प्रवासन दण्ड ॥[1]

'महाभारत' मे अर्जुन धर्मराज के कमरे में प्रविष्ट होने के पूर्व विचार करते है और इस निष्कर्ष पर पहुँचते है, कि राजा के तिरस्कार के अतिरिक्त अन्य पाप यहां नही है। यदि ब्राह्मण की गौओं की रक्षा नही हुई तो यह अधर्म होगा।[2] ऐसा विचार कर अर्जुन प्रतिज्ञा-भग करके वनवास के लिए चल देते है।

वनवास की अवधि में सुभद्रा-परिणय, खाण्डव-दाह-प्रसंग को दो-दो छन्दों में वर्णित करके राजसूय-यज्ञ को यत्किंचित विस्तार दिया है। जरासन्ध-वध के उपरान्त राजसूय सम्पन्न हुआ। दुर्योधन सभा-भवन देखने गया तो 'कवि के अनुसार' द्रौपदी ने अकारण कुलपति का अपमान किया। उसे अन्ध-पुत्र कहकर सम्बोधित किया। "अन्ध पिता का आत्मजात भी होता चक्षु विहीन"[3]

द्यूत: आनन्दकुमार ने द्यूत के प्रसंग में भी पहल युधिष्ठिर से कराई है। यह तथ्य 'महाभारत' के विपरीत है। 'महाभारत' में दुर्योधन की सतत चिन्ता को देखकर शकुनी की मन्त्रणा से द्यूत का आयोजन हुआ, पर 'अंगराज' में द्रौपदी के अपमान को सभा में दुर्योधन के अपमान से सम्बद्ध किया। दुर्योधन के मन का विकार पाण्डवों को द्यूत मे पराजित देखकर उभर गया और पूर्वापमान के प्रतिकार हेतु उसने द्रौपदी को बुला भेजा। कर्ण-दुर्योधन ने मिलकर द्रौपदी और पाण्डवों को मनमाने रूप में अपमानित किया। इस स्थल पर कवि 'महाभारत' में भीष्म, विदुर, द्रोण, आदि व्यक्तियों की उक्ति का वर्णन नही करता है। अनुद्यूत प्रसंग को भी कवि द्रौपदी की प्रेरणा मानता है। द्रौपदी से प्रेरित युधिष्ठिर स्वयं पुनः द्यूत के लिए आते है और १२ वर्षों के वनवास तथा एक वर्ष के अज्ञात वास की शर्त रख कर खेलते है, और पराजित होते हैं।

---

१. अंगराज, पृ० ७०
२. म० आदि० २२१।१६-२०,२१
३. अंगराज, पृ० ७३

पाण्डवो के वनगमन के उपरान्त कवि द्रोण और भीष्म की समस्त सहानुभूति और धर्म परायणता की चर्चा को दो छन्दो मे वर्णित करता है। पाण्डवो के पक्ष में कही गई अनेक उक्तियों को अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे वर्णित किया है, किन्तु कर्ण के प्रबल विरोध के कारण उनका मत दुर्योधन को स्वीकार नही हो पाया।

कर्ण-दिग्विजय-प्रसग कर्ण-दिग्विजय प्रसग की उद्भावना कर्ण की भीष्म के प्रति ईर्ष्या को लेकर हुई। वन मे दुर्योधन को पाण्डवो से पराजित होना पडा, तब भीष्म ने उनके ऐसे कृत्य को अनुचित बताकर, कर्ण को इसका उत्तदायी ठहराया। कर्ण के लिए यह आरोप असह्य था अत कर्ण ने दुर्योधन को दिग्विजय हेतु प्रोत्साहित किया। इस विजय से कर्ण अपनी वीरता का चमत्कार प्रदर्शित करना चाहता था और भीष्म से श्रेष्ठ होना चाहता था—

भीष्म का आरोप था

> कर्णस्यच महाबाहो सूतपुत्रस्य दुर्मते
> न चापि पादभाक् कर्ण पाण्डवाना नृपोत्तम।
> धनुर्वेदे च शौर्येच धर्मे वा धमवत्सल ॥[1]

भीष्म धनुर्वेद तथा धर्माचरण में कर्ण को पाण्डवों के समान नही मानते। इधर कर्ण भी भीष्म को ऐसे ही वचन कहता है। कर्ण दुर्योधन से कहता है

> तामह ते विजेष्यामि एक एव न सशय।
> मम्पश्यतु सुदुर्बुद्धिर्भीष्म कुरुकुलाधम ।[2]

कर्ण की मनोवैज्ञानिक स्थिति है कि वह कुरुकुलाधम भीष्म को अपने पराक्रम से त्रस्त करना चाहता है। कवि ने 'अगराज' मे इस स्थिति को इस रूप मे व्यक्त किया कि कर्ण का औदार्य प्रकट हो जाता है।

> एक एक क्या कोटि कोटि हो द्रुपद कृष्ण कौन्तेय।
> भीत न होगा कुरुपति जब तक जीवित है राधेय।[3]

कर्ण स्वाभिमान की प्रचण्ड ज्योति से दीप्तिमान होकर दिग्विजय के हेतु निकलता है। द्रुपदराज के प्रति विशेष आक्रोश के कारण वह पहले उन्ही पर आक्रमण करता है। भयकर युद्ध के उपरान्त कर्ण जीतता है और फिर उत्तर-दक्षिण आदि सभी दिशाओं के राजाओ को पराभ्त करता है। 'महाभारत' मे इस प्रसग मे लिखा है कि कर्ण ने मामनीति मे वृष्णि वश की सहायता से अन्य स्थानो पर विजय की। इसके विपरीत अगराज' मे कृष्ण की स्थिति करदाता के रूप मे चित्रित की है। एक ओर

---

१ म० वन० २५३।८-६
२ म० वन० २५३।२१
३ अगराज, पृ० ८२

तो कवि कृष्ण में दिव्य शक्ति मानता है दूसरी ओर कर्ण की महत्ता का इस रूप में प्रदर्शन करता है। यह विरोधाभास कर्ण-चरित्र के उत्थान के लिए किया गया है।

दुर्योधन का वैष्णव यज्ञ प्रारम्भ होता है। इस यज्ञ का मार्मिक प्रसंग पाण्डवों को निमन्त्रण है। मूल ग्रन्थ में निमन्त्रण दुःशासन देता है और पाण्डवों को पापात्मा रूप में सम्बोधित करता है।

गच्छ द्वैतवनं शीघ्रं पाण्डवान पापपूरुषान्।[1]

दूत से वैष्णवयज्ञ की सूचना सुनकर युधिष्ठिर को प्रसन्नता होती है। युधिष्ठिर कहते हैं : सौभाग्य की बात है कि पूर्वजों की कीर्ति बढ़ाने वाले राजा दुर्योधन श्रेष्ठ यज्ञ के द्वारा भगवान् का भजन कर रहे हैं—युधिष्ठिर इस यज्ञ में इसलिए नहीं जाते कि वे वनवासी हैं और नगर-प्रवेश निषिद्ध है।

वयमप्युपयास्यामो न त्विदानीं कथंचन।
समयः परिपाल्यो नो यावद् वर्ष त्रयोदशम्॥[2]

भीम अवश्य ही कुछ कटुता पूर्ण वचन कहते हैं। इस प्रसंग को कवि ने इस निमित्त प्रस्तुत किया है कि पाण्डवों का अपकर्ष और कौरवों का उत्कर्ष सिद्ध हो।

सर्व प्रथम पाण्डव अपकृति को करके विस्मृत
राजरूप में उसने उनको किया निमंत्रित।[3]

इसका उत्तर इस प्रकार आया :

सहयोगी हम कभी न होंगे शान्ति-यज्ञ में

× × ×

युद्ध कुण्ड में भूप मुण्ड की आहुति देंगे।[4]

इस यज्ञ के उपरान्त कर्ण अर्जुन-वध का प्रण करता है और दानव्रत को ग्रहण करता है। 'अंगराज' में दानव्रत की परीक्षा हेतु एक स्वतंत्र सर्ग की अवतारणा है कि कृष्ण विप्र वेश धारण कर कर्ण की परीक्षा लेते हैं पर यह प्रसंग 'महाभारत' में नहीं है।

कुण्डल-हरण पर्व के संक्षेप रूप को कवि ने नवम सर्ग में चित्रित किया है। इस प्रसंग में केवल एक बात यही उल्लेखनीय है कि कवि ने कर्ण को एकघ्नी का दान इन्द्र की मनोग्लानि की परिचर्या हेतु कराया है। 'महाभारत' का वह रूप कवि को अच्छा

१. म० वन० २५६।८
२. म० वन० २५६।१४
३. अंगराज, पृ० ६४
४. अंगराज, पृ० ६४

नही लगा जिसमे कर्ण व्यावहारिक रूप से एकघ्नी की याचना करता है। यहा पर कवि ने कर्ण के द्वारा मानव की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

कवि उत्तरा के विवाह का सांकेतिक चित्रण करता है। दूत शान्ति-स्थापना मे असफल होता है और दोनो ओर से रणनिमंत्रण भेजे जाते हैं। शल्य के प्रसग का सक्षिप्त चित्रण किया गया है।

दुर्योधन ने मार्ग मध्य ही उसका किया मान पर्याप्त।[1]

शल्य प्रतिज्ञा के अनुसार विपक्ष मे रहते हैं किन्तु युधिष्ठिर सहयोग की युक्ति बताकर सहायता का वचन भी ले लेते हैं। कवि का ध्यान कर्ण की कथा पर है अत वह अत्यन्त सक्षेप मे इन मार्गस्थ प्रसगो का चित्रण करता है। इन स्थलो पर कवि यथाशक्ति दुर्योधन के पक्ष को उज्ज्वल रूप मे चित्रित करने की चेष्टा करता है।

ग्यारहवें सर्ग मे कवि प्रारम्भ मे हस्तिनादेश के सौन्दर्य का चित्रण करता है। महाशान्ति से प्रेरित कृष्ण दूत बनकर इस महानगरी मे पधारते हैं। नगरी अत्यन्त सुन्दर और आकर्षित लग रही थी

अनूप अट्टावलि युक्त भ्राजिता, महापथो से बहुधा विभाजिता।
दिगन्त चुम्बी वह थी विराजिता, ग्रहावली को करती पराजिता।[2]

कवि ने अत्यन्त सशक्त शब्दो मे कृष्ण के आगमन और पुरवासियो की अधीरता, स्वागत-सत्कार का वर्णन किया है। सभा मे आने के उपरान्त दुर्योधन सभासदो का परिचय देता है। कृष्ण उठकर पाण्डवो के अधिकार प्रश्न को सामने रखते हैं, और कहते हैं कि 'उदारतापूर्वक आत्म-त्याग से विवाद का अत तुरन्त कीजिए'—कृष्ण इस बात की स्थापना करते हैं कि पाण्डव सन्त हैं, किन्तु वे अधिक देर तक अपमान को नही सहन कर सकते। कृष्ण पाण्डवो की शक्ति का परिचय भी देते हैं —दुर्योधन कौरव-पक्षी वीरो के बल का परिचय देता है। कर्ण पाण्डवो पर दोषारोपण करता है। वह कहता है कि कर्म-हीन को राज्य-प्रभुत्व दुर्लभ है। इस प्रसग मे कर्ण का सीधा सम्बन्ध नही था, अत कवि कृष्ण के प्रभावशाली भाषण और हिंसा-अहिंसा की विवेचना, युद्ध की भयकरता का प्रकाशन, आदि पर शान्त रह कर, इस प्रसग को समाप्त करता है।

तेरहवें सर्ग का प्रारम्भ कर्ण एव कृष्ण के वार्तालाप से होता है। कृष्ण कर्ण के जन्म, कर्म और नीति के औचित्य के कारण पाण्डव-पक्ष मे आने के लिए कहते हैं—'महाभारत' की कथा शैली के आधार पर कवि इस सर्ग मे कर्ण-जन्म का वृत्तान्त कृष्ण के द्वारा अभिव्यक्त करता है। कर्ण अपने पूर्व वचन-पालन-प्रण पर दृढ रहता है और कृष्ण का प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है। भगवद्यान पर्व मे आई अनेक पूर्व एव उपकथाओ को कवि त्याग देता है। 'महाभारत' की कथा के आधार पर कवि ने कर्ण-कृष्ण सवाद

---

१ अगराज, पृ० ११५
२ अगराज, पृ० ११५

का स्वतंत्र विकास किया है। मूल ग्रन्थ में कर्ण यह मानता है कि धर्म पाण्डवों के पक्ष में है और उसे उनकी विजय का निश्चय भी हो जाता है। पर कवि इस स्थिति के विपरीत कर्ण की जय के विश्वास से युक्त भावना का चित्रण करता है। कर्ण, इस वत्तान्त को गुप्त रखने की प्रार्थना करता है।

> यदि जानाति मा राजा धर्मात्मा सयतेन्द्रियः।
> कुन्त्याः प्रथमजं पुत्रं न स राज्यं ग्रहीष्यति।
> प्राप्य चापि महद् राज्यं तदहं मधुसूदन।
> स्फीतं दुर्योधनायैव सम्प्रदद्यामरिंदम।[1]

× × ×

> दुर्बल युधिष्ठिर से न मम कुल भेद आप कहें कभी।
> सुनकर उसे अधिकार अपना त्याग वह देगा सभी।
> लेंगे स्वयं उसको न हम देंगे अपितु कुरुराज को॥[2]

कवि ने 'महाभारत' के स्वर के विपरीत कर्ण के मुख से युधिष्ठिर के चरित्र की दुर्बलता की घोषणा की है।

कर्ण और कुन्ती : पन्द्रहवें सर्ग में कुन्ती और कर्ण का वार्तालाप है। सब ओर से विनाश को अवश्यम्भावी मान कर कुन्ती कर्ण के पास कर्ण को छलने जाती है। कवि ने कुन्ती की मानसिक अवस्था का हृदयग्राही चित्रण किया है :—'यद्यपि था उपलब्ध वहां पर, शान्ति प्रदायक साधन सारा'—किन्तु—'खोज रही थी वह अपना अभिराम मनोरथ सिन्धु किनारा।'[3]

कुन्ती पर्याप्त समय तक कर्ण को देखती है। चलते समय कर्ण की दृष्टि कुन्ती पर पड़ती है। कुन्ती के मुख से पहले यह निकलता है कि अपने को सूतकुमार कहना उचित नहीं है। इस प्रसंग में अत्यन्त मार्मिकता से माता-पुत्र के स्नेह का चित्रण हुआ है। चार भाइयों को प्राण दान देकर यहां भी कर्ण अपने औदार्य को प्रकट करता है। १६-१७ वें सर्गों की कथा का विकास कवि ने स्वतन्त्र दृष्टिकोण से किया है। दुर्योधन वयोवृद्ध भीष्म को सेनापति पद पर विभूषित करता है और कर्ण भीष्म के सेनापतित्व काल पर्यन्त युद्ध न करने की प्रतिज्ञा करता है। दोनों ओर के वीरों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। सेना युद्ध-भूमि के लिए प्रयाण करती है। इस प्रसंग में कवि ने माताओं के सन्देश में राष्ट्रभक्ति की उत्कट भावनाओं का प्रकर्ष अभिव्यंजित किया है। राष्ट्र पर बलि जाने वाले लाल अमर हो जाते हैं। सेना के प्रयाण में कवि ने महाभारतीय प्रयाण-वर्णन को यथाशक्ति ग्रहण किया है। 'महाभारत' में आई हुई पूर्व-

---

१. म० उद्योग १४१।२१-२२
२. अंगराज पृ० १४०
३. अंगराज, पृ० १५७

कथाओं का उल्लेख कवि अत्यन्त सांकेतिक रूप मे करता है। इसमे अतीत के गौरव के प्रति आस्था का प्रकाशन और सांस्कृतिक चेतना का उन्नयन होता है।

कृष्ण गीता का ज्ञान देते हैं

हरि ने देख मनुष्य को, मोह व्याधि से ग्रस्त।
गीता ज्ञान समान दी, सजीवनी प्रशस्त॥[1]

समस्त सर्ग मे इसी सूचना प्रधान शैली मे दस दिन के युद्ध का चित्रण है। कृष्ण निरस्त्र कर्ण को देखकर पाण्डव पक्ष मे आने का निमन्त्रण देते हैं पर वह निषेधात्मक उत्तर देता है

न विप्रिय करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव।
त्यक्त प्राण हि मांविद्धि दुर्योधन हितैषिणम्॥[2]

और कवि इस रूप मे तथ्य को प्रस्तुत करता है

होकर भी हम भीष्म विपक्षी,
हैं कुरुसखा, शत्रु-बल भक्षी,
त्यागेंगे न कदापि हम दुर्योधन का पक्ष,
आयेंगे सग्राम मे सायुध शीघ्र समक्ष।[3]

द्रोण का सेनापतित्व १९ वें सर्ग मे द्रोण के नायकत्व मे युद्ध एव घटोत्कच-वध का चित्रण है। युद्ध की स्वाभाविक रूपरेखा के साथ कवि इन तीनो प्रमुख घटनाओ का सक्षेप मे चित्रण करता है। अगराज ने द्रोण के सेनापतित्व का प्रस्तावित किया। द्रोण के नायकत्व मे प्रथम दिन का युद्ध अनिर्णायक रहा, दूसरे दिन छल से अभिमन्यु का वध किया गया। कवि ने अभिमन्यु-वध को सांकेतिक रूप मे चित्रित किया है। कौरवो द्वारा किये गये छलो की चर्चा नही की गई—कर्ण के प्रयास से ही अभिमन्यु का वध हो पाता है। जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करके अर्जुन पुन युद्ध प्रारम्भ करता है। इस स्थल पर कवि मूल ग्रन्थ की भावना के विपरीत द्रोण को अर्जुन का रक्षक बताता है। इस पर्व के युद्ध-चित्रण मे भी कवि कर्ण की वीरता का चित्रण प्रमुख रूप से करता है।[4] पार्थ के द्वारा चिता-निर्माण का दृश्य और दिन शेष रहने के कारण जयद्रथ के वध की घटना को कवि सक्षेप मे चित्रित करता है। रात्रि के युद्ध का अत्यन्त सजीव चित्रण कवि ने किया है

---

१ अगराज, पृ० १८८
२ म० भीष्म० ४३।९२
३ अगराज, पृ० १८८-१९०
४ म० द्रोण० २०४।२६

युग्म दलों मे जले दीपिका दीप असंख्यक,
होने लगा निशीथ युद्ध तव महाभयानक,
महारथी-प्रतिरथी भिड़ गये सभी परस्पर
वाहक-वाहक भिड़े तथा कुंजर-प्रतिकुंजर ॥[1]

महाभारतकार के युद्ध-चित्रों को कहीं-कहीं पर अत्यन्त प्राण शक्ति के साथ प्रस्तुत किया गया है। भीम के द्वारा कर्ण की निरन्तर पराजय का वर्णन, कवि ने नायक के चरित्र के अपकर्ष के भय से छोड़ दिया है। किन्तु कर्ण के उत्कर्ष के स्थलों को बढ़ा-चढ़ा कर वर्णित किया गया है।

पुन: पुनस्तूवरक मूढ औदरिकेति च।
अकृतास्त्रक मा योत्सीर्बाल सग्रामकातर ॥[2]

× × ×

रे स्त्री देवत वीरपोत, आक्रमिता किंकर।
मम समान वीरो से करना पुनः न संगर ॥[3]

सामान्यत: कवि ने युद्ध के उन्ही स्थलों का चित्रण किया है जिनसे कर्ण के पौरुष की अभिव्यक्ति होती हो। विपरीत स्थितियों की ओर कवि ने दृष्टि नही डाली। घटोत्कच के पतन में कवि ने घटोत्कच के माया-युद्ध और कर्ण के पौरुष का चित्रण मुख्य रूप से किया है। यहां पर 'महाभारत' में वर्णित तथ्य को त्यागकर कवि ने अंग-राज के उत्कर्ष प्रदर्शन की ओर अधिक ध्यान दिया है।

कवि द्रोण-वध की सांकेतिक सूचना देता है, फलस्वरूप अश्वत्थामा नारायणास्त्र का संधान करता है किन्तु कृष्ण की कृपा से सभी पाण्डव और सेना उस अस्त्र से सुर-क्षित हो जाते हैं।

बीसवें सर्ग में कवि ने कर्ण के सेनापतित्व में युद्ध का संक्षिप्त चित्रण किया है। वीरता की मूर्ति के रूप मे कर्ण युद्ध करता है और शत्रु पक्ष की सेना व्याकुल होती है। इस सर्ग मे कर्ण से नकुल की पराजय का उल्लेख है।[4] कर्ण दूसरे दिन के लिए शल्य को वचन स्वतन्त्रता का वचन देकर सारथी पद के लिए तैयार कर लेता है। यह सर्ग इक्कीसवें सर्ग के युद्ध की पृष्ठभूमि के रूप में माना जा सकता है।

इक्कीसवें सर्ग मे कर्णार्जुन युद्ध का विस्तृत वर्णन किया गया है। मूलग्रन्थ में कर्ण के पौरुष का उत्कर्ष यत्र तत्र है और अर्जुन अधिक समय तक कर्ण पर हावी

---

१. अंगराज, पृ० २०६
२. म० द्रोण० १३६।६५
३. अंगराज, पृ० २०७
४. अंगराज, पृ० २१४

रहता है किंतु 'अगराज' मे कर्ण के पौरुष की प्रधानता दिखाई गई है। 'महाभारत' के शल्य और कर्ण के वार्तालाप को कवि ने अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे प्रभावशाली रूप से चित्रित किया है।

> बोला मद्रराज सप्रहास अगराज से
> सूतपुत्र, सावधान होकर प्रलाप करो
> बार बार ध्यान करो पार्थ के प्रताप का।[1]

पर इसके उत्तर मे कर्ण का अदम्य पौरुष कहता है—

> स्यन्दन बढाओ हम हारेंगे न हताश कभी
> क्रूर भवितव्यता से, हीन दैव गति से,[2]

महाभारतीय सकुल युद्ध के चित्राकन मे कवि ने कुशलता का परिचय दिया है और युद्ध के मूल स्वर को सुरक्षित रख सका है।[3] कर्ण एव धर्मराज के युद्ध प्रसग मे यद्यपि धर्मराज की पराजय महाभारतीय तथ्य है किन्तु 'अगराज' मे कवि ने इस प्रसग को कुछ विस्तृत करके चित्रित किया है और धर्मराज की हीनता, शक्ति-दुर्बलता, कायरता का प्रदर्शन किया है। कवि की सहानुभूति धर्मराज के विपक्षी कर्ण के प्रति है और इस अवसर पर उसने तथ्य एव परम्परा-विरोधी स्वर को प्रमुखता दी है। पराजित होकर जाते हुए धर्मराज के प्रलाप का चित्रण कवि की मौलिक सूझ है जो धर्मराज के चारित्रिक दोषो के दिखाने के लिये की गई है। अश्वसेन सर्प के प्रसग को कवि ने यथावत ग्रहण किया है।

इस सर्ग मे युद्ध के व्यापक चित्रण मे कवि ने सायास और साभिप्राय कर्ण के चरित्र का उत्कर्ष, और अर्जुन की दुर्बलताओ को दिखाने का प्रयास किया है। दोनो वीरो की चोटें कितनी समान और पौरुष सम्पन्न थी यह एक चित्र मे देखा जा सकता है।[4] कवि युद्ध के समय आचार विस्मृति की सैद्धान्तिक स्थिति का सकेत करता है। वस्तुत इस स्थल पर जिस रूप मे 'महाभारत' मे धर्म एव युद्ध-धर्म की व्याख्या की गई है, कवि ने उसकी चर्चा नही की। वह केवल कथा के विकास सूत्रो का चित्रण करता रहा। वैचारिक रूप से, युद्ध के मानवीय मूल्यों के स्थान को लेकर यदि विवेचना की जाती तो कथा के साथ विचार-प्रतिपादन का गौरव सन्निविष्ट हो सकता था, पर कवि ने इस पक्ष की समस्त ग्रन्थ मे उपेक्षा की है। कर्णार्जुन युद्ध के प्रसग मे कवि ने इस बात पर अधिक बल दिया कि अर्जुन युक्ति से, दैवी शक्ति से जीता और कर्ण के साथ छल-पूर्ण व्यवहार किया गया। किन्तु इस बात पर दृष्टि

---

१ अगराज पृ० २२०
२ अगराज, पृ० २२१
३ अगराज, पृ० २२६
४ अगराज, पृ० २५१

नहीं डाली कि इसके पूर्व जो छल-पूर्ण व्यवहार कौरवों के पक्ष से हुए उनका औचित्य क्या था ?

पाण्डवों के पक्ष की समादृता का कारण यह है कि उनका पक्ष अधिकतम धर्म-सम्मत रहा और कौरव अधर्म की ओर झुके रहे। अठारह दिन के युद्ध में दोनों ओर से अनियमतायें हुईं, यह एक अन्य बात है। युद्ध की अनियमताओं को लेकर पाण्डवों के पक्ष की कटु व्याख्या की जाय, यह भी धर्मसम्मत नहीं है।

बाइसवें सर्ग मे कवि ने स्त्री पर्व के २१ वें अध्याय के आधार पर कर्ण की पत्नि के विलाप का संक्षिप्त चित्रण किया है। इस सर्ग में कवि ने करुण विप्रलम्भ रसान्तर्गत कथा की परिणति की है और प्रसंग वश नियति तथा काल की गति की अनिवार्यता पर विश्वास प्रकट किया है।

कवि इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि कर्ण के जीवन में ओज की प्रधानता थी और उसने कर्म-मुख मे ही जीवन की उपादेयता की स्थापना की। यह विश्वास होते भी कि वह अर्जुन से हार जायेगा कर्ण वीरता से लड़ा, उसकी दृष्टि कर्म-सौन्दर्य के चमत्कृत विधान पर रही फल पर नहीं। अतः कर्ण का जीवन महान है।

तेइसवें सर्ग में कवि ने वर्णनात्मक शैली से शल्य के सेनापति बनने और युधिष्ठिर के द्वारा मारे जाने का वर्णन किया है। 'महाभारत' के इस प्रसंग में युधिष्ठिर का पौरुष जागा पर 'अंगराज' मे शल्य-युधिष्ठिर-युद्ध का चित्रण निर्जीव रूप में हो पाया है। कवि की शक्ति मानो कर्ण की मृत्यु के उपरान्त कथा का नियंत्रण नहीं करना चाहती पर बलात उस पर यह कार्य सौंपा जा रहा है। इस स्थल पर गदापर्व की कथा का संक्षेप किया गया और प्रयास संयुक्त दुर्योधन के चरित्र का उत्कर्ष दिखाया गया। इसी सर्ग में संक्षेप में कवि ने अश्वत्थामा के द्वारा समस्त पाण्डव-सेना संहार का वर्णन किया है। इस स्थल पर कवि ने इस युद्ध के औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार नहीं किया।

२४ एवं २५ वें सर्ग उपसंहार के हैं। इनमें कवि ने सूच्य शैली मे शेष कथा का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है। इनमें अश्वत्थामा की मणि का छिनना, एवं दग्ध-क्रिया का संक्षिप्त चित्रण करके, कवि ने रवि के द्वारा यह सूचना दी है कि महाभारतकार व्यास 'महाभारत' का लेखन कार्य करते हैं किन्तु पाण्डवों की महत्ता का प्रतिपादन विवशता मे कर रहे हैं।

समीक्षा

यह तो हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि 'अंगराज' के कवि का दृष्टिकोण पाण्डव विरोधी है। सम्पूर्ण काव्य के अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि ने कतिपय 'महाभारत' के अन्त. साक्ष्य को, अपनी विचारधारा के उपलक्ष्य में प्रस्तुत

किया है। ऐसा करने मे कवि की स्वच्छन्दतावादी व्यक्तिगत प्रवृत्ति ही उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त जहा पर 'महाभारत' मे स्पष्ट रूप से पाण्डवो का चारित्रिक उत्कर्ष अभिव्यक्त है, वहा पर भी आनन्दकुमार ने बलात कथानक को विपरीत मोड देकर कौरवो के अनुकूल बनाया है। इस प्रकार के परिवर्तनो मे द्रौपदी-स्वयवर महत्त्वपूर्ण है। इस स्थल पर कवि अपनी सम्पूर्ण काव्य-प्रतिभा पाण्डवो का चारित्रिक अपकर्ष सिद्ध करने मे व्यय कर देता है। 'महाभारत' मे द्रौपदी के पचपतित्व को कुन्ती के वचन-पालन, व्यास जी की सम्मति, पूर्व जन्म की स्थिति और महादेव के वरदान के फलस्वरूप धर्म-सम्मत घोषित किया।[1] निश्चित ही यह अति-प्राकृत तत्व है, जिस पर समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि की दृष्टि से विचार किया जा सकता है। 'महाभारत' के युग को देखते हुए, तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति मे पाचो पाण्डवो का विवाह राजनीति की महती आवश्यकता हो सकती है। 'अगराज' मे इस प्रसग को लेकर समस्त पाण्डवो, विशेष कर युधिष्ठिर के चरित्र का अपकर्ष किया है। जहा अन्य आधुनिक कवियो ने 'महाभारत' की विचारधारा का बुद्धि-सम्मत समाधान ढूढने का प्रयास किया, वहा 'अगराज' मे द्रौपदी को कामुक स्त्री कह कर लाञ्छित किया गया है।[2]

अब जरा मुख्य बातो पर विचार किया जाय। प्रथम बात है, युधिष्ठिर के प्रस्ताव की। 'अगराज' मे युधिष्ठिर अग्रज के प्रथम विवाह की आवश्यकता पर बल देते हुए अग्रज के अवधूकत्व को अपमान जनक मानते हैं और अपने विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। आनन्दकुमार की इस कल्पना का कोई आधार 'महाभारत' मे नही है। वहा माता की आज्ञा से और अर्जुन के कथन से ऐसी स्थिति आती है कि पाचों भाई द्रौपदी को अपनी पत्नि स्वीकार करते हैं। 'महाभारत' मे युधिष्ठिर अर्जुन के साथ द्रौपदी के विवाह का प्रस्ताव रखते हैं[3] किन्तु अर्जुन अग्रज के प्रथम विवाह के सिद्धान्त पर बल देते हैं।[4] यद्यपि 'महाभारत' मे पाचो भाइयो का द्रौपदी के प्रति आसक्त होने का उल्लेख है[5] किन्तु वह सब कुछ मानव की स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप मे विद्यमान है। अन्तत युधिष्ठिर व्यास जी की बात का स्मरण करके ही यह निश्चय करते हैं कि द्रौपदी पाचो भाइयो की पत्नि होगी।[6] इस प्रकार 'महाभारत' मे सम्पूर्ण कार्य अलौकिक वातावरण मे वृद्धजनो की आज्ञा से सम्पन्न होता है अत इस कार्य मे अधर्म को कोई स्थान नही।

---

१ म० आदि० अध्याय १८६, १९४, १९५

२ अगराज, पृ० ६८

३ म० आदि० १९०।७

४ म० आदि० १९०।८९

५ म० आदि० १९०।१२-१३

६ म० आदि० १९०।१६

'अंगराज' में जिस प्रकार द्रौपदी की कामुकता और पाण्डवों की आचरण-भ्रष्टता का चित्रण किया है, वह असांस्कृतिक और हीन दृष्टि का परिचायक है। या तो कवि आचरण-भ्रष्टता का सतर्क प्रमाण प्रस्तुत करता, अन्यथा इस स्वच्छन्दता-वादी मनोवृत्ति से जमी हुई आस्था को खरोंच लगती है, और किसी लाभ की आशा नहीं की जा सकती। युधिष्ठिर के सम्पूर्ण जीवन के त्याग, सहनशीलता, औदार्य, धार्मिकता आदि सदगुणों के कारण इस प्रकार की दुष्ट कल्पना असंगत है।

दूसरा प्रसंग है, अर्जुन-वनवास। 'महाभारत' में नारद जी ने द्रौपदी के विषय में पांचों भाइयों के समय का निर्धारण करके नियम को भंग करने वाले के लिए वनवास के दण्ड का[1] विधान दिया। एक दिन ब्राह्मण की गौओं की रक्षा के लिए अर्जुन को व्रत भंग करना पड़ा[2], इस अपराध के लिए युधिष्ठिर के मना करने पर भी अर्जुन ने वनवास का दण्ड स्वीकार किया।[3] 'अंगराज' के कवि की दृष्टि ने इस कठोर स्थिति में भी युधिष्ठिर के चारित्रिक अपकर्ष का संकेत खोज लिया। कवि को कल्पना करने का अधिकार है, चाहे वह कल्पना दुष्ट हो अथवा कल्याणकारी। यहां कवि की कल्पना है कि पाण्डवाग्र ने अर्जुन के प्रतिशंकित होकर उस पर दोष लगा कर वन में भेज दिया।[4] 'महाभारत' की धर्ममूलक स्थापना के विपरीत कवि किस अर्थ में अर्जुन के वनवास को स्वीकार करता है? 'महाभारत' का अर्जुन गृह प्रवेश से पूर्व सोचता है: यदि मैंने राजद्वार पर रोते इस ब्राह्मण की गौओं की रक्षा नहीं की तो युधिष्ठिर को अधर्म का भागी होना पड़ेगा।[5] कहां तो पाण्डवों की यह धर्म परायणता और कहां श्री आनन्दकुमार की अनोखी कल्पना। वस्तुतः कवि एक विशेष मनोग्रन्थि से त्रस्त है और उसी की प्रेरणा से वह प्रत्येक दिशा में पाण्डव विरोधी अभियान में व्यस्त है।

द्यूत के प्रसंग में युधिष्ठिर से प्रारम्भ कराना, द्रौपदी की प्रेरणा से अनुद्यूत के लिए तैयार होना और युद्ध में पाण्डवों की ओर से अन्याय होने का कथा परिवर्तन भी कवि ने अपने मूल उद्देश्य की पूर्ति के हेतु किया है। संक्षेप में निष्कर्ष यह है कि 'अंगराज' की रचना कर्ण के दिव्य औदार्य, सशक्त जीवन के आधार पर हुई है। इसमें कवि ने वीरकाव्य की सामयिक आवश्यकता के कारण वीररस प्रधान काव्य की रचना की। कर्ण के चरित्र के प्रति अतिरिक्त आस्था और पक्षपात होने के कारण समस्त काव्य कर्ण का प्रशस्ति ग्रन्थ बन गया है। सम्पूर्ण 'महाभारत' की कथा को एक काव्य के कलेवर

---

१. म० आदि० २११।२६
२. म० आदि० २१६।२१-२२
३. म० आदि० २१२।३५
४. अंगराज, पृ० ७०
५. उपप्रेक्षणज्जो धर्मः सुमहान् स्यान् महीपतेः।
यद्यस्य रुदतो द्वारि न करोम्यद्य रक्षणम्। म० आदि० २१२।१६

में समेटने के लोभ के कारण 'अंगराज' का जीवन-दर्शन अधिक परिपुष्ट होकर हमारे समक्ष नहीं आया। कथा की प्रधानता के कारण, वर्णनात्मकता का इतना आधिक्य रहा कि अनेक विचारोत्तेजक स्थलों पर भी कवि अपने को विचारक के रूप में प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा, और वर्णन शैली की उदात्तता के साथ, जीवन-दर्शन की स्थापना में, मूल विषय की गरिमा के अभाव में कवि प्रतिभा का उपयोग नहीं हो पाया। इस पर भी यह काव्य अच्छे प्रबन्ध काव्यों में गणनीय है।

एकलव्य प्रसंग

महाभारत' के एकलव्य प्रसंग पर आधारित दो प्रकार की रचनाएं उपलब्ध हैं। स्वतंत्र काव्य और काव्यांश। काव्यांशों में विशेष नवीन उद्भावनाओं का अभाव है। डा० रामकुमार वर्मा के 'एकलव्य' और विनोद चन्द्र शर्मा के 'गुरुदक्षिणा' प्रबन्ध काव्य में यह प्रसंग आधुनिक सामाजिकता के आलोक में विन्यस्त है। इस कथा से दलित वर्ग की उन्नति का समर्थन, अछूतोद्धार, जातिवाद का विरोध हुआ है, और सामाजिक समानता का प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक युग की सामाजिक व्यवस्था में अभिजात एवं अनभिजात का संघर्ष क्रांतिकारी मोड़ पर है, समन्व का आधार, केवल अर्थ नहीं है अपितु मानव की अन्य अवस्थाएं भी उतनी ही ज्वलन्त हैं अतः आज का सुधारवादी कवि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन का स्वरघोष करता है।

महाभारतीय एकलव्य की कथा के प्रसंग से आज का कवि अनेक परिस्थितियों में असमानता पर आघात करते हुए तत्कालीन समाज के संदर्भ से आधुनिक जातिवाद, वर्गवाद, भेदवाद का आमूल खण्डन करता है। एकलव्य के चरित्र पर काव्य-रचना की प्रेरणा एकलव्य की सत्यता, दृढ़ता, निश्छल गुरु भक्ति, अनवरतसाधना और त्याग की सर्वोच्च भावना आदि गुण हैं।

एकलव्य

डा० वर्मा ने आमुख में कहा है ' इन आख्यानों और उपाख्यानों में मानव-जीवन अत्यन्त यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर सामने आया है — ऐसा यथार्थवादी दृष्टिकोण जिससे जीवन की स्वाभाविक दुर्बलताएं प्रबलझंझानिल से उखड़े हुए पेड़ों की तरह भूलुण्ठित हो रही हैं।'[1] एकलव्य' में कवि मानवीय दुर्बलताओं को सहानुभूति देता है।

वस्तु संग्रहण 'एकलव्य' और 'गुरुदक्षिणा' में 'महाभारत' के अध्याय १२९ से १३३ तक की कथा ग्रहण की गई है। 'एकलव्य' में 'महाभारत' के १२९ से कृपाचार्य, द्रोण अश्वत्थामा आदि महारथियों का जन्म-प्रसंग गृहीत है। ३७ वें श्लोक से ६७ वें श्लोक तक की कथा के आधार पर परिचय सर्ग, अध्याय १३० से दर्शन और १३० तथा १३३ अध्याय से प्रदर्शन, अध्याय १३१ के ३१ से ३४ वें श्लोक से आत्मनिवेदन

---

1. एकलव्य, आमुख, पृ० २

धारणा, संकल्प, साधना सर्गों का विकास हुआ है। स्वप्न, लाघव और द्वन्द्व सर्ग की अवतारणा ३८ से ४३ वें श्लोक के आधार पर है। ५५ से ५६ वें श्लोक से दक्षिणा सर्ग निर्मित हुआ है।

परिवर्तन-परिवर्धन

दर्शन प्रसंग : यह प्रसंग 'महाभारत' के १३० वें अध्याय के आधार पर रचित है। मूल ग्रन्थ में एकलव्य की उपस्थिति का अभाव है, किन्तु 'एकलव्य' में इससे द्रोण के परिचय और दर्शन की कलात्मक अभिव्यंजना हुई है। एकलव्य अपने मित्र नागदत्त से द्रोण द्वारा वीटा निकालने की कथा कहकर अपनी भक्ति-भावना की प्रतिष्ठा करता है। इस प्रसंग से कवि ने एकलव्य की अटूट एवं निश्छल गुरुभक्ति का परिचय दिया है। 'महाभारत' में एकलव्य की भावनाओं की उपेक्षा है, कवि ने एकलव्य के चारित्रिक उत्कर्ष के कारण इस प्रसंग की नूतन उद्भावना की है। गुरु की लोकव्यापी प्रशंसा सुनकर, शिष्यत्व की कामना से साक्षात शक्ति-चमत्कार देखकर नतमस्तक होना, अधिक स्पृहणीय है। 'महाभारत' में वर्णित राजकुमारों की लज्जा का प्रसंग वैसा मनोवैज्ञानिक नहीं है जैसा 'एकलव्य' के कवि ने प्रस्तुत किया है।

राजकुमारों का वीटा गिरा हुआ है, वे उसे निकालने में समर्थ नहीं है, अतः लज्जित हैं

> ततोऽन्योन्यमवैक्षन्त व्रीडयावनताननाः।
> तस्या योगमविन्दन्तो भृशं चोत्कण्ठिताभवन् ॥[1]

'एकलव्य' में इस सूचनात्मक प्रसंग को कितनी आकुल विवशता से चित्रित किया गया है—

> कौतुक से देखा क्या ये राज पुत्र सामने
> खेलने के वेश में, है काष्ठ यष्टि हाथ में,
> किन्तु खेलते नहीं है मौन है निराश है
> चित्र में लिखे से, सब लज्जित अवाक है।[2]

द्रोण आकर उनका वीटा निकालते हैं और तेजस्वी राजकुमारों के बल को धिक्कारते हैं, मूलग्रन्थ में द्रोण स्वयं अंगूठी डालकर निकालते हैं, किन्तु 'एकलव्य' में अंगूठी को निकालने का प्रस्ताव दुर्योधन करता है, क्योंकि उसे द्रोण का कार्य इन्द्र-जाल ज्ञात होता है।

---

१. म० आदि० १३०।१६

२. एकलव्य० पृ० १२

वीटा च मुद्रिकाचैव ह्यहमेतदपि द्वयम् ।
उद्धरेयमिषीकाभिर्भोजन मे प्रदीयताम् ।[1]

× × ×

वीटिका तो वेध्य है परन्तु वह वस्तु जो
मध्य भाग से है हीन जैसे
यह मुद्रिका ।[2]

शीघ्र ही प्रत्यंचा खिंची बस क्षण व्याप्य में
चलाचल लक्ष्य में उन्होंने सींक बाण को
मुद्रिका के मध्य भाग में प्रवेश करके

× × ×

और मुद्रिका को शुष्क कूप में निकाल के
फेंक दिया आर्य ने सुयोधन के सामने ।[3]

डा० वर्मा ने इस प्रसंग को दुर्योधन की उद्दण्डता और पाण्डु पुत्रों की निश्छलता के प्रकाशन के लिए, इस रूप में चित्रित किया है । इस क्रम से प्रभावित राजकुमार आचार्य का परिचय प्राप्त करते हैं । एकलव्य दूर से देखकर द्रोण के प्रति भक्ति-निष्ठ हो उठता है ।[4]

द्रोण परिचय 'महाभारत' में द्रोण-परिचय और द्रुपद-प्रसंग विस्तार से वर्णित है, उसी आधार पर 'एकलव्य' में हस्तिनापुरी-सौन्दर्य, राजकीय स्थिति, दरबारी वातावरण और द्रोण-जन्म आदि का विस्तार किया है । 'महाभारत' में अश्वत्थामा के जन्म की कथा, परशुराम से शस्त्र प्राप्ति और द्रुपद के विश्वासघात के प्रसंग में, द्रोण के गुप्तरूप में हस्तिनापुर में रहने की कथा है । 'एकलव्य' में गुप्तवास प्रसंग का अभाव है । कवि अपनी स्वतन्त्र दृष्टि से कथा-विकास करता है और अत्यन्त नाटकीयता से द्रोण का आगमन चित्रित करके, उन्हें आचार्य की प्रतिष्ठा दिलाता है ।

'एकलव्य' में इस परिचय को सम्पूर्ण सर्ग का विस्तार काव्य की विषय वस्तु के विस्तार, और द्रोण की मनःस्थिति के प्रकाशन के हेतु दिया गया है । आचार्य द्रोण की प्रतिकार-भावना का अत्यन्त सशक्त एवं मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रण किया है । धनाभाव के कारण दूध न मिलने से पुत्र की अवस्था पर द्रोण का मानसिक सन्ताप ही हस्तिनापुर आने की पृष्ठभूमि है ।

---

१ म० आदि० १३०।२४
२ एकलव्य, पृ० १७
३ एकलव्य, पृ० १८
४ एकलव्य, पृ० २६

गोक्षीरं पिबतो दृष्ट्वा धनिनस्तत्र पुत्रकान् ।
अश्वत्थामारुदद् बालस्तन्मे सन्देहयदद्दिशः ।[1]

चारों ओर अन्धकार के आने और दिशा-ज्ञान विलुप्त होने से द्रोण की विवशता जन्य स्थिति का कारुणिक प्रकाशन हुआ है। पुत्र को समझाने के लिए चावल घोलकर पिलाया गया, पर सभी बालकों ने उसका उपहास किया।[2] 'एकलव्य' में कवि ने इसे और अधिक करुणा से अभिव्यजित किया है।

गाय का दूद पिआ। दूद पिआ गाय का।
और सब बालक थे देखदेख हंसते।[3]

इस पर द्रोण को अत्यन्त आत्मग्लानि हुई और वे भार्गव परशुराम के पास धन याचनार्थ गये। परशुराम से उन्हे धन के स्थान पर धनुर्वेद की उच्चतम शिक्षा प्राप्त हुई। द्रोण की समस्या का समाधान नही हो सका। इस भौतिक जगत में धन की व्यावहारिक उच्चता है, इसे उपेक्षित नही किया जा सकता अतः द्रोण अन्य मित्र द्रुपद के पास गये किन्तु अपमानित होकर लौटे।

कवि की सूक्ष्मदर्शी प्रतिभा ऐसे समय का कितना सटीक चित्र उपस्थित करती है—

पत्नी के दृगों मे अश्रुविन्दु कुछ छलके,
फल बिखरे थे मंच के पदस्तल पर
क्षोभ और ग्लानि से हृदय अंगार जैसा,
धक धक जलता था।[4]

इस प्रसंग में कवि के द्वारा भौतिक जगत में धन की आवश्यकता और जीवन में उसका महत्व व्यंजित हुआ है। द्रुपद के प्रसंग में कवि समान स्तरीय मैत्री की प्रतिष्ठा को युग की भावना के रूप में देखता है। द्रुपद की कथा कहते हुए द्रोण की उत्तेजना शिखर से विकीर्ण हो समस्त दरबार को स्तब्ध कर देती है—यहां पर कवि महाभारतकार से अधिक द्रोण की मानसिक स्थिति की व्याख्या कर पाया है।

राजकुमारों की शिक्षा के प्रसंग मे अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा तथा अभ्यास का वर्णन है। महाभारतीय शस्त्र-शिक्षा के आधार पर ही स्वतंत्र रूप से शिक्षा के स्वरूप और महत्ता का प्रदिपादन करता है।
लक्ष्य का रहस्य है—

---

१. म० आदि० १३०।५१
२. म० आदि० १३०।५४-५६
३. एकलव्य, पृ० ३८
४. एकलव्य, पृ० ५०

दृष्टि और लक्ष्य मे परस्पर हो कर्षण।
वीरो लक्ष्यभेद मे एकाग्र दृष्टि चाहिए[1]

यहा कवि विद्यार्थी के लिए अहकार, स्वार्थ, द्वेष-भावना के त्याग का वर्णन करते हुए स्पष्टत द्वेष और अहकार को ज्ञान का विनाशक बताता है।

ज्ञानगिरि चढना सहज है, किन्तु वीर।
अहकार द्वेष जीतना महाकठिन है।[2]

इस कथन मे पाठ्य शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा की अनिवार्यता पर बल दिया और पार्थ की अद्वितीयता के प्रसग मे कर्तव्य-निष्ठा, सौजन्य और आस्था की दृढता चित्रित की है। जितेन्द्रिय, वीर, निश्छल जिज्ञासु निष्ठावान और कर्मठ को सम्पूर्ण उपलब्धिया सहज प्राप्त हैं।

भुञ्जन् एव तु कौन्तेयो नास्यादयत्र वर्तते।
हस्तस्तेजस्विनस्तस्य अनुग्रहण कारणात्॥
तदभ्यासकृत मत्वा रात्रावपि स पाण्डव
योग्या चक्रे महाबाहुर्धनुषा पाण्डुनन्दन ॥[3]

कवि ने इस प्रसग को द्रोणार्जुन वार्तालाप के रूप मे कलात्मकता से चित्रित किया है। अर्जुन अनुग्रहण से अधेरे मे शस्त्र सीखने का प्रयास करने लगे और इसी तरह शब्दभेद ज्ञान भी सीख गये।

प्रेरणा एकलव्य की प्रेरणा के आख्यान को पारिवारिक सम्भावनाओं के साथ ग्रथित किया है। माता एकलव्य से भोजन के लिए आग्रह करती है, पर वह मित्र को गुरु की उच्चता और अपनी भक्ति के प्रकाशन मे व्यस्त है। पिता का प्रवेश होता है, और एकलव्य का प्रस्ताव निषादराज के समक्ष प्रस्तुत होता है, वे आर्य एव अनार्य सस्कृतियो के सघर्ष की रूपरेखा के आधार पर, एकलव्य की सफलता मे सन्देह करते हैं। कवि इस सघर्ष को नये रूप मे प्रस्तुत करता है—वर्ग-भेद, वर्ण-भेद के कारण धनुर्वेद की शिक्षा एकलव्य को न मिल सकी। भीष्म की राजनीति के बधन मे द्रोण की असमर्थता के लिय पृष्ठभूमि तैयार हुई, जिसका विकास आत्मनिवेदन मे होता है। यद्यपि वनपर्व के एक सौ अस्सी वें अध्याय मे युधिष्ठिर शील की प्रधानता की स्थापना करते हैं तथापि एकलव्य के प्रसग मे यह बात आचरित सत्य का रूप धारण नहीं कर पाती। 'एकलव्य' मे इस सघर्ष से तत्कालीन वर्णभेद की भावना का प्रकाशन होता है। कवि की सुधारवादी भावना के कारण निषाद जाति के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति अभिव्यक्त हुई है, जिसे काव्य का सन्देश माना जा सकता है।

---

१ एकलव्य, पृ० ५७
२ एकलव्य, पृ० ६१
३ म० आदि० १३१।२४ २५

शस्त्र प्रदर्शन : इस प्रसंग में युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन की शक्ति का प्रदर्शन हुआ है। इस सर्ग में इन तीन वीरों के चरित्र के उन्नयन की ओर कवि की दृष्टि अधिक रही है। रंगभूमि मे कर्ण का प्रसंग उपेक्षित है, क्योंकि उसका काव्यविषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है, अर्जुन के प्रवेश और प्रदर्शन को कवि ने नाटकीय रूप से चित्रित किया है।

आग्नेयेना सृजद् वह्नि वारुणे ना सृजत् पयः
वायव्येना सृजद् वायु पार्जन्येना सृजद् घनान् ॥[1]

× × ×

प्रखर आग्नेय से लगादी आग व्योम मे—

× × ×

अग्निकण व्याप्त हुए व्योम रोम रोम मे।
शीघ्र ही उन्होंने वारुणास्त्र सधान किया
जल की फुहार उठी अग्नि अन्तराल में।

× × ×

अस्त्रवायव्य से प्रभजन किया प्रेरित
जिसमे पवन उनचास वहने लगे।[2]

आत्म निवेदन : आत्मनिवेदन 'महाभारत' में दो श्लोकों मे वर्णित है। कवि ने आचार्य द्रोण की विवशता तथा एकलव्य की भक्ति की एकनिष्ठता सिद्ध करने के लिये आत्मनिवेदन को विस्तृत किया है। कथा के महाकाव्योचित विकास के हेतु द्रोण एवं एकलव्य का यह अन्तः संघर्ष अत्यन्त अनिवार्य था। द्रोण एकलव्य मे योग्यशिष्य के पर्याप्त गुण पाते हैं, तथापि तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था की नीति में आवद्ध होने के कारण उसे शिक्षा नहीं दे सकते। 'वत्स ! शिष्य बनने की योग्यता है तुममे'—कहकर द्रोण 'धनुर्वेद ब्राह्मणों को क्षत्रियों को चाहिए' की घोषणा करते हैं। इस कथन मे जहां एक ओर तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था का आग्रह है वहां अर्जुन की अद्वितीयता को लेकर मानसिक संघर्ष भी है। कवि ने इसकी अभिव्यक्ति विवशता के रूप में की है, और अचार्य द्रोण को राजनीति का एक यन्त्र बनाकर प्रस्तुत किया है।

पार्थ। मेरा स्वार्थ है कि मेरे अपमान का
लोगे प्रतिशोध तुम शीघ्र ही द्रुपद से।
इससे बनाना चाहता हूं अग्रणी तुम्हे
अस्त्र-शस्त्र कौशल में अजय पराक्रमी।[3]

---

१. म० आदि० १३४।१६
२. एकलव्य, पृ० १११
३. एकलव्य, पृ० १२५

इस प्रसग मे कवि ने अभिजात वर्ग की अनभिजात वर्ग के शोषण की प्रवृत्ति का प्रकाशन किया है। यह प्रवृत्ति शाश्वत है, किन्तु निंदनीय भी, क्योकि इससे मानव के प्राकृतिक अधिकारो का हनन होता है।

धारणा और ममता सर्ग का कथानक कवि ने स्वतत्र रूप में विकसित किया है। धारणा मे एकलव्य की गुरु-निष्ठा अभिव्यक्त हुई है। वह अपने मित्र को गुरु की विवशता का आभास कराता है। इस प्रसग मे साधना की निष्ठा और आन्तरिक विश्वास की प्रतिष्ठा होती है।

पूछो मत, नागदत्त साधना का बीज जो,
भाग्योपल अक की कठोर सधि बीच है।[1]

कवि का विश्वास है कि व्यक्ति निष्ठा से बाधाओ पर विजय पाने मे समर्थ है। व्रती यदि व्रतपूर्णता के हेतु कटिबद्ध हो, तो जीवन की अधियारी रात्रि मे उसे नक्षत्र भी प्रकाश देते हैं।

एकलव्य धनुर्वेद सीखने माता पिता की आज्ञा के बिना चला जाता है। पुत्र के वियोग मे मा की ममता का विस्तृत चित्रण हुआ है। इस सर्ग मे वात्सल्य रस की पूर्ण परिणति है।

सकल्प और साधना सकल्प की पृष्ठभूमि के लिए 'महाभारत' मे कोई कथानक नहीं है। कवि ने इस आधार पर कि एकलव्य ने पूज्य गुरु की प्रतिमा बनाकर उनके समक्ष धनुर्वेद की शिक्षा और दक्षता प्राप्त की—इस सर्ग की अवतारणा की है। रात्रि के समय नीरव दिशाओ और शान्त प्रकृति की गोद मे बैठा एकलव्य गुरु द्रोण की मिट्टी की प्रतिमा बनाने का विचार करता है, और उस प्रतिमा के मूक सकेत से धनुर्वेद सीखने का सकल्प करता है। इस प्रसग की उद्भावना भूमिपति एव भूमिपुत्रो के भेद-भाव की भर्त्सना के हेतु होती है। इससे कवि का सामाजिक उद्देश्य स्पष्ट होता है।

भूमिपति मे तो मुक्तमानव विकृत है।
मूल्य नही जानते वे जीवन की गति का।[2]

इस विचार-शृखला के साथ विशेषता यह है, कि एकलव्य द्रोण के मर्म को वास्तविक रूप मे जानने का प्रयास करता है। वह द्रोण को दोषी न कहकर तत्कालीन नीति को दोषी ठहराता है।

साधना मे कवि सकल्प के प्रयोग का चित्रण करता है। 'महाभारत' के युद्ध की घोषणा हो चुकी है इधर एकलव्य अपनी साधना मे लीन है। वह अत्यन्त प्रयास से गुरु की प्रतिष्ठा करता है। यह स्थल सुरम्य तपोवन बन जाता है। अनेक लता-गुल्म, व्यूह के समान हो जाते हैं। उनके सकेत से एकलव्य नित्य प्रति धनुर्वेद सीखता है।

---

१ एकलव्य, पृ० १३७
एकलव्य, पृ० १७७

मूर्ति गुरु द्रोण की है, शिष्य एकलव्य ने,
स्निग्धचन्द्र ज्योत्सना और तीव्र रवि रश्मि ले,
सीप कण मिश्रित मृदुल रज कण में,
भैरव हुंकार पूर्ण नद जल डाल के,
अथक करों से तथा अनिमेष दृष्टि से
पूर्ण मनोयोग से सुयोग मे बनाई है।[१]

भीष्म की राजनीति : 'महाभारत' के वातावरण के संकेत की सम्भावना से कवि स्वतंत्र रूप से विचार करता है, कि द्रोण की अस्वीकृति भीष्म की राजनीति का ही फल थी। यह अस्वीकृति द्रोण के मुख से अवश्य उच्चरित हुई, किन्तु इसके पीछे भीष्म की राजनीति का स्वर था। निषादों के शक्ति-संचय में आर्यो के विरोध की कल्पना कवि की उच्चतम कल्पना है।

जानता हू, भेदभाव आप नही मानते,
किन्तु नीति आपसे ही यह मनवाती है।[२]

यहां कवि भेदभाव को व्यक्ति-कृत न मान कर समाज-कृत मानता है। और इसी प्रकाश में इस प्रसंग का विकास करता है। कवि अत्यन्त विस्तार से एकलव्य की शिक्षा का चित्रण करता है। 'महाभारत' के एक श्लोक में व्यंजित एकलव्य की शिक्षा का, कवि ने विस्तार से वर्णन किया है।

परया श्रद्धयोपेतो योगेन परमेण च।
विमोक्षादान संधाने लघुत्वं परमाप स:।[३]

इस श्लोक का भाव-विस्तार सम्पूर्ण सर्ग के उत्तरार्ध में हुआ है।[४]

भीष्म की राजनीति का बन्धन कवि की दृष्टि में अधिक उग्ररूप लेकर उपस्थिति हुआ है। इस कारण कवि द्रोण के स्वप्न की कथा की स्वतंत्र प्रतिष्ठा करके, द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व को वाणी देता है। एकलव्य की साधना निरन्तर उत्कर्ष पर है, इधर द्रोण को स्वप्न आता है। द्रोण का स्वप्न सम्भवत: इस बात का प्रतीक है, कि द्रोण निरन्तर निषादकुमार के विषय में विचार करते रहे होंगे। कुछ पर्यटकों द्वारा ऐसे श्यामकुमार के धनुर्वेद की चर्चा भी सुनी होगी। द्रोण के सचेतन मन ने राजनीतिक विवशता के कारण एकलव्य को शिक्षा देने से रोक दिया, किन्तु अचेतन मन मे उस कर्म के प्रति क्षोभ अवश्य होगा, जिसका उन्मुक्त प्रकाशन स्वप्न मे हुआ। इसी मानसिक पृष्ठभूमि में कवि स्वप्न का आयोजन करता है। वे स्वप्न मे अपनी प्रतिमा के समक्ष श्यामकुमार एकलव्य की धनुर्वेद साधना को देखते है।

१. एकलव्य, पृ० १६३
२. एकलव्य, पृ० १६६
३. म० आदि० १३१।३५
४. एकलव्य, पृ० २०७-२०९

इंगित निरन्तर मैं करता ही जाता हूँ
और कहता हूँ, वत्स वेधो इस लक्ष्य को।

× × ×

वत्स कौन। किसको मैं वत्स कह जाता हूँ[1]

स्वप्न मे द्रोण एकलव्य की श्रद्धा भक्ति का दर्शन करते हैं और वर्ग-समानता की प्रतिष्ठा करते हैं। कवि द्रोण के आहत हृदय का प्रकाशन इन शब्दो मे करता है।

हाय रे, अभागे द्रोण पिता भरद्वाज के
उज्ज्वल आदर्श तुझे आगे न बढा सके।
किसी गुरुकुल की स्थापना न कर सका।[2]

द्रोण के मानसिक परिताप एव द्वन्द्व का चित्रण कवि की मौलिक सूझ है, और इससे तत्कालीन नीति और सामन्तकालीन आर्थिक कसाव का चित्रण होता है। गुरुकुल की उन्मुक्तता राजकुल के बन्दीगृह मे व्याकुल दीखती है।

पाण्डव गुरु की आज्ञा पाकर आखेट के लिए जाते हैं। व्याघ्र, भालू, गज का सहार करने के उपरान्त भी उन्हे एकलव्य नही मिलता। 'महाभारत' मे सयोगवश पाण्डव और उनका कुत्ता एकलव्य के पास पहुँच जाते हैं किन्तु 'एकलव्य' मे स्वप्न की पृष्ठभूमि के आधार पर पाण्डव जानबूझ कर एकलव्य की खोज के लिए निकलते हैं।

अथ द्रोणाभ्यनुज्ञाता कदाचित् कुरुपाण्डवा।
रथैर्विनिर्ययु सर्वे मृगयामरिमर्दन।[3]

'एकलव्य' मे भी पाण्डव गुरु की आज्ञा से एकलव्य को देखने जाते हैं। मृगया के लिए गये कुमारो को लौटने मे विलम्ब हो जाता है। आचार्य द्रोण भोजन की व्यवस्था करके, भृत्य के साथ श्वान भेजते हैं। यह श्वान पाण्डवो को ढूढता हुआ एकलव्य के तपोवन मे पहुचता है, भौंकने पर सात बाणो से विद्ध होकर पाण्डवो के पास आता है। यह कथा का परिवर्धित रूप है। पाण्डव स्वय जाकर एकलव्य के आश्रम को देखते हैं। यहा कवि पुन एकलव्य की गुरु-भक्ति और निष्ठा का प्रकाशन करता है।

दक्षिणा अर्जुन के मानसिक द्वन्द्व की प्रेरणा केवल वैयक्तिक अद्वितीयता ही नहीं अपितु अनार्य जाति के उत्थान की आशका, उससे भी प्रबल होकर उसे स्फुरित करती है। अर्जुन सम्पूर्ण सूचना गुरुदेव को देता है, तदुपरान्त अपने आप स्थिति पर विचार करता है। नीति की आवश्यकता, कठोर व्यावहारिकता, क्षत्रिय जाति का

---

१ एकलव्य, पृ० २१७
२ एकलव्य, पृ० २२३
३ म० आदि० १३१।३६

संगठन, मानो सबको एकलव्य ने हिला दिया, अतः अर्जुन के द्वन्द्व में प्रकारान्तर से एकलव्य के व्यक्तित्व का उन्नयन ही हुआ है और वह छल से उसकी हानि का संकल्प करता है। तभी उसका अदम्य निश्छल वीरत्व उसकी आत्मा के तेज से प्रकाशित होता है :

दक्षिण भुजा ही काट डालूं नहीं यह तो
राजनीति की भले हो मान्यता, परन्तु मैं
वीर राज पुत्र होके गर्हित जघन्यता,
कर न सकूंगा आर्य जाति चाहे नष्ट हो।[1]

इस द्वन्द्व और द्वन्द्व के परिहार में कवि ने व्यक्तिगत नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है।

दक्षिणा सर्ग में गुरुद्रोण और अर्जुन का एकलव्य के आश्रम में पहुंचना, दक्षिणा लेने और एकलव्य की माता तथा पिता के आने का चित्रण है। कथा के अन्तिम किन्तु सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग को कवि ने अत्यन्त नाटकीय कलात्मकता के साथ चित्रित किया है। मूलग्रन्थ में गुरु द्रोण स्वयं एकलव्य के दाहिने हाथ का अंगूठा मांगते हैं।[2] इससे आचार्य का चरित्र अत्यन्त सामान्य स्थिति में आ जाता है। कवि द्रोण के चरित्र के इसी कलंक को धोना चाहता है, इस कारण वह अत्यन्त कलात्मकता से स्थिति का चित्रण करता है। द्रोण एकलव्य के पास जाकर उसकी भक्ति और ज्ञान की प्रशंसा करते हैं, किन्तु अर्जुन आचार्य के प्रण की रक्षा का प्रसंग उठाते हैं। यह प्रण आचार्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न बनता है। एकलव्य अपने गुरु को किसी भी रूप में चिन्तित नहीं देखना चाहता।

एकलव्य ने कहा—अकीर्ति गुरुदेव की,
होगी नहीं, जब तक जीवित हूं जग में
पार्थ ही सदा के लिए अद्वितीय धन्वी है।[3]

साथ ही गुरु दक्षिणा का प्रश्न उपस्थित होता है। एकलव्य द्रोण के मानसिक संघर्ष को समझ लेता है और अपने दाहिने हाथ का अंगूठा स्वयं ही काट देता है।

क्षण में ही अर्ध चन्द्र मुख बाण वेग से,
तूर्ण से निकाल कर लिया वाम कर में
गुरु मूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना,
एक ही आघात में अंगुष्ठ काटा मूल से।[4]

---

१. एकलव्य, पृ० २६७
२. म० आदि० १३१।५६
३. एकलव्य, पृ० २६०
४. एकलव्य, पृ० २६६

इस प्रकार एकलव्य ने अपनी भक्ति का अन्तिम मूल्य चुका दिया। इस सर्ग मे कवि ने कथा के विकास के मध्य गुरु-भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। कवि के मत मे अर्जुन का अहकार उसके पूर्ण ज्ञान के मार्ग मे बाधा था। गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना से अन्तर आलोकित होता है। कवि मन की सूक्ष्मता के स्तरो पर विश्वास की गहराई से आत्मसमर्पण को ज्ञान-प्राप्ति का मुख्य साधन स्वीकार करता है। कवि ने इस स्थल पर अधिक भावुकता के प्रसार के लिए माता-पिता की उपस्थिति मे कथा की चरम अन्विति करुणा मे की है।

समीक्षा

'महाभारत' मे एकलव्य की कथा स्वतन्त्र रूप मे प्रस्तुत की गई है, उसमे तत्कालीन वर्णभेदत्व का परिचय मिलता है। एकलव्य को उसके अनभिजात वश के कारण द्रोण का शिष्यत्व न मिल सका। अत उसको इस असफलता से कितनी मानसिक ग्लानि और सताप हुआ होगा, यह महाभारतकार की विवेचना का विषय न बन सका। ठीक भी है, ब्राह्मणत्व के सर्वोच्च आदर्श के उपासक व्यास भीलकुमार के मानसिक द्वन्द्व को कैसे वाणी दे सकते थे ? आधुनिक युग के कवि ने उस सन्ताप का अनुभव किया और उसको वाणी देना युग-सुधार के कारण आवश्यक समझा। एकलव्य का सन्ताप है कि "सभी मानवो मे एक आत्मा-शक्ति का निवास है, तब केवल जन्म-भेद के कारण मुझे शिक्षा नही दी गई"। क्या यह उचित है ?[1]

'महाभारत' के इस पात्र के मानसिक द्वन्द्व मे कवि ने सामाजिक विषमता के प्रति विचार अभिव्यक्त किए हैं। आज के युग का सामाजिक वैषम्य परम्परागत है। किन्तु उसका उच्छेदन भी आवश्यक है। आज के नेताओ ने इस वैषम्य के निवारण-हेतु अनेक प्रयास किए हैं। इन्ही के प्रकाश मे कवि की विचारधारा का विकास होता है।

मूलकथा के प्रमुख परिवर्तन का उद्देश्य है एकलव्य की वीरता का प्रदर्शन। एकलव्य की वीरता यद्यपि उद्घोषित रूप मे अर्जुन के समक्ष नहीं थी, किन्तु कथा के अन्त मे कुत्ते के मुख को रक्तहीन घाव के रूप मे बाणों से भर देने के उपरान्त पाण्डवों को चिन्ता हुई। फलस्वरूप एकलव्य का अगूठा कटवाया गया। 'गुरुदक्षिणा' मे कवि ने एक और कदम आगे चल कर परीक्षा के समय ही एकलव्य की वीरता और लक्ष-वेध की अद्वितीयता सिद्ध की।[2] यह परिवर्तन इस बात का द्योतक है कि एकलव्य को केवल इसी कारण ही शिष्यत्व न मिल सका कि वह अनभिजात वर्ग का था, किन्तु इससे यह ध्वनि भी आती है कि अर्जुन के समान लक्ष्य वेधन की शक्ति रखने वाले व्यक्ति को द्रोण अपना शिष्य कैसे बनाते ? अत अर्जुन की अद्वितीयता की अक्षुण्णता की रक्षा के कारण भी एकलव्य को अस्वीकृत किया गया। यह तत्कालीन राजनीति का दर्श था।

१ गुरुदक्षिणा पृ० ३०, एकलव्य पृ० १४०
२ गुरुदक्षिणा, पृ० २५

गुरु द्रोण से अस्वीकृत एकलव्य के चिन्तन में कवि हिन्दू धर्म की संकीर्णता का विरोध करता है। वस्तुतः जाति-प्रथा, वर्णाश्रम व्यवस्था की अवस्था कर्म प्रधानता के साथ थी। जैसे ही जन्म को वर्ण व्यवस्था के भेदत्व का आधार स्वीकार किया गया, वैसे ही हिन्दू धर्म अपने गुरुत्व को खोता गया।

आज के युग में पुरुषार्थ की बलवत्ता स्वीकृत है। कवि पुरुषार्थ का आख्यान करता है। कवि ने एकलव्य को मानवता का मूक प्रतीक माना है।[1] इसका कारण यह है कि मानवता के सर्वस्वीकृत सिद्धान्त समानता का अधिकारी एकलव्य न हो पाया। निश्चय ही एकलव्य उपेक्षित-दलित वर्ग का प्रतिनिधि है। किन्तु वह अवसर की प्रतिकूलता, विपत्तियों और बाधाओं का दमन कर, पुरुषार्थ के आदर्श को स्थापना कर सका है, इसीलिए आज के युग मे उसके चरित्र के आख्यान का महत्व है।

डा० वर्मा का जीवन-दृष्टिकोण सामाजिक है, उसका सार यह है कि—अपने समग्र रूप में व्यक्ति समाज का अंग है, भेदभाव की भित्तियों को समाज के उच्चवर्ग ने खड़ा किया है, वे समाज की क्रूरता की प्रतीक हैं, अनभिजातवर्गीय कर्मठ व्यक्ति इन भित्तियों को गिराना चाहता है, पर असमर्थ रहता है, तथापि आज का युग उसके अनुकूल है और अनेक ऐसी मान्यताएं भूलुण्ठित हो रही हैं। उसके लिए भविष्य की अरुणिम किरण का प्रस्फुटन अनिवार्य है। 'महाभारत' की राजनैतिक स्थिति के आधार पर आज का कवि अनेक समान समस्याओं की व्याख्या करता है। उसका उद्देश्य है कि जो अपमान एकलव्य को मिला वह समाज का कलंक है, अतः त्याज्य है। वह व्यवस्था भी परिवर्तनीय है, जिसमें ऐसा कलंक पनपता है।

'एकलव्य' के अन्तर्द्वन्द्व-प्रधान स्थलों मे द्रोण का चरित्र गुरु की आदर्श प्रतिष्ठा से आलोकित हुआ है। इतने आस्थावान शिष्य के गुरु को भी तो हृदय से महान होना चाहिए—उसकी शिक्षा बंध सकती है, किन्तु हृदय का विशाल साम्राज्य सहस्राक्ष हो के सहस्र आंसुओं से शिष्य की कल्याण कामना करता है।

महाभारत का नलोपाख्यान

यह प्रसंग महाभारत-परवर्ती कवियों को अधिक प्रिय रहा है। संस्कृत मे इस प्रसंग पर 'नैषध' महाकाव्य की रचना हो चुकी थी। उसके उपरान्त प्रेमगाथा के रूप में सूफी तथा अन्य कवियों ने इस उपाख्यान के आधार पर रचना की। 'आधुनिक हिन्दी काव्य से पूर्व महाभारत की प्रभाव परम्परा' में हमने अनेक काव्यों का उल्लेख किया है। आधुनिक काल की सीमा में विवेचन योग्य, नलोपाख्यान पर रचे तीन काव्य उपलब्ध हैं—'नलनरेश', 'नैषधकाव्य' और 'दमयन्ती', इनमें 'नलनरेश' और 'दमयन्ती' ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। 'नलनरेश' मे कथा-परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य चरित्रों का सृजन है और 'दमयन्ती' मे चारित्रिक पुनः स्पर्श के साथ सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में स्त्री के अधिकारों की विवेचना पर अधिक ध्यान दिया गया है।

१. गुरुदक्षिणा, भूमिका, पृ० १

कथा-संग्रहण

वनपर्व के अध्याय ५२ के आधार पर 'नलनरेश' मे नल के गुणो का वणन विदभ वर्णन, दमन द्वारा वरदान, दमयन्ती का जन्म और नल पर मुग्ध होने की कथा ग्रहण की है। 'दमयन्ती' मे राजकुल, भीम परिवार निषध देश का संक्षिप्त परिचय दिया है। 'नलनरेश' मे प्रथम और द्वितीय सग की अधिकाश कथा कविकल्पित है उसका 'महाभारत' म अभाव है। नल का आखेट, राजहस से वार्ता, हस का दूतत्व, दोनो प्रबन्ध काव्यो मे इसी अध्याय से लिया गया है। अध्याय ५३ के आधार पर प्रेम प्रस्फुटन और पल्लवन, विरह, स्वयवर की तैयारी, निमत्रण, और नल के प्रस्थान का प्रसग गृहीत है। अध्याय ५५-५६ से देवताओ की प्राथना नल का दूतकम, अदृश्य-विद्या, नल दमयन्ती की वार्ता के प्रसग विन्यस्त किए गए है। अध्याय ५७ के आधार पर स्वयवर, विवाह सन्तानोत्पत्ति तथा स्वदेश लौटने की कथा ग्रहण की है। अध्याय ५७ के उत्तराध और अध्याय ५८ से कलि प्रसग, राज्य व्यवस्था का चित्रण किया है। अध्याय ५९ से द्यूत की पृष्ठभूमि, द्यूत क्रीडा, वनवास और अध्याय ६० से ६२ तक की कथा का सक्षेप वन-यात्रा के रूप मे किया है। अध्याय ६३, ६४, ६५ के आधार पर नल दमयन्ती विछोह, दमयन्ती विलाप, कर्कोटक प्रसग, चेदि राज्य मे दमयन्ती का निवास वर्णित है। अध्याय ६६-६७ से नल का अयोध्या पहुचना, कलि का शाप लौटाना दमयन्ती का कुण्डिनपुर आना, आदि प्रसग लिए है और अध्याय ७३-७४ ७५ से, ऋतुपर्ण का कुण्डिरपुर आगमन, और मिलन प्रसग वर्णित है। इस प्रकार 'महाभारत' के संक्षिप्त उपाख्यान को प्रबन्ध काव्य के कलेवर मे अनेक स्वतन्त्र वणनो से विस्तृत करके आधुनिक कवियो ने, आज के सामाजिक परिवेश मे प्रस्तुत किया है। कवि के स्वतन्त्र दृष्टिकोण के कारण कथा-परिवर्तन की पृथक् रूप से विवेचना अपेक्षित है।

नलनरेश

परिवर्तन-परिवर्धन जन्म से प्रेम पल्लवन तक 'नलनरेश' मे जन्म-वर्णन से प्रेम पल्लवन तक की कथा का विस्तार पाच सर्गों मे किया है। 'महाभारत' मे यह प्रसग दो अध्यायो मे वर्णित है। कवि ने इस संक्षिप्त प्रसग का अनेक वर्णनो और कथा परिवर्तनो मे पर्याप्त विस्तार दिया है। इस प्रसग की प्रमुख घटना नल-दमयन्ती का जन्म और हस का दूतत्व है। इन दोनो घटनाओ मे स्वतन्त्र कथा विकास की दृष्टि से परिवर्तन किया गया है—कवि द्वारा वर्णित निम्न प्रसगो का 'महाभारत' मे अभाव है

भारतवर्ष का महान गौरव,[1] सर्वोत्तमता के कारण, महाकाव्य के प्रेरणा स्रोत[2] तथा लिखने के कारण, सज्जन-स्तुति, दुजन निन्दा निषध देश की जलवायु का वणन,[3]

---

१ नलनरेश पृ० ११

२ नलनरेश, पृ० ११

३ नलनरेश, पृ० १८-१९

राजा नल का विचित्र दृश्य देखना,[1] भैमी के रूप एवं गुण का वर्णन,[2] राजा नल के बाग का वर्णन,[3] जन्म-भूमि के प्रति हंस के विचार।[4]

ये सभी प्रसंग कवि द्वारा 'नलनरेश' के महाकाव्यत्व के कारण जोड़े गये हैं। प्रस्तुत काव्य में नल का उपाख्यान प्रमुख है, जबकी मूल ग्रन्थ में यह मध्यवर्ती स्वतंत्र उपाख्यान है। उक्त प्रसंगों पर महाभारतीय शैली का प्रभाव सम्पूर्ण दृष्टि से दिखाई देता है। मंगलाचरण. ग्रन्थ की महिमा और देशकाल के चित्रण की परम्परा कवि ने 'महाभारत' से ही ग्रहण की है।

परिवर्तन : कथा को 'महाभारत' के अनुरूप स्वीकार करते हुए भी, कवि ने घटनाओं के हेतु में मौलिक परिवर्तन किए हैं। इन परिवर्तनों का औचित्य यह है कि 'महाभारत' का अलौकिक वातावरण जीवन के स्वाभाविक विकास में दिखाई दे। 'महाभारत' में कलि के प्रवेश के उपरान्त पुष्कर नल विरुद्ध होता है। 'नल न... में पुष्कर प्रारम्भ से ही नल वैभव के प्रति ईर्ष्यालु है और उनको बार बार द्यूत के... और उत्तेजित करता है—

> पुष्कर अपना हाथ कुपित होकर मलता था।
> नल वैभव को देख बहुत मन में जलता था।[5]

उस ईर्ष्या के कारण पुष्कर द्यूत का गुण गान करता था :

> सब दुःखों को द्यूत शीघ्र ही हर लेता है,
> श्रान्त चित्त को और प्रफुल्लित कर देता है।[6]

प्रस्तुत कथा-परिवर्तन से कवि ने 'महाभारत' के दिव्यांश को बुद्धिगत सम... किया है। बड़े भाई के वैभव पर ईर्ष्या तत्कालीन सामन्तीय प्रथा में बड़े भाई के उत्तराधिकार नियमानुसार नितान्त स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हो सकती है। पुष्कर प्रारम्भ से ही द्यूत का प्रयास करता है। यह आगे होने वाली घटना की स्वाभाविक पृष्ठ-भूमि है, इसी प्रसंग में कवि 'महाभारत' में वर्णित आदर्श राजा के गुणों का उद्घाटन करता है।[7] 'महाभारत' में दमन ऋषि भीम के पास आकर सेवा से तृप्त होकर पुत्र उत्पत्ति विषयक वरदान देते हैं।[8] 'नलनरेश' में दमन युवराज कहां है? यह पूछ कर

१. नलनरेश, पृ० ३६
२. नलनरेश, पृ० ४०
३. नलनरेश, पृ० ५५
४. नलनरेश, पृ० ६६
५. नलनरेश, पृ० ३२
६. नलनरेश, पृ० ३२
७. नलनरेश, पृ० ३४
८. म० वन० ५२।७-८

और भीम की दुःखानुभूति को जानकर फिर वरदान देते हैं।[1] प्रेम के प्रादुर्भाव का प्रसंग गुण श्रवण से दोनों ओर कराया गया है। हंस का नल का मिलन और दूतत्व दोनों ग्रन्थों में समान है। हंस द्वारा दमयन्ती के समक्ष नल का विरह-वर्णन अत्यन्त भावुकता से किया गया है। 'महाभारत' में भावनाओं के प्रकाशन को अधिक अवसर न मिल सका, आधुनिक काव्य में भावनाओं का व्यापक चित्रण हुआ है।

स्वयंवर से विवाह तक 'महाभारत' में स्वयंवर से विवाह तक की कथा का वर्णन दो अध्यायों में किया है। 'नलनरेश' में इस प्रसंग को तीन सर्गों का विस्तार दिया है। समस्त कथा का विकास 'महाभारत' के अनुरूप हुआ है, अन्तर केवल संक्षेप एवं विस्तार का है। मूल ग्रन्थ में विषय का संक्षिप्त चित्रण है और 'नलनरेश' में दोनों के द्वारा विषय का विस्तार किया गया है। कवि ने देवताओं द्वारा नल के सौंदर्य का वर्णन अत्यन्त सुन्दरता से किया है—नल को देखकर सभी देवता विविध अनुमान करने लगे।[2] इन्द्र की अनुमति से नल को दूत बनाने की योजना बनाई गई। नल देवताओं का कार्य करने को उद्यत हो जाते हैं, पर कार्य जानकर उनमें अन्तर्द्वन्द्व होता है[3] तथापि अपने प्रण का ध्यान करके वे तैयार होते हैं। जब अन्तःपुर में प्रवेश की समस्या आती है तो देवता उनको अदृश्य-विद्या सिखाते हैं—इस तरह नल दूत-कार्य करने चल देते हैं। नल और दमयन्ती के वार्तालाप में स्त्री के सतीत्व की तीव्र अभिव्यंजना हुई है। सामाजिक दृष्टि से स्त्री की प्रेम-पवित्रता और दृढ़ता की विवेचना जिस रूप में हुई है, उससे कवि असमर्थित प्रेम का विरोध करता है।

स्वयंवर-सभा में नख-शिख-वर्णन परम्परागत दृष्टि के कारण हुआ है। 'नलनरेश' मूलतः शृंगार-प्रधान काव्य है, अतः नायिका का सौंदर्य-चित्रण आवश्यक है। इस प्रसंग का 'महाभारत' में संकेत है किन्तु काव्य में उसका विस्तार किया गया है। 'महाभारत' में दमयन्ती पाँच नल देखकर सतीत्व के तेज से देवों को नतशीश करके प्रार्थना के बल पर उनको प्रभावित करती है। 'नलनरेश' में वह केवल प्रार्थना करती है।[4] 'महाभारत' में देवता अपने गौरव के अनुकूल दमयन्ती पर प्रसन्न होते हैं, 'नलनरेश' में उनके हृदय में अपने कार्य के प्रति ग्लानि का अनुभव होता है।[5]

---

१ नलनरेश, पृ० ५०-५१

२ नलनरेश, पृ० ६०-६१

३ इधर चलूँ तो प्रण रोकेगा, उधर चलूँ तो रण खड़ा है।
इधर गिरूँ तो गहरी खाई, उधर गिरूँ तो कूप बड़ा है। नलनरेश पृ० ६६

४. म० वन० ५७।२०-२३ नलनरेश, पृ० १३४-१३६

५ म० वन० ५७।२५

ठीक नहीं अब अधिक सताना इस कन्या को,
देना कुछ वरदान चाहिए इस धन्या को।
होकर हम दिक्पाल सती का धर्म मिटाते,
सबसे बढ़कर मर्त्य लोक मे पाप कमाते।[1]

'नलनरेश' मे दमयन्ती के आत्मिक शौर्य एवं दृढ विश्वास की व्यंजना नही हो पाई, उसमे नारीगत दौर्बल्य है। ताराचन्द हारीत ने 'दमयन्ती' काव्य में दमयन्ती को अधिक आत्मविश्वासी, सतीत्व-विश्वासी रूप में चित्रित किया है, वहां दमयन्ती स्वय देवो की कुटिल कामना पर उन्हे ललकारती है, उनके पाप का इतिहास खोलकर उन्हें चेतावनी देती है। दमयन्ती का यह व्यक्तित्व अधिक आकर्षक और श्लाघ्य है। स्त्री जीवन केवल शोषण के लिए नही है, वह अपने सतीत्व की रक्षा के लिए केवल प्रार्थना पर जीवित नही रह सकता, अपितु सशक्त विरोध भी कर सकता है।[2]

इस प्रसग मे देवताओं द्वारा दिए गये वरदानो का कवि ने यथावत उल्लेख किया है :[3]

प्रत्यक्ष दर्शन यज्ञे गतिं चाऽनुत्तमां शुभाम्
नैषधाय ददौ शक्रः प्रयिमाणः शचीपतिः।[4]
मेरे दर्शन स्पष्ट यज्ञ में तुम पाओगे
होकर जीवन-मुक्त स्वर्ग सीधे जाओगे॥[5]

यहां पर कवि ने महाभारतीय घटनाओं का यथास्थान विस्तार और संक्षेप किया है। और कोई मौलिक परिवर्तन दृष्टिगोचर नही होता।

नगर-प्रवेश से वनवास तक : 'नलनरेश' में वर्णित निम्न प्रसंग स्वतंत्र रूप से चित्रित है। 'महाभारत' में उनका उल्लेखमात्र है।

निषध की जनता द्वारा नल का स्वागत,[6] दोनों के रहन सहन का वर्णन।[7] नल का विलाप-वर्णन,[8] दमयन्ती की स्वप्नावस्था का वर्णन,[9] दमयन्ती की स्त्री सम्बन्धी

---

१. नलनरेश, पृ० १३७
२. दमयन्ती, पृ० १३७
३. महाभारत के अनुसार आठ वरदान लिखे गए हैं : नलनरेश पृ० १४३
४. म०, वन० ५७।३५
५. नलनरेश, पृ० १४३
६. नलनरेश, पृ० १४७
७. नलनरेश, पृ० १५२
८. वन के सिंहो नींद छोड़कर धाओ धाओ
इस पापी की दुःखी देह को खाओ खाओ। नलनरेश, पृ० १६२
९. नलनरेश, पृ० २०२

विचारणा ।[1] इन सभी प्रसगो के द्वारा कवि ने 'महाभारत' की कथा के साथ नवीन सदर्भ मे अपने विचारो की अभिव्यक्ति की है। जनता के उल्लास मे आदर्श राजा के प्रभाव का वर्णन आवश्यक है। दमयन्ती के स्त्री सम्बन्धी विचारो मे आधुनिक युग के स्त्री सम्बन्धी विचारो को वाणी दी गई है। स्त्री अबला नही है, वह स्वय शक्तिवती है, किन्तु पुरुष उसके मोह के कारण उस पर अत्याचार करने मे समर्थ हो जाता है।

वनवास तक की कथा का विकास 'महाभारत' के अनुसार हुआ है। नल रानी सहित नगर मे प्रवेश करते है, और विधिवत राज्य सचालन करते हैं। 'महाभारत' मे दमयन्ती का वधू रूप अनभिव्यक्त है। वह रानी है अत उसका यह रूप अव्य-वहारिक माना जा सकता है। 'नलनरेश' मे वह पूर्ण गृहणी है, व्यजनो का निर्माण और प्रासादो की स्वच्छता का काम करती है।[2] इस स्थल पर वह रानी के पद से नारी के पद पर आ जाती है।

नल मे कलि-प्रवेश का प्रसग दोनो ग्रन्थो मे समान है। पुरोहित जी ने 'महा-भारत' का प्रसग यथावत ग्रहण किया है।

कृत्वा मूत्र मुपस्पृश्य सन्ध्यामन्वास्त नैषध ।
अकृत्वा पादयो शौच तत्रैन कलिराविशत् ॥[3]

× × ×

हो अपवित्र एक दिन नल ने डाले बिना पदो पर अम्भ—
ले केवल आचमन कर दिया सन्ध्योपासन का आरम्भ ॥[4]

द्यूत प्रसग मे कवि ने एक परिवर्तन किया है। 'महाभारत' मे मन्त्रीगणों के कहने पर दमयन्ती महल से आकर नल को समझाती है। 'नलनरेश' मे मन्त्री का प्रसग हटाया गया है और दमयन्ती स्वय ही नल को मना करती है।[5] बच्चों का कुण्डिन-पुर भेजना द्यूत के उपरान्त नल का पश्चाताप और निष्कासन आदि प्रसग मूल ग्रन्थ के अनुसार चित्रित है। कवि ने इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया।

---

१ पुरुषो स्त्री को आप भला अबला कहते हैं,
जिसके पीछे आप बली बनकर रहते हैं। नलनरेश पृ० २२८

२ नलनरेश पृ० १५०

३ म० वन० ५९।३

४ नलनरेश पृ० १६३

५ म० वन० ५९।१२ नलनरेश पृ० १६५

प्रसग संक्षिप्त कर दिया है।[1] 'महाभारत' मे दमयन्ती के द्वारा मृतकों को पुनर्जीवन देने का प्रसग नहीं है, 'नलनरेश' मे दमयन्ती के द्वारा यह चमत्कार दिखाया गया है।[2] कवि ने इस अलौकिक प्रसग की सृष्टि दमयन्ती के सतीत्व के प्रकाशन के हेतु की है। इससे सती के तेज का चरम प्रभाव परिलक्षित होता है। किन्तु यह बुद्धि सम्मत तथ्य नही है।

चेदि नगर से मिलन तक यह प्रसग नलोपाख्यान का उत्तरार्द्ध है। इसमे सघर्ष निरन्तर कम होते हैं और कथा मिलन-स्थल की ओर अग्रसर होती है। राजा भीम नल के खोज की घोषणा कर देते हैं, पर्णाद विप्र इस कार्य के लिए प्रणबद्ध होकर चल देते हैं। बाहुक के पास स्वयवर का निमत्रण जाता है। बाहुक को दुखी देखकर उन्हें सन्देह होता है। सन्देह की पुष्टि के उपरान्त नल के पास स्वयवर का निमत्रण जाता है। मार्ग मे नल अश्वविद्या सिखाते हैं और द्यूत-विद्या सीखते हैं।

इस प्रसग मे केवल एक परिवर्तन उल्लेखनीय है। 'महाभारत' मे दमयन्ती, पिता से छिपा कर माता की आज्ञा से स्वयवर का निमत्रण भेजती है, 'नलनरेश' मे यह बात माता से भी छिपाई जाती है।[3]

दमयन्ती के मिलन-प्रसग को कवि ने स्वतत्र रूप से चित्रित किया है। 'महाभारत' के प्रसग मे दमयन्ती की प्रार्थना अधिक है, दमयन्ती अपनी पवित्रता का विश्वास दिलाती है और वायु उसका समर्थन करता है।[4] कवि ने दमयन्ती जैसे महान चरित्र के लिए ऐसी प्रार्थना को अनावश्यक समझा, और पारिवारिक वातावरण मे नल-दमयन्ती का मिलन कराया। इन्द्रसेन इन्द्रसेना पात्रो का 'महाभारत' और इस उपाख्यान पर आधारित अन्य काव्यो मे स्थान नहीं मिल पाया है। पुरोहित जी ने इस कमी को भी पूरा किया है। सबके मिलन का कितना मनोहारी चित्र अकित किया गया है।

> माता नौका कहा। हमे उसमे बैठाओ
> इन्द्रसेन ने कहा—पिताजी तुम भी आवो
> नल को आते देख छिपी फिर सखिया सारी
> उठ न सकी, थी सुना अक मे भीम कुमारी॥[5]

---

१ नलनरेश पृ० २३२

२ नलनरेश पृ० २२७

३ म० वन० ७०।२५-२६

ख, यहा किसी से भी मत कहना वहा भूप को बतलाना।
दमयन्ती का और स्वयवर कल होगा यह जतलाना॥
—नलनरेश, पृ० २५०

४ म० वन० ७६।३७

५ नलनरेश, पृ० २७१

नल के आगमन एवं क्षमा-याचना से वातावरण स्निग्ध और मनोहारी हो जाता है। 'महाभारत' की दमयन्ती और काव्य की दमयन्ती में परिवर्तन है। यह परिवर्तन सोद्देश्य किया गया है। अपराध नल का था, चाहे उसके मूल में कोई भी कारण रहा हो—अतः नल द्वारा क्षमा-याचना मनोवैज्ञानिकता और स्नेहाधिक्य का द्योतक है। नल के आदेश से दमयन्ती का सोलह शृंगार करना कवि की मौलिक सूझ है, जिससे वर्षों से अतृप्त स्नेह की आकुलता व्यक्त हुई है।

मिलन के अनन्तर कवि ने कथा को चार सर्गों में विकसित किया है। यह विकास उसकी स्वतंत्र विचारधारा पर आवृत है। ऋतुपर्ण का बाग मे टहलना[1], अन्य प्राकृतिक वर्णन, मृगयाशाला का वर्णन,[2] मद्यपान,[3] आदि का चित्रण कथा का परिवर्धन है। 'महाभारत' मे ऐसे प्रसगों का अभाव है, कवि ने राजकीय जीवन की कल्पना के आधार पर इन प्रसगों की उदभावना की है।

निम्नस्थ प्रसंग कवि की मौलिक उद्भावना, कथा परिवर्धन के रूप मे चित्रित हुए हैं : हेमन्त वर्णन,[4] नल के भेजे दूत के साथ अनेक व्यापारियों का मिलन,[5] तथा व्यापारियों का समुद्र-यात्रा के विषय में विचार।[6] नल के द्वारा दूत के हाथों पुष्कर को पत्र भेजना।[7] पुष्कर के समय राज्य की दुर्दशा का चित्रण।[8] दूत का सेना सहित लौटना।[9] 'महाभारत' में नल एक मास श्वसुर के यहा रह कर कुछ सैनिक लेकर पुष्कर के पास आते हैं।[10] 'नलनरेश' में कथा-परिवर्तन किया गया है। नल पहले दूत के हाथ पत्र भेजते हैं, और दूत प्रजा का अध्ययन करके, लौटकर सारे समाचार देता है।[11]

---

१. नलनरेश, पृ० ३०६
२. नलनरेश, पृ० ३१५
३. नलनरेश, पृ० ३१६
४. नलनरेश, पृ० ३२३
५. नलनरेश, पृ० ३२४
६. नलनरेश, पृ० ३३१
७. म० वन० ७८।१-३
८. नलनरेश, पृ० ३३१
९. नलनरेश, पृ० २८८
१०. नलनरेश, पृ० २६६
११. नलनरेश, पृ० ३०२

'महाभारत' में पुष्कर का हृदय पूर्ववत कलुषित है, वह द्यूत में नल को परास्त करके दमयन्ती को प्राप्त करने की भावना की अभिव्यक्ति करता है। 'नलनरेश' में जिस प्रकार पुष्कर की ईर्ष्या का मनोवैज्ञानिक रूप चित्रित किया था, उसी प्रकार अन्त में पुष्कर का पश्चाताप युक्त जीवन दिखाया है।

जित्वात्वद्य वरारोहा दमयन्तीमनिन्दिताम्।
कृतकृत्यो भविष्यामि साहि मेनित्यशो हृदि ॥[1]

अर्थात् अब मैं सुन्दर मुख वाली अनिन्दिता दमयन्ती को जुए में जीत कर कृत कृत्य हूगा—यह है 'महाभारत' का पुष्कर, किन्तु 'नलनरेश' के पुष्कर का हृदय परिवर्तन द्रष्टव्य है।

सता रहा है मुझे इस समय उनका महा असह्य वियोग,
भोग रहे हैं शोक रोग को जिसके बिना निषध के लोग।[2]

यह परिवर्तन काव्य और व्यक्ति दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पुष्कर एक मनस्स्थिति के आवेग से भाई के विमुख हुआ था, तदुपरान्त उसका सरल होना आवश्यक है। 'महाभारत' में पात्रों का स्वभाव-परिवर्तन नहीं हुआ, जो जैसा है वह अन्त तक वैसा ही रहा, मन भावनाओं के द्वन्द्व में चरित्र का उतार-चढ़ाव नहीं हो पाया। आधुनिक काव्य में चरित्र का उतार-चढ़ाव कवि की प्रमुख उपलब्धि है।

नल का स्वदेश लौटना और पुष्कर से मिलन प्रसंग को कवि ने स्वतन्त्र रूप से विकसित किया है। नल का समाचार पाकर पुष्कर तपस्या रत हो जाता है और भाभी के चरण पकड़ कर क्षमा याचना करता है। पुष्कर स्वीकार करता है कि वह समस्त प्रभाव कलि का था। पुष्कर नल से सिंहासन सुशोभित करने का प्रस्ताव करता है, किन्तु नल, उस ऐहिक वैभव को स्वीकार नहीं करना चाहते।

नल पुष्कर को उपदेश देकर वैराग्य धारण करते हैं। इससे कवि राज्य त्याग के आदर्श की स्थापना करता है। राज्य के लिए होने वाले संघर्षों की तुलना में यह त्याग कितना महान है?

नल के त्याग से अभिभूत देवता उन्हें पुनः दर्शन देते हैं और वरदान देकर सदेह स्वर्ग भेजते हैं। इस प्रसंग से कवि मानव की चरम उन्नति का प्रतिपादन करता है। सामान्यतः नल की कथा में 'महाभारत' के इस प्रसंग को मानव की मानवता के उद्घाटन के लिए उपयुक्त समझ कर, कवि ने प्रबन्ध काव्य की रचना की है। प्रस्तुत काव्य में कथा-विकास की कुशलता और विचार-प्रतिपादन की गम्भीरता का समावेश है।

---

१ म० वन० ७८।१६
२ नलनरेश, पृ० ३२३

समीक्षा

'नलनरेश' का महत्वपूर्ण परिवर्तन पुष्कर के चरित्र में उपलब्ध है। 'महाभारत' में पुष्कर की स्थिति का वर्णन अलौकिक वातावरण में हुआ है, उसके हृदय में कलि का प्रवेश होता है और वह नल से जुआ खेलता है। पुरोहित जी ने इस अलौकिकत्व को स्वाभाविक मानसिक क्षोभ के रूप में चित्रित किया है। इससे तत्कालीन राज्यतन्त्रीय व्यवस्था की व्यक्तिपरक मान्यता में अधिकार के प्रश्न की विवेचना हुई है। राज्य केवल राजा का है उस पर प्रजा का कोई अधिकार नही। यह उस काल की सार्वभौम मान्यता है। युधिष्ठिर और दुर्योधन ने भी द्यूत से ही राज्य के मुकुट का निर्णय किया था। पुष्कर नल को परास्त कर राजा बनता है और सब देखते रहते है। यद्यपि आज के विचारानुसार इस पद्धति की अधिक राजनैतिक समीक्षा सम्भव हो सकती थी किन्तु उस ओर कवि का ध्यान नही गया—कथा के उपसंहार का परिवर्तन सामाजिक जीवन-दर्शन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भौतिक लालसा व्यक्ति-हृदय की सरलता को कुण्ठित कर देती है, उसका देवत्व दानव से परास्त हो जाता है, किन्तु अन्ततः आत्मा का प्रकाश सत्य को आलोकित करता है और कोमल सात्विक वृत्तियों का उदय होता है। नल पुनः राज्य सिंहासन पर आसीन न होकर तपस्वी बनते है। उनके शब्दों मे भौतिक ऐश्वर्य के विरोध का स्वर घोष है कि समस्त मानवीय संघर्ष का मूल अहं है। और अहं अधिकार प्रसूत है, अतः अहं को नष्ट करने के लिए अधिकार को समाप्त करना होगा। अहंकार का विनाश और अधिकार के प्रति अनासक्ति ही मानव के नरत्व को नारायणत्व मे विलीन करा सकती है। इसके लिए आवश्यकता है संसार को क्षण भंगुर समझने की। जब तक व्यक्ति विश्व के भ्रम को सत्य मानेगा तब तक वह संसार से ऊपर उठ कर आध्यात्मिक प्रकाश का साक्षात्कार नही कर सकेगा। व्यक्ति का कल्याण लोककल्याण सापेक्ष है, व्यक्ति के निजी धर्म सामाजिक धर्म हैं, उनका उदय व्यक्ति से होता है, किन्तु प्रसार समाज में। अतः 'नलनरेश' का सन्देश भौतिक ऐश्वर्य के प्रति अनासक्ति, अहंकार विसर्जन, सामाजिक समानता का व्यापक उपस्थापन है।

दमयन्ती

'दमयन्ती' प्रबन्ध काव्य में नलोपाख्यान मूल ग्रन्थ के अनुरूप है, किन्तु कथा का विकास सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर अनेक परिवर्तनों के साथ किया गया है। कथा के उपक्रम में भी मूल ग्रन्थ के प्रभाव को देखा जा सकता है।

> अस्ति राजा मया कश्चिदल्प भाग्यतरो भुवि।
> भवता दृष्ट पूर्वो वा श्रुतऽपूर्वा पि वा क्वचित्॥[1]

---

१. म० वन० ५२।५०

'महाभारत' के युधिष्ठिर का प्रश्न 'दमयन्ती' मे उसी विवश आकुलता से व्यक्त हुआ है।

> किन्तु देव दुर्दैव ग्रस्त, क्या मुझ सा पापी,
> रहा विश्व मे कही अभागा—विषम विलापी।[1]

इस प्रकार प्रस्तावना के उपरान्त कथा प्रारम्भ होती है, और कवि अनेक परिवर्तनो के साथ अपने सामाजिक उद्देश्य की उपस्थापना करता है।

जन्म से प्रेम पल्लवन तक प्रथम सर्ग से चतुर्थ सर्ग तक जन्म, प्रेम सन्देह और पल्लवन आदि प्रसगो का विस्तार किया गया है। रूप-दर्शन के अभाव मे प्रेम का अभ्युदय चित्र-दर्शन एव गुण-श्रवण से होता है। 'महाभारत' मे प्रेम-पल्लवन तक की कथा सक्षेप मे कही गई है, किन्तु 'दमयन्ती' काव्य मे उसे चार सर्गों का विस्तार मिला है, कारण यह है कि काव्य का प्रतिपाद्य नायक नायिका का प्रेम ही है। नायिका की पुन प्राप्ति के साथ काव्य की समाप्ति हो जाती है, अत प्रतिपाद्य विषय को विस्तार मिलना स्वाभाविक है।

इस स्थल पर कवि ने 'महाभारत' के अधोलिखित प्रसगो को छोड दिया है।

नल के वश का विस्तृत परिचय, सामान्य जनो द्वारा नल दमयन्ती की एक दूसरे के समक्ष प्रशसा, अन्त पुर के उद्यान मे राजा नल को हस का मिलना, नारद जी का स्वर्ग गमन।

'महाभारत' मे उक्त प्रसग प्रेम-पल्लवन तक जिस रूप मे चित्रित होते हैं, कवि ने उनको ग्रहण नही किया है। इन प्रसगो से सम्बन्धित दृष्टि कथा के द्रुत विकास की ओर रही है, किन्तु कवि ने महाकाव्योचित गरिमा का सन्निवेश करते हुए मार्मिक प्रसगो की नूतन उद्भावना से कथा का लालित्य अक्षुण्ण रखा है। इन कथा प्रसगो को छोडने का उद्देश्य यह है कि कवि अतिप्राकृत चित्रण से बचना चाहता है और कथा के सभी उपकेन्द्रो का मूल केन्द्र से निकटतम सम्बन्ध बनाए रखता है। सामाजिक दृष्टिकोण के कारण भी कवि को कुछ प्रसग छोड कर उपेक्षित प्रसगो का विस्तार उचित जान पडा।

महाभारत से अतिरिक्त प्रसग काव्य-कथा के स्वतन्त्र विकास की दृष्टि से 'महाभारत' मे अतिरिक्त प्रसगो को स्थान दिया है। इनसे 'दमयन्ती' काव्य की स्वतन्त्र सत्ता बनी रहती है, वह आधार-ग्रन्थ का छायानुवाद बनकर नही रह पाती। अतिरिक्त प्रसग इस प्रकार हैं।

वाटिका मे दमयन्ती का सौन्दर्य-चित्रण, सखी द्वारा नल की प्रशसा और दमयन्ती को नल के योग्य बताना, मन के ध्यान-मात्र मे सतीत्व की आचार-प्रणाली के आधार पर केवल नल का वरण, वाटिका मे हस-युग्म का मिलन देखकर प्रसन्न होना, आर्य कन्याओ का कर्तव्य-विवेचन, नगर का विस्तृत वर्णन और नल के सुराज्य

---

1 दमयन्ती, पृ० ५

का चित्रण। ये सभी प्रसंग कवि ने आधार ग्रन्थ की कथा के साथ सम्बद्ध कर विस्तार से चित्रित किए हैं। प्रेम के क्षेत्र में जिन प्रकृत भावों को आधार ग्रन्थ में इसलिए स्थान न मिल सका कि यह प्रासंगिक उपाख्यान था, उन्हीं स्थितियों का विस्तृत चित्रण 'दमयन्ती' की काव्यगत विशेषता है।

कुछ प्रसंगों से कथा का परिवर्तन भी किया है। उनमें काव्य की स्वाभाविकता स्थिर रह पाई है और अलौकिक तथ्य भी बुद्धि की कसौटी पर परख कर व्यक्त हुए हैं। 'महाभारत' में हंस नल का सन्देश लेकर दमयन्ती के पास जाते हैं और प्रेम का अंकुर सामान्य जनों की चर्चा से उत्पन्न होता है। 'दमयन्ती' में नारद नल के दरबार में जाकर दमयन्ती के गुणों की चर्चा करते हैं, उसे नल के उपयुक्त बताते हैं, तब नल के हृदय में प्रेम का अंकुर आविर्भूत होता है। इस उद्भावना को नारद प्रसंग का स्थानान्तरण भी माना जा सकता है। नारद का इन्द्रलोक गमन चित्रित न करके कवि ने इस रूप में नारद को कथा का भाग बनाया है।

'महाभारत' में हंस के दूतत्व से आखेट का कोई सम्बन्ध नहीं किन्तु 'दमयन्ती' में नल आखेट के लिए जाते हैं और हंस को पकड़ कर मारने की इच्छा करते हैं कि उसकी प्रार्थना पर छोड़ देते हैं। हंस स्वयं दूतत्व स्वीकार करता है।

'महाभारत' में राज्य-शक्ति, मानव-धर्म की चर्चा इस प्रसंग में नहीं है पर कवि ने इनका समावेश कर दिया है।

कुण्डिनपुर की वाटिका में हंस को पकड़ते हुए नल से अपने दृढ़ प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए दमयन्ती की एकान्तता सुन्दर कल्पना है।

इस प्रकार कवि प्रथम सर्ग से चतुर्थ सर्ग तक 'महाभारत' के एक ही अध्याय का विस्तार करता है। कवि के इन प्रसंगों का मूल केन्द्र है, अपने चरित्र-नायक और नायिका का ऐश्वर्यशाली वर्णन और प्रेम-पल्लवन। प्रेम के लिए केवल एक दो सन्देश ही पर्याप्त नहीं माने जा सकते। उसके लिए भावों की विस्तृत पृष्ठभूमि आवश्यक होती है। इस कारण नारद के द्वारा नल के दरबार में जाकर दमयन्ती के गुणों की चर्चा नल के मन में अस्थायी अंकुरित प्रेम को दृढ़ करती है। नारद जैसा ऋषि जिस कन्या की प्रशंसा करे वह सदगुणी, सुशील, सुन्दर अवश्य ही होगी। उधर दमयन्ती के मन में सखियों से सुनी बात का पूर्ण विश्वास हंस द्वारा होता है, अतः फल प्राप्ति की आकुलता बढ़ती है।

प्रेम प्रकाशन से स्वयंवर तक : प्रेम के प्रकाशन के उपरान्त कथा प्रणय से परिणय की ओर बढ़ती है। प्रेम को श्रेय का समर्थन लेना आवश्यक है। प्रेम की पूर्ति पवित्र वैवाहिक बन्धन में है, यही सत्यं, शिवं और सुन्दरं का समन्वय होता है, जो मूलतः व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक कल्याण को रूप देता है। पंचम सर्ग से अष्टम सर्ग तक कवि इस कथा का विस्तार करता है

---

१. दमयन्ती, पृ० ७४

नारद द्वारा देवताओ से स्वयवर की चर्चा को कवि ने नल के दरबार मे दिखाया है अत यहा वह उसकी पुनरावृत्ति नही करना चाहता। सर्ग के प्रारम्भ मे ही वह लोकपालों का आगमन दिखा देता है। इससे वह अलौकिकता से हटकर युग सापेक्ष स्वाभाविकता की धरा पर कथा को ले आया है।

परिवर्धन परिवर्तन 'महाभारत' मे देवता नारद के कहने पर स्वयवर के लिए चलते हैं, किन्तु काव्य मे ऐसा सकेत नही है। 'महाभारत' में सभी देवो की शक्ति का विस्तृत वर्णन नही है, किन्तु 'दमयन्ती' के कथा-विस्तार में देवो की शक्ति का विस्तृत चित्रण हुआ है। 'महाभारत' मे देवता धरती की प्रशसा नही करते, पर काव्य मे देवताओ द्वारा धरती की प्रशसा की गई है। 'महाभारत' मे नल का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित नही किया गया, केवल समान उद्देश्य से क्षोभ दिखाया गया है, 'दमयन्ती' मे वचनबद्ध नल का अन्तर्द्वन्द्व विस्तृत रूप से चित्रित किया गया है। 'महाभारत' मे नल देवताओ को कटुवचन नही कहते पर काव्य मे कटुवचन कहते हैं और देवता उनकी स्पष्टवादिता की प्रशसा करते हैं। 'महाभारत' मे दमयन्ती की व्याकुलता का चित्रण नही है, पर 'दमयन्ती' मे नल पहले दमयन्ती की व्याकुलता देखते हैं, पुन प्रकट होकर अपना निवेदन करते हैं।

स्वयवर प्रसग स्वयवर प्रसग को कवि ने महाभारतीय तत्व की रक्षा करते हुए सामाजिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इसमे निम्नस्थ परिवर्तन उल्लेखनीय हैं।

'महाभारत' मे अन्य नरेशो का वर्णन नही है, 'दमयन्ती' मे अनेक द्वीपो के नरेशो का परिचय दिया गया है।[1] 'महाभारत' मे दमयन्ती पाच नल देखकर देवताओ की स्तुति करती है, और तेज से प्रभावित करती है।[2] 'महाभारत' मे देवता भी शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, 'दमयन्ती' मे उनके कृत्यो का उल्लेख है, और प्रसग-वश प्राचीन सदर्भो की घोषणा है।[3] 'महाभारत' मे दमयन्ती के कार्य मे विवशता एव कोमलता है, 'दमयन्ती' मे सामर्थ्य और शक्ति का चित्रण है। 'महाभारत' मे देवताओ के आगमन का कारण नही दिया गया अपितु आठ वरदानो की चर्चा है, 'दमयन्ती' मे देवता प्रकट होकर अपने विघ्न रूप आगमन, परीक्षा की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं[4]। 'महाभारत' के कलि स्वय को वर रूप मे प्रस्तुत करते हैं 'दमयन्ती' मे वे केवल दर्शक हैं। देवताओ के रोकने पर भी शाप दे देते हैं।[5]

स्वयवर प्रसग के सम्पूर्ण परिवर्तनो की पृष्ठभूमि में सामाजिक दृष्टिकोण है। 'महाभारत' मे दमयन्ती की शक्ति उभर कर भी देवत्व मे दूसरे स्थान पर रही

---

1 दमयन्ती, पृ० ११९-१३०

2 म० वन० ५६।१८-२०, दमयन्ती, पृ० १३२

3 म० वन० ५६।२२-२३, दमयन्ती, पृ० १३६

4 दमयन्ती पृ० १३८

5 म० वन० ५८।३, दमयन्ती, पृ० १४०

पर काव्य में ऐसी भावना नहीं, वहां देवत्व उससे प्रभावित होता है। देवत्व की प्रतिष्ठा कवि ने भी उसी रूप में की है जैसे 'महाभारत' में है।

नल-विवाह : 'महाभारत' में 'नल-विवाह और सन्तान की कथा सूचनात्मक है। नल के जीवन के इस पक्ष का विस्तृत विवेचन उपाख्यान के उद्देश्य से सम्बन्धित नहीं था अतः महाभारतकार ने इस प्रसंग को दो चार श्लोकों में चित्रित किया है। 'दमयन्ती' में यह प्रसंग एक सर्ग के विस्तार में वर्णित है। इसमें कवि ने कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन किये हैं।

'महाभारत' में विवाह का विस्तृत वर्णन नहीं है, 'दमयन्ती' में इसका विस्तार एवं नल-दमयन्ती के प्रणय-व्यापार का मनोहर चित्रण है। दमयन्ती के चाचा की लड़की कुमुदनी से पुष्कर का विवाह, प्रेम के लोक-विश्रुत रूप का व्यापक चित्रण किया है। नल-विवाह के अवसर पर इन प्रसंगों का महत्व पारिवारिक दृष्टि से अधिक है। पुष्कर की कथा को कवि यहीं से जोड़ देता है। इस कथा से दोनों भाइयों के गहरे प्रेम की अभिव्यंजना होती है। नल-दमयन्ती की प्रेम-वार्ता के मध्य कवि कर्तव्य और प्रेम का ऐसा विवेचन करता है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रेम एकान्तिक होते हुए भी लोक-कल्याण का समर्थक है।

द्यूत-सभा से चेदिराज तक : कलिने प्रतिकार-हेतु द्यूत को आधार करके पुष्कर से यह कार्य कराया। इस प्रसंग में 'महाभारत' के तात्विक अंश की पूर्ण रक्षा करते हुए कवि ने अनेक सोद्देश्य परिवर्तन किए। पुष्कर के साथ द्यूत में नल सर्वस्व हारकर वनवासी होते हैं। वन में दमयन्ती उनसे पृथक् हो जाती है और अनेक कष्टों को सहन करती हुई चेदिराज के यहां पहुँचती है।

द्यूत सम्बन्धी निम्न प्रसंग 'दमयन्ती' में नहीं है।

कलि द्वारा बारह वर्षों तक नल के छिद्र की खोज में रहना, पैरों को न धोने की स्थिति में अचार-भंग होने के कारण[1] कलि का नल में प्रवेश। द्यूत न खेलने के लिए दमयन्ती की प्रार्थना[2], सभासदों का द्यूत-क्रीड़ा से निवारण करना। इनमें प्रथम दो प्रसंगों को 'दमयन्ती' में अतिप्राकृत होने के कारण स्थान नहीं मिला। कवि ने इन प्रसंगों की तुलना में अधिक मनोवैज्ञानिक एवं स्थिति-सापेक्ष तत्वों का चित्रण किया है। बाद के दो प्रसंगों को कवि ने परिवर्तित रूप देकर चित्रित किया है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त सभी घटनायें 'महाभारत' में घटित घटना के आधार पर अपरिवर्तित रूप में प्रस्तुत की गई हैं।

परिवर्तन-परिवर्धन : कवि पुष्कर के मित्र गालव द्वारा पुष्कर की मति भ्रष्ट करवाता है। पुष्कर पहले सद्भाव के आधार पर गालव का विरोध करते हैं

---

१. म० वन० ५६।२३

२. म० वन० ५६।१५-१८

किन्तु अन्तिम विजय कलि की ही होती है ।[1]

पुष्कर के अन्तर्द्वन्द्व मे राज्य के उत्तराधिकार का प्रश्न और गणतंत्र की विवेचना होती है ।[2]

'महाभारत' मे सारथी महल मे द्यूत की सूचना देता है। दमयन्ती पुरवासियो के साथ नल को द्यूत न खेलने का परामर्श देती है, किन्तु नल इस परामर्श का आदर नही करते 'दमयन्ती' मे रानी को सूचना तब मिलती है, जब नल सब कुछ हार जाते हैं और वह दरबार मे आकर सभासदो से पूछती है कि यह सब क्यो हुआ ?[3] 'दमयन्ती' मे पुष्कर दरबार में आकर अभद्रता से व्यवहार करके द्यूत का प्रस्ताव रखता है और नल उसे स्वीकार कर लेते हैं। 'महाभारत' मे द्यूत के लिए नल पश्चात्ताप नही करते किन्तु 'दमयन्ती' वे अपना अपराध स्वीकार करते हैं कि मुझे यह नहीं करना चाहिए था ।[4]

द्यूत-प्रसंग का विस्तार कवि ने एक सर्ग में किया है, इसके व्याज से उसने कई प्रश्नो पर विचार किया है। दमयन्ती के कथन मे विश्वास भग होने की स्थिति की पीडा मुखरित है। राज्य किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति है या नहीं, इस विषय पर कवि ने आधुनिक दृष्टि से विचार किया और एक अतिरिक्त प्रसग से सौहार्द्र का चित्रण किया है। द्यूत मे सब कुछ हारने पर कुमुदनी अपनी बहन से दु खपूर्ण उद्गार प्रकट करती है। यह वार्तालाप नूतन उद्भावना है।

नल का वनवास द्यूत के अनिवार्य परिणामस्वरूप नल दमयन्ती को लेकर वन की ओर प्रस्थान कर देते हैं। कवि वनवास की घटनाओ को अत्यन्त मार्मिक रूप मे प्रस्तुत करता है।

'महाभारत' के जो प्रसग इसमे लिए गये हैं, उनमे नल का भूख-प्यास से तडपते निषध की सीमा पार करना, नगर निवासियो का पुष्कर की आज्ञा के कारण नल की सहायता न करना, वन मे पक्षियो के द्वारा राजा नल का वस्त्र छिन जाना, अत्यधिक दु खी देखकर दमयन्ती को विदर्भ चले जाने के लिए नल का परामर्श, मुख्य हैं।

'महाभारत' मे नल के चले जाने के उपरान्त पुष्कर के पश्चाताप की कोई सूचना नहीं है, 'दमयन्ती' में कवि वन मे नल-दमयन्ती को, एक निषध व्यक्ति के द्वारा दो दिन बाद ही पुष्कर के अपराध ज्ञान और पश्चाताप की सूचना देता है।

पुष्कर नल के मुकुट को सिंहासन पर रखकर विलाप करते रहे तथा अन्य पुरवासी अधिक शोकमग्न रहे। कुमुदिनी सर्वस्व त्याग कर कुण्डिनपुर चली गई।

---

१ दमयन्ती, पृ० १७०-१७१

२ दमयन्ती, पृ० १७३

३ म० वन० ५६।१२, दमयन्ती पृ० १६७

४ दमयन्ती, पृ० १६८-१६६

'महाभारत' में पुष्कर द्वारा नल की खोज के प्रयास की कोई सूचना नहीं, 'दमयन्ती' में पुष्कर नल को खोजने का यत्न करते हैं। चारों दिशाओं में चर भेजते हैं किन्तु पता नहीं चलता। 'महाभारत' में इन की कथा का अधिक सन्तापयुक्त वर्णन है और काव्य मे भी इस कथा को पर्याप्त विस्तार देकर कवि ने 'दमयन्ती' की पतिभक्ति को उज्ज्वल रूप में सिद्ध किया है। 'दमयन्ती' मे नल द्वारा त्यागने से पूर्व का अन्तर्द्वन्द्व 'महाभारत' का छायानुवाद है। नल का अन्तर्द्वन्द्व मानव की विवशता के धरातल पर चित्रित हुआ है।

इन परिवर्तनो में कथा-संयोजन की मौलिक प्रतिभा का उद्घाटन हुआ है और कथा को अधिक मनोवैज्ञानिक बना देने की चेष्टा की है।

अकेली दमयन्ती : नल अत्यधिक मानसिक संघर्ष के उपरान्त दमयन्ती को अकेली छोड कर चले जाते हैं। इस प्रसंग में कुछ परिवर्तन करके तर्क-सम्मत बनाने की चेष्टा की है और 'महाभारत' का कोई उल्लेखनीय प्रसंग छोड़ा नहीं है।

'महाभारत' मे दमयन्ती के विलाप का मुख्य कारण नल की चिन्ता है।[1] 'दमयन्ती' मे इसका अभाव है। व्याघ का प्रसंग समान रूप से चित्रित है किन्तु 'महाभारत' मे व्याध की मृत्यु सती के प्रताप से दिखाई गई है, 'दमयन्ती' में वह रानी की खड्ग का शिकार बनता है।[2]

'महाभारत' में दमयन्ती को विलाप करते हुए एक तपोवन दिखाई देता है, उसमे ऋषिमुनि दमयन्ती के भविष्य की सुखद रूपरेखा बताकर अन्तर्धान हो जाते हैं, 'दमयन्ती' में इस प्रसंग को स्वप्न के रूप में अंकित किया गया है।[3] 'महाभारत' में व्यापारियों ने विपत्ति का कारण मणिभद्र की पूजा न करना बताया पर 'दमयन्ती' में यह दोष दमयन्ती के ऊपर थोपा गया।[4] 'महाभारत' में दमयन्ती चेदिराज्य मे पहुँच कर अपने को छिपाकर रहने का प्रबन्ध कर लेती है और प्रथम दर्शन में ही नही पहचानी जाती, 'दमयन्ती' में वह प्रथम दर्शन मे ही पहचानी जाती है।[5]

इन प्रसंगों मे कवि ने सभी अतिप्राकृत तत्वों को परिवर्तित करके बुद्धि-गम्य रूप देने का प्रयास किया है। 'महाभारत' की कथा से अपरिचित व्यक्ति इनमे कहीं भी दिव्य अंश की झलक नही पा सकता।

अकेले नल : नल अपने मन को किसी प्रकार समझा कर, दमयन्ती को छोड़कर चल देते हैं, तथापि उनको अतीव दुःख रहता है। मार्ग में कर्कोटक नाग के

---

१. म० वन० ६३।२४-२५, दमयन्ती पृ० २२९
२. म० वन० ६३।३७-३६, दमयन्ती पृ० २३२
३. म० वन० ६४।६४-६६, दमयन्ती पृ० २३६
४. म० वन० ६५।२०-२५, दमयन्ती पृ० २३६
५. म० वन० ६५।५५, दमयन्ती पृ० २४०

द्वारा रूप-परिवर्तन करके, बाहुक रूप-धारी नल ऋतुपर्ण के यहा पहुच जाते हैं। इस कथांश मे निम्नांकित उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं।

'महाभारत' मे नाग से सम्बन्धित नारद के सांकेतिक अनुवृत्त को कवि ने सूचनात्मक रूप मे ग्रहण किया है।[1] 'महाभारत' मे नाग राजा नल को रूप-परिवर्तन के लिए काटता है, और रूप की पुन प्राप्ति के लिए वस्त्र-दान करता है, किन्तु 'दमयन्ती' मे नाग एक जडी बूटी को पीसकर लगाने से रूप-परिवर्तन और उसी रूप मे पुन प्राप्ति की योजना बनाता है।[2]

नल का ऋतुपर्ण के यहा पहुँच कर गौशाला का अध्यक्ष बनना और दमयन्ती का स्नान कर रात्री मे दुखी होने की कथा समान है। इसमे कोई परिवर्तन नही किया गया। इसी स्थल पर 'दमयन्ती' का कवि सुग्लोर के प्रसग की सूचना देता है।

अयोध्या से कुण्डिनपुर तक बाहुक रूपधारी नल का परिचय देने के उपरान्त कथा द्रुतगति से मिलन की ओर बढती है।

कुमुदिनी और दमयन्ती आपस में मिलकर पश्चाताप करती दुखी होती हैं। 'महाभारत' मे यह प्रसग नही है। यह प्रसग कवि द्वारा चित्रित पूर्व प्रसग[3] का पूरक है। दमयन्ती के भाई शौर्य प्रदर्शन करते हैं, कि हमको स्मरण क्यो नही किया? हम शक्ति से राज्य छीन लेते।[4] बाहुक की सूचना समान रूप मे दी गई है, इसमे कोई परिवर्तन नही किया गया, 'महाभारत' मे पुष्कर का पश्चाताप नहीं दिखाया गया है, यदि है तो वह द्यूत मे हारने के उपरान्त है। कवि ने इस प्रकार कथा का स्थानान्तरण करके नायक के चरित्र की रक्षा की है। राजा नल के आने के पूर्व पुष्कर का पश्चाताप मूलरूप मे उसके स्नेह का सूचक है। इस तरह से दोष प्रक्षालन भी हो जाता है। 'महाभारत' मे उपेक्षित पुष्कर के चरित्र को कवि ने अत्यन्त सहानुभूति से काव्य मे स्थान दिया और उसके साथ पूर्ण न्याय किया है।

ऋतुपर्ण को स्वयवर की सूचना और बाहुक द्वारा कुण्डिनपुर तक अश्व-सचालन का प्रसग पूर्ण रूप से 'महाभारत' के समान है। 'महाभारत' मे बाहुक यह सूचना सुनकर अपने मन मे विचार करते हैं, 'दमयन्ती' मे वे उन्मुक्तता पूर्वक राजा से सारा समाचार पूछकर विचार करते हैं।[5] 'महाभारत' मे स्त्री पुरुष के अधिकार को लेकर कोई वार्ता नहीं, 'दमयन्ती' मे इस अधिकार की चर्चा है और नारी के

---

१ म० वन० ६६।४-६, दमयन्ती पृ० २४५
२ म० वन ६६।१२-३५, दमयन्ती, पृ० २४७
३ दमयन्ती, पृ० २०८-२०६
४ दमयन्ती, पृ० २६०
५ म० वन० ७१।४-८, दमयन्ती, पृ० २८३

अविकार का समर्थन किया गया है ।[१] 'महाभारत' में ऋतुपर्ण से वनवास की अवधि के विषय में कुछ नहीं कहलाया गया, 'दमयन्ती' में बाहुक के पूछने पर ऋतुपर्ण अवधि पूर्णता की सूचना देते हैं, और यह भी बताते है, कि पुष्कर उनको लेने के लिए कुण्डिनपुर आया है ।[२] 'महाभारत' में वृक्ष के पत्ते गिनने, राजा ऋतुपर्ण के अश्वविद्या सीखने और द्यूत-विद्या सिखाने इन तीनों में से कवि ने पहली दो विद्याओं का उल्लेख किया है । 'महाभारत' में पुनः द्यूत-क्रीड़ा है, 'दमयन्ती' में कवि ने उसे उस रूप मे स्वीकार न करके पुष्कर के पश्चाताप से राज्य की पुनः प्राप्ति का वर्णन किया है । 'महाभारत' के अधोलिखित प्रसंग काव्य में नहीं है ।

कलि का प्रकट होकर अपना अपराध मानना,[३] कलि को शाप देने की नल की इच्छा[४] बहेड़े के वृक्ष में कलि का समाजाना,[५] इन स्थलों को कवि ने अति-प्राकृत होने के कारण स्वीकार नहीं किया ।

नल-दमयन्ती मिलन : राजा ऋतुपर्ण के आने का समाचार सुनकर भीम उनके स्वागत के लिए आये । इस प्रसंग की सम्पूर्ण कथा 'महाभारत' के समान है । कुछ समान प्रसग इस रूप में है ।

भीम की अज्ञानता में ऋतुपर्ण को निमंत्रण भेजना, कुण्डिनपुर आकर ऋतु-पर्ण का आश्चर्य चकित होना और केवल दर्शन के लिए अपने आने का कारण बताना । घोड़ों के स्वर से दमयन्ती का तथा नल के घोड़ों का प्रसन्न होना, बाहुक और केशनि की वार्ता, पुत्र-पुत्री के द्वारा नल की परीक्षा, अन्त में दमयन्ती का स्वयं गमन और मधुर मिलन ।

इन प्रसंगों को कवि ने यथावत चित्रित किया है । केवल अन्त में एक परि-वर्तन यह है कि लौटकर नल पुनः द्यूत नहीं खेलते, पुष्कर स्वयं राज्य लौटाने की घोषणा करते हैं ।

समीक्षा

इस प्रकार नलोपाख्यान पर आधारित 'दमयन्ती' काव्य के कथा-स्वरूप का विचार करते यह स्पष्ट होता है, कि कवि का एक निश्चित उद्देश्य है, जिससे प्रेरित होकर यह काव्य लिखा गया । कवि ने उन्हीं स्थलों को परिवर्तित रूप में चित्रित किया है जिनमें या तो वह अलौकिकता को बचाना चाहता है अथवा चारित्रिक उत्थान करना चाहता है । परिवर्धन और नूतन उद्भावनाओं के रूप में आये प्रसंग

१. दमयन्ती, पृ० २८४
२. दमयन्ती, पृ० २८५-२७८
३. म० वन० ७२।३३
४. म० वन० ७२।३२
५. म० वन० ७२।३७

या तो सामाजिकता के विवेचन के हेतु आये हैं या उनसे पात्र की मानसिक अभिव्यक्ति हुई है।

'दमयन्ती' काव्य की प्रमुख उपलब्धि उसके सामाजिक दृष्टिकोण में है। मूल-कथा-भाग में जो परिवर्तन किये गये हैं, उनके द्वारा कवि ने अनेक सामाजिक समस्याओं की विवेचना की है। कथा-परिवर्तन अधिक न करके कथा-विकास के मध्य सिद्धान्त-प्रतिपादन हुआ है। 'महाभारत' में नल दमयन्ती प्रेम का आविर्भाव और विकास उतने मानसिक द्वन्द्व के साथ नहीं है जितना 'दमयन्ती' में है। 'दमयन्ती' के कवि का मत एक सामाजिक व्यवस्था से अनुप्राणित है। प्रेम-मानव जीवन की नितान्त स्वाभाविक प्रवृत्ति है, किन्तु उसके विकास का रूप सामाजिक बन्धन से युक्त है। उसमें स्वच्छन्दता को स्थान नहीं है। प्रेम की वास्तविक सिद्धि परिणय में है। परिणय सामाजिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण विधान है। इस विधान को भङ्ग करने का अधिकार दिव्य शक्तियों को भी नहीं है। जो प्रेम परिणय की सीमा में सामाजिक बन्धनों का आदर करता है, वह क्षेम से परिपूर्ण और लोक जीवन का उन्नायक है।

दूसरी महत्वपूर्ण समस्या है स्त्री के सामाजिक अस्तित्व की। दमयन्ती नल का वरण करती है, देवता उसमें विघ्न बनते हैं, तो क्या स्त्री अपने अधिकार को त्याग दे? कवि स्त्री की दुर्बलता को समाप्त कर उसमें संघर्ष की शक्ति भरता है। देवताओं को 'दमयन्ती' में चेतावनी दी जाती है कि विपथ पर चल कर अन्याय न करें, अन्यथा सती का तेज उनके अमरत्व को समाप्त कर सकता है। दमयन्ती की शक्ति में आधुनिक तेजोदीप्त स्त्री की शक्ति है। 'महाभारत' की दमयन्ती केवल विनम्र प्रार्थना करती है, किन्तु आधुनिक युग की नारी केवल प्रार्थना का बल नहीं रखती अपितु सर्प की फुंकार भी रखती है, अतः उसका शोषण नहीं हो सकता।

'दमयन्ती' में एक महत्वपूर्ण स्थिति पुष्कर का हृदय परिवर्तन है। पुष्कर जिस क्षणिक आवेग से अग्रज का विरोधी बनता है, उसी मात्रा से पश्चात्ताप की अग्नि में दग्ध होता है।

यह परिवर्तन इस तथ्य का द्योतक है कि 'महाभारत' के युग से आज के युग तक मानवीय मान्यता में कितना परिवर्तन हुआ है। आज के चरित्र में मानवीय गुणों का समावेश अधिक मात्रा में है, और इसकी उपलब्धि यह है कि पराजित होकर राज्य लौटाने से हृदय परिवर्तन अधिक श्रेयस्कर और मानवीय है। ऐसा सात्विक हृदय परिवर्तन आज के संघर्षमय, स्वार्थयुक्त और शोषण-प्रधान विश्व में आलोक की किरण सुरक्षित रखता है। भूमि के छोटे भाग पर विश्व-युद्ध के लिए तत्पर आज के मानव को त्याग के इस आदर्श का सन्देश लोक कल्याण की महती भावना से आपूरित है।

नकुल

कवि सियारामशरण गुप्त का काव्य 'नकुल' 'महाभारत' के वनपर्व के एक लघु प्रासंगिक वृत्त पर आधारित है। वन-निवास के अन्तिम दिनों की एक घटना के प्रारम्भ और अन्त में नकुल का नाम अत्यन्त नाटकीय रूप से सम्बद्ध है। यद्यपि 'नकुल' काव्य में नकुल के जीवन का समस्त वृत्त नहीं है, तथापि कथा के अन्तिम भाग मे नकुल की प्रधानता के कारण इस काव्य का नामकरण 'नकुल' किया गया। 'महाभारत' के कथान्त में नकुल और कथा का चरम उत्कर्ष अनायास ही एक साथ महत्वपूर्ण हो उठते हैं। कवि ने महाभारतीय कथानक को काव्यात्मक कलेवर देकर तथा अन्य काव्योचित सुन्दर प्रसंगों की उद्भावना करके 'नकुल' को नये रूप में प्रस्तुत किया है।

कथा-संग्रहण

'नकुल' मे अरण्यपर्व के अध्याय ३११ के आधार पर पाण्डवों का मृग के पीछे जाने का वृत्त लिया गया है। जब हिरण ब्राह्मण की अरणि मथनिका लेकर भाग गया, तब वह तपस्वी पाण्डवो के पास आया और पाण्डवों ने उसके धर्म की रक्षा के लिए हिरण का पीछा किया। अध्याय ३१२ के आधार पर नकुल का जल के लिए जाना और अन्य पाण्डवों का अचेत होना वर्णित है। अध्याय ३१३ से यक्ष-युधिष्ठिर संवाद के आधार पर मणिभद्र की कथा की संयोजना की है। इस प्रकार 'महाभारत' के कथानक को कवि ने अपनी स्वतन्त्र दृष्टि के अनुरूप ग्रहण करके महत्वपूर्ण परिवर्तन और परिवर्धन किये हैं। 'महाभारत' में वर्णित कथा इस प्रकार है।

पाण्डवो के पास में रहने वाले एक ब्राह्मण की अरणि मथनिका को एक हिरण सींगो में उलझाकर भागा। तपस्वी ब्राह्मण पाण्डवों के पास आया और हिरण को मारने तथा मथनिका छुड़ाने की प्रार्थना की। इसपर सभी पाण्डवों ने हिरण का पीछा किया। हिरण लुप्त हो गया और पाण्डवों ने थककर प्यास का अनुभव किया है। नकुल ने अग्रज की आज्ञा पाकर निकटवर्ती एक तालाब का अनुमान लगाया। उसी को पानी लाने का आदेश हुआ। जब नकुल पानी पीने को तत्पर हुआ तो एक वाणी हुई। रुको! प्रथम प्रश्नों का उत्तर दो फिर पानी पीना! नकुल ने अवहेलना की, परिणामस्वरूप मृत्यु का ग्रास बना—इधर एक के बाद दूसरे को आदेश मिला, उधर वही गति। चारों पाण्डव मृत्यु के ग्रास हुए। अन्ततः युधिष्ठिर आये उन्होंने भाइयो को निर्जीव देखकर किसी षड्यंत्र की कल्पना की। उनसे भी वही प्रश्न हुआ पर उन्होंने सन्तोषजनक उत्तर दिये, फलस्वरूप किसी एक भाई को जीवनदान देने की बात कही गई। युधिष्ठिर ने नकुल का जीवन मांगा। यक्ष ने कहा—प्रिय भीम-सेन और अर्जुन को छोड़कर सोतेले भाई नकुल को क्यों जिलाना चाहते हो? युधिष्ठिर

ने कहा धर्म की प्रतिष्ठा के कारण मेरी दोनों माताएं पुत्रवती रहें अत नकुल को चाहता हूं। इस उत्तर से प्रसन्न होकर यक्ष ने सब को जीवनदान दिया। वह यक्ष स्वयं धर्म था, उसने युधिष्ठिर के धर्म की परीक्षा ली थी।

परिवर्तन-परिवर्धन 'महाभारत' की कथा को गुप्त जी ने अनेक परिवर्तन एवं परिवर्धनों से स्वीकार किया है। यह अत्यन्त स्वाभाविक एवं काव्य की रसमत्ता के हेतु अनिवार्य था। गुप्त जी का उद्देश्य कथा-वाचक की भांति कथा कहना मात्र नहीं था। उन्होंने मुख्य घटना और घटना-सन्धियां मे काव्योचित परिवर्तन किया।

'महाभारत' मे पाचो पाण्डव कुटिया मे होते हैं।[1] 'नकुल' मे युधिष्ठिर ही कुटी मे उपस्थित हैं।[2] शेष चार भाई और द्रौपदी वन-विहार-हेतु गये हुए हैं।[3]

द्रौपदी प्रातःकालीन स्नान करने गई तो वज्रसेन नामक एक व्यक्ति से भेंट हुई। उसने अमृतह्रद पर एक दानव की बात कही। पाण्डवों को आश्चर्य हुआ कि यह दानव कौन ? वे सभी उस ओर चल पड़े।[4]

युधिष्ठिर को मार्ग मे प्यास लगी और वे एक आश्रम मे पहुँचे। वहा मणि-भद्र यक्ष ने उस अमृतह्रद के जल को विषाक्त होने के कारण पीने से मना किया, और इन्द्रपुरी मे अर्जुन-दर्शन का वृत्तान्त भी युधिष्ठिर को सुनाया। 'महाभारत' में हिरण धर्म ही थे 'नकुल' में यक्ष ने बताया कि वह मथनिका सुरक्षित है।[5]

अमृतह्रद को दुर्योधन के गण दुर्वृत्त ने विषाक्त कर दिया। इस सूचना से युधिष्ठिर चिन्तित हुए। वे सरोवर की ओर बढ़े और दुर्वृत्त और वज्रबाहु को मरा पाया तो विशेष चिन्तित होकर सरोवर तक आये। यक्ष उनके साथ ही सरोवर तक आया और युधिष्ठिर को हतप्रभ देखकर अपनी एक अमृत बूंद के द्वारा एक व्यक्ति को जिलाने की बात कही। युधिष्ठिर ने नकुल का जीवन मांगा। यक्ष ने आश्चर्य-चकित होकर युधिष्ठिर को समझाया पर वे न माने। अमृत की बूंद से नकुल जीवित हो उठा पर वह बूंद अक्षय थी अत उसने सबको जीवन-दान दिया।

गुप्त जी ने 'महाभारत' के मूल कथानक मे उक्त परिवर्तन सोद्देश्य किये। यदि वे मूल कथा को यथावत काव्य का आवरण देते तो कवित्व अत्यन्त हीन कोटि का होता। काव्य को अनेक सुन्दर वर्णनों से पुष्ट करने के लिए कवि ने द्रौपदी को पुष्पचयन करने के लिए भेजकर विलम्ब कराया। अर्जुन ढूंढने निकले। एकान्त मे प्रकृति की रम्यस्थली में प्रेम-चर्चा हुई और फिर कुटी में आकर अमृतह्रद देखने, युधिष्ठिर को छोड़कर सभी चल पड़े।

मूल कथा के परिवर्तित स्थलों के हेतु कवि ने अनेक लघु प्रसंगों की उदभावना की। वन पर्व के इस लघु वृत्त का सार है 'त्याग'। त्याग द्वारा मानवता का आदर्श

---

1 म० वन ३१०।११
2 नकुल, पृ० १
3 नकुल, पृ० २
4. नकुल, पृ० ४४
5 नकुल, पृ० २५

प्रतिष्ठित किया गया है। यही इस काव्य का उद्देश्य है। मानवता का रूप "त्याग" में निखरता है। युधिष्ठिर अपने सगे भाई को जीवित कराने का प्रयत्न नहीं करते, अपितु सौतेले भाई को जीवित देखना चाहते हैं···यही त्याग है···इसी त्याग में मानव-आदर्श सुरक्षित है।

कथा-विकास : औचित्य :—गुप्त जी ने महाभारतीय कथा की आत्मा की रक्षा करते हुए, काव्य की कथा का विकास अनेक कल्पनाओं से किया है। कवि ने नकुल को सबसे छोटा माना। यह परिवर्तन अन्य अनेक परिवर्तनों का कारण बना। कवि अरणि मथनिका के प्रसंग को, पाण्डवों की मूर्छा को, जल की विपाक्तता को अक्षुण्ण रखते हुए ही कथा का विकास सूत्र निर्मित करना चाहता था। इसके लिए कवि ने निम्न प्रसंगों की नूतन उद्भावनाएं की।

ह्रद की अनिवार्यता के हेतु अमृतह्रद की कल्पना।

यक्ष की उपस्थिति तथा उसी यक्ष के द्वारा सभी भाइयों का पुनर्जीवन प्राप्त करने की सम्भावना के हेतु, यक्ष के आश्रम की कल्पना, युधिष्ठिर का वहां ठहरना और यक्ष द्वारा इन्द्रलोक मे अर्जुन का वृत्तान्त सुनना।

अमृतह्रद को दुर्योधन के गण द्वारा विपाक्त करना। इसमें कविने 'महाभारत' के संकेत को मूल आधार माना है।

अन्य पाण्डवों का वन-विहार-हेतु जाना और युधिष्ठिर का कुटी में ठहरना इस हेतु अनिवार्य हुआ कि धर्म की परीक्षा वाले अंश को तो यथावत लेना नही था किन्तु युधिष्ठिर की रक्षा आवश्यक थी अतः वह परिवर्तन अत्यन्त स्वाभाविक रूप में किया। सभी भाई वन-विहार हेतु गये। युधिष्ठिर अधिक बड़े होने के कारण ठहरे। पीछे ब्राह्मण आया और कर्तव्य-रक्षा हेतु युधिष्ठिर को जाना पड़ा। मार्ग मे यक्ष मिलन हुआ। यह यक्ष मणिभद्र है, धर्म नही। मणिभद्र अमृतह्रद के विपाक्त होने की सूचना देता है और फिर वही अन्य पाण्डवों को जीवित करता है।

मणिभद्र के प्रश्नों को कवि ने यथार्थ जिज्ञासा के धरातल पर चित्रित किया है। हिरण भी आश्रम का ही है, और उसके द्वारा मथनिका की सुरक्षा करा कर कवि ने सभी प्रसंगों की रक्षा की। इससे 'महाभारत' के किसी भी कथांश को छोड़ना नही पड़ा और काव्य-कथा का स्वतन्त्र रूप से विकास भी हो गया।

'महाभारत' में कथा का रूप परिचयात्मक है, और यक्ष एवं युधिष्ठिर के प्रश्नोत्तरों मे विवेचनात्मक रहा। 'नकुल' की सबसे बड़ी समस्या है, परिचय एवं विवेचनात्मकता का समन्वय। वह न तो कथा को परिचयात्मक रख सकता है, और न केवल विवेचनात्मक इन दोनों की भिन्नता से काव्य-रस की हानि होती है। इस कारण कवि ने कथात्मक सज्जा के साथ कलात्मकता से कथा के स्वरूप का संयोजन किया।

प्रथम सर्ग मे युधिष्ठिर कुटी मे ही हैं—शेष पाण्डव गये हैं। [1]युधिष्ठिर के अकेले होने के कारण ही मार्ग में मणिभद्र की भेंट और मुरलीधर के ध्यान तथा यक्ष की जिज्ञासा के समाधान रूप मे कथा का विकास प्राप्त होता है। 'महाभारत' मे सभी भाई साथ ही हिरण का पीछा करते हैं।[2] यहा पर कवि ने एक प्रसग की अवतारणा संस्मरण के रूप में कराई है। वह इस स्मरण से कथान्तराल शून्य की पूर्ति करता है। युधिष्ठिर वन मे जाते समय चारो ओर प्रकृति की सौन्दर्य छटा देखकर कृष्ण का स्मरण करते हैं। हिरण के प्रसग से उनको गोपियो की मुग्धता स्मरण हो जाती है।

यह प्रसग 'महाभारत' में नहीं है। कृष्ण की वेणु के सम्मोहन स्वर से जड भी चेतन हो गया और फिर अनायास वेणुवादन रुका और चारों ओर शान्ति छा गई।[3] दूसरा स्मरण मणिभद्र द्वारा होता है। इन्द्र के अतिथि रूप मे अर्जुन का वर्णन कितना भव्य है।

> वहा जहा जग रही महोत्सव दीपक माला।
> अन्तस की यह ग्लानि, मगिनी इस जीवन की।
> निराभरणता—छाप दीनता की इस तन की।
> गई न जाने कहा निमिष मे ही भीतर से।[4]
> रिक्तदेश मे यहा पार्थ के दर्शन भर से।

मानव के चरणों से जिस दिन स्वर्ग पवित्र हुआ, स्वर्ग की सौन्दर्य राशि मानव के चरणो का शृगार करने लगी तभी कवि ने मानव की महत्ता को देवत्व से भी ऊंचा पद दिया। तीसरा संस्मरण अर्जुन की कैलास यात्रा है।[5] इस सस्मरण के द्वारा कवि ने प्रत्यक्ष रूप से मानव की महत्ता का और अप्रत्यक्ष रूप से भाग्य की अनिवार्यता की स्थापना की है।

द्रौपदी को पुष्प-चयन हेतु विजन गगा के तट पर भेजना और वहा वज्रसेन का मिलना कथा-विकास का कलात्मक स्थल है। द्रौपदी राजरानी है किन्तु भाग्यवश वनवास मिला। यह स्वाभाविक है कि उसे हस्तिनापुर के राजनिकेतन का वैभव

---

१ सह अनुभूति समेत युधिष्ठिर बोले द्विज से।
बल कौशल मे बडे अनुज ही हैं सब मुझसे।
कृष्णा युत वे विहर रहे हैं वन मे अमलिन।
आज हमारे विजन वास का जो अन्तिम दिन। नकुल, पृ० २

२ ब्राह्मणस्यवच श्रुत्वा सन्तप्तोऽथ युधिष्ठिर।
धनुरादाय कौन्तेय प्राद्रवद् भ्रातृभि सह॥ म० वन० ३११।१५

३ नकुल, पृ० ७

४ नकुल, पृ० २३

५ नकुल, पृ० ५२-५३

स्मरण हो आए। पाण्डवों के साथ रहकर तो उसका अन्तर्मन इतना अधिक क्षुब्ध नहीं हो सकता पर एकान्त में भाग्य की विडम्बना के विषय में विचारना तो मानव की प्रवृत्ति है। नारी होने के कारण कष्ट-कथा अधिक करुण हो गई। द्रौपदी के इस विचार का संकेत 'महाभारत' में नहीं है, तथापि सम्पूर्ण 'महाभारत' में स्थान-स्थान पर द्रौपदी की करुण अभिव्यक्ति 'नकुल' काव्य के इस स्थल का स्रोत है। अनेक स्थलों पर द्रौपदी के अश्रु बहे, अब एकान्त में उसे अपने दुःख, क्लेष और अपमान के सभी स्थल स्मरण हो आये।

कथा-विकास में कवि ने यह स्मरण चित्र रखकर अत्यधिक कलात्मक प्रबन्ध कौशल का परिचय दिया है। यह परिवर्धन 'महाभारत' की द्रौपदी के व्यक्तित्व की छाया है,[1] जिसको अभी तक जीवन में स्थिरता नहीं मिल पाई।[2]

'महाभारत' में प्रसंग को अत्यन्त शीघ्रता में उठाया गया और समाप्त किया है। युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डव अनेक प्रकार के बाणों से हिरण को विद्ध न कर सके। 'महाभारत' में धर्म हिरण बनकर परीक्षा हेतु आये थे। धर्म का हिरण-रूप होना कथा को मानवेतर स्थिति तक पहुँचा देता है। धर्म के दिव्य रूप की स्वीकृति से यह कथा दिव्य बन जाती है। आज का प्रबुद्ध पाठक इस प्रसंग को इस रूप में सम्भवतः स्वीकार न कर सके, अतः उक्त प्रसंग को युगानुरूप परिवर्तित करके 'नकुल' के कवि ने उसे लोक एवं विवेक सम्मत रूप दिया है।

युधिष्ठिर के पूछने पर धर्म उनकी शंका का समाधान करते हैं।

> अरणी सहितं ह्यस्य ब्राह्मणस्य हृतं मया।
> मृग वेषेण कौन्तेय जिज्ञासार्थं तव प्रभो।[3]

इस मानवेतर रूप को गुप्त जी ने अधिक मनोवैज्ञानिक एवं बुद्धि सम्मत बनाकर प्रस्तुत किया है। हिरण धर्म-रूप नहीं अपितु मणिभद्र यक्ष के आश्रम का जीव है, वह अरणि मथनिका लेकर वहीं जाता है। इस तरह ब्राह्मण को उसकी वस्तु मिलती है।

> क्षमा करें, वह मूढ़ हिरण मेरा था, द्विजवर;
> उसने वह जो किया, दाय उसका है मुझ पर।
> रक्षित है हृत वित्त, अभी मुझको जाने दे,
> जिनका परिचय दिया, क्षेम उनका पाने दें।[4]

---

१. नकुल, पृ ३०

२. महाकाल, हे-महाकाल, इस अवनीतल पर,
रहने दोगे क्या न कभी सुस्थिर कुछ पल भर॥ नकुल, पृ० ३२

३. म० वन० ३१४।१३

४. नकुल, पृ० ८१

कवि ने 'महाभारत' की कथा के मानवेतर रूप को अत्यन्त स्वाभाविक मानवीय रूप दिया है। यही उसकी उपलब्धि है और उसकी युग जागरूकता का प्रमाण।

कथा के विकास में अब एक स्थल पर विचार करना है—वह स्थल है यक्ष-युधिष्ठिर संवाद। यह कथा का स्थिर स्थल है किन्तु है महत्वपूर्ण। महाभारतकार की दृष्टि में इस स्थल की महत्ता सामान्य कथा से अधिक रही होगी, इसी हेतु यक्ष एवं युधिष्ठिर का संवाद अधिक विस्तृत हो गया है। ऐसे समय में जबकि सभी प्रिय भाई मृत्यु को प्राप्त हो गये हों, युधिष्ठिर इतने धैर्य से यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देते हैं, मानो कुछ हुआ ही नहीं। 'महाभारत' में यह स्थल अलौकिक है, किन्तु 'नकुल' में यक्ष से बात करते समय युधिष्ठिर के सभी सिद्धान्त वाक्य स्वाभाविक लगते हैं। 'महाभारत' में यक्ष धर्म के विषय में प्रश्न करता है।

किस्विदेकपदं[1] धर्म्यं "धर्म का मुख्य स्थान क्या है?"

युधिष्ठिर उत्तर देते हैं।

दाक्ष्यमेकं पदं धर्म्यं[2]—"धर्म का मुख्य स्थान दक्षता है।"

इस संवाद में कथा का करुण स्थल लुप्त हो जाता है और ऐसा लगता है जैसे धर्म कर्तव्य के विषय में वार्तालाप हो रहा हो। मनोविज्ञान कि दृष्टि से यह स्थल ऊपर से आरोपित लगता है।

यक्ष का एक अन्य प्रश्न है?

कश्चधर्मः परोलोके कश्च धर्मः सदा फलः ?[3]

'लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्य फल वाला धर्म क्या है?'

कथा का यह स्थल दार्शनिक गम्भीरता और विवेचनात्मक शुष्कता लिए हुए है, किन्तु धर्म का जो रूप 'नकुल' के युधिष्ठिर भावना के प्रवाह में देते हैं, उसमें कथा के करुण रूप की रक्षा और युधिष्ठिर की मानसिक स्थिति की वास्तविकता-दोनों का ज्ञान हो जाता है।

> चिर निद्रित हैं अनुज और अग्रज जागृत है,
> यह कैसा अभिशाप, न जाने कौन कुहुन है।
>
> × × ×
>
> छोटे के भी लिए बड़े से बड़ा समर्पण,
> किया जाय जब, तभी धर्म धन का संरक्षण।[4]

सभी अनुजों को मृत्यु के मुख में देखकर आहत हृदय सब प्रकार के त्याग के हेतु प्रस्तुत है। वह अपने प्रेम के ही नहीं, अपितु सभी भाइयों के स्नेह के

---

१. म० वन० ३१३।६६

२ म० वन० ३१३।७०

३ म० वन० ३१३।७५

४ नकुल, पृ० ६३

प्रतीक नकुल को जीवित देखने के इच्छुक है। युधिष्ठिर दया, समता और अनृशंसता की स्थापना और प्रसार चाहते हैं। 'महाभारत' में युधिष्ठिर की उक्ति है—

आनृशंस्यं परोधर्मः परमार्थाच्च मे मतम्।
आनृशंस्यंचिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु।[1]

'नकुल' के कवि ने भी इसी दया और समता की भावना की पूर्ण रक्षा की है। 'नकुल' में यक्ष पूछता है—

इस जगती में क्षुद्र महत का भेद नहीं क्या,
गिने जायं सम विषम एक से सभी कहीं क्या।[2]

इसका कितना सटीक उत्तर युधिष्ठिर देते है :

होगा निश्चय क्षुद्र महत का भेद भुवन में।
सब हैं एक समान परन्तु मरण जीवन में।[3]

युधिष्ठिर एक ओर सामाजिक विषमता की कठोर वास्तविकता को मान लेते है, किन्तु यह आदर्श नही है। वे समानता की यथार्थ रूपरेखा प्रस्तुत करते है, कि मरण एवं जीवन में सभी समान हैं। मानव-जीवन का आदि और अन्त सम है, केवल उसके मध्य का व्यापार विषम है। यह भी जीवन की वास्तविकता है।

'महाभारत' में यधिष्ठिर को वर-प्राप्ति और सभी भाइयों की जीवन-प्राप्ति अलौकिक स्तर पर हुई है, 'नकुल' मे इस मानवेतर रूप को विवेक-सम्मत बनाने का प्रयास किया गया है। 'नकुल' के कवि को अमृत की बूंद का अक्षयत्व तो स्वीकार करना ही पड़ा पर उसकी प्रक्रिया वास्तविक एवं स्वाभाविक रही। इस आधार पर 'महाभारत' में वर्णित इस कथा की आत्मा की रक्षा करते हुए, गुप्त जी ने युग-सम्मत रूप प्रस्तुत किया है।

समी..।

किसी विशिष्ट कथानक के आधार पर काव्य-रचना करने में कवि की विशेष दृष्टि रहती है। यही काव्य-चेतना की मुख्य आधार और प्राण होती है। पैतृक सम्पत्ति को युगधर्मानुकूल उपयोग करने की स्वतन्त्रता प्रत्येक सन्तति को होती है। इसी रूप में काव्य-सामग्री को कवि युगानुरूप किसी सांचे में ढालता है—कवि अपने युग की समस्याओं का पूर्ववर्ती घटनाओं और पात्रों पर आरोप करता है। प्राचीन समय की घटनाएं और पात्र नये हाथ के स्पर्श से नये अर्थों की अभिव्यक्ति करने लगते है।

गुप्तजी ने काव्य के हेतु इस मार्मिक प्रसंग को धर्मनिष्ठ मानकर, यह रचना प्रस्तुत की। नकुल को सबसे छोटा पाण्डव समझ कर उसे छोटों का प्रतिनिधि माना।

---

१. म० भन० ३१३।१२६
२. नकुल, पृ० १०२
३. नकुल, पृ० १०२

इस समस्त घटना के जिस आदर्श ने उन्हें प्रभावित किया, वह आदर्श है छोटों के प्रति अनन्य ममत्व। दूसरे शब्दों में त्याग। युधिष्ठिर ने नकुल के प्रति जिस त्याग भावना का परिचय दिया वह निःसन्देह अनुकरणीय है। कार्य-व्यापार में नकुल का अधिक योग न होते हुए भी, अन्त में कथा उसी की महत्ता से समाप्त होती है। युधिष्ठिर के व्यक्तिगत भाव को कवि लोकव्यापी रूप देता हुआ कहता है—

लेना होगा निखिल क्षेम बन निर्भय हमको,
देना होगा, बड़ा भाग लघु से लघुतम को।
लघु से लघुतम कौन, नहीं यदि हों हम छोटे
वही हमारे लिए बड़े हमसे जो छोटे।[1]

काव्य की समस्त कथा, अनेक वर्णन, इसी मूल भाव पर केन्द्रित कर दिये जाते हैं। अपने से छोटे व्यक्ति के प्रति प्रेम की भावना मानवता के महत्व की स्वीकृति है। आज के युग में अनेक स्वार्थ और संघर्षों के मध्य ऐसी धारणा की घोषणा व्यक्ति के महत्व को बढ़ाकर अनेक भेदों के बीच स्नेह के तन्तुओं को जोड़ती है। महाभारतीय कथा के छोटे से सांकेतिक अर्थ को लेकर गुप्त जी ने युगानुरूप नकुल के व्यक्तित्व की नई व्याख्या की। एक ओर बड़ों के मन में छोटों के प्रति प्रेम की प्रगाढ़ता तो दूसरी ओर छोटे का विश्वास। दोनों ही गौरव का प्रतीक हैं। नकुल का यह कथन 'पीछे आकर नहीं किसी विधि से मैं वंचित' बड़ों के प्रति अटूट आस्था का परिचायक है। महाभारत-काल में आकर यद्यपि आदर्श की नयी व्याख्या के साथ जीवन मूल्यों की नई स्थापना अवश्य हुई, किन्तु भ्रातृभाव का उत्कृष्ट रूप अक्षुण्ण रहा। दुर्योधन और युधिष्ठिर में शत्रुता रही पर इसके साथ ही दुःशासन के भ्रातृ-स्नेह और इसके अतिरिक्त अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव का अग्रज के प्रति विश्वास भी आदर्श का ही एक रूप है। दुर्योधन ने धर्म की अवहेलना की अतः वह सहानुभूति का पात्र न बन सका। पाण्डवों का पक्ष धर्म-सम्मत रहा इस कारण उन्होंने अधिक सुदृढ़ लोक-धर्माचार की स्थापना की। कवि ने अशुभ, अनीप्सित को त्याग कर शुभ और अभीष्ट को ग्रहण किया। उसकी मूल दृष्टि घटना के काव्योचित निर्वाह की ओर रही। काव्य को अन्ततः 'नकुल' रूप देने के लिए कवि ने अनेक कथान्तरालों का निर्माण किया। अर्जुन और द्रौपदी की अनुपस्थिति में भाइयों की चर्चा का विषय नकुल रहा। वात्सल्य का परिपाक हुआ। नकुल ने अनेक उक्तियां कहीं। माता का ध्यान किया। कहने का तात्पर्य यह है कि नकुल सम्पूर्ण कथा में प्रमुख बना रहा।

प्रासंगिक वृत्तों पर आधारित प्रबन्ध काव्य

जयद्रथवध

कथा-संग्रहण 'जयद्रथ-वध' खण्डकाव्य गुप्त जी द्वारा 'महाभारत' के द्रोण-

---

1 नकुल, पृ० ६५

पर्वान्तर्गत अभिमन्यु-वध एवं जयद्रथ-वध की घटना के आधार पर लिखा गया है। गुप्त जी ने इस काव्य में 'महाभारत' की कथा को यथावत स्वीकार किया है। जयद्रथ-वध की घटना के पूर्व रूप में, अभिमन्यु का वध, कौरव पक्षीय नृशंसता का परिचायक था। इसमें अभिमन्यु के शौर्य का उत्कर्ष हुआ। इसके उपरान्त पुत्र-वध-शोक के प्रतिशोध हेतु अर्जुन ने जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की, और दैवीय शक्ति की सहायता से यह प्रतिज्ञा पूर्ण की। गुप्त जी ने प्रस्तुत काव्य की कथा को द्रोण पर्व के तीन उपपर्वो से ग्रहण किया है। इन उपपर्वों मे आये अनेक चरित्र-आख्यान और लघु वृत्तों को छोड़कर कवि मुख्य रूप से युद्ध की घटना पर केन्द्रित रहा है। अभिमन्यु के चरित्र को वीरत्व के आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अभिमन्यु-वध पर्व : कवि ने प्रथम सर्ग की कथा का संयोजन अभिमन्यु-वध पर्व के पैंतीस, छत्तीस, सैंतीस और उनचासवें अध्याय के आधार पर किया है। यद्यपि युद्ध-चित्रण में समस्त पर्व की संक्षिप्त कथा आ गई है किन्तु प्रमुख रूप से उक्त अध्यायों की कथा को लिया गया है। इसमे अभिमन्यु की वीरता, युद्ध और मृत्यु का चित्रण किया गया है।

प्रतिज्ञा पर्व : प्रतिज्ञा पर्व के बहत्तर और तिहत्तरवें अध्याय की कथा द्वितीय सर्ग में वर्णित हुई है। इस सर्ग में कथा की विस्तृति कम और शोक की अभिव्यंजना अधिक हुई है। पाण्डव युद्ध से विरत होने लगे, किन्तु कृष्ण ने उन्हें समझाया और पुनः वीरत्व की ओर सचेष्ट किया। कवि ने उत्तरा और सुभद्रा के विलाप द्वारा करुण रस की सृष्टि की है।

प्रतिज्ञा पर्व के अठहत्तरवें अध्याय के आधार पर कवि ने तृतीय सर्ग की कथा का संयोजन किया है। अभिमन्यु का दाह संस्कार कथा की स्वाभाविक परिणति के आधार पर हुआ विलाप की अभिव्यंजना कथा की गत्वरता के उपकरण रूप में चित्रित हुई।

प्रतिज्ञा पर्व के उन्हत्तर, अस्सी और इक्यासीवें अध्यायों का संक्षेप चौथे सर्ग में वर्णित है। शंकर से पाशुपतास्त्र की प्राप्ति इस अध्याय का प्रतिपाद्य है। यह अतिमानवीय रूप में ही चित्रित हुआ है। इस कथा खण्ड को कवि ने 'महाभारत' की मूल भावना के अनुसार 'दिव्य' ही रहने दिया और बुद्धि-सम्मत परिवर्तन का प्रयत्न नहीं किया। इस सर्ग के कथा भाग की अलौकिकता को कवि अपनी सम्पूर्ण आस्था से स्वीकार करता है जिससे उनकी प्राचीन वस्तु के प्रति परम्परावादी प्रवृत्ति परिलक्षित हुई है।

जयद्रथ-वध पर्व : प्रस्तुत खण्डकाव्य की मूल कथावस्तु का चयन इस पर्व से किया है। समस्त पर्व का संक्षेप पंचम सर्ग के युद्ध-चित्रण में किया गया है। 'महाभारत' में वर्णित भीषण युद्ध कवि के अपने शब्दों में इस सर्ग में अवतरित हुआ है। जयद्रथ का अपने को सूर्यास्त तक छिपाना, और वीरों का परस्पर संकुल युद्ध, दुर्योधन द्वारा गुरु की व्याज से निन्दा आदि प्रसंग क्रम विपर्यय से इस पर्व के

तिरानवे, चौरानवे, छियानवे अध्यायों के आधार पर प्रस्तुत हैं। यहाँ भी कवि ने कथा की अलौकिकता को यथावत स्वीकार किया है।

अध्याय १४३-१४६ के आधार पर षष्ठ सर्ग की कथा का चयन किया गया है। इस सर्ग में जयद्रथ की घटना प्रमुख है और अर्जुन द्वारा भूरिश्रवा के प्रसंग में शौर्य-आख्यान तथा चितारोहण की तैयारी, कथा के प्रमुख स्थल है।

अध्याय एक सौ उनचास की कथा का संक्षेप सप्तम सर्ग में हुआ है। इसमें कवि ने कौरव-पक्षीय विषाद को चित्रित न करके कथा के नायक और उसके पक्ष के हर्ष को चित्रित किया है। वैष्णव परम्परा के आधार पर कृष्ण परब्रह्म माने गये हैं।

प्रस्तुत खण्डकाव्य की कथा 'महाभारत' के कथा रूप के साथ सम्बद्ध है। कवि ने सामाजिक और जीवन-सम्बन्धी दृष्टि से कथा में कतिपय परिवर्तन किये हैं। ये परिवर्तन मूल कथा के किसी विशिष्ट अंश में न होकर विस्तृत चित्रण के रूप में ही देखे जा सकते हैं।

परिवर्तन-परिवर्धन अभिमन्यु-वध प्रस्तुत कथा के निम्न प्रसंग 'जयद्रथ वध' में नहीं है। उनको विस्तार-भय से छोड़ दिया गया है।

अभिमन्यु द्वारा अश्मक पुत्र का वध, शल्य का मूर्छित होना, अभिमन्यु द्वारा शल्यपुत्र एवं वृहद्बलक-वध, मगधराज के पुत्र अश्वकेतु का वध। अभिमन्यु-वध का वृत्तान्त कवि ने सत्वर शैली से कहा है। निम्न प्रसंगों को परिवर्तित रूप में उपस्थित किया गया है।

'महाभारत' में युधिष्ठिर अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेदन का कार्य सौंपते हैं, किन्तु 'जयद्रथ वध' में वह स्वयं व्यूह भेदन की इच्छा प्रकट करता है।[1]

'महाभारत' में उत्तरा से युद्ध-पूर्व मिलन की चर्चा नहीं है, किन्तु कवि ने इस मिलन का और उत्तरा की प्रार्थना का विस्तृत वर्णन किया है।[2]

'अभिमन्यु-वध' का शेष वृत्त, युद्ध-चित्रण 'महाभारत' के युद्धों का संक्षिप्त रूप है, कवि ने विवरणात्मक शैली में अभिमन्यु के शौर्य की पर्याप्त अभिव्यंजना की है।

पाण्डव-विलाप कवि ने इस प्रसंग को 'महाभारत' से यथावत ग्रहण किया है। पाण्डवों के विलाप की व्यंजना करते हुए वह करुणा में निमग्न हो गया है और कथा को कोई अन्य समुचित रूपरेखा नहीं दे पाया।

यथावत स्वीकार किए गए प्रसंग हैं, युधिष्ठिर को व्यास जी की सान्त्वना,[3] युधिष्ठिर विलाप,[4] अर्जुन को अपशकुनों का दिखाई देना।[5]

---

१ म० द्रोण० ३५।१२-१६, जयद्रथ-वध, पृ० ६-७

२ जयद्रथ-वध, पृ० ६-१०

३ म० द्रोण० ७१।१३-१६, जयद्रथ वध, पृ० ३

४. म० द्रोण० अध्याय ५१, जयद्रथ वध, पृ० २६-२६

५ म० द्रोण० ७२।५-६, जयद्रथ वध, पृ० ३१

उक्त प्रसंगों को कवि ने सांकेतिक रूप से चित्रित किया है। युधिष्ठिर के विलाप को विस्तार दिया गया है।

उत्तरा का विस्तृत विलाप और जयद्रथ द्वारा मृत अभिमन्यु के सिर पर पदाघात, इन प्रसंगों से कवि ने कथा की मार्मिकता की रक्षा की है। ये प्रसंग 'महाभारत' के विस्तृत उद्देश्य में न आ सकने के कारण उपेक्षित नहीं समझे गये और सम्भावना के आधार पर इनका विस्तार किया गया।

अभिमन्यु का दाह-संस्कार, जीवन-नीति का संकेत, आदि का स्वतंत्र आख्यान हुआ है। इसका प्रमुख कारण है कि अभिमन्यु प्रमुख पात्र है और उसके दाह-संस्कार के दृश्य से कवि करुणा प्रेरित वीरत्व के उत्कर्ष को अभिव्यंजित करना चाहता है अतः 'महाभारत' में न होते हुए भी कवि ने इस प्रसंग को स्थान दिया है।

पार्थ की जयद्रथ-वध-प्रतिज्ञा[1], पूर्ण न होने पर स्वयं जलने का प्रण[2], कौरवों को अर्जुन की प्रतिज्ञा का चरों द्वारा ज्ञान[3], जयद्रथ का व्याकुल होकर दुर्योधन के पास जाना और दुर्योधन की उसको सान्त्वना[4] आदि प्रसंग 'महाभारत' के अनुसार हैं।

इन प्रसंगों को कवि ने अत्यन्त संक्षेप में ग्रहण किया है, अतः सामूहिक वीरत्व की अभिव्यक्ति और करुणा का प्रसार हो पाया है पर चारित्रिक शील की वैयक्तिक अभिव्यक्ति नहीं हो पाई।

पाशुपतास्त्र की प्राप्ति : यह प्रसंग अतिप्राकृत घटना के रूप में चित्रित है। 'महाभारत' में इसका इस रूप में होना स्वाभाविक है किन्तु गुप्त जी ने इसका कोई बुद्धि-सम्मत समाधान नहीं किया है। समग्र कथा को मूल रूप में स्वीकार किया गया है और उसकी अलौकिकता की सुरक्षा की गई है यद्यपि उसके स्वरूप में परिवर्तन कर दिया है।

परिवर्तन-परिवर्धन : 'महाभारत' के निम्न प्रसंग कवि ने ग्रहण नहीं किए : अर्जुन द्वारा शंकर का पूजन[5], कृष्ण और दारुक का वार्तालाप[6], सैनिकों के द्वारा अर्जुन के प्रण की पूर्णता की चिन्ता।[7]

निम्न प्रसंगों में परिवर्तन किया है। इस परिवर्तन से प्रसंग की मूल भावना

---

१. म० द्रोण० ७३।२०-२१, जयद्रथ वध, पृ० ३६
२. म० द्रोण० ७३।३६-४७, जयद्रथ वध, पृ० ३६
३. म० द्रोण० ७४।१, जयद्रथ वध, पृ० ४०
४. म० द्रोण० ७४।१४-१६, जयद्रथ वध, पृ० ४१
५. म० द्रोण० ७६।१-३
६. म० द्रोण० ७६।२१-४१
७. म० द्रोण० ७६।११-१२

मे कोई अन्तर नहीं आ पाया।

'महाभारत' मे कृष्ण अर्जुन के स्वप्न में आते हैं, 'जयद्रथ वध' में कृष्ण योग माया का आश्रय लेते हैं।[1] 'महाभारत' मे स्वप्न मे शकर के चिन्तन के लिए कृष्ण ने अर्जुन से कहा और बाद मे वे उनको शिव के पास ले गये किन्तु 'जयद्रथ-वध' में अर्जुन कृष्ण के साथ जाते हैं और ध्यानावस्थित हो अभिमन्यु को देखते हैं।[2] 'महाभारत' में कृष्ण गुरुपुत्र की चर्चा नहीं करते पर 'जयद्रथ वध' मे इसका सकेत मात्र किया गया है।[3]

इन प्रसगो की विवेचना से यह तथ्य सामने आता है कि कवि ने प्रवाह मे आकर अल्प मात्रा मे परिवर्तन किया है। 'महाभारत' मे सम्पूर्ण घटना स्वप्न मे होती है और काव्य मे भी उसी रूप मे चित्रित की गई है। प्रात जागने पर युधिष्ठिर द्वारा कुशल क्षेम पूछने की बात को उसी रूप मे स्वीकार किया गया है।

युद्ध-चित्रण दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रतिज्ञाबद्ध अर्जुन और रक्षा मे दृढ कौरव पक्ष एक दूसरे से जूझ पडे। कवि ने भीषण सग्राम का चित्रण जयद्रथ-वध पर्व के युद्ध चित्रण के आधार पर किया है। अर्जुन की भयकरता का तद्वत् चित्रण हुआ है।

प्रारम्भ मे अर्जुन द्वारा दुर्मर्षण-गज-सेना का सहार[4], अर्जुन से त्रस्त होकर दुःशासन का पलायन[5] आदि प्रसग छोड दिए हैं।

यथावत स्वीकृत प्रसग अर्जुन का द्रोण को छोडकर आगे बढना[6], श्रुतायुद्ध का अपनी गदा से सहार[7], द्रोण द्वारा दुर्योधन को दिव्य कवच देना[8], युधिष्ठिर की चिन्ता और सात्यकि को भेजना[9], भीम द्वारा द्रोण से युद्ध और कर्ण से परास्त होना।[10]

कवि द्वारा चित्रित इन प्रसग की विशेषता है युद्ध चित्रण। अत्यन्त ओज-मयी भाषा मे कवि ने भयकर युद्ध का वर्णन किया है। भीम का युद्धोन्माद भी

---

१ म० द्रोण० ८०।४-५, जयद्रथ वध, पृ० ४८
२. म० द्रोण० ८०।२०-२१-२३, जयद्रथ वध, पृ० ४६
३ जयद्रथवध, पृ० ५४
४ म० द्रोण० अध्याय ८६
५ म० द्रोण० अध्याय ६२
६ म० द्रोण० ६१।३२, जयद्रथ वध पृ० ६२
७ म० द्रोण० ६२।५४, जयद्रथ वध, पृ० ६५
८ म० द्रोण० ६४।३५, जयद्रथ वध, पृ० ७०
६ म० द्रोण० १०६, जयद्रथ वध, पृ० ७१-७२
१० म० द्रोण० १२८, १३८, जयद्रथ वध, पृ० ७५-७६

दिखाया है। इस चित्रण में कवि की सहानुभूति पाण्डव पक्ष की ओर ही रही और 'महाभारत' के सत्य की समुचित अभिव्यक्ति की गई।

जयद्रथ वध : जयद्रथ के वध के पूर्व सात्यकि और भूरिश्रवा के युद्ध में अर्जुन सात्यकि की रक्षा करता है। इस प्रसंग में कवि ने 'महाभारत' मे प्रस्तुत कथांश को यथावत नही लिया है।

'महाभारत' में अर्जुन कृष्ण के कहने से यदुवंशी वीर सात्यकि की प्राण-रक्षा करते हैं। कवि ने इस प्रसग मे कृष्ण को नही लिया।[1] 'महाभारत' में अर्जुन केवल भूरिश्रवा को उत्तर देते हैं किन्तु 'जयद्रथ वध' में वे सभी को उत्तर देते हुए युद्ध धर्म की स्थिति स्पष्ट करते हैं।[2] 'महाभारत' मे कृष्ण इस रूप में सूर्यास्त दिखाते है कि वह केवल जयद्रथ को दिखाई दे। जयद्रथ बार-बार सूर्य की ओर देखता है। पर 'जयद्रथ वध' में सभी सूर्यास्त देखते है।[3] 'महाभारत' मे अर्जुन का विलाप नही है किन्तु कवि ने अर्जुन का विलाप दिखाया है।[4]

सूर्यास्त की अतिप्राकृत घटना का चित्रण 'महाभारत' में संकेत रूप से है और उससे युद्ध विराम नहीं होता, किन्तु कवि ने युद्ध विराम की स्थिति दिखाई है। इस प्रसंग से अर्जुन की प्रण-पालन-शक्ति की अभिव्यंजना हुई है। 'महाभारत' में इस स्थिति पर कुछ विचार नही किया गया कि यदि अर्जुन पूर्व प्रण का पालन नहीं कर सकते तो अपर विषय में कैसे हो सकता है? कवि ने इस प्रसंग को अर्जुन की प्रणनिष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए समुचित जाना और भावपूर्ण चित्रण किया। जयद्रथ का सिर कटकर उसके पिता की गोद में गिरा। यह वर्णन अत्यन्त औत्सुक्य पूर्ण और भाव वेष्टित है।

विजयोल्लास : जयद्रथ वध के उपरान्त पाण्डव पक्ष का द्विगुणित उल्लास अभिव्यक्त हुआ। एक तो प्रमुख वीर का वध हुआ, और पार्थ का प्रण पूर्ण हुआ। कवि ने अन्तिम सर्ग में पाण्डव पक्षीय हर्ष की सुन्दर अभिव्यंजना की है। इस प्रसंग में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय है।

'महाभारत' में अर्जुन युद्ध भूमि को देखते समस्त श्रेय कृष्ण को देते हैं। उसी में कवि ने अर्जुन द्वारा केशव की अलौकिकता का चित्रण कराया है। कवि एक भक्त के रूप मे कृष्ण की भक्ति का आख्यान करता है और परब्रह्म रूप में कृष्ण को चित्रित करता हुआ आराधना करता है। युधिष्ठिर भी कृष्ण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं और समस्त श्रेय अर्जुन की तरह कृष्ण को ही देते हैं। इस प्रसंग में कवि ने परम्परागत मान्यताओं की अभिव्यक्ति की है।

---

१. म० द्रोण० १५२।७०-७३, जयद्रथ वध, पृ० ७७
२. म० द्रोण० अध्याय १४३, जयद्रथ वध, पृ० ७८
३. म० द्रोण० १४४।६४-६६
४. जयद्रथ वध, पृ० ८३

'जयद्रथ वध' उस समय लिखा गया था जब महाभारतीय प्रबन्ध काव्यों में विशेष रूप से बुद्धिवादी परिवर्तन की परम्परा प्रारम्भ नहीं हुई थी। अतः इस खण्डकाव्य में 'महाभारत' की कथा का पुनराख्यान है। कृष्ण के ईश्वरत्व के प्रति कवि की वैष्णवी भावना निष्ठा से व्यक्त है। इस काव्य की जीवन दृष्टि व्यक्ति को कर्त्तव्य-निष्ठ, प्रण-पालक, ईश्वर-विश्वासी होने का संदेश देती है।

नहुष

'महाभारत' में वर्णित स्वतन्त्र उपाख्यानों में नहुष का उपाख्यान उद्योग पर्व के अन्तर्गत है। नहुष के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना स्वर्ग की अध्यक्षता और वहाँ से उसका पतन है। इस घटना ने कवि को प्रभावित किया। गुप्त जी ने स्वयं भूमिका में उल्लेख किया है 'व्यास देव के द्वारा वर्णित इस आख्यान में स्पष्ट दिखाई दिया कि मनुष्य बार-बार ऊँचे-ऊँचे उठने का प्रयत्न करता है और मानवीय दुर्बलताएं बार-बार उसे नीचे ले आती हैं। मनुष्य को उन पर विजय पानी ही होगी। इसके लिए उसे साहसपूर्वक फिर उठ खड़ा होना होगा। तब तक, जब तक वह पूर्णता प्राप्त न कर लेगा—'[1] कवि के इस कथन से स्पष्ट है कि 'नहुष' रचना का आधार व्यक्ति का पुरुषार्थ है। वह इस कथा के माध्यम से व्यक्ति की मानसिक दुर्बलता का अध्ययन करता है और उन्नति के हेतु अनथक प्रयास की स्थापना पर बल देता है।

कथा संग्रहण उद्योग पर्व में यह कथानक ९वें अध्याय से १८वें अध्याय तक आया है। कवि ने ९वें और १०वें अध्याय की कथा पूर्वाभास में स्पष्ट करके ग्यारहवें अध्याय की कथा से काव्य की सृष्टि की है।

'नहुष' की कथा का विकास कवि ने नये रूप में किया है। 'महाभारत' में ऋषियों की प्रार्थना के उपरान्त अपनी असमर्थता प्रकट करके भी देवों के अनुरोध से नहुष इन्द्र पद स्वीकार करते हैं। काम भोगों में लिप्त एक दिन शची की उपस्थिति की आज्ञा देते हैं। 'नहुष' में कवि ने शची के मन में अज्ञात आशंका का चित्रण करके कथा को सुन्दर मोड़ दिया है।[2]

विस्तार भय से 'नहुष' में त्रिसिरा-वध, वृत्त वध, इन्द्र का ब्रह्म हत्या के भय से जल में छिपने के प्रसंगों का उल्लेख नहीं किया गया।

'महाभारत' में नहुष के स्वर्ग-विहार का संकेत मात्र है,[3] काव्य ग्रन्थ में उर्वशी के साथ विस्तृत विहार[4] के चित्रण के साथ सम्भावना के आधार पर स्वर्ग भोग की योजना की गई है। कथा का यह विकास रसात्मकता की दृष्टि से अपेक्षित

१ नहुष, निवेदन, पृ० ४
२ म० उद्योग० ११।९-१८, नहुष, पृ० २०
३ म० उद्योग० ११।११-१६
४ नहुष, पृ० ३७

है। इसमें अनेक मानवीय भावनाओं का चित्रण हो पाया है।

'महाभारत' में शची को बुलाने के हेतु नहुष का स्वर आज्ञावाचक है[1] 'नहुष' में प्रार्थना परक। वह शची की उपेक्षा को अपराध मान कर 'नहुष' में उससे प्रणय-निवेदन करता है, किन्तु अस्वीकृति की स्थिति में इस प्रश्न को सम्मान का प्रश्न बनाकर आज्ञा देता है।

'महाभारत' में इन्द्राणी कुछ समय की अवधि लेकर, इन्द्र की आज्ञा से ऋषियों के वाहन पर आने की स्वीकृति देती है। 'नहुष' में वह देवताओं की सभा में ही यह निर्णय ले लेती है।[2]

दोनों ग्रन्थों में नहुष के पतन की घटना समान रूप से चित्रित है।

इस प्रसंग में कवि की तीन नवीन उद्भावनाएं हैं। इनके द्वारा ही वह इस कथा में अपना सन्देश देना चाहता है।

प्रथम उद्भावना शची के आन्तरिक आशंका की है। इससे कवि ने स्त्री के स्वाभाविक कोमल और भीरु रूप का चित्रण करके उसकी दृढ़ता का प्रदर्शन किया है। कवि का मत है कि शक्ति से न सही युक्ति से ही स्त्री अपने सतीत्व की रक्षा कर सकती है। शची अपने युक्ति-बल से अपने को आश्वस्त करती रही और अन्त में युक्ति से काय-सिद्धि हुई।

द्वितीय उद्भावना नहुष के इन्द्रत्व के समय नारद की उपस्थिति है। इसमें कवि ने नारद-नहुष वार्तालाप में मानव की कर्मशक्ति की महत्ता स्थापित की है। मनुष्य कर्म-शक्ति के कारण देवता से भी महान् है। यहीं पर कवि मानव की दुर्बलताओं का चित्रण करता है। उसके विचार में अधिक समृद्धि प्रमाद का कारण बन कर मानव को धर्मच्युत कर देती है। अधिक और अनियंत्रित कामभावना से मानव अवनति की ओर जाता है अतः नारद मानव के गुणों को स्वीकार करते हुए भी आन्तरिक असुरों से बचने का संदेश देते हैं। नारद के सन्देश में कवि का मानव-जाति को सन्देश है।

तृतीय उद्भावना उर्वशी और नहुष के संवाद रूप में की गई है। नहुष धरती पर जल-वृष्टि और स्वर्ण-वृष्टि का आदेश देना चाहता है। उर्वशी यह कहकर रोकती है कि अनायास ही सब कुछ पाकर मानव प्रमादी बन जायेगा। अभाव-ग्रस्त धरा की सम्पन्नता से मानव अकर्मण्य हो जायगा।[3] जीवन में संयम और आदर्श मान-

---

१. म० उद्योग० ११।१७-१८, नहुष, पृ ४८

२. म० उद्योग० ११।७, नहुष, पृ० ५६

३. पायेंगे प्रयास बिना लोग खाने-पीने को,
   फिर क्यों बहायेंगे वे श्रम के पसीने को,
   होंगे अकर्मण्य, उन्हें क्या-क्या नहीं सूझेगा,
   कोई कुछ मानेगा, न जानेगा न बूझेगा। नहुष, पृ० ३३

वता के मुख्य गुण अति समृद्धि से नष्ट हो जायेंगे।

सारांश रूप मे कहा जा सकता है कि नहुष का स्वर्ग का राजा बनना मानव के दैवीय गुणो के आधार पर उन्नति का प्रतीक है और पतन मानसिक दुर्बलताओं के द्वारा पथभ्रष्ट होने की स्थिति। मानव को अपनी दुर्बलता पर विजय पानी चाहिए, तभी वह अपने श्रम का आनन्द उठा सकेगा।

कौन्तेय-कथा

प्रासंगिक वृत्तो पर आधारित काव्यो मे उदयशकर भट्ट का 'कौन्तेय-कथा' प्रमुख काव्य है। प्रस्तुत काव्य मे लेखक ने वनपर्व के अर्जुन और किरातवेषधारी शिव के युद्ध को प्रमुख आधार स्वीकार किया है। 'कौन्तेय-कथा' शीर्षक से यह काव्य पात्र प्रधान मालूम पडता है, किन्तु काव्य-कथा का विकास घटना को लेकर हुआ है।

कथा सग्रहण वनपर्व के अध्याय ३-७३६ के आधार पर इस आख्यान का प्रारम्भिक रूप स्थापित है। हिमालय शीर्षकान्तर्गत की कथा कवि की मौलिक सूझ है और अध्याय ३६ के अनुरूप कष्ट-कथा का आयोजन किया गया है। अध्याय ३७ का सक्षेप तप शीर्षक मे किया है। दिशा दृष्टि का आधार भी ३७वा अध्याय है।

अध्याय ३८-३६-४० का सक्षेप वर-प्राप्ति शीर्षक में किया गया है। इस रूप मे यह खण्ड काव्य 'महाभारत' के लघु वृत्त पर आधारित है। मूल ग्रथ मे कथा-विकास इस प्रकार है।

द्वैत वन मे एक बार व्यास जी पाण्डवो के पास आये और युधिष्ठिर के भय को दूर करने के हेतु उनको प्रतिस्मृति विद्या का ज्ञान कराया तथा यह विद्या अर्जुन को प्रदान करने के लिए कहा। व्यास जी के सकेत से अर्जुन इन्द्र कील पर्वत पर इन्द्र की आराधना करते हैं। इन्द्र के परामर्श से शिव की स्तुति करते हैं। शिव परीक्षार्थ किरात के वेष मे युद्ध करके अर्जुन को पशुपतास्त्र दे देते है।

परिवर्तन परिवर्धन महाभारतीय कथा-विकास की पृष्ठ-भूमि मे कवि हिमालय का चित्रण करता है। हिमालय भारतीय सांस्कृतिक सघर्ष के इतिहास का वह स्थल है जहा अनेक सस्कृतियो का सघर्ष एव समन्वय हुआ। शिव इस समन्वय के महान् प्रेरक, और समन्वित सस्कृति का नाम शिव सस्कृति था। शिव सस्कृति के कारण दानवो, देवो एव मानवो मे समानता का प्रसार हुआ। अर्जुन ऐसे शिव से वर प्राप्ति के लिए आते है।

इसके बाद 'महाभारत' की कथा प्रारम्भ होती है। 'महाभारत' मे सभी भाई एक साथ बैठकर युद्ध, दया, क्षमा आदि विषयो पर वार्तालाप करते हैं। भीम-

द्रौपदी पुरुषार्थ के समर्थक हैं तथा युधिष्ठिर क्षमा के महत्व का प्रतिपादन करते हैं, 'कौन्तेय कथा' मे यह विवेचना धर्मराज की अनुपस्थिति में होती है। वार्तालाप के मध्य धर्मराज व्यास जी का सन्देश लाते है।[1] 'महाभारत' मे इन्द्र तपस्वी के वेष मे मार्ग मे अर्जुन को मिलते है एवं वरदान देने को कहते है पर अर्जुन की इच्छा के अनुसार शिव के दर्शन के लिए आदेश देते है। 'कौन्तेय कथा' में तपस्या के उपरान्त इन्द्र के दर्शन होते है।[2] 'महाभारत' मे इन्द्र अर्जुन का वार्तालाप सक्षिप्त है कवि ने उसे विस्तार से चित्रित किया है। 'महाभारत' में अर्जुन मिट्टी की प्रतिमा की पुष्पमाला किरात के गले मे देखकर शिव को पहचानते है 'कौन्तेयकथा' में उनकी शक्ति देखकर ही किरात के शिव होने का भ्रम होता है।[3]

समीक्षा . हिमालय को शिव-संस्कृति तथा अन्य संस्कृतियों के उद्‌गम स्थल के रूप में मानना कवि की परम्परावादी दृष्टि है। भारतीय साहित्य में हिमालय का महान आदर है। वह निश्चित ही प्रथम सृष्टि-स्थल और कैलाश के रूप मे मान्य है। यद्यपि यह विचार कवि ने नवीन रूप से प्रस्तुत किया है किन्तु इसका आधार प्राचीन साहित्य ही है।

इस काव्य मे भट्ट जी की मुख्य स्थापना शक्ति-संचय की रही है। धर्म, क्षमा, दया सहज मानवीय गुण है किन्तु आततायियों का सामना इनसे नही होता। उनके हेतु शक्ति-संचय ही आवश्यक है। द्रौपदी, भीम, अर्जुन के मानसिक क्षोभ में दया-धर्म की प्रतिकूलता का नही, अपितु शक्ति की तद्‌विषयक आवश्यकता पर भी उसे न मानने के विरोध मे ग्लानि का चित्रण किया गया है। कवि वीर भोग्या वसुन्धरा के सिद्धान्त में विश्वास रखता है और इस विश्वास की सशक्त अभिव्यक्ति करता है।

> वीर ही तो भोगते वसुन्धरा स्ववीर्य से
> अवीर्य नर कीट सम मरते जनमते।[4]

कवि धर्म, पुरुषार्थ, शक्ति और क्षमा के सैद्धान्तिक व्यावहारिक विवाद के स्थान पर केवल स्थिति परक मानसिक क्षोभ को व्यंजना करना चाहता है, अतः धर्मराज की अनुपस्थिति अनिवार्य समझी गई। धर्मराज के अभाव में सभी भाई अपने-अपने क्षोभ की उन्मुक्त अभिव्यक्ति कर सकते है।

तप और दिशा-दृष्टि के परिवर्तन सोद्देश्य किए गए है। 'महाभारत' में मार्ग में इन्द्र के मिलने और अर्जुन से शिव की आराधना के लिए कहने में अलौकिक स्पर्श हो जाता है। जबकि कवि अति प्राकृत तत्व को यथासम्भव बुद्धि-सम्मत बनाना चाहता है। इन्द्र शक्ति का प्रतीक है, और शिवसिद्धि का, अर्जुन तप में साधना

---

१. म० वन० अध्याय ३२-३५ कौन्तेयकथा, पृ० ३०
२. म० वन० ३७।४६ कौन्तेयकथा, पृ० ३५
३. म० वन० ३६।६७-६८ कौन्तेय कथा, पृ० ७८
४. कौन्तेयकथा, पृ० २८

करते हैं, साधना से सिद्धि प्राप्त होती है और कार्य सफल होता है।

तप के उपरान्त अर्जुन एवं इन्द्र की वार्ता में पाण्डवों का दुःख व्यंजित हुआ है। 'महाभारत' में ये सर्वथा दिव्य शक्ति सम्पन्न पात्र हैं, कवि ने मानवीय दुर्बलता क्षोभ, आशा-निराशा से युक्त उपस्थित करके, उन्हें यथासम्भव मानवीय पात्रों की श्रेणी में रखने का प्रयास किया है। काव्य में दुःख की व्यापक अभिव्यक्ति का यही कारण है। अर्जुन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन 'महाभारत' के आधार पर ही हुआ है। इन्द्र के शब्दों में अर्जुन की शक्ति का विश्वास नायक के दृढ रूप को व्यंजित करता है। यहा कवि सत्व, रज, तम, तथा जीवन की अनेक शक्तियों के सन्तुलित आकर पुरुष की महत्ता व्यक्त करता है। केवल धर्मात्मा उपासना का आधार है। केवल शक्तिशाली उद्दण्ड है। केवल सौन्दर्य भी त्याज्य है—अत शत्रु पर विजय पाने के लिए गुण, कर्म, नीति, धर्म और शक्ति का यथासम्भव समन्वय आवश्यक है।

कथा का अन्तिम परिवर्तन आत्म-शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करता है। साधना की पूर्ति के साथ व्यक्ति की चेतना में स्वाभाविक आभा आती है। अर्जुन तप की पूर्ति के साथ चारों ओर आलोक देखता है और युद्ध के उपरान्त वर प्राप्ति होती है।

'महाभारत' में इस कथांश का उद्देश्य अर्जुन का पाशुपतास्त्र प्राप्त करना है। महादेव ने धर्म तथा न्याय की रक्षा-सृष्टि की अक्षुण्णता बनाये रखने के लिए अर्जुन को पाशुपत अस्त्र दिया। अर्जुन ने इस अस्त्र से अन्याय के समर्थकों का सहार किया और धर्म की रक्षा की। कवि आज के जीवन के सदर्भ में भी शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करता है। प्रस्तुत कथा के आधार पर उसकी जीवन-दृष्टि की व्याख्या इस प्रकार हो सकती है।

जीवन का सात्विक रूप है 'धर्म' और घृणित रूप है 'सहार' तथा 'युद्ध'। लोक-जीवन में धर्म की स्थापना के लिए क्षमा, दया, करुणा की रक्षा के लिए दण्ड का प्रयोग भी होता है। अन्याय व धर्म एवं संस्कृति के स्थायी तत्वों की हानि के निवारणार्थ शक्ति की आवश्यकता होती है। अत जातीय, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उन्नति के लिए शक्ति अपरिहार्य तत्व है। इसी हेतु कवि का प्रतिपाद्य है "शक्ति-सचय"। आज के जीवन में पाप, अन्याय और धर्म का नाश करने के लिए तथा सांस्कृतिक उत्थान के हेतु बलपूर्वक आसुरी वृत्तियों का दमन होना चाहिए। आततायी वध्य है। यह वध हत्या की श्रेणी में न आकर पुण्य की श्रेणी में आता है, अत कवि अन्याय के सतत विरोध के लिए शक्ति-साधना का समर्थन करता है।

शल्य-वध

'महाभारत' के स्वतंत्र उपाख्यानों पर रचित काव्यों में सामान्यतः युद्ध-चित्रण नगण्य है। 'दमयन्ती', 'नलनरेश', 'विदुलोपाख्यान', 'एकलव्य' आदि प्रमुख प्रबन्ध काव्य हैं जिनमें ऐसे कथानक को लिया गया है, जिसका सीधा सम्बन्ध महा-

भारतीय युद्ध से नहीं है। घटना-प्रधान काव्यों में मुख्य घटना अधिकतर युद्ध ही है।

'शल्य वध' में कर्णार्जुन युद्ध की पृष्ठभूमि के उपरान्त शल्य और युधिष्ठिर का युद्ध चित्रण प्रमुख है। शल्य-वध के उपरान्त संकुल युद्ध को भी कवि ने पर्याप्त विस्तार से वर्णित किया है।

'महाभारत' के युद्ध-वर्णन का पांच सर्गों में विस्तार किया है। प्रथम दस दिन का युद्ध भीष्म पर्व में, पाँच दिन का युद्ध द्रोणपर्व में, दो दिन का युद्ध कर्ण पर्व में, अन्तिम आधे दिन का युद्ध शल्य पर्व और रात्रि का युद्ध सौप्तिक पर्व में वर्णित है। अठारह दिन के युद्ध को इतने विस्तार से ग्रहण करना आधुनिक कवि के लिए सम्भव नहीं हो सकता था अतः युद्ध-चित्रण के लिए संक्षिप्त वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया और कवि प्रमुख घटना पर रुकता हुआ सामान्य घटनाओं का संकेत करता चला है।

'जयभारत' और 'अंगराज' में शल्य-वध का संक्षिप्त चित्रण किया गया है। 'जयभारत' के कवि ने युद्ध-चित्रण के इस प्रसंग में एक परिवर्तन किया है 'महाभारत' में शल्य वीरतापूर्ण प्रशस्ति सुनकर सेनापति का पद स्वीकार करते हैं। 'जयभारत' में वे दुर्योधन को चेतावनी देते हैं कि वह अन्य सेनापतियों की भांति उन पर पाण्डवों की पक्षपातता का आरोप न लगाए।[1] दुर्योधन स्वीकार करता है और शल्य सेनापति बनते हैं। 'अंगराज' में अश्वत्थामा के प्रस्ताव का उल्लेख नहीं किया गया किन्तु भीम और शल्य के गदा युद्ध का चित्रण समान रूप से किया है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर वीरतापूर्वक शल्य का वध करते हैं 'अंगराज' में भयभीत होते हुए शक्ति का आघात करते हैं।[2]

उग्र नारायण मिश्र के काव्य में शल्य-वध प्रमुख घटना के रूप में विस्तार से चित्रित है। कवि शल्य का परिचय देता है और शल्य-दुर्योधन के वार्तालाप में युद्ध की भयंकरता गृह-युद्ध के घातक परिणामों पर प्रकाश डालता है। 'महाभारत' में इस प्रसंग का अभाव है।

प्रथम खण्ड में कवि पहले कर्ण-वध का संक्षिप्त चित्रण करता है। कर्ण पर्व से गृहीत इस प्रसंग में कवि ने कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया।

मूल ग्रन्थ में कृपाचार्य द्वारा सन्धि प्रस्ताव के समर्थन में नीति सम्बन्धी तथ्यों का आलेखन मात्र है 'शल्य वध' में दुर्योधन का स्वर पश्चातापपूर्ण और विवशतायुक्त है। कवि ने मानवीय भावनाओं का उत्कर्ष व्यंजित किया है। दुर्योधन अपने पूर्वकृत कर्मों को स्मरण करके ग्लानि में भर कर सन्धि को औचित्य भाव के

---

1. म० शल्य० ६।२६, जयभारत पृ० ३६६
2. अंगराज, पृ० २८०

विरुद्ध बताकर अस्वीकार करता है।[१]

अश्वत्थामा के परामर्श पर शल्य का सेनापति बनना, शल्य का अपनी वीरता का वर्णन, कृष्ण का युधिष्ठिर को शल्य-वध के लिए तैयार करना आदि प्रसगो को सकुचित शैली मे वर्णित किया है।

युद्ध प्रसग मे इन तीन घटनाओ की प्रमुखता है।

दोनो सेनाओ का युद्ध-अभियान और सकुल युद्ध, शल्य युधिष्ठिर सग्राम, शल्य-वध के उपरान्त सकुल युद्ध।

'महाभारत' के युद्ध अग मे वीरता और तेजस्विता का प्रदर्शन, पात्रो की अलौकिक शक्ति, रणविद्या के अनेक रूप, नायक एव प्रतिनायक के अदम्य पराक्रम का चित्रण प्रमुख है। कथा विकास युद्ध की घटनाओ के घात प्रतिघात से होता है, और प्रमुख वीर के वध से कथा की समाप्ति हो जाती है।

व्यूह रचना और युद्ध का प्रारम्भिक अभियान, दोनो ग्रन्थो मे समान रूप से वर्णित है। घटना की प्रमुखता होने के कारण काव्य मे कथा विकास के उत्थान पतन के अनेक स्थल नहीं आ पाये। कवि का ध्यान युद्ध के चित्रण की ओर अधिक रहा, अत इस काव्य ग्रन्थ पर युद्धवर्णन का प्रभाव अधिक है।

नकुल के द्वारा कर्ण पुत्रो के वध का चित्रण कितनी कुशलता से कवि ने किया है, यह दर्शनीय है। विरथ होने की स्थिति मे नकुल रथ से नीचे उतरे और युद्ध करने लगे।

> रथच्छिन्नधन्वा विरथ खड्गमादाय चर्म च,
> रथादवातरद् वीर शैलाग्रादिव केसरी।[२]
>
> × × ×
>
> झट शूरवीरो की तरह वह कूद कर रथ द्वार से
> सम्मुख चला निज शत्रु के उन्मुक्त खर तलवार से ॥[३]

कवि युद्ध चित्रण के प्रवाह मे पात्र के आन्तरिक शौर्य और ओजस्वी क्रिया का प्रभावशाली वर्णन करता है। शल्य पर्व के युद्ध की कोई भी महत्वपूर्ण घटना कवि ने नही छोडी, अश्वत्थामा और अर्जुन के युद्ध मे दोनो वीरो के शौर्य की ओजस्वी अभिव्यजना की गई है। तृतीय खण्ड मे शल्य-वध की घटना का चित्रण प्रमुख है, अत कवि इस खण्ड मे धर्मराज और शल्य के युद्ध पर केन्द्रित हो जाता है। 'महाभारत' मे युधिष्ठिर की वीरता दिव्य रूप से चित्रित की गई है किन्तु कवि ने दोनो योद्धाओ का समान चित्रण किया है। इस प्रसग मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नही हो पाया। कवि की दृष्टि 'महाभारत' के भावानुवाद की ओर रही

---

१ शल्यवध, पृ० २६

२ म० शल्य० १०।१६

३ शल्यवध, पृ० ४२

अन्तर केवल इतना है कि आधार ग्रन्थ में धर्मराज मद्रेश से अधिक त्रस्त नहीं होते और ऐसा लगता है जैसे असमान युद्ध में शल्य की पराजय हुई हो। कवि ने इस चमत्कार को बचाने का प्रयास किया है।

शल्य-वध के उपरान्त युधिष्ठिर की सेना में जयघोष होता है। कौरव पक्ष अस्तव्यस्त हो जाता है। इस समय दुर्योधन घबरा उठता है किन्तु कृपाचार्य के धैर्य बधाने से युद्ध करता है। अपने को अशक्त देखकर सेना के पृष्ठ भाग में चला जाता है। मद्रेश के वध का प्रतिकार लेने के हेतु शाल्व के साथ कौरव वीर भयंकर युद्ध करते हैं। शाल्व पाण्डवों की विशाल सेना को नष्ट करता है। 'महाभारत' में इस युद्ध को मर्यादा शून्य युद्ध बताया है।[1]

समीक्षा : प्रस्तुत काव्य में कवि ने 'महाभारत' के एक पात्र को लेकर-तत्सम्बन्धी प्रमुख घटना को आधार बनाया है। शल्य ने उस समय युद्ध किया जब कौरवों की शक्ति ह्रासोन्मुख थी। ऐसे समय में शल्य की निर्भीकता, तेजस्विता, आत्म विश्वास, राजभक्ति, आदि अप्रतिम गुणों का उत्कर्ष हुआ है। कवि ने शल्य को वीरता का प्रतीक मानकर चरित्र सृष्टि की। कथानक की दृष्टि से कवि ने महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किये। उसका उद्देश्य 'महाभारत' के आधार पर युद्ध-चित्रण ही रहा। कवि ने जिस जीवन-दृष्टि का प्रतिपादन किया है वह इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है। 'युद्ध मानवजाति का विध्वंसक है अतः त्याज्य है। किन्तु अपने बन्धुओं से केवल क्षणिक अधिकार तुष्टि के लिए युद्ध करना तो शास्त्र-विरुद्ध और पातक है। अधर्म संयुक्त युद्ध का परिणाम केवल पराजय है। भौतिक शक्ति के बल पर आध्यात्मिक विश्वास पर विजय पाना कठिन है। यह सब कुछ होते हुए भी यदि युद्ध किया जाय तो अपने शौर्य और शक्ति के अनुसार प्राणान्त तक लड़ा जाय। पराजय के भय से भागना क्षत्रिय का कर्त्तव्य नहीं। युद्ध का भी अपना धर्म है, जिसका अतिक्रमण नहीं होना चाहिये।'

'शल्य वध' में कर्ण, शल्य, दुर्योधन इन तीन विरोधी पात्रों की सृष्टि से उक्त विचार धारा की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। पाण्डव-पक्ष धर्म और वीरता से सम्पन्न है किन्तु कौरव पक्ष भी नितान्त अधर्मी नहीं था। इस युद्ध में कवि ने कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा, कर्म के प्रति आस्था और किसी भी स्थिति का साहस से सामना करने की प्रवृत्ति की स्थापना की है। अन्य ग्रन्थों में इस प्रसंग के आधार पर किसी विशिष्ट जीवन-दृष्टि की स्थापना नहीं की गई, इस ग्रन्थ में मूल विषय होने के कारण उक्त मत का प्रतिपादन किया गया।

हिडिम्बा का वृत्त

'महाभारत' के आदि पर्व में अध्याय एक सौ इक्यावन से एक सौ चौवन

---

१. म० शल्य० २३।६२

तक हिडिम्बा का प्रासगिक वृत्त वर्णित है। लाक्षागृह से भागने पर मार्ग मे एक दिन वन मे हिडिम्बा और पाण्डवो की भेंट होती है। हिडिम्बा भीमसेन पर अनुरक्त होती है और विवाह का प्रस्ताव रखती है। भीम हिडिम्बा के राक्षस भाई हिडिम्ब का वध करके माता तथा अग्रज की अनुमति से गान्धर्व विवाह करते हैं, और घटोत्कच की उत्पत्ति के साथ यह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। 'महाभारत' मे यह कथानक मुख्य रूप से घटोत्कच की उत्पत्ति के लिए आता है।

आधुनिक कवियो मे मैथिलीशरणगुप्त जी ने इस आख्यान पर 'हिडिम्बा' खण्डकाव्य की रचना की। 'सेनापति कर्ण' मे मिश्र जी ने इस प्रसग को नितान्त नवीन एव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। वस्तुत हिडिम्बा का महत्व घटोत्कच की माता होने के कारण अधिक है। वह राक्षसी होते हुए भी कार्य तथा सस्कारो से आर्य परम्परा मे आ जाती है।

परिवर्तन-परिवर्धन आधुनिक काव्य मे 'महाभारत' की इस कथा को यथेष्ट परिवर्तित रूप मे चित्रित किया गया है। इन परिवर्तनो का कारण कवि की दृष्टि है। मैथिलीशरणगुप्त जी ने राक्षसी के चरित्र मे आर्यत्व की स्थापना हेतु मूल ग्रन्थ की कथा मे परिवर्तन किया। हिडिम्बा प्रसग सवादात्मक वर्णनात्मकता लिए है अत इस वर्णनात्मक आख्यान मे सवादात्मकता के कारण वस्तु विकास का आधिक्य नहीं है। 'महाभारत' के स्पष्ट और यथार्थवादी कथानक मे कवि ने अपने आदर्श का समावेश करके कथा को नवीन रूप दिया है।

'सेनापति कर्ण' मे हिडिम्बा का वृत्त प्रासगिक रूप से आया है किन्तु अधिक महत्वपूर्ण बन गया है। मिश्र जी की दृष्टि मनोवैज्ञानिक है। उन्होने नितान्त नवीन रूप से इस प्रसग का आरम्भ किया है। वस्तु-निर्माण मे भी 'महाभारत' का आधार-मात्र ग्रहण कर अधिकतर स्वतन्त्र वस्तु का विकास किया है। मैथिलीशरण गुप्त जी के 'हिडिम्बा' मे 'महाभारत' के कथाक्रम का अनुकरण करके अपने विचार सगुम्फित किये गये हैं। मिश्र जी ने स्मृति सचारि के रूप मे कथा का विकास किया है और अपनी ओर से अन्तिम स्थल को सोद्देश्य जोडा है।

'महाभारत' मे हिडिम्ब मानव गन्ध पाकर अपनी बहन को पाण्डवो के हननार्थ भेजता है।[१] 'हिडिम्बा' मे वन के कष्टो की पृष्ठभूमि मे यह प्रसग प्रारम्भ होता है।[२] पायलो की ध्वनि सुनकर भीम चौंकते हैं। हिडिम्बा प्रणय की स्पष्ट अभिव्यक्ति करती है। दोनो मे प्रेम सलाप चलता है। विलम्ब होने पर हिडिम्ब आता है। भाई को आता देखकर 'महाभारत' की हिडिम्बा अपशब्दो का उच्चारण करती है।

---

१ म० आदि० १५१।१२-१३

२ हिडिम्बा, पृ० ६

आपतत्येष दुष्टात्मा संक्रुद्धः पुरुषादकः ।[1]

सहोदर भ्राता एवं एकमात्र रक्षक के लिए राक्षसी के मुख से उच्चरित उक्त शब्द मर्यादा का अतिक्रमण करते है। गुप्त जी ने स्वयं आगमन की सूचना देकर यह प्रसंग ही उपस्थित नही किया :

आ गया इसी क्षण हिडिम्ब यमदूत सा
भीरुओं की कल्पना का सच्चा भय भूत सा ॥[2]

'महाभारत' मे हिडिम्बा भाग जाने का प्रस्ताव करती है।[3] यह प्रस्ताव सच्चरित्रता के प्रतिकूल है। कवि राक्षसी में भी आर्यत्व की झलक देखने के हेतु ऐसे प्रस्ताव को चित्रित नही करता, अपितु तर्क द्वारा हिडिम्बा के अधिकार का समर्थन करता है।

न्याय से उन्हीं पर न भार मेरा सारा है,
रक्षक जिन्होने एक मात्र मेरा मारा है।[4]

उक्त कथन में कवि ने परिष्कृत रुचि एवं स्त्री के आदर्शात्मक रूप की अभिव्यक्ति की है। हिडिम्बा स्नेह को अधिकार का प्रश्न बनाकर समर्पण की भावना का प्रकाशन करती है। इससे उसके गार्हस्थिक स्वरूप की झांकी प्राप्त होती है।

कवि हिडिम्ब के चरित्र में भी एक परिवर्तन करता है। 'महाभारत' मे मृत्यु के समय हिडिम्ब शान्त रहता है, 'हिडिम्बा' में वह बहिन के उचित वरचयन से सन्तुष्ट होकर प्राण त्यागता है।[5] हिडिम्बा भाई का शोक मनाने तीन दिन के लिए चली जाती है और बाद में आकर अपना मन्तव्य प्रकट करती है। कवि ने कुन्ती-हिडिम्बा सम्वाद को विस्तार से चित्रित किया है। यह विस्तार सकारण है। कवि इसी सम्वाद में कथा की आत्मा स्पष्ट करता है। उसकी जीवन-दृष्टि की आंशिक अभिव्यक्ति होती है। वह मानव और राक्षस, आर्य-अनार्य, प्रेम-त्याग, नारीत्व की वास्तविकता आदि विषयों पर अपने विचार अभिव्यक्त करता है।

वैर की यथार्थ शुद्धि वैर नहीं, प्रेम है,
और इस विश्व का इसी में छिपा क्षेम है।[6]

× × ×

---

१. म० आदि० १५२।४
२. हिडिम्बा, पृ० १८
३. म० आदि० १५१।२६-३०
४. हिडिम्बा, पृ० ३३
५. हिडिम्बा, पृ० ३३
६. हिडिम्बा, पृ० ३४

आने हैं चढ़ाव से उतार तथा आवेंगे,
तो भी हम लोग सदा बढ़ने ही जावेंगे।[1]

'महाभारत' में हिडिम्बा की अभिव्यक्ति में पारिवारिक कल्पना का अभाव है। वह शुद्ध काम-भाव के कारण भीम का वरण करती है। 'हिडिम्बा' में उक्त भावना का चित्रण गार्हस्थिक मर्यादा की सीमा में किया गया है। हिडिम्बा कुन्ती की स्वीकृति से भीम का वरण करना चाहती है। उसके मन में माता बनने की इच्छा है। उसकी पूर्ति का यही उपाय मानकर वह ऐसा प्रस्ताव करती है।

नकुल और हिडिम्बा का देवर-भाभी के रूप में परिहास की योजना कवि की मौलिक उद्भावना है। कवि ने यथासम्भव 'महाभारत' के अतिप्राकृत तथ्यों को बुद्धिसम्मत तथा संयमित रूप प्रदान किया है। अपने विचारों की अभिव्यक्ति के हेतु कथा में संवाद का बहुत कुछ भाग कवि को स्वयं निर्मित करना पड़ा है। यह उद्देश्य पूर्ति के लिए आवश्यक भी था। कवि ऊंच-नीच की कृत्रिम पृथकता असमानता की विघातक भावना का विरोध कर दनुज में मानवीय गुणों की सम्भावना, उमंग प्रधान प्रेम, असभ्यों का सभ्य होने की आकांक्षा का प्रकाशन करता है। किन्तु विचारधारा की व्यापकता और वर्ण्य वस्तु की सीमा के कारण चिन्तन पक्ष अधिक नहीं उभर सका। नवयुग की विचारणाएं जिस मात्रा में व्यक्त की जानी चाहिए थीं उतनी सफलता से न हो सकीं, उनका संकेतमात्र करके ही कवि संतुष्ट हुआ है। 'महाभारत' में भीम हिडिम्बा का वध करने को तत्पर हो जाते हैं किन्तु युधिष्ठिर द्वारा रोक दिये जाते हैं।[2] कवि इस प्रसंग के विषय में मौन रह गया है। समग्रतः कवि का संदेश लोक-जीवन की व्यावहारिक उपयोगिता के आधार पर चित्रित हुआ है, यह निश्चय ही महाभारतीय आख्यान का नवीन आलेखन है।

'सेनापति कर्ण' में लक्ष्मी नारायण मिश्र का दृष्टिकोण कथा की मनोवैज्ञानिकता के आधार पर व्यक्त हुआ है। महाभारत-युद्ध-प्रसंग की पृष्ठभूमि में हिडिम्बा का चिन्तन मानवीय उच्चता का द्योतक है। हिडिम्बा को पतिकुल की चिन्ता का ज्ञान होता है, उसे वह पुत्र पर प्रकट करती है। पति की इच्छा के लिए अपने जीवन का बलिदान करने के उपरान्त पति रक्षा के हेतु पुत्र का बलिदान करती है।

मिश्र जी ने निम्नांकित उल्लेखनीय परिवर्तन किए हैं।

भीम ने हिडिम्बा को नीच कुल जन्मा मानकर त्याग दिया और राजकुल के ऐश्वर्य-विलास में भीम आपत्ति की सहायक पत्नी को भूल गये।[3] 'महाभारत में घटोत्कच को माता पिता का ज्ञान है[4] और वह समय-समय पर उनकी सहायता

---

१ हिडिम्बा, पृ० ४०
२ म० आदि० १५४।१
३ सेनापति कर्ण, पृ० ७५,
४ म० आदि० १५४।४५

करता रहा है। कवि ने महाभारतीय सत्य की उपेक्षा करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि माता के बताने पर ही उसे पिता का ज्ञान होता है।[1]

'महाभारत' में वन में अनायास मिलने पर हिडिम्ब और भीम का युद्ध होता है। 'सेनापति कर्ण' में कवि इस युद्ध का सम्बन्ध भीम और जरासंध के युद्ध से जोड़कर उत्कृष्ट कल्पना को कलात्मक रूप से चित्रित करता है। हिडिम्ब जरासन्ध वध का प्रतिशोध चाहता है और नरश्रेष्ठ भीम पर हिडिम्बा पहले से ही अनुरक्त है। इस रूप में कवि ने प्रेम और शत्रुता का पूर्व सम्बन्ध चित्रित किया है।

हिडिम्बा पुत्र को बताती है :

> भाई जो हिडिम्ब दानवेन्द्र बली मेरे थे,
> सह न सके वे नर श्रेष्ठ की सुकीर्ति को—

हिडिम्ब की भावना का प्रकाशन करते हिडिम्बा कहती है :

> मार जरासन्ध को यशस्वी भीमसेन है
> आज बना, किन्तु उसे मार के समर में
> लेना प्रतिशोध मुझको है मित्र वध का।[2]

निश्चित ही यह कल्पना अत्यन्त सुष्ठ और महाभारतीय आख्यान को एक नयी दिशा देती है। राक्षसों के विस्तृत परिवार की सम्भावना में हिडिम्ब का वैर स्वाभाविक और तर्क-संगत दिखाई देता है।

भीम एवं हिडिम्बा के युद्ध की नवीन कल्पना के साथ कवि हिडिम्बा और भीम के प्रेम-प्रसंग को भी नये रूप में चित्रित करता है। हिडिम्बा पूर्व प्रेम के कारण भीम को देखकर द्रवित होती है। भीम उस द्रवणशीलता की प्रतिक्रिया इस रूप में व्यक्त करते हैं :

> ....देवि, देखकर मुझको,
> द्रवित हुई थी तुम भूलता नहीं हूँ मैं।
> पाई शक्ति मैंने अनजान उन आँखों से,
> देखा एक बार जब तुमने मुझे लगा,
> पान किया आज मैंने दुर्लभ अमृत है।[3]

कहां तो 'महाभारत' की कामासक्त हिडिम्बा और उसे मारने को तत्पर भीमसेन, और कहां यह प्रेम की उज्ज्वल प्रेरणा दायक स्थिति। भीम के मुख से उक्त अभिव्यक्ति में पौरुष का नारीत्व की कोमलता के प्रति आभार प्रदर्शन है।

'महाभारत' में घटोत्कच की उत्पत्ति के उपरान्त हिडिम्बा भीम से विलग हो जाती है। यह सत्य कवि ने अन्य कारण-कार्य सम्बन्ध की परिकल्पना से स्वीकार

---

१. सेनापति कर्ण, पृ० ८५
२. सेनापति कर्ण, पृ० ८६
३. सेनापति कर्ण, पृ० ९३

किया है। कवि की कल्पना है कि यह विलगता तत्कालीन सामन्तीय परम्परा के प्रतीक वर्गभेद के कारण हुई। 'महाभारत' मे ऐसा कोई संकेत नहीं है। काव्य मे स्वयं भीम इस तथ्य को स्वीकार करते हैं।

यौवन के मद मे बनाया जिसे प्रेयसी,
और फिर छोड़ दिया कुल के विचार मे।[1]

कथानक की दृष्टि से कवि के उक्त परिवर्तनो मे उसका विपर्ययगत दृष्टिकोण निहित है। समग्र ग्रंथ मे पाण्डवो के चरित्र को इस प्रकार की स्थिति मे प्रस्तुत कर अपकर्षात्मक रूप देने की प्रवृत्ति की प्रधानता मिलती है। यह सर्व स्वीकृत तथ्य है कि भीम ने हिडिम्बा को इच्छानुसार विवाह कर सन्तान उत्पन्न की—भीम के प्रेम का यह प्रधान शर्त थी कि पुत्र उत्पन्न होने के उपरान्त वह साथ मे न रहेगी।[2] वह युग स्त्री-पुरुष से स्पष्ट सम्बन्धो का युग था अत ऐसी स्थिति की कल्पना अव्यावहारिक नहीं है। अत इस परिवेश मे पाण्डवो के चरित्र का अपकर्ष करना तत्कालीन स्थिति की उपेक्षा करके मनमाने अर्थों का आरोपण होगा।

उक्त परिवर्तनों की सीमा मे कवि ने हिडिम्बा, घटोत्कच और भीमसेन की भावनाओं का द्वन्द्व कलात्मकता से चित्रित किया है। 'महाभारत' के दिव्य शक्ति सम्पन्न पात्र को मानवीय सुख-दु ख की अनुभूति का अवसर देकर चारित्रिक विकास का नवीन रूप उपस्थित किया है। महाभारतकार के समक्ष मानसिक द्वन्द्वों का प्रश्न ही नहीं था वहाँ दिव्यपात्र, असुर, ऋषि सब अपनी शक्तियो से भलीभांति परिचित हैं।

हिडिम्बा के पूर्वानुराग के रूप मे की गई कल्पना के द्वारा कवि स्त्रियोचित मर्यादा और सरलता की रक्षा करता है। उसके शौर्य प्रदर्शन में जीवन का उज्ज्वलतम रूप चित्रित कर स्त्री के सभी धर्मों म समान सहयोग की प्रतिष्ठा करता है।

---

१ सेनापतिकर्ण, पृ० २११
२ म० आदि० १५४।२०

महाभारत के चरित्र-चित्रण का प्रभाव

महाभारत में चरित्र-चित्रण
आधुनिक काव्य में चरित्र
वर्तमान काल में चरित्र

पचम अध्याय

महाभारत के चरित्र-चित्रण का प्रभाव

'महाभारत' के कथा-प्रभाव की विवेचना करते हुए हमने देखा कि सभी कवियो ने अपनी विचारधारा और युग-दृष्टि के कारण कथा मे सोद्देश्य परिवर्तन करके अतिप्राकृत तत्वो का बुद्धि-सम्मत समाधान खोजने की चेष्टा की। कथानक का प्रभाव अधिकाश यथावत रहा और सभी परिवर्तनो की पृष्ठभूमि मे सामाजिक मनोवैज्ञानिक स्थितियो को आधार बनाया गया। 'महाभारत' की कथा को कवियो ने स्वतत्र रूप से ग्रहण कर चरित्र-सृष्टि मे नवीनता का समावेश किया। आधुनिक युग के प्रारम्भिक चरण का साहित्य इस तथ्य का द्योतक है, कि राष्ट्रीय एव सास्कृतिक पुनर्जागरण की सीमा मे, कवियो ने प्राचीन कथा और चरित्रो को नवीन सदर्भ मे चित्रित करके युग-सजगता का परिचय दिया। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'महाभारत' के कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीष्म, दुर्योधन, कर्ण आदि प्रमुख चरित्र अयोध्यासिह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर आदि कवियो के द्वारा नवीन रूप मे चित्रित हुए हैं। ये सभी पात्र एक ओर अपनी मूल विशेषताओ के साथ अभिव्यक्त हुए हैं, दूसरी ओर नवीन युग का प्रतिनिधित्व भी कर पाये है।

महाभारत चरित्र चित्रण विशेषताए

प्राचीन ग्रन्थो का स्वरूप धार्मिक एव साहित्यिक दोनो था। वे सभी ग्रन्थ पुराण शैली मे लिखे गये इतिहास भी हैं और धार्मिक विचारधारा से पूर्ण साहित्यिक ग्रन्थ भी। अत 'महाभारत' की चरित्र-सृष्टि प्रतिपाद्य के अनुरूप ही अलौकिक है। वहा पात्र अपनी शक्ति से अनभिज्ञ नही और यदि कोई सघर्ष है, तो समान शक्तिशाली पात्रो मे है। मानसिक द्व द्व जैसी स्थिति कुछ ही पात्रो मे आ पाई है। कुन्ती, युधिष्ठिर, द्रौपदी, कर्ण आदि पात्रो मे यह द्वन्द्व कही-कही पर उभर कर व्यक्त हुआ है। दिव्य-शक्ति सम्पन्न पात्रो का मानवीय पात्रो से निकट सम्बन्ध भी समस्त वातावरण को अलौकिक शक्ति से प्रकाशित करने मे सहायक है। 'महाभारत' का अध्येता परम्परा से ही यह जानता है कि इ द्र पुत्र अर्जुन विजयी होगा। कर्ण और अर्जुन का सघर्ष मानो दो दिव्य शक्तियो का सघर्ष है। इसमे अर्जुन की विजय परब्रह्म कृष्ण की विजय है। इस प्रकार 'महाभारत' की चरित्र-सृष्टि मे घटनाओ का स्थान अधिक है, मनोवृत्तियो का कम।

'महाभारत' मे चरित्र-सृष्टि का आधार यथार्थवादी प्रवृत्ति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। 'महाभारत' में चित्रित सभी सात्विक पात्र अपनी अपनी सीमा मे

आदर्शवादी हैं। उनके प्रत्येक कर्म के पीछे आदर्श का आधार दिखाया गया है। वे वीरत्व के तेजोदीप्त जीवन के मध्य अपनी चित्तवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन चरित्रों में सबसे प्रमुख उल्लेखनीय तत्व है इनकी निर्भयता और स्पष्टवादिता, ये जीवन मे विविध और यथार्थवादी हैं[1]। व्यास जी ने चरित्रों का आलेखन अत्यन्त साहस के साथ किया है। उनमे आत्मनिर्भरता, पुरुषार्थ पर अटूट विश्वास, व्यवहार में शक्ति और कल्याणकारी वृत्तियों का समन्वय, कुछ ऐसी विशेषताए हैं जिनसे इन सभी पात्रों के गुणों को आधुनिक काव्यकारों ने दो रूपों से ग्रहण किया है।

प्रथमत: अपरिवर्तनीय गुण, द्वितीयत: युग की भावना के अनुरूप परिवर्तनीय गुण। कृष्ण 'महाभारत' में युग-पुरुष, ब्रह्म के अवतार, ईश्वर, नीतिज्ञ, सभी रूपों मे चित्रित हैं। आधुनिक कवि कृष्ण को चाहे उसी आस्था से ईश्वर न माने किन्तु 'महाभारत' के युद्ध मे उनके योगदान की दिव्यता को अस्वीकार नहीं कर सकता है और अपने समय में कृष्ण ने असुरों के संहार और मानवत्व की प्रतिष्ठा के लिए जो कुछ किया उसको आधुनिक सदर्भ में प्रस्तुत करके 'यदा यदाहि धर्मस्य' ....की उक्ति को नवीन आलोक में उपस्थित करता है। इन चरित्रों की प्रमुख विशेषता यही है कि ये अपने व्यवहार और मानसिक सन्तुलन में विशिष्ट सजगता लिये हैं।

वीर युगीन चरित्र : 'महाभारत' का प्रत्येक पात्र वीरयुगीन विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। उसे आत्म शौर्य पर अटूट विश्वास है। वीर युग में वीरत्व ही धर्म, नैतिकता और सामाजिक सात्विकता को नियंत्रित करता है। व्यक्तिगत वीरत्व के प्रदर्शन के अनुरूप आस्थाओं तथा नियमों में परिवर्तन सम्भव है। नियंत्रित और संयमित वीरत्व का प्रदर्शन उत्तर वीर युग में होता है।

वीर युग में व्यक्ति की शारीरिक वीरता व्यक्तिगत शक्ति का महत्व सर्वाधिक होता है। वही पात्र महान और अनुकरणीय है जो अधिक वीर और शक्ति सम्पन्न है। 'महाभारत' के सभी चरित्र उज्ज्वल हैं, शक्ति की अदम्यता के प्रतीक हैं—वे युद्ध से विमुख होना नहीं जानते, शत्रु की ललकार पर युद्ध करना,

---

1. "Vyasa is very bold in characterisation. An air of independent spirit and an individual stamp are the outstanding features among the charaters as they are portrayed by Vyasa. He has shown how the mind of a person works in the hour of trails. The major men characters Yudhisthira, Bhima, Arjuna, Nakul, Sahadeva—are all peculiar in their mental dispositions and behaviours."——History of Sanskrit Literature, V. Varadachari, p. 53.

युद्ध को कर्तव्य समझ कर लड़ना, और भाग्य की बलवत्ता को स्वीकार करना आदि प्रमुख गुणों का प्रसार ही वीर युग के चरित्र में व्यापक रूप से प्रदर्शित होता है।[1] यही कारण है कि 'महाभारत' पढ़ने के उपरान्त ऐसा लगता है कि यह युद्ध दुर्योधन, भीष्म आदि वीरो की व्यक्तिगत कहानी है।[2]

श्री एन० के० सिद्धान्त के विचार पाश्चात्य लेखको से प्रभावित हैं—उनको 'महाभारत' के वीरो के सघर्ष में व्यक्तिगत सघर्ष अधिक दिखाई देता है। वास्तविक स्थिति ऐसी नही है। 'महाभारत' मे कौरवो और पाण्डवो का सघर्ष जातीय स्तर पर हुआ है। कौरवो को परास्त करने से पूर्व जरासध और शिशुपाल का वध इस बात का द्योतक है कि पाण्डवों के शक्ति-सचय मे भारतीय आर्य परम्परा का रक्षण विद्यमान रहा, जबकि कौरवो के पक्ष मे उस परम्परा का साक्षात हनन दिखाई देता था। अत कृष्ण ने पाण्डवो का पक्ष लिया। यह सत्य है कि इस सामूहिक सघर्ष की विजय और पराजय कतिपय प्रमुख व्यक्तियों की शक्ति पर आधारित थी किन्तु उनके व्यक्तिगत द्वेष को ही सघर्ष का मूल कारण नही माना जा सकता।

वैयक्तिकता और सामाजिकता 'महाभारत' के पात्रो मे जहा व्यक्तिगत वीरत्व प्रमुख था वहा सामाजिक दायित्व की भावना भी उतनी ही प्रबल थी। पहले तो उनका वीरत्व प्रदर्शन ही सामूहिक हित के लिए होता था। यदि जरासध अनेक राजाओं को पकड कर बन्दी न बनाता तो उसका वध करने की आवश्यकता न पड़ती। यह भी स्वाभाविक है कि जो राजा स्वार्थ तुष्टि के लिए परिवार के साथ युद्ध कर सकता है, वह सामान्य प्रजा पर अत्याचार भी कर सकता है।

वीर युग के चरित्र का नैतिक मानदण्ड धार्मिक या सामाजिक न होकर वैयक्तिक होता है। प्रत्येक व्यक्ति विजय-प्राप्ति के लिए जो कुछ करता है वह सर्वथा उचित है। इसीलिए धर्म के जितने रहस्यमय रूप 'महाभारत' मे प्राप्त होते हैं उतने सम्भवत अन्य ग्रन्थ मे उपलब्ध नही होते। चिन्तन की प्रधानता वीर-युग के चरित्रो का स्वाभाविक गुण नही है, चिन्तन किसी किसी पात्र मे अपवाद स्वरूप पाया जाता है।

अदम्य वीरत्व के साथ तपस्या और त्याग को भावना का समावेश भी वीर युग के चरित्र मे पाया जाता है। ये चरित्र वीरता के चमत्कारिक कार्यों के साथ तपश्चर्या मे भी उतने ही साहसी हैं। अर्जुन इन दोनो रूपो का प्रतिनिधित्व करता है। अर्जुन के अतिरिक्त तपश्चर्या मे जयद्रथ, लौकिक त्याग-भावना और ऋषित्व के प्रतिनिधि रूप मे द्रोणाचार्य और भीष्म आदि के नाम उल्लेखनीय है।

प्रेम का क्षेत्र 'महाभारत' के पात्रो में प्रेम के क्षेत्र मे एकनिष्ठता का अभाव है।

---

1 "The Heroic Age of India" 1929, p 85-86
2 The Heroic Age of India" p 76

'महाभारत' के प्रमुख वीर चरित्रों में प्रेम भी राजनीति का अंग है। वीर युग में बहु-स्त्री परम्परा विकसित रहती है। 'महाभारत' में अर्जुन, भीम तथा अन्य प्रमुख वीरों की स्त्रियों का स्पष्ट उल्लेख है। आदर्शवादी भावना के अनुसार बहुस्त्रीत्व चरित्र का दोष है, पर वीर युग की भावना में यह दोष नहीं माना जाता है।

सारांश यह है कि 'महाभारत' में जिस रूप में चरित्र का विकास हुआ है वह यथार्थवादी धरातल पर युग के आदर्शात्मक रूप का प्रकाशन करता है। प्रत्येक चरित्र का कार्य यथार्थ की सीमा के भीतर है पर उसका चरम-लक्ष्य है आदर्श। पाण्डवों के पक्ष को 'महाभारत' मे धर्म सम्मत, आदर्शवादी और यथार्थ की कठोरता के साथ भी उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। कौरव पक्षाय वीरों में भी द्रोण, विदुर, भीष्म, आदर्शात्मक पात्र है। इनके चरित्र की स्थिति भी विरल है। ये अधर्म का पक्ष लेते हुए भी धर्मात्मा बने रहते हैं। द्रोण और भीष्म कौरवों की ओर से युद्ध करते हैं पर हृदय से पाण्डवों की विजय चाहते है। महाभारतकार इस स्थिति से लाभ उठाकर इन चरित्रों में मानसिक द्वन्द्व की स्थापना कर सकता था पर युग के आदर्श की व्याख्या के अनुसार वह ऐसा न कर पाया। भीष्म, द्रोण मन से पाण्डव पक्षीय होने की उद्घोषणा कर देते हैं—भीष्म पाण्डवो को अवध्य घोषित करते हैं, इस पर भी युद्ध करते है। व्यक्तिगत कर्त्तव्य और व्यक्तिगत प्रेम तथा संघर्ष का कितना आश्चर्यजनक समन्वय इन चरित्रों मे हो पाया है।

आधुनिक काव्य में चरित्र

आधुनिक काव्यकार महाभारतकालीन दिव्य वातावरण की सृष्टि नहीं करता। उसके दिव्य पात्र भी मानवीय हो जाते हैं और यदि मानवीय नहीं होते तो भी उनकी सत्ता मानव से ऊँची नहीं है। इस काल के प्रबन्ध काव्यों, 'कृष्णायन' 'जयभारत' 'सेनापति कर्ण' 'रश्मिरथी' आदि में 'महाभारत' के सर्वशक्तिमान पात्रों का चित्रण मानवीय धरातल पर किया गया है। वे उच्च-शक्ति सम्पन्न हैं—उनमें दिव्यता का आरोप करके बुद्धि-सम्मत बनाया गया है। उदाहरणार्थ 'महाभारत' के कृष्ण ब्रह्म के अवतार, सर्वशक्तिमान, लीला कर्ता है, किन्तु आधुनिक काव्य के कृष्ण महामानव ही है—उनमें बुद्धि और शक्ति का आधिक्य है, अतः वे महान् और पूज्य हैं। इनके साथ कुछ वैष्णव भक्त आधुनिक कवियों ने-जिनमे मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख हैं—कृष्ण के ब्रह्मरूप को ही आस्था से ग्रहण किया है।

मानव जीवन पर आधारित प्रबन्ध काव्यों में कथा-विकास के साथ चरित्र-सृष्टि महत्वपूर्ण उपलब्धि होती है। कवि अपनी विचारधारा को युग-सापेक्ष आधार पर चरित्र के द्वारा ही अभिव्यक्त करता है। वह आस्था-सम्पन्न है या नहीं, परम्परावादी है या प्रगतिशील, समन्वयवादी है या किसी एक सिद्धान्त का प्रति-

पादक, इन तथ्यों की व्यंजना उसकी चरित्र-दृष्टि से ही ज्ञात होती है। अत प्रबन्ध काव्यों में 'महाभारत' के पात्रों का चरित्र-विकास प्रत्येक कवि के अपने दृष्टि-कोण के आधार पर हुआ है। आचार्य शुक्ल ने स्पष्ट किया है—'हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों और व्यापारों की भावना को सामने लाकर कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्त प्रवृत्ति का सामंजस्य घटित करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता का प्रसार करती है।[1] कवि-चरित्र-भूमि के प्रसार-क्षेत्र म जिस जीवन दृष्टि के आधार पर, भावात्मक सत्ता का प्रसार करता है वही चरित्र-चित्रण है। चरित्र के द्वारा ही कवि मानव को उच्च भूमि में प्रतिष्ठित करता है और दिव्य शक्ति को मानवीय क्षेत्र के मध्य अवतरित करके मानवता का प्रसार करता है। हिन्दी साहित्य म उपलब्ध आदिकाल से अब तक के प्रबन्ध काव्यों में चरित्र का यह विपयय ही काव्य और पुराण की दृष्टि-भेद की स्थापना करता है। उदाहरणार्थ रासो मे पृथ्वीराज के चरित्र को दिव्य भूमि में प्रतिष्ठित किया गया है। 'रामचरित मानस' में दोनों भूमियों का समन्वय किया गया है और 'कृष्णायन' में कृष्ण की दिव्यता को मानवीय आवरण देकर लोक-जीवन के मध्य प्रतिष्ठित करके कृष्ण की अलौकिकता को भी मानव मन के लिए सुलभ बनाया गया है।

यह हमने पहले ही स्पष्ट किया है कि आधुनिक काव्य में 'महाभारत' के चरित्रों के पुनरालेखन की प्रवृत्ति मुख्य है। यह प्रवृत्ति जीवन साहित्य की सजीवता का परिचायक है। इसके आधार पर दो वर्ग किए जा सकते है।

१ पुनरुत्थान युग, २ वर्तमान युग।

पुनरुत्थान युग की प्रथम प्रवृत्ति मूल से पूर्णत सम्बन्ध बनाए रखना है। इससे कवि पुनरुत्थान के लिए प्राचीन सांस्कृतिक आदर्श की पुन स्थापना करता है और प्राचीन लोकादर्शों से सम्बन्ध रख कर उन्हीं आदर्शों को अपने युग में प्रतिष्ठित करता है।

द्वितीय प्रवृत्ति है युग के आदर्शानुसार मूल में यत्किंचित परिवर्तन करना। इस परिवर्तन में प्राचीनता और नवीन बौद्धिकता का समावेश होता है।

पुनरुत्थान युग की प्रथम प्रवृत्ति का कवि प्राचीन परम्परागत विश्वासों में परिवर्तन न करके उन्हीं का बुद्धि-सम्मत समाधान खोजता है। द्वितीय प्रवृत्ति का कवि परम्परागत विश्वासों मे परिवर्तन करके नवीन समाधान की ओर कुछ नये तथ्य उपस्थित करता है।

वर्तमान युग में आकर पुनरुत्थान की परम्परा भी समाप्त हो जाती है और कवि मूल से केवल उतना ही सम्बन्ध रखता है जितना वह आवश्यक समझता है। वह प्राचीनता का छायाभास ग्रहण कर अपने युग के यथार्थ और आदर्श को वाणी

---

१ रस मीमांसा, पृ० ७

देता है। इसी प्रवृत्ति का एक और चरण होता है जिसमें कवि मूल से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है और केवल भावना ग्रहण कर उसे नितान्त स्वतंत्र रूप से विकसित करता है। अतः आधुनिक काव्यकार की चरित्र-सृष्टि मूल से अभिन्न नहीं होती उसमें युगानुसार परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन का प्रेरक पहले 'समाज' मे और फिर व्यक्ति 'कवि' मे निहित होता है।

पुनरुत्थान युग में चरित्र-चित्रण : प्रेरक तत्व : इस काव्य में साहित्य की प्रेरक युग-प्रवृत्तियां यद्यपि काव्य को गीतात्मकता की ओर अधिक ले जा रही थीं, किन्तु प्रबन्ध काव्यों मे भी युग प्रवृत्तियो का स्पष्ट चित्रण मिलता है। इस काल की सांस्कृतिक, सामाजिक परिस्थितियो का अप्रत्यक्ष प्रभाव प्रबन्ध काव्यों पर पड़ा। इस दृष्टिकोण ने काव्य-रचना मे प्रेरक वृत्तियो का कार्य किया। सामान्यतः इस युग में रचे जाने वाले प्रमुख आख्यानात्मक काव्यो—'नल नरेश', 'प्रिय प्रवास', 'जयद्रथ वध', ने प्राचीन मान्य चरित्रों को बुद्धिवाद की नयी आवश्यकता के अनुसार चित्रित किया बुद्धिवादी, आदर्शवादी, मानववादी, राष्ट्रवादी विचार धाराओं ने कवियों की मनोवृत्तियों पर गहरा प्रभाव छोड़ा। यह कहना उचित होगा कि हमने अपनी प्राचीन प्रतिष्ठित प्रतिमाओं को नवीन आलोक में देखने का प्रयास किया।

बुद्धिवाद : इन कवियों का दृष्टिकोण सांस्कृतिक था, सांस्कृतिक जीवन के अनुशीलन मे उस समय बौद्धिकता का प्रभाव सर्वाधिक था। पात्रों की गतानुगतिकता पर कवि ने प्रहार करके उसे नवीन भावना के अनुकूल चित्रित किया—ज्ञान के प्रकाश से सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति की ओर झुकना इस समय के काव्य की सामान्य प्रवृत्ति रही। ईश्वर के ईश्वरत्व की शंका के साथ धर्म के उच्चत्व में भी प्रश्न लग गया। अवतारवाद का निषेध हुआ। इस निषेध की ध्वनि हरिऔध मे सतर्कता से प्राप्त होती है। मैथिली शरण गुप्त अवतार वाद का विरोध तो न कर सके, किन्तु उन्होंने अवतारवाद का बौद्धिक समाधान करने का प्रयास अवश्य किया। बुद्धिवाद के प्रभाव के कारण देवोपम माने जाने वाले राम-कृष्ण आदि अवतारों की गणना भी मानवों में होने लगी। बुद्धिवाद के इस प्रवाह में आदर्शवाद का विरोध नहीं हुआ—और न ऐसा सिद्धान्ततः होता ही है।

आदर्शवाद : बुद्धिवाद के अतिरिक्त आदर्शवाद काव्य की प्रमुख प्रेरक प्रवृत्ति रही। बुद्धिवाद आदर्श का विरोधी नहीं होता वह केवल आदर्श को स्वप्न की वस्तु न समझ कर अपनी कसौटी पर कस कर लोकजीवन के लिए उपयोगी बनाता है। इस काल में लिखे गये 'देवयानी', 'सती-सावित्री', 'नल-नरेश', 'वीर-विनोद', आदि कतिपय आख्यानात्मक काव्यों में आदर्श की स्थापना पर बल दिया गया। 'देवयानी' में कच और देवयानी में प्रसंग में भोगवाद का विरोध किया गया। सावित्री के चरित्र मे पतिव्रत के आदर्श, दमयन्ती के चरित्र में प्रेम की एकनिष्ठा 'अभिमन्यु-पराक्रम' में अभिमन्यु के चरित्र मे कर्त्तव्य-निष्ठा का आदर्श प्रस्तुत किया

गया। इन काव्यों में चरित्र चित्रण का स्वरूप पौराणिक रहा किन्तु प्रत्येक पात्र के साथ आदर्श की भावना की प्रमुखता के कारण उसका युगीन महत्व भी देखा जा सकता है। सामाजिक संस्कारों के परिष्कार की ध्वनियों के मध्य कर्ण के चरित्र के द्वारा जन्मगत असमानता का विरोध करने वाले कवि की सामाजिक सुधारवादी भावना श्लाघ्य है। कर्म की प्रतिष्ठा को सिद्धान्त मानने वाले के लिए ऐसे पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों का पुनरङ्कन आवश्यक होता है।

जनवाद एवं मानववाद प्राचीन पात्रों के पुनरालेखन में इस युग की 'जनवादी' एवं 'मानववादी' प्रवृत्ति की झलक मिलती है। वीर युग के चरित्रों में व्यक्तिगत उत्कर्ष की भावना प्रबल थी। तत्कालीन व्यक्तिगत उत्कर्ष को धर्म-नीति से वेष्टित कर आधुनिक मानववादी भावना का प्रसार किया गया। 'प्रियप्रवास' में मानव-सेवा और मानव-प्रेम को ही ईश्वर-प्रेम के रूप में चित्रित किया गया। 'महाभारत' में कृष्ण के उदात्त व्यक्तित्व ने अधर्म का नाश करके धर्म की स्थापना की, पाण्डवों के सत्य-पक्ष का समर्थन किया। आधुनिक युग में कृष्ण के उदात्त चरित्र का गुणगान किया गया क्योंकि अधर्म का नाश तो आज की भी मुख्य समस्या है। इस प्रकार के चरित्रों के पुनरालेखन के द्वारा कवियों ने राष्ट्रवाद के शाश्वत सांस्कृतिक पक्ष को चित्रित किया। गीता के कर्मयोग की व्यावहारिकता राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में सहयोगी रही। भारतेन्दु काल के कवि के मानसिक संस्कारों में अतीत की निधि सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी, तदुपरान्त सामाजिक यथार्थ। अब कवियों ने सामाजिक यथार्थ को प्राचीनता के साथ समन्वित किया। चरित्र प्राचीन रहे, समस्या नयी, पात्र अतीत के रहे, जीवन-दर्शन आधुनिक, आस्था का सिद्धान्तवादी रूप पुरातन किन्तु व्यावहारिक रूप नवीन रहा। इस प्रकार पुनरुत्थान काल के आख्यान काव्यों में या तो दिव्य व्यक्तित्वों का गुणगान प्रमुख रहा या उन महामानवों का आदर्श चित्रित हुआ जिन्होंने वीर युग में अपने बलिदान से राष्ट्र की रक्षा की थी।

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पुनः व्यवस्था के हेतु परशुराम, अर्जुन, अभिमन्यु, जनमेजय, तथा ऐतिहासिक वीर चन्द्रगुप्त, पृथ्वीराज आदि की प्रबन्धात्मक रचनाएं लिखी गईं।

आधुनिक युग में शौर्य, वीरता, परसेवा, क्षमा, त्याग, देश प्रेम, आदि सात्विक गुणों का प्रसार भी इन वीरों के जीवन-चरित्र के आधार पर किया गया। 'गीता' के ब्रह्मवाद का अत्यन्त सुन्दर समाधान 'प्रियप्रवास' के कवि ने प्रस्तुत किया कि 'जो कुछ भी विभूतिवान, लक्ष्मीवान, या प्रभावशाली है वह मेरे 'ब्रह्म के, तेजांश से उत्पन्न हुआ है।'[1] गीता में तो ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा है पर 'प्रियप्रवास में'

---

[1] यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ गीता, १०।४१

इसकी नयी व्याख्या है कि जो महापुरुष है उसका अवतार होना निश्चित है। लोक शब्दावली में यह कहा जा सकता है कि महापुरुष के प्रताप से ही लक्ष्मी, वैभव प्राप्त होते है।

वर्तमान काल में चरित्र-चित्रण : इस काल के चरित्र-चित्रण का मूल आधार है सुधार वाद। यहा प्राचीन पात्रों को प्रतीक रूप में चित्रित किया गया। उनके चरित्र-चित्रण पर स्वच्छन्दतावाद का प्रतीकात्मक प्रभाव पड़ा, जिसका महत्व सामयिक रहा। महाभारतीय प्रबन्ध काव्यों पर वर्तमान कालिक मनोवैज्ञानिक प्रणाली ने पर्याप्त प्रभाव डाला। सामान्यतः वीर युग के स्थिर पात्रों को भी मानसिक द्वन्द्व के मध्य चित्रित किया गया। वीर-युग के मानसिक संघर्ष के अभाव की पूर्ति की गई। 'महाभारत' का चरित्र यथार्थवादी है, उसे इस युग मे एकरसता से चित्रित न कर आरोहावरोह के संघर्ष के युक्त दिखाया गया है। इसके अभाव मे आज की रचना अतीत के स्वप्नलोक का प्रतिनिधित्व करती, वह अपने युग की रचना नही हो सकती थी। 'वक संहार', 'सेनापति कर्ण, 'नकुल', 'अंगराज' आदि रचनाओं मे 'महाभारत' के प्रमुख पात्र मानसिक द्वन्द्व के कारण हमें ऐसे लगते है कि उनका अस्तित्व हमारे समान ही है। 'वकसंहार' में कुन्ती का द्वन्द्व दृष्टव्य है। 'महाभारत' की कुन्ती अपने पुत्रो के दिव्यबल मे परिचित है[2] किन्तु 'वकसंहार' की कुन्ती अतिमानवीय न होकर मानवी है।[3] 'अंगराज' में कर्ण के शौर्य की अभिव्यंजना उसी रूप में की गई है, पर परम्परागत प्रवृत्ति के प्रतिकूल पाण्डवों के चरित्र-चित्रण मे कवि कठोर रहा है। उसने युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम आदि का चरित्र उत्कर्ष की उस उच्चता के साथ चित्रित नही किया जिसके रूप में वह पुनरुत्थान काल में चित्रित हुए थे। इस प्रकार महाभारतीय पात्रों के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह दो युग निश्चित ही विभाजक रेखा अंकित करते है।

'महाभारत' के, पुरुष पात्रों में पच पाण्डव, कर्ण, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, अभिमन्यु, शल्य, जयद्रथ, आदि प्रमुख है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वे ही पात्र प्रमुख है जिनको आधार मानकर प्रबन्ध काव्यो की रचना की गई है। उन्ही पात्रो के चरित्र-चित्रण मे प्रभाव और परिवर्तन को अधिक स्थान दिया गया है। प्रमुख स्त्री पात्रो मे द्रौपदी गान्धारी और कुन्ती है। अधिकतर इन्ही पात्रों के चरित्र-चित्रण की ओर लेखकों का ध्यान गया है। गौण पात्रो के चरित्र-चित्रण में

---

१. प्रिय-प्रवास, भूमिका

२. म० आदि० १६०।१४

३. जो थी शिलाली निश्चला,
अवरुद्ध गया उसका गला,
वह देर तक जल मग्न सी लेटी रही। वक संहार पृ० ३४,

उन्हीं को प्रमुखता दी गई है जिन पर लघु आख्यानात्मक काव्यों की सृष्टि हुई है।

'महाभारत' में आये पात्रों का सुविधा के लिए एक अन्य वर्गीकरण हो सकता है, आख्यानात्मक पात्र—वे पुरुष एवं स्त्री पात्र जो किसी आख्यान में आये हैं किन्तु आधुनिक काव्य में प्रबन्ध काव्य का स्वतंत्र विषय होने के कारण प्रमुख बन गये हैं। ऐसे पात्र अपनी कथा की स्वतंत्र सत्ता में प्रमुख हैं। उदाहरण के लिए, नहुष, ययाति, दुष्यन्त, राजा नल, एकलव्य आदि और स्त्री पात्रों में सावित्री, दमयन्ती, हिडिम्बा, उलूपी आदि पात्र।

भगवान् कृष्ण

प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में ऐसे महापुरुषों का जन्म होता है जो अदम्य साहस और आदर्श चरित्र द्वारा जन जीवन में चेतना का आलोक जगाते हैं। ये महान व्यक्तित्व अत्याचार से पीड़ित जनता का उद्धार कर महानिर्वाण प्राप्त करते हैं, और इनकी स्मृति को युग-युगान्तरों तक अपने हृदय में सजो कर विश्व परितृप्त होता रहता है। कालातिपात से ये मानव देव अथवा अवतार की पदवी प्राप्त करते हैं और उनका चरित्र इतना दिव्य हो जाता है कि हम उनके ऐहिक अस्तित्व की कल्पना भी नहीं करते। प्रत्येक युग इनके चरित्रों को अपने अनुसार कल्पित कर, प्रेरणा प्राप्त करता है। उदाहरणस्वरूप कृष्ण ने अपने युग में असुरवृत्ति सम्पन्न राजाओं को नष्ट करके एक छत्र साम्राज्य की स्थापना की। ऐसे में परितृप्त प्रजा ने उन्हें ईश्वर बना दिया और महाकाव्यकार व्यास ने कृष्ण-चरित्र दिव्य रूप में चित्रित किया। कृष्ण ने लोक जीवन में जो स्थान ग्रहण किया उसकी महत्ता के अनुरूप 'महाभारत' में कृष्ण ईश्वर, नारायण के अवतार बन गये और अनेक कथाओं द्वारा इस स्वरूप की पुष्टि की गई।[1] कृष्ण को ब्रह्म माना गया और परम्परानुसार प्रत्येक भक्त उनको उसी रूप में स्वीकार करता है। आधुनिक काव्य में कृष्ण के अवतारी रूप में यत्किंचित परिवर्तन करके उसे आधुनिक बौद्धिक विवेक के प्रकाश में चित्रित किया गया है। यह निर्विवाद है कि आधुनिक युग आस्था, विश्वास और अन्धानुकरण का युग नहीं—साथ ही परम्परा विनिर्मुक्त भी नहीं, अतः मध्य मार्ग यही है कि प्राचीन अलौकिक रूपों को नवीन विवेक से परिष्कृत किया जाय।

'महाभारत' में कृष्ण के तीन रूप उल्लेखनीय हैं

1. नीतिज्ञ कृष्ण,
2. लोक-रक्षक कृष्ण,
3. परब्रह्म कृष्ण।

भगवान कृष्ण के उक्त रूप उनकी चरित्र-यात्रा के तीन विशिष्ट स्थल हैं। नीतिज्ञ कृष्ण ने अपने युग की मान्यताओं की पुनः स्थापना की और लोकरक्षक

---

१ म० उद्योग० ४९।११-२०

बने। लोकरक्षण में उनके योगदान का महान रूप जनता के समक्ष आया और उनको ब्रह्मपद दिया गया। अतः यह यात्रा नीतिज्ञरूप से प्रारम्भ होकर ब्रह्मरूप तक चली। 'महाभारत' के उपरांत भक्ति के विकास के अनेक चरणों में अनेक विराम स्थलों के मध्य कृष्ण का बालरूप, गोपीवल्लभ रूप भी विकसित हुआ। भक्ति के विकास के साथ बालरूप और गोपीवल्लभ रूप की प्रधानता सैद्धान्तिक दृष्टि से रही। 'महाभारत' के उत्तर अंग 'हरिवंश पुराण' में कृष्ण के ब्रह्मरूप को अनेक अवस्थाओं में चित्रित किया गया। 'हरिवंश पुराण' के बाद 'श्रीमद्भागवत' तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में कृष्ण के स्वरूप को परिवर्तित किया गया। 'महाभारत' और आधुनिक काव्य के मध्य कृष्ण के चरित्र ने अनेक रूप बदले और यात्रा के अनेक विराम चिन्ह उपस्थित हुए, किन्तु आधुनिक काव्यकार ने इन मध्यवर्ती स्वरूपों को छोड़कर प्रत्यक्षतः 'महाभारत' से अपना सम्बन्ध स्थापित किया। आधुनिक जीवन की व्यावहारिक विषमताओं के मध्य कृष्ण का कोई और रूप स्थिर नहीं रह सकता था अतः आस्था और विश्वास की आधार प्रतिमा को परिवर्तित करके उसे लोक-जीवन में प्रतिष्ठित किया गया और लोक-रक्षा के प्रमुख स्तम्भ के रूप में नीतिज्ञ और अवतारी कृष्ण की नई व्याख्या की गई।

मध्यकाल में कृष्ण के स्वरूप परिवर्तन का प्रमुख कारण कवियों का साम्प्रदायिक आवेग था। इस आवेग के आलोक में जैन मतावलम्बियों ने कृष्ण का चरित्र अपने अनुरूप ढाल कर प्रस्तुत किया। जीवन सम्बन्धी अनेक घटनाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन करके वैष्णव अवतार कृष्ण को अपने मत का प्रतिनिधि बना दिया। आज का कवि किसी मत विशेष के आग्रह से युक्त नहीं है अतः सामान्यतः कृष्ण-चरित्र के नवीन आलेखन में कोई मौलिक मतभेद मिलने की सम्भावना नहीं है। आज के कवि की दृष्टि प्रमुख रूप से इस बात पर रही है कि कृष्ण के संस्कार जन्य स्वरूप का बौद्धिक सन्तुष्टि के साथ नवीन संदर्भ में प्रदर्शन हो। आस्था की अन्धता के आवरण हटा कर महान व्यक्तित्व, दिव्यशक्ति-सम्पन्न व्यक्तित्व के रूप में कृष्ण का चित्रण किया गया। आज के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक-जागरण के समय में कृष्ण को राष्ट्रीय भावना का प्रतीक मानकर सांस्कृतिक उत्थान का आधार बनाया है।

नीतिज्ञ एवं योगिराज कृष्ण : नीतिज्ञ कृष्ण का चरित्र 'महाभारत' में पुरुषोत्तम रूप में विद्यमान है। लोक-रक्षक कृष्ण ऐसे शक्तिशाली यादव राजा हैं जो सम्पूर्ण भारत की विघटित शक्तियों को एक करना चाहते हैं। उनके चरित्र में सांस्कृतिक उत्थान की भावना और एक महाराष्ट्र की स्थापना का स्वप्न इतना महनीय है कि वे क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर पाण्डवों की छत्रछाया में अखण्ड महाभारत का निर्माण करते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कृष्ण नीति, साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी साधन-मार्ग को अपना सकते हैं। राजनीति में सत्यासत्य की

कसौटी नितान्त व्यावहारिक है, कृष्ण इस व्यावहारिकता की सीमा के अन्तर्गत धर्म की स्थापना के हेतु कटिबद्ध हैं।

आधुनिक काव्य में नीतिज्ञ कृष्ण का चरित्र अधिक स्पृहणीय रहा। बौद्धिक दृष्टि की अधिकता के कारण कृष्ण के अन्य रूपों के प्रति जहां आसक्ति का परम्परागत भाव है वहां योगिराज कृष्ण के महाभारतीय चरित्र मे कवि आधुनिक सुधारक का रूप देखता है। 'प्रियप्रवास' के कृष्ण पुरुषोत्तम हैं, उनमे लोक-सुधार की भावना के उच्चादर्श[1] के साथ कठोर कर्तव्य-पालन[2] अद्भुतप्रत्युत्पन्नमति, कठिनता में धैर्य की शक्ति विद्यमान है। सामान्य व्यावहारिक जीवन मे कृष्ण समत्व के समर्थक हैं।[3] अधिकारी को अधिकार से वंचित रखने की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए शक्ति को जीवन का मुख्य आधार मानते हैं।[4] कृष्ण-चरित्र की मुख्य विशेषता है कि वे भारत से शक्ति के आसुरी दम्भ को समाप्त करना चाहते हैं। पाण्डव प्रत्येक कार्य मे कृष्ण के अनुयायी हैं और गुण अवगुणों का उत्तरदायित्व उन पर ही है। इस भावचित्र को 'सेनापति कर्ण' में अत्यन्त मार्मिकता से चित्रित किया है। कृष्ण काल-चक्र और भाग्य को व्यक्ति-पौरुष से अधिक महत्व देते हैं।[5] वे शस्त्रबल से पराजित आत्मबल का पुनरुत्थान चाहते हैं।[6] इसी कारण कृष्ण और बलराम ने अन्य यादवों का विरोध करके भी पाण्डवों का पक्ष ग्रहण किया।[7]

कृष्ण का चारित्रिक उत्कर्ष उनके कर्मों से सिद्ध है। उन्होंने निबलों को उठा कर संसार मे देवसत्ता की स्थापना की[8] और 'वीर संघात' द्वारा महान लोकादर्श की स्थापना करते हुए विश्व को निष्काम कर्म की शिक्षा दी।[9] युद्ध को रोकने के लिए कृष्ण ने पूर्ण प्रयत्न किया। कर्ण को युद्ध का प्रधान कारण मानकर उसे समझाने की चेष्टा की। 'महाभारत' मे इस स्थल पर कृष्ण का हृदय जिस लोक-व्यापी शान्ति की रक्षा के हेतु व्याकुलता मे पूर्ण लक्षित है[10] उसकी एक झलक

---

१ प्रियप्रवास, सर्ग १६

२ जयभारत, पृ० ३००

३ जयभारत, पृ० ३२१

४ सेवा कराइये या समर, प्रस्तुत सभी प्रकार हैं। जयभारत, पृ० २३२

५ पुरुष बली है नहीं, काल बली होता है—
जय या पराजय मे यश अपयश मे
नियति प्रधान रही— सेनापति कर्ण पृ०, २०६-२०८

६ सेनापतिकर्ण, पृ० २०६

७ सेनापतिकर्ण पृ० २०६

८ अंगराज, पृ० २६७

९ अंगराज, पृ० ३६७

१० म० उद्योग० अध्याय १४०

'रश्मिरथी' में प्राप्त होती है ।[१] नीति के जिन सिद्धान्तों का विवेचन 'महाभारत' में कृष्ण के द्वारा होता है उनसे कृष्ण चरित्र की महत्ता स्वत: सिद्ध है। अर्जुन को प्रबुद्ध कर, गीता के कर्मयोग की स्थापना कृष्ण जैसा महान चरित्र ही कर सकता था ।

लोकरक्षक कृष्ण : 'कृष्णायन' के कृष्ण लोकरक्षक और आर्य साम्राज्य के संस्थापक है । एक विशाल सुसांस्कृतिक आर्य राज्य का निर्माण उनका मुख्य उद्देश्य है । कृष्ण के अवतार का यही मुख्य कारण है ।[२]

'कृष्णायन' के अन्त में कृष्ण के शब्दों से उनके वास्तविक रूप का परिचय प्राप्त हो जाता है—"भारतवर्ष अनेक राजवंशों में विभाजित था, उसको एक रूप करना आवश्यक था अत: जरासंध आदि असुरों को मार कर मैंने इस पृथ्वी का उद्धार किया है" ।[३] 'महाभारत' में कृष्ण ने नवीन भारत का निर्माण किया और आधुनिक कवि भी कृष्ण के चरित्र को 'भारत महि नवयुग निर्माता'[४] के रूप में चित्रित करता है ।

परब्रह्म कृष्ण : लोकरक्षक और योगिराज कृष्ण के अद्भुत कार्यो के महत्व के आधार पर महाभारत काल में ही उन्हें पुरुषोत्तम और दिव्य शक्ति सम्पन्न माना जाने लगा था । शनै: शनै: कृष्ण के चरित्र में ईश्वरत्व का प्रतिपादन हुआ । 'महाभारत' में नीतिज्ञ कृष्ण और ईश्वर कृष्ण दोनों रूप है और आधुनिक काव्य में भी कृष्ण के ईश्वरत्व की व्यापक प्रतिष्ठा है ।

आज के कवि भी मनीषी कृष्ण की लीलाओं का संकीर्तन किया करते हैं । उन्ही से असत् सत् तथा सदसत् रूप सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है । उन्ही से सन्तति, प्रजा, प्रवृत्ति कर्त्तव्य-कर्म, जन्म-मृत्यु तथा पुनर्जन्म होते हैं ।'[५]

'महाभारत' में कृष्ण के ब्रह्म रूप के प्रतिपादन के उपरान्त सबके प्रादुर्भाव के प्रसंग मे अवतारत्व की प्रतिष्ठा की है । विश्ववंद्य महायशस्वी भगवान् विष्णु जगत् के जीवों पर अनुग्रह करने के लिए वसुदेव जी के यहां देवकी जी के द्वारा प्रकट हुए । वे भगवान आदि अन्त से रहित, परमदेव, सम्पूर्ण जगत के कर्ता तथा प्रभु हैं ।[६]

भगवान् कृष्ण के इस रूप की छाया सम्पूर्ण 'महाभारत' में व्याप्त है । युद्ध की तथा युद्ध पूर्व की प्रमुख घटनाओं मे उनके दिव्य व्यक्तित्व का समाधानात्मक

---

१. रश्मिरथी, पृ० ३७-३८
२. कृष्णायन, पृ० ३१६
३. कृष्णायन, पृ० ९०६
४. कृष्णायन, पृ० ३१४
५. म० आदि० १।२५६-५८
६. म० आदि० ६३।९९-१०० जयद्रथवध, पृ० ९३

हस्तक्षेप उनके प्रभुत्व की उद्घोषणा है। अनेक स्थानो पर कार्यों और प्रभावो से तथा अनेक स्थान पर सिद्धान्त निर्वचन मे कृष्ण के सर्वव्यापी, सर्वातीत रूप का चित्रण किया गया है। सम्भवत यही कारण था कि अर्जुन ने निरस्त्र कृष्ण की सहायता को सशस्त्र सेना से अधिक महत्वपूर्ण समझा[1]। पाण्डवो की विजय का मूल-मन्त्र भी कृष्ण के द्वारा ही पढा गया।

महाभारत की घटनाओ मे सक्रिय भाग लेने के कारण अन्य पात्रो द्वारा कृष्ण के स्वरूप की व्याख्या अधिक गम्भीर रूप से हो पाई है। खाण्डव दाह के समय कृष्ण का ईश्वरत्व प्रकाश मे आता है। इसके अतिरिक्त राजसूय यज्ञ द्रौपदी-वस्त्र-हरण, दुर्वासा-कोप, शान्ति-दूत, जयद्रथ वध, घटोत्कच-वध के प्रसग भगवान् कृष्ण के अद्वितीय महत्व की घोषणा करते है। उन्होंने ईश्वर के रूप मे पाण्डवो की रक्षा की और विस्तार से गीता प्रसग मे अपने स्वरूप पर प्रकाश डाला। इन प्रसगो के साथ मार्कण्डेय, भीष्म, दुर्योधन, अर्जुन, युधिष्ठिर, आदि प्रमुख पात्रो ने समय-समय पर कृष्ण की गरिमा का गान किया।[2]

'महाभारत' मे कृष्ण के व्यक्तित्व को साधारण चरित्र की कसौटी पर रखा ही नही जा सकता। वे ब्रह्म हैं, परम सत्ता, अव्यक्त और सर्वव्यापक हैं। वेद द्वारा प्रतिपादित निर्गुण, अचिन्त्य ब्रह्म की भाति ही कृष्ण का स्वरूप सर्वमय, सर्व कारण तथा कार्यकारणातीत होते हुए सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। अत भगवान् कृष्ण परम तत्व विशेष हैं। मिश्र जी कृष्ण के ब्रह्म रूप की घोषणा करते हैं।

तुम योगेश योग साकारा योग-शक्ति सिरजत भवसारा।
समृति अणु-अणु व्याप्त तुम प्राण रूप भगवान।[3]

धर्मराज युधिष्ठिर

'महाभारत' मे धर्मराज युधिष्ठिर का सात्विक चरित्र विस्तृत रूप मे चित्रित है। वे धर्म के मूर्तिमान स्वरूप, धर्म के अश से उत्पन्न, सत्वगुण प्रधान व्यक्ति हैं, 'महाभारत' मे उनका चरित्र असाधारण, लोकोत्तर एव स्थिर है। उनमे धैर्य स्थिरता, सहिष्णुता, नम्रता दयालुता, और अविचल प्रेम आदि महान गुण विद्यमान हैं। राजा होकर भी वे मानव मात्र की समानता और स्वतत्रता के लिए सघर्ष करते रहे। अनेक सघर्ष-मय परिस्थितियो मे, जिनमे उनके सभी भाइयो के हृदय मे क्रोध की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, वे शान्त, स्थिरचित्त बने रहे। वीरयुगीन चरित्र की विशेषताओ के प्रतिकूल युधिष्ठिर सत्वगुण-सम्पन्न, सर्वदा सात्विकवृत्ति-सम्पन्न

---

१. सेना रहे मुझको जगत भी तुम बिना स्वीकृत नहीं।
जयभारत, पृ० ३०१

२ जयद्रथ वध, पृ० ६२-६३

३ कृष्णायन, पृ० ५४

बने रहे। उनके प्रत्येक कार्य में आदर्श की स्थापना रही।

आधुनिक कवियों ने युधिष्ठिर के चरित्र का पुनस्पर्श किया है। पुनरुत्थान-काल में युधिष्ठिर के चरित्र का केवल पुनराख्यान है। वर्तमान काल के काव्यों में 'अंगराज' 'सेनापति कर्ण' आदि काव्यों में युधिष्ठिर के परम्परागत चरित्र को अन्तः संघर्ष और वीरत्व के दौर्बल्य के नवीन रूप में देखने का प्रयास किया गया है। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में युधिष्ठिर का चरित्रांकन 'महाभारत' के शान्ति पर्व के जिज्ञासु युधिष्ठिर के अनुरूप किया है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर पश्चाताप और सन्ताप से तप्त हैं और जीवन के शाश्वत प्रश्नों का समाधान करते हैं, दिनकर के युधिष्ठिर मूल में 'महाभारत' के अनुरूप हैं, किन्तु उनके सामने कुछ नये प्रश्न उपस्थित हैं। उनमें अन्तः संघर्ष अधिक है।

आधुनिक कवियों के समक्ष युधिष्ठिर के चरित्र-चित्रण की समस्या जटिल रूप मे आई, क्योंकि वे अपने गुणों के लिए चिर प्रसिद्ध हैं। यदि उन्हें उसी रूप में स्वीकार किया जाता तो मौलिकता का प्रश्न सामने आता, ऐसी अवस्था में पुनस्पर्श एवं पुनः सर्जन ही एकमात्र समाधान होता है। इन कवियों ने पुनःसर्जन कम और पुनस्पर्श अधिक किया है।

युधिष्ठिर के चरित्रांकन के प्रमुख स्थल हैं, वारणावत-यात्रा, द्रौपदी स्वयंवर द्यूत-प्रसंग, वन में दुर्योधन-गन्धर्व-युद्ध, जयद्रथ-प्रसंग, अरणि-मथनिका-प्रसंग, युद्ध-प्रसंग, भीष्म-वार्ता, स्वर्गारोहण-प्रसंग। उक्त प्रसंगों के अतिरिक्त अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें युधिष्ठिर का चारित्रिक उत्कर्ष अभिव्यक्त हुआ है। इन प्रसंगों में उनका चरित्र विवादास्पद रूप ग्रहण कर गया है अतः इन्हीं पर विवेचना करना अधिक तर्क-संगत होगा। 'महाभारत' और आधुनिक काव्य में एक मौलिक भेद यह है कि 'महाभारत' में युधिष्ठिर का चरित्र स्थिर है, वे केवल स्थिति की गम्भीरता और धर्म के स्वरूप की हानि के कारण कुछ अन्तः संघर्ष से युक्त होते हैं। किन्तु आधुनिक काव्य में मनोवैज्ञानिक रूप से उनके चरित्र में स्थिति परक मानसिक द्वन्द्व दिखाया है।

आज्ञापालन : युधिष्ठिर के चरित्र का यह गुण वारणावत, द्यूत और युद्ध तथा शान्ति प्रसंग में अभिव्यक्त हुआ है। युधिष्ठिर बड़ों के आज्ञाकारी हैं। उनके आज्ञापालन में अतर्कित रूप से संलग्न हो जाते हैं। 'महाभारत' के युधिष्ठिर यह जानते हैं कि वारणावत भेजने में धृतराष्ट्र की मनोवृत्ति दूषित है फिर भी वे उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके चले जाते हैं। 'जयभारत' में गुप्त जी ने उनकी सहृदयता का निरीह-चित्रण किया है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर अपने को असहाय समझ कर वारणावत जाते हैं।[1] किन्तु आधुनिक काव्य में इस असहायता के भय का चित्रण नहीं है। 'महाभारत' में चारित्रिक दौर्बल्य प्रकट होता है। गुप्त जी ने इस स्थिति

---

१. म० आदि० १४२।११

का पुन सर्जन करके युधिष्ठिर के चरित्र का परिष्कार किया है।[1] असहायत्व की स्थिति से शीलवश जाना अधिक उत्कृष्ट और श्लाघ्य है।

द्रौपदी स्वयवर प्रसग मे भी युधिष्ठिर के चरित्र का परिष्कार किया गया है। 'महाभारत' मे युधिष्ठिर माता की आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं। किन्तु मूल-ग्रन्थ मे उनके चरित्र की स्थिति द्विविधापूर्ण प्रदर्शित की है। वे प्रथम तो अर्जुन के धर्म विवाह की स्वीकृति देते हैं[2], तत्पश्चात् कृष्ण द्वैपायन के शब्दो का स्मरण करके द्रौपदी के लिए पचपतित्व की स्वीकृति देते हैं।[3] गुप्त जी ने इस स्थल पर युधिष्ठिर के चरित्र का स्वतत्र रूप मे समाधान किया है। दो ज्येष्ठ रहें और दो देवर होकर रहें। इस प्रकार द्रौपदी के सुख को पाचो भोगें।[4]

'महाभारत' मे युधिष्ठिर का चरित्र सर्वथा अनासक्त निस्पृह राजा के रूप मे चित्रित है। आधुनिक काव्य मे अधिकाश कवियो ने उसे यथावत स्वीकार किया है। द्यूत के प्रसग मे युधिष्ठिर की शान्ति, सहनशीलता असाधारण है। अपनी पत्नी को अपने सामने इस प्रकार तिरस्कृत होते देखकर भी जिस व्यक्ति को क्रोध नहीं आया उसके चरित्र की शीलता कितनी हो सकती है, इसी आधार पर 'कृष्णायन' के युधिष्ठिर कितने आज्ञाकारी हैं।

> मापेउ निश्चय युक्त स्वर, सुननहि धर्म नरेश,
> 'पितु अग्रज वे पूज्य मम, सकहु न टारि निदेश ॥[5]

'महाभारत' मे युधिष्ठिर अनिच्छा से द्यूत के लिए जाते हैं[6] और 'कृष्णायन[7]' 'जयभारत[8]', आदि काव्य ग्रथो मे भी अनिच्छा का चित्रण किया गया है। द्रौपदी के अपमान के बाद भी युधिष्ठिर विनयी और आज्ञाकारी बने रहते हैं।[9]

दयालुता एव क्षमा 'महाभारत' मे युधिष्ठिर आदि से अन्त तक दया और क्षमाभाव से युक्त हैं। असहायो पर दया करना चरित्र का साधारण धर्म हो सकता है, किन्तु दुष्ट और अत्याचारियों पर भी दया दिखाना युधिष्ठिर जैसे व्यक्ति का ही धर्म था। 'महाभारत' में आये अनेक प्रसगो मे से दुर्योधन-गन्धर्व तथा जयद्रथ-

---

१ जो आज्ञा को छोड युधिष्ठिर क्या कहते।
सुजन शीलवश वहन दु ख भी हैं सहते। जयभारत, पृ० ७०

२ म० आदि० १६०

३ म० आदि० १६०।१६

४ जयभारत, पृ० १२०

५ कृष्णायन, पृ० ४१६

६ म० सभा० ५६।१६

७ कृष्णायन, पृ० ४१८

८ जयभारत, पृ० १४५

६ जयभारत, पृ० १५०

द्रौपदी-प्रसंग इस विषय में मार्मिक स्थल है।

युधिष्ठिर द्रौपदी के समक्ष क्रोध की निन्दा और क्षमा की प्रशंसा करते हैं। इन विचारो में उनका चरित्र स्पष्ट हो जाता है।[१] युधिष्ठिर क्षमा को ही धर्म कहते हैं।[२] इस सिद्धान्त का व्यवहार तब होता है जब उनको त्रास देने के लिए दुर्योधन वन में आकर संयोगवश गन्धर्वों से परास्त होता है और दुर्योधन के सैनिकों की प्रार्थना पर युधिष्ठिर अर्जुन को दुर्योधन को छुड़ाने भेजते है[३] दुर्योधन के छूटने पर युधिष्ठिर उसे क्षमा करते है। 'वन वैभव' में गुप्त जी ने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में युधिष्ठिर की दयालुता का चित्रण किया है।

> कौरवों ने जो अत्याचार, किये हैं हम पर बारम्बार।
> करेंगे उनका हमीं विचार, नहीं औरों पर इसका भार।
> क्रूर कौरव अन्यायी हैं, हमारे फिर भी भाई है।[४]

जयद्रथ-द्रौपदी प्रसंग में युधिष्ठिर की दयालुता, क्षमाशीलता और मानवमात्र की स्वतन्त्रता का भाव अभिव्यक्त होता है।

> जाये जयद्रथ नही किसी को दास बनाते है हम।
> अपनी-सी सबकी स्वतंत्रता सदा मनाते है हम।[५]

आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में युधिष्ठिर का चरित्र-चित्रण विस्तार से उन्हीं काव्यों मे हुआ है जो सामान्यतः सम्पूर्ण कथासार के आधार पर रचित हुए हैं। ऐसे काव्य अल्प संख्या में है। 'कृष्णायन' में स्थान-स्थान पर युधिष्ठिर की दयालुता, क्षमाशीलता, निस्पृहा और अनासक्ति का चित्रण किया है। यहां युधिष्ठिर आदर्श मानव हैं जो स्वार्थ और परस्पर संघर्ष के युग के मध्य निःस्वार्थ व्यक्तित्व के प्रतीक है। छोटों को समान समझने की भावना आज की महती आवश्यकता है। यह समानता जीवन के सभी क्षेत्रों में आवश्यक है। 'जयभारत' के युधिष्ठिर समानता के समर्थक हैं।

> "सुनोतात हम सभी एक हैं भवसागर के तीर[६]
> × × ×
> परमात्मा के अंगरूप हैं आत्मा सभी समान।[७]

---

१. म० वन० २९।१-५२
२. म० वन० २९।३६-३७
३. म० वन० २४३७
४. जयभारत, पृ० २०८
५. जयभारत, पृ० २२६
६. जयभारत, पृ० ५७
७. जयभारत, पृ० ५७

राजसूय के प्रसग मे 'अतिथि मात्र सब देव रूप थे जो हो आर्य अनार्य'[1] कहकर गुप्त जी ने युधिष्ठिर की समानता को मूलग्रन्थ से एक स्तर आगे चित्रित किया है। 'नकुल' के युधिष्ठिर समतावादी हैं।[2] सम्पूर्ण काव्य मे युधिष्ठिर का चरित्र मार्दवपूर्ण औदार्य के साथ अभिव्यक्त हुआ है।[3] 'महाभारत' के युधिष्ठिर चिन्तन, मनन, उपदेश द्वारा मानव के वास्तविक जीवन की सत्यता का उद्घाटन करते हैं। उनमे सिद्धान्त प्रतिपादन की अधिकता इसलिए है कि सिद्धान्तो के स्वीकार करने से मानव मूलत सजग हो जाता है। समस्त विश्व मे प्रेम का उद्घोष महान चरित्र ही कर सकता है। आज के अलगाव मे ऐसी घोषणा का विशेष महत्व है। कवि आधुनिक युग के ज्वलन समवितरण के प्रश्न का समाधान त्याग मे ढूँढता है। इसके लिए युधिष्ठिर के चरित्र का पुन सृजन किया गया है।

अरणि मथनिका प्रसग मे नकुल के प्राणदान का कारण माद्री तनय को जीवित देखना है।[4] यह कारण अपने मे भारी होते हुए भी स्थूल है। यद्यपि इस ाव के मूल मे भी समानता का भाव विद्यमान है, पर नकुल मे युधिष्ठिर का चरित्र नये रूप मे, नये विचार के साथ चित्रित किया गया है। क्षमा, दया के मूलवर्ती भाव के साथ ही समत्व भाव का विकास होता है। दुर्योधन-चित्ररथ-युद्ध-प्रसग म कहे गये युधिष्ठिर के वाक्यो मे और 'नकुल' मे अभिव्यक्त विचार मे पूर्ण साम्य है। युधिष्ठिर भीम को समझाते हैं "भाई बन्धुओं मे मतभेद झगडे होते ही रहते हैं इससे आत्मीयता नही चली जाती[5] यक्ष मेरा विचार है कि अनृशसता ही परम धर्म है।[6] 'नकुल' के कवि ने इसी भाव को नवीन रूप से अभिव्यक्त किया है। इस सवाद को लेकर कवि शोषण के विरोध मे युधिष्ठिर जैसे महान मानव के विचारो को प्रकट करता है। 'नकुल' के युधिष्ठिर आज के समाज की विडम्बना का चित्र[7] प्रस्तुत करते हुए छोटो के हेतु त्याग का समर्थन करते हैं।[8] 'महाभारत' के युधिष्ठिर ने आदि मे अन्त तक आत्मदान किया, वे बारम्बार अनुजो को भी यही शिक्षा देते रहे।

---

१ जयभारत, पृ० १४२

२ करना है यदि हमे यहा यह पाप निवारण,
हो अभीष्ट सर्वत्र प्रेम का पूर्ण प्रसारण। नकुल, पृ० १०१

३ सियाराम शरण गुप्त। स० डा० नगेन्द्र, पृ० २०५

४ म० वन० ३१३।१३१

५ म० वन० २४३।२

६ आनृशस्य परो धर्म परमार्थाच्च मे मतम्।
आनृशस्य चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु। म० वन० ३१३।१२६

७ नकुल, पृ० १०१

८ छोटों का प्रतिपाल, वही उनका जीवन प्रण, नकुल, पृ० १००

शिष्टाचार-सात्विकता : आत्मदान, उदारता, क्षमा तथा अन्य सात्विक गुणों के साथ उनमें सबसे मुख्य गुण है निज की महत्ता की उपेक्षा और शिष्टाचार का पालन। गुरुजन, पितामह, भाई आदि के प्रति एक प्रकार के शिष्टाचार का पालन होना चाहिये, यह उनको सर्वदा ज्ञात रहा। उनके सिद्धान्त और व्यवहार में किसी प्रकार का अन्तर नहीं।[1]

कंक[2] और योद्धा[3] के रूप में युधिष्ठिर ने शिष्टाचार का पालन किया।

'महाभारत' मे युधिष्ठिर के चरित्र का उत्कर्ष सिद्धान्त प्रतिपादन तथा व्यवहार दोनों में हुआ है। आधुनिक काव्यकारों की सीमा में केवल व्यवहार को ही स्थान मिला है। जिस प्रकार 'महाभारत' में युधिष्ठिर द्रौपदी, अर्जुन, भीम, के साथ विचार-विवेचन मे सिद्धान्तों की व्याख्या करते है उस प्रकार का विवेचन आधुनिक काव्य में नहीं हो पाया है। किसी भी प्रबन्ध काव्य में युधिष्ठिर अपने विचारों की तद्वत अभिव्यक्ति नहीं कर पाये। केवल व्यावहारिक दृष्टि से ही युधिष्ठिर के चरित्र का चित्रण हुआ है।

निस्पृहअनासक्ति : 'महाभारत' के युधिष्ठिर निस्पृह और अनासक्त है। युधिष्ठिर की सात्विकता का यही मूल है कि वह संसार के प्रति अनासक्त है और सर्वदा धर्मोपदेश देते दिखाई देते है। युद्धोपरान्त आत्मग्लानि, धृतराष्ट्र-गान्धारी के प्रति निश्छल आदर और राज्य के प्रति उपेक्षा के भाव से आधुनिक कवि सत्य, धार्मिकता, निस्पृहा, करुणा और शान्ति का प्रसार करता है। युधिष्ठिर के चरित्र की अवतारणा आज के युग में यह सिद्ध करती है कि त्याग, क्षमा और दया का महत्व शाश्वत है।

राज सूर्य में धर्मराज यों सबको लगे विनीत,
हारे से वे बरत रहे थे जगतो भर को जीत।[4]

संचय मे दान की प्रवृत्ति के हेतु इससे अधिक मार्मिक अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है। युधिष्ठिर के विरोधी पात्र भी उनके इस गुण से अभिभूत है 'रश्मिरथी' का कर्ण कृष्ण से कहता है कि "मेरे जन्म की कथा युधिष्ठिर से न कहना, यदि उनको ज्ञात हो गया तो वे समस्त राज्य मुझे देगे और मैं भी मित्र की प्रतिज्ञा के कारण उसे अपने पास न रखकर दुर्योधन को सौंप दूंगा"। इस प्रकार युधिष्ठिर पुन: ऐश्वर्य हीन हो जायेंगे।[6] कृष्ण और कर्ण के संवाद के मध्य 'महाभारत' में कर्ण के

---

१. जयभारत, पृ० १४१
२. म० विराट० ६८।५४
३. म० विराट० ६८।५६
४. म० भीष्म० ४३।३७
५. जयभारत, पृ० १४१
६. रश्मिरथी, पृ० ५६

मुख से ऐसी उक्ति का अभाव है। 'रश्मिरथी' के लेखक ने अप्रत्यक्ष रूप से कर्ण और युधिष्ठिर दोनों के चरित्र की विशेषताओं का चित्रण किया है। कर्ण युधिष्ठिर की अनासक्ति की प्रशंसा करता है।[1] 'जयभारत' और 'रश्मिरथी' के युधिष्ठिर 'महाभारत' के अनुरूप हैं। शान्ति पर्व में व्यक्त युधिष्ठिर की अनासक्ति इन प्रसंगों का आधार है।[2] 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर की आत्मग्लानि उनकी अनासक्ति का ही एक रूप है। यदि युधिष्ठिर अनासक्त न होते तो आत्मग्लानि का प्रश्न ही उपस्थित न होता। आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में 'कृष्णायन',[3] 'जयभारत',[4] 'कुरुक्षेत्र',[5] आदि प्रमुख काव्यों में स्पष्टतः युधिष्ठिर के चरित्र को आस्था से चित्रित किया है। युधिष्ठिर में मानसिक द्वन्द्व की स्थिति अवश्य है किन्तु वह मूल से पृथक् नहीं। शान्ति-पर्व में युधिष्ठिर आत्मग्लानि से तप्त होकर राज्य छोड़कर वन में सन्यासी होकर रहने का निश्चय करते हैं। युधिष्ठिर का यह विचार विजेता के अश्रु के रूप में मानवता का सबसे प्रमुख आश्रय है। 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर जीवन के कष्टतम क्षणों में भी धर्म का आश्रय न छोड़कर शान्ति एवं क्षमा को प्रमुख समझते हैं और बार-बार धर्म के हेतु राज्य त्याग की बात करते हैं।[6] 'कुरुक्षेत्र' के कवि ने धर्मराज की इस मनोदशा का चित्रण अत्यन्त मार्मिक शब्दों में किया है। युधिष्ठिर के हृदय की सर्वाधिक कष्टकारक स्थिति है—उनके नाम और सांसारिक कर्म की कठोरता में भेद। वे धर्मराज होकर भी झूठ से न बच सके, अजातशत्रु होकर भी युद्ध जैसा पातक करना पड़ा, अतः वे चाहते हैं कि उनको कोई धर्मराज न कहे।[7]

युधिष्ठिर की निस्पृहा का सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग महाभिनिष्क्रमण है। 'महाभारत' के इस प्रसंग को लेकर गुप्त जी ने 'जयभारत' में चरित्रों का सर्वाधिक परि-

---

१ साम्राज्य न कभी स्वयं लेंगे
सारी सम्पत्ति मुझे देंगे। रश्मिरथी, पृ० ४७

२ म० शान्ति० ६।६-७

३ कृष्णायन, पृ० ७६४

४ तन से सिंहासन पर, मन से वन में भूप विराजे। जयभारत, पृ० ४३०

५. जिस दिन समर की अग्नि बुझ शान्त हुई,
एक आग तब से ही जलती है मन में,
हाय पितामह किसी भांति नहीं देखता हूँ,
मुँह दिखलाने योग्य निज को भुवन में। कुरुक्षेत्र, पृ० १६-२०

६ म० शान्ति० ७।१५-१६

७ जानता हूँ पाप न धुलेगा वनवास में भी,
छिपा तो रहूँगा दुःख कुछ तो भुलाऊँगा,
व्यंग्य से बिंधेगा वहां जर्जर हृदय तो नहीं,
वन में कहीं तो धर्मराज न कहाऊँगा। कुरुक्षेत्र, पृ० २०

वर्तन किया है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर अनुजों के पतन पर उनके प्रमुख दोष को कारण बताते हुए आगे बढ़ जाते हैं। जैसे उन व्यक्तियों के पतन पर युधिष्ठिर को क्षणिक क्षोभ भी न हो। युधिष्ठिर का यह चरित्र देवोपम है—'जयभारत' में युधिष्ठिर कारणों की विवेचना न करके अपने को ही बन्धन मुक्त पाते हैं।

युधिष्ठिर के विषय में गुप्त जी की घोषणा है कि वे धर्मराज्य की स्थापना करके भोगों से विरत हो गये।[1]

ऐश्वर्य के प्रति विरक्ति का भाव और आने वालों के लिए स्थान देने की प्रवृत्ति।[2] युधिष्ठिर के उदार चरित्र द्वारा ही सम्भव हो सकती थी। युधिष्ठिर को द्वेष और मोह से रहित अनासक्त भोगी के रूप मे दिखाया गया है।[3]

वीरत्व : युधिष्ठिर के चरित्र के त्याग, करुणा, अनासक्ति, क्षमा आदि गुणों के साथ उनकी स्थिति मे सर्वथा प्रतिकूल वीरत्व का गुण भी दिखाया गया है। शल्यपर्व में युधिष्ठिर ही शल्य का वध करते हैं और आन्तरिक गुणो के साथ शारीरिक गुणों का भी परिचय देते हैं। आधुनिक काव्यो में उनका वीरत्व गुण विरल रूप से ही दिखाई देता है। गुप्त जी ने युद्ध-रचना में 'अंगराज' में शल्य-वध के अवसर पर और 'शल्यवध' मे युधिष्ठिर के वीरत्व की अभिव्यक्ति की है। यह गुण प्रसंग से ही आया है। 'महाभारत' में कृष्ण युधिष्ठिर के वीरत्व की प्रशंसा करते हुए शल्य-वध के हेतु प्रेरित करते हैं।

तस्माद्य न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूल सम विक्रमम्॥

'हे पुरुष सिंह आपका पराक्रम सिंह के समान है। आज आपके अतिरिक्त मैं दूसरे को नही देखता, जो शल्य के सम्मुख होकर युद्ध कर सके।[4]

'शल्यवध' मे 'महाभारत' के अनुरूप ही युधिष्ठिर के वीरत्व की अभिव्यक्ति की गई है।[5]

गुप्त जी ने भी स्वभाग लेने के हेतु अहिंसक के शस्त्र-ग्रहण का समर्थन किया है।[6]

जीवन पर्यन्त अहिंसा वृती युधिष्ठिर के इस क्रोध और वीरत्व में अधिकार प्राप्ति के हेतु संघर्ष की व्यापक स्वीकृति है। आज के युग की विषमता में और संघर्षयुक्त स्थितियों मे अहिंसक के हाथ मे शस्त्र देना महती आवश्यकता है। युधि-

---

१. जयभारत, पृ० ४३६
२. जयभारत, पृ० ४४४
३. जयभारत, पृ० ४४३
४. म० शल्य० ७।३३
५. शल्यवध, पृ० ३९
६. जयभारत, पृ० ३९७

ष्ठिर के चरित्र के इस स्वरूप के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि अधिकार प्राप्ति के हेतु संघर्ष करना अनीति नहीं है।

महाभारत के प्रतिकूल आधुनिक काल में प्रत्येक वस्तु को नवीन रूप में देखने के इच्छुक और मनोवैज्ञानिक आधार पर चरित्रों की अवतारणा करने वाले कतिपय कवियों ने 'महाभारत' के पात्रों को प्रतिकूल रूप म चित्रित किया है। 'महाभारत' के सदंश उनके लिए असत हैं और सदसत होकर चित्रित किये गये हैं। 'अंगराज' मे लेखक ने कर्ण के चरित्र को उठाने के प्रयास मे युधिष्ठिर के चरित्र को गिराया है। युधिष्ठिर का परम्परागत चरित्र एक झटके मे खरोच दिया गया। 'अंगराज' मे युधिष्ठिर को राज्यलोलुप अनधिकार चेष्टा करने वाला, भोगी, चित्रित किया है। उनका दृष्टिकोण परम्परा विरोधी है, राम और युधिष्ठिर की तुलना करने कवि युधिष्ठिर को परराज्य ग्राहक करता है।[1]

वारणावत प्रसग मे पाण्डवों ने ही पहले योजना बनायी थी। वे द्रौपदी स्वयवर मे जाना चाहते थे।[2] उन्होंने विरोधी प्रचार किया[3] युधिष्ठिर ने झूठ बोलकर द्रोण की हत्या कराई।[4] युधिष्ठिर द्रौपदी के प्रति कामसक्त थे। युधिष्ठिर कापुरुष थे।[5] इस प्रकार 'अंगराज' मे कवि ने कौरवो का पक्ष प्रतिपादन करने के हेतु युधिष्ठिर के चरित्र म गर्हित परिवर्तन किया है जिससे न तो कोई लोकादर्श स्थापित हुआ और न कोई युग की समस्या का समाधान ही। इस प्रकार के निरर्थक प्रयासो का हम स्वागत नहीं करते।

गुप्त जी ने युधिष्ठिर के चरित्र को आदर्शरूप मे उपस्थित कर आज के युग मे सात्विकता, स्नेह, करुणा की स्थापना की है। इसके विपरीत 'अंगराज' मे उनके चरित्र को हेय चित्रित किया गया है। 'जयभारत' के युधिष्ठिर मृत तुल्य दुर्योधन को देखकर पश्चाताप करते हैं

> राम, अब भी मैं यहीं रहता हूँ मन मे,
> कामना नहीं है मुझे राज्य की, या स्वर्ग की,
> किंवा अपवर्ग की भी, चाहता हूँ मैं यही

---

१ युधिष्ठिर की राज्य लोलुपता का ध्यान कीजिए। राम ने अपना राज्य त्यागा था। युधिष्ठिर दूसरे के राज्य पर आस लगाये था। वह तो स्वार्थान्ध था। अंगराज भूमिका, पृ० १९-२०

२ अंगराज, भूमिका, पृ० २२

३ अंगराज, पृ० २०

४ निरस्त्रगुरु का वध कराके इसने अपनी कृतघ्नता और नीचता का ही परिचय दिया। अंगराज, भूमिका, पृ० २२

५ अंगराज, पृ० ६०

ज्वाला ही जुड़ा सकूँ मैं अपनों के दुःख की।[1]

आज का मानव मिथ्या अहवाद से ग्रस्त है। अपने अहंकार के कारण वह अपनी भूल पर भी पश्चाताप नही करना चाहता। 'जयभारत' मे कवि ने विजेता के पश्चाताप में मानव के महान गुण की अभिव्यक्ति की है। मूलग्रंथ में दुर्योधन के पतन पर युधिष्ठिर दार्शनिकों की भांति युद्ध को विधाता की इच्छा कहकर दुर्योधन को समझाते है। 'महाभारत' के युधिष्ठिर ऐसे मार्मिकस्थल पर भी धर्मोपदेष्टा दृष्टिगोचर होते है[2] गुप्त जी ने इस स्थल पर युधिष्ठिर के चरित्र को अत्यन्त द्रवित रूप मे चित्रित किया है।[3]

अंक मे समेट कर अपने शत्रु से अपनी भूल स्वीकार करना निश्चित ही महत्ता का द्योतक है और यह महत्ता युधिष्ठिर में ही हो सकती है। आज का कवि अपनी युगीन परिस्थितियों के कारण उस स्थिर चरित्र को मानसिक द्वन्द्व की स्थिति में चित्रित करता है। युधिष्ठिर के चरित्र में धर्मनिष्ठा और कर्त्तव्यपरायणता का भाव आद्योपान्त लक्षित होता है। वे भावना के प्रतिकूल आचरण नहीं करते। आज के युग मे ऐसे चरित्रों की अवतारणा की महती आवश्यकता है जिसके द्वारा जनता एक ओर तो अपने स्वर्णिम अतीत से परिचित हो और दिव्य आदर्श का अनुकरण करने की प्रेरणा प्राप्त करे अतः गुप्त जी, मिश्र जी, दिनकर आदि ने ऐसे ही दिव्य चरित्रों की अवतारणा की है जो हमारे वीर युग के प्रतिनिधि है। तथापि यह बात अवश्य है कि आधुनिक काव्य मे युधिष्ठिर का साधुवाद उतना नही है जितना 'महाभारत' मे।

महाबली भीमसेन

'महाभारत' के प्रमुख पात्रो मे भीमसेन का व्यक्तित्व अपनी पृथक् सत्ता रखता है। अपनी शारीरिक शक्ति के कारण भीम अपने युग के सर्वश्रेष्ठ योद्धा सिद्ध हुए। भीम के चरित्र में वीर-युग के सभी गुण विद्यमान है। उनका शक्तिशाली व्यक्तित्व स्वाभिमान, गर्व, वीरत्व, सहनशीलता आदि मानवीय गुणों के समन्वय से निर्मित हुआ है। आधुनिक युग में 'बकसंहार', 'हिडिम्बा', दुर्योधन वध'। आदि खण्ड काव्यों मे उनकी चारित्रिक विशेषताएं पूर्णरूप से व्यक्त है। 'महाभारत' के अन्य प्रसंगों पर लिखे गये काव्यों में 'सेनापति कर्ण', 'जयभारत', 'नकुल', आदि में भीम का चरित्र प्रासंगिक रूप से आया है। किन्तु थोड़े कथानक मे भी उनकी महाभारतीय

---

१. जयभारत, पृ० ४१०

२. म० शल्य० ५९।२२-२३

३. अंक में समेटे उसे बोले आर्द्र वाणी से
भाई यदि अब भी तू भूल नहीं मानता
तो मैं मानता हूँ उसे तू क्षमा ही कर दे। जयभारत, पृ० ४१०

मूल विशेषताएं अभिव्यंजित हो पाई हैं।

'महाभारत' में भीम के चरित्र की विशेषताओं के लिए बालक्रीड़ा, रंगभूमि लाक्षागृह और वनवास, विराट पर्व, युद्ध तथा अन्तत दुर्योधन-वध के प्रसंग मुख्य हैं। आधुनिक काव्य में इन्हीं प्रसंगों के प्रवाह में भीम का चरित्र-चित्रण हुआ है।

शौर्य-वीरत्व भीमसेन के चरित्र का सब प्रमुख गुण वीरत्व है। 'महाभारत' के अनेक, प्रसंगों में उनकी अद्भुत शक्ति और वीरता प्रकट हुई है। नागलोक जाकर भीम ने ऐसा रसपान किया, जिससे उनकी शक्ति दस हजार हाथियों के समान हो गई।[1]

अपरिमित बल के कारण भीम में गर्व का आधिक्य, वीरता के प्रति अटूट विश्वास से गर्वोक्ति, वीरयुगीन गुण के रूप में व्यक्त हुई है। रंगभूमि प्रसंग में भीमसेन का जातीय गर्व कर्ण के अपमान में व्यक्त हो उठा—कर्ण को युद्ध के लिये तत्पर होते देख भीम कहते हैं—"अरे सूत पुत्र। तू तो अर्जुन के हाथ से मरने योग्य भी नहीं है, तुझे तो शीघ्र ही चाबुक हाथ में लेना चाहिए।"[2]

'अगराज' में 'महाभारत' की उक्ति के आधार पर भीम के गर्व की व्यंजना हुई है।[3]

भीमसेन के चरित्र में गर्व और औद्धत्य इतना अधिक था कि वे समय पर शत्रु का अपमान करने से नहीं चूकते थे। दुर्योधन वध के समय भीम का प्रतिकार तीव्र रूप में व्यक्त हुआ। जिस दुर्योधन के कारण उन्हें अनेक कष्ट सहने पड़े, उसका अपमान आदर्श के प्रतिकूल हो सकता है, किन्तु मनोवैज्ञानिक अवश्य है। दुर्योधन के तिरस्कार की पृष्ठभूमि द्रौपदी का अपमान था।[4]

युधिष्ठिर ने भीम के इस कार्य को आदर्शहीन कहा। भीम आदर्शवादी अवश्य थे किन्तु सीमा के अन्दर वे सर्वस्व गंवा कर आदर्श की रक्षा करने की भावना को अव्यावहारिक समझते थे। 'अगराज' में भीम का यह कार्य छलयुक्त बताया गया है[5] किन्तु कवि मन स्थिति के चित्रण में पक्षपात कर गया है। 'जयभारत' के कवि ने भीम के इस कर्म को लज्जापूर्ण बताया है।

पापी मैं नहीं, यह कह कर भीम ने
मारी एक लात और सिर पर उसके।
हैं हैं भीम, बोल उठे तत्क्षण युधिष्ठिर भी
अर्जुनादि का भी सिर नीचा हुआ लज्जा से।[6]

---

१ म० आदि० १२८।२२
२ म० आदि० १३६।६
३ अगराज, पृ० ३१
४ म० शल्य० ५६।४-५
५ अगराज, पृ० २८४
६ जयभारत, पृ० ४०४-४०५

अपने शरीर में इतना बल समेट कर अनेक राक्षसों को क्षण भर मे मारने वाले भीमकाय भीम दुर्योधन के अत्याचार को सहन करते रहे अग्रज के संकेतों पर उन्होंने अपने रक्त की लालिमा को रोके रखा, यही अवसर था जब वे अपनी संचित घृणा की अभिव्यक्ति कर सकते थे। इस प्रसंग पर भीम के चरित्र को आदर्शवादी विचार के अनुरूप देखा गया है और मनोवैज्ञानिकता की उपेक्षा की गई है।

'जयभारत' के भीम आगे चल कर अपनी स्थिति स्पष्ट करते हैं :

भीम बोले—मैंने कहा स्पष्ट था
तोड़ूंगा गदा से जांघ मैं इस जघन्य की।
शुद्ध योद्धाओं के साथ युद्ध के नियम है
कापुरुष क्रूर यह............[1]

मिश्र जी ने एक ही दोहे में भीम की मन: स्थिति का चित्रण किया है कि रोष से कारण भीम संयम न कर सके और दुर्योधन के माथे पर प्रहार किया :

भरित रोष प्रतिकार, सके न संयम भीम करि।
कीन्हेंउ चरण-प्रहार, महिशायी अवनीश शिर।[2]

यहां प्रतिकार का चरम व्यक्त हुआ है, यह वीर चरित्र का स्वाभाविक गुण है।

'महाभारत' के प्रमुख युद्ध के अतिरिक्त विराट पर्व में सैरन्ध्री के प्रसंग में भीम की वीरता व्यक्त हुई है। द्रौपदी की आपत्ति का निवारण चारों पाण्डवों में से कोई न कर सका। यह कठिन कार्य भीम ने किया। अपनी प्राणप्रिया के मुख से करुण वचन सुनकर भीम द्रवित हो गये। 'जयभारत' का यह अंश मूल ग्रन्थ के अनुरूप ही है। इन प्रसंगों में भीम का चरित्र विलक्षण सहनशीलता और वीरत्व से संकुल है। द्रौपदी के विलाप के उत्तर में भीम युधिष्ठिर की आज्ञाकारिता के कारण अपनी सहनशीलता की व्यंजना करते हैं।[3] अन्तत: भीम कीचक का वध कर देते हैं।[4] 'सैरन्ध्री' में कीचक वध के प्रसंग में भीम की वीरता का द्योतन है।[5]

पाण्डवों में भीमसेन का चरित्र ही ऐसा है जो आदर्श की शृंखलाओं को तोड़कर समय-समय पर यथार्थ चरित्र के रूप में उपस्थित हुआ है। आधुनिक कवि भीमसेन के चरित्र-चित्रण मे उसके अन्तर की व्यथा नही देख पाये।

दया-सद्भावना : इतने उद्धत वीरत्व के होते भी भीम के चरित्र मे दया का अंश कम नही था। शक्ति के विश्वास को लेकर भीम सर्वथा शोषण और अन्याय

---

१. जयभारत, पृ० ४०५
२. कृष्णायन, पृ० ७६५
३. म० विराट० २१।२,५
४. म० विराट० २२।८२
५. सैरन्ध्री, पृ० ४०

का विरोध करते रहे। एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण परिवार की सहायतार्थ भीमसेन की दया उमड़ पड़ी। भीमसेन ब्राह्मण के दुःख का पता लगाने की चिन्ता करने लगे।[1] 'महाभारत' में इस प्रसंग में भीम का चारित्रिक उत्कर्ष है। आधुनिक काव्यों में भीम के चरित्र में उतनी सफलता नहीं मिल पाई। 'महाभारत' के भीम का गौरव 'जयभारत' में अक्षुण्ण न रह सका वहां वह उपहास की रेखा का स्पर्श कर गया है।[2]

भीम के चरित्र-चित्रण में कवियों ने केवल 'महाभारत' के भीम के उन सामान्य गुणों का चित्रण किया है जिनका सम्बन्ध वीरत्व, शौर्य से है। भीम के चरित्र में शान्तिप्रियता और नीतिज्ञता का उज्ज्वल अंश भी उतना ही है जितना उद्दण्डता और शक्ति का। 'महाभारत' में भीम की नीतिज्ञता और शान्तिप्रियता अनेक स्थलों में व्यक्त है। जीवन की व्यावहारिकता के विषय में व पुरुषार्थ का समर्थन करते हैं, और सीधे युद्ध के द्वारा न्याय की व्यवस्था में विश्वास करते हैं।

जरासन्ध-वध प्रसंग में भीम के नीतियुक्त वचन उनकी नीतिज्ञता का परिचय देते हैं।[3]

कृष्ण-दूतत्व के प्रसंग में भीमसेन मधुर सम्भाषण का समर्थन करते हैं, भीम कहते हैं कि 'हे मधुसूदन कौरवों के मध्य आप शान्ति स्थापना की बात करें ... जो कुछ भी दुर्योधन से कहें शान्ति से और मधुर वाणी में कहें'[4]। अन्ततः भीम शान्ति का पक्ष लेते हैं।[5] इस प्रकार 'महाभारत' के भीमसेन का चरित्र एक नीतिज्ञ, कुशल, शान्ति प्रिय व्यक्ति के रूप में आता है जो शक्ति को भी उतनी ही व्यावहारिक वस्तु मानता है।

मनोवैज्ञानिक विवेचन 'सेनापतिकर्ण' में भीम का चरित्र मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित हुआ है। कवि ने भीम के अन्तर की गहरी व्यथा को अभिव्यक्त करके 'महाभारत' के भीम की कठोरता और क्रूरता में कोमलता का अनुपम पुनस्पर्श किया है। भीम के हृदय के द्वन्द्व की अभिव्यक्ति के लिए हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच का 'महाभारत' के युद्ध में नये रूप से प्रवेश कराया है। 'महाभारत' में भावनाओं का यह द्वन्द्व नहीं है किन्तु 'सेनापतिकर्ण' में अत्यन्त कुशलता से

---

१ आयतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम्।
विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात् सुदुष्करम्। म० आदि० १५६।१६

२ जयभारत, पृ० १०३

३ म० सभा० १५।११-१२

४ म० उद्योग० ७४।१६

५ अहमेतद् ब्रवीम्येव राजा चैव प्रशासति।
अर्जुनो नैवयुद्धार्थी भूयसी हि दयार्जुने॥ म० उद्योग० ७४।२३

भीम के मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हो पाई है। भीम के वीरत्व और द्वन्द्व का चित्रण द्रष्टव्य है।

·········भीमसेन विक्रमी
आया इतने में वहां रोषपूर्ण आंखें थीं
लाल लाल दहक रही थीं अंगारे सी,[1]

भीम के मानसिक द्वन्द्व का कारण है अर्जुन का अवरोध। यदि ऐसा ही है तो पाण्डवों को पुनः वन चलना ही श्रेयकर होगा।

मानूं यदि मैं भी काल पृष्ठ पर काल है,
मारेगा अवश्य सव्य साची को समर में
कहते हो जो फिर तो रोको इस युद्ध को।
रोको हम घूमें फिर गहन विपिन में—[2]

पुत्र-स्नेह के कारण भीम घटोत्कच को रण में नहीं भेजना चाहते। हिडिम्बा को लेकर कवि ने द्वन्द्व का चित्रण किया है। 'महाभारत' की भावना से पृथक् कवि कल्पना करता है कि हिडिम्बा का त्याग कुल के विचार से किया गया था और आज उसने अपना पुत्र भेजा है, तो भीम किस मुख से उस पुत्र को रण में भेजे, जब कि एकघ्नी शक्ति शेष है। इस प्रसंग में पिता के रूप में भीम का चित्रण नितान्त मौलिक है।

सुधीजन जगत के
क्या कहेंगे सोचो तुम्हीं। स्वार्थ भावना से जो
भेजे काल रण में हिडिम्बा के तनय को।
यौवन के मद में बनाया जिसे प्रेयसी
और फिर छोड़ दिया कुल के विचार से
× × ×
होती है कहो क्या नहीं वेदना प्रसव की
दानवी को, या कि पुत्र मोह नहीं होता है।[3]

भीम के चरित्र का यह व्यथित रूप कवि की मौलिक सूझ है। उसने स्थिति की सम्भावना से भिन्न भीम की व्यथा का चित्रण किया है किन्तु 'महाभारत' में इस रूप का अभाव है।

संक्षेप में इन्हीं कतिपय स्थलों पर 'महाभारत' के भीम का चरित्र चित्रण हुआ है। किन्तु जैसा कि संकेत किया जा चुका है आधुनिक काव्य में भीम का चरित्र

---

१. सेनापतिकर्ण, पृ० ५५
२. सेनापति कर्ण पृ० ५५
३. सेनापति कर्ण, पृ० २११

'महाभारत' के चरित्र-गौरव का स्पर्श नहीं कर पाया।

कृष्ण-सखा अर्जुन

अर्जुन 'महाभारत' के स्थिर पात्र हैं। वे आद्यन्त वीर युगीन भावनाओं के प्रतीक हैं। उनके समक्ष कठिनतम परिस्थितियां भी साधारण हैं। आधुनिक काव्य में अर्जुन का चरित्र 'महाभारत' से साम्य रखता है। वैषम्य की स्थिति चरित्र-चित्रण की प्रणाली में हो सकती है, मूल चरित्र में नहीं। 'महाभारत' की आस्था के प्रतिकूल काव्य-कृतियों में भी अर्जुन का चरित्र शौर्य, वीरत्व-प्रधान चित्रित किया गया है। यद्यपि कुछ घटनाओं को लेकर उनके वीरत्व पर सदेह भी किया गया है तथापि वे घटनाएं 'महाभारत' से यथावत स्वीकृत हैं। एकलव्य, अर्जुन का मोह कर्णार्जुन युद्ध जैसे कतिपय प्रसग ऐसे हैं जिनके आधार पर आधुनिक कवियों ने अर्जुन के चरित्र में मानसिक द्वन्द्व और मनोवैज्ञानिक मानवीय दुर्बलता का चित्रण किया है।

'महाभारत' में वीरवर अर्जुन भगवान कृष्ण के मित्र और भक्त हैं। गीता में स्वय कृष्ण ने "भक्तोऽसि मे सखा चेति, इष्टोऽसि म दृढमिति", कहकर अर्जुन के इस रूप को स्वीकार किया है। कृष्ण के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की अभिव्यक्ति अर्जुन ने भी "करिष्ये वचन तव" कहकर की है।

शौर्य वीरत्व वीरत्व अर्जुन के चरित्र का सर्व प्रमुख गुण और जीवन का सार है। अर्जुन आद्यन्त युद्धरत और विजयी हैं। मूलग्रन्थ में अर्जुन नारायण के नर रूप अवतार हैं। उनमें दिव्य शक्ति विद्यमान है, वे शिव की आराधना करके अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त करते हैं और इन्द्र की कृपा से सदेह स्वर्ग भ्रमण करके अनेक शस्त्रास्त्र प्राप्त करके लौटते हैं।

आधुनिक युग में अर्जुन के वीरत्व की दिव्यता को परम्परावादी कवियों ने यथावत चित्रित किया है किन्तु अन्य कवियों ने उनका चरित्र वीर-युगीन भावना के अनुरूप प्रस्तुत करके उन्हें नया आवरण दिया है। 'महाभारत' के अर्जुन में मानसिक द्वन्द्व की स्थिति नहीं है किन्तु काव्य-ग्रन्थों में मानसिक द्वन्द्व की सफल अवतारणा है।

पुनरुत्थानकाल में अर्जुन के चरित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं मिलता। 'जयद्रथ वध' के चतुर्थ सर्ग में भगवान् शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्ति की घटना के निरूपण में अतिमानवीय स्थिति का चित्रण है। अर्जुन के चरित्र में युद्धोत्साह का उद्रेक कराने के हेतु कृष्ण की योगमाया का आश्रय भी लिया गया है। भूरिश्रवा प्रसग में अर्जुन क्षत्र शूर धर्म का आख्यान करते हैं। इन प्रसगों में चरित्र सृष्टि प्राचीन शैली की ही है।

अर्जुन के चरित्र में सतत साधना और शस्त्र ज्ञान-प्राप्ति में सलग्नता ऐसी विशेषताएं हैं, जिनके कारण वे अद्वितीय हो गये हैं[1] 'जयभारत' में उनकी निष्ठा मूल ग्रन्थ के अनुरूप है।

---

१ म० आदि० १३१।१३-१४

थे वे सभी सुयोग्य किन्तु अर्जुन का निष्ठा,
उन्हें दिलाकर रही सभी से अधिक प्रतिष्ठा।[1]

मानसिक द्वन्द्व : समस्त दिव्यास्त्रों से सम्पन्न अर्जुन एकलव्य के प्रसंग में स्वार्थवश एकलव्य से ईर्ष्या करते है। 'महाभारत' के अर्जुन एकलव्य का अंगूठा कटने पर मानसिक प्रसन्नता का अनुभव करते है।[2] डा० रामकुमार वर्मा ने इस प्रसंग में मूलग्रन्थ के चरित्र को मानवीय दृष्टिकोण से चित्रित किया है। एकलव्य के लाघव को देखकर अर्जुन गुरु के प्रति शंकित हो उठते हैं।[3] अपने को अद्वितीय मानने वाले अर्जुन के मन में इस प्रकार की शंका की स्थिति दोनों ग्रन्थों में समान है, अन्तर केवल दृष्टिकोण का है।

'महाभारत' में अर्जुन के मानसिक द्वन्द्व का अभाव है, किन्तु 'एकलव्य' में यह द्वन्द्व मानवीय उत्कृष्टता के साथ व्यंजित हुआ है। अर्जुन एकलव्य की साधना की प्रशंसा, निस्पृहा की स्तुति[4] और अहंकार के कारण अपने चरित्र की दुर्बलता को स्वीकार करते है।[5] अर्जुन के मानसिक द्वन्द्व की चरम स्थिति वहां व्यक्त होती है जहां वह आर्य जाति के नष्ट होने की सम्भावना से अधिक उग्र हो छिपकर एकलव्य की दक्षिण भुजा काटने की कल्पना करते है, किन्तु उसी समय इसे जघन्य अपराध मानकर अपने को धिक्कारते हैं।[6] 'जयभारत' में भी एकलव्य के प्रसंग में अर्जुन के अभिमान भंग का चित्रण है।[7] किन्तु 'एकलव्य' जैसा मानसिक द्वन्द्व का चित्रण गुप्त जी नहीं कर पाए।

इस मानसिक द्वन्द्व से कवि का अभिप्रेत तत्युगीन मानव का प्रतिबिम्ब देखना है। कवि के इस परिवर्तन से अर्जुन के चरित्र का परिष्कार हुआ है। अर्जुन राजपुत्र है, उसे राज्य-रक्षा के लिए सभी अनुचित-उचित कार्य करने होंगे, किन्तु कार्य की जघन्यता का आभास होना भी मानव का एक गुण है और 'एकलव्य' का अर्जुन इसी आधुनिक मानव का प्रतीक है। मूल ग्रन्थ मे अर्जुन अपने वीरत्व के प्रति आश्वस्त हैं उन्हें अपने और कृष्ण पर भी अटूट विश्वास है अतः मानसिक द्वन्द्व की स्थिति नहीं है। 'महाभारत' के घटोत्कच प्रसंग में कृष्ण की चातुरी से अर्जुन की रक्षा एकघ्नी

---

१. जयभारत, पृ० ५१
२. म० आदि० १३१।६०
३. एकलव्य, पृ० २५४
४. कितना विश्वास होगा एकलव्य वीर में,
जो कि गुरुमूर्ति को ही गुरु मान बैठा है। एकलव्य, पृ० २६४
५. सत्य ही मैं ज्ञानप्राप्ति में रहा हूं असफल,
तभी तो मैं मानहीन होके यहां बैठा हूं। एकलव्य, पृ० २६४
६. एकलव्य, पृ० २६६-६७
७. जयभारत, पृ० ५५

से होती है। इस स्थल पर अर्जुन में किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं दिखाया गया। घटोत्कच की मृत्यु के उपरान्त सात्यकि रहस्योद्‌घाटन करता है।

योद्धारूप द्रुपद-पराजय, रंगस्थली, द्रौपदी-परिणय आदि प्रसंगों में होने वाले युद्धों में अर्जुन का वीरत्व व्यंजित है। वही मुख्यवीर है, जिसके कारण विजय प्राप्त होती है। 'जयद्रथ वध' में मूलग्रन्थ के समान ही अर्जुन के शौर्य, वीरत्व, युद्धोन्माद का चित्रण किया गया है।[1]

कृष्णायनकार ने भी अर्जुन के वीरत्व का चित्रण किया है किन्तु उसमें उतनी शक्ति का समावेश नहीं हो पाया जितना 'जयद्रथ वध' में। 'कृष्णायन' में वर्णनात्मकता के कारण पात्रों के शौर्य की व्यंजना में गति का पर्याप्त अभाव है। धैर्यशील अर्जुन कठिनाई में विचलित नहीं होते। पुत्र के मरण पर पिता का स्वाभाविक शोक व्यक्त हुआ। किन्तु उस शोक की परिणति जयद्रथवध की प्रतिज्ञा में हुई। युद्ध के समय अर्जुन को धर्म-युद्ध का ध्यान सतत रहता था। वे ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे जो धर्मयुद्ध के विरुद्ध हो।

कर्ण स्वयं पार्थ को धर्म-युद्ध प्रियता के विषय में कहकर उन्हें क्षणभर रुकने को कहता है।[2]

युद्धनीति से प्रेरित होकर अर्जुन कर्ण पर प्रहार करके उसका वध कर देते हैं।

'अंगराज' में कवि ने मूल ग्रन्थ के प्रतिकूल अर्जुन का चरित्र चित्रित किया है। कवि ने अपनी पाण्डव विरोधी भावना के कारण युद्धनीति की उपेक्षा करके अर्जुन के चरित्र को निम्नरूप से चित्रित किया है।[3] अर्जुन के वीरत्व में सर्वथा सन्देह, भय की भावना का प्रदर्शन किया है। अर्जुन की विजय में अर्जुन की वीरता को कारण न मानकर दैव को या छल को मुख्य कारण स्वीकार किया है।[4]

अर्जुन के चरित्र की यह व्याख्या कवि की मौलिक सृष्टि है, जिसे उसने अनेक आन्तरिक और बाह्य उदाहरणों से सिद्ध करने की चेष्टा की है। 'महाभारत' में चित्रित अर्जुन के दिव्य वीरत्व सम्पन्न चरित्र से 'अंगराज' का अर्जुन नितान्त भिन्न है। 'अंगराज' का अर्जुन कपटाचारी है, केवल छल से विजय प्राप्त करने वाला है।[5] कवि ने कर्ण के चरित्र के अतिरंजित उत्कर्ष के हेतु अर्जुन का अपकर्ष किया है।

---

१ जयद्रथ वध, पृ० ८०

२ विरमहु ! विरमहु ! पृथा-कुमारा उचित न यहि क्षण शस्त्र प्रहारा
तुम शुचि भरत वंश सजाता शीलनिधान, धर्मरण ज्ञाता ॥
कृष्णायन, पृ० ४२४

३ अंगराज, पृ० २१६

४ अंगराज, पृ० २६३

५ छल से कर सज्जन को प्रभीत अपराधी जाते सदाजीत।
अंगराज, पृ० २३६

मनोवैज्ञानिकता : 'सेनापति कर्ण' में मिश्र जी की दृष्टि चरित्रचित्रण में मनोवैज्ञानिक रही है। जब कर्ण का सामना करने का प्रश्न उपस्थित होता है, तब कृष्ण अर्जुन को बचाना चाहते हैं, ऐसी परिस्थिति में द्रौपदी अर्जुन के वीरत्व को धिक्कार की चरम सीमा तक ललकारती है।

जानती जो दुर्जय धनुर्धर जगत मे,
काल पृष्ठधारी है अकेला सुत राधा का,
तब तो स्वयंवर में वरती उसी को मैं।[1]

द्रौपदी की इस ललकार पर अर्जुन का वीरत्व जाग उठता है। उसमें स्वाभिमान और द्वन्द्व का मिश्रण अत्यन्त कुशलता से व्यक्त किया गया है।[2] अर्जुन केशव की अनन्य आज्ञाकारिता में भी अनायास अविश्वास व्यक्त करते हैं।[3] 'महाभारत' के दिव्य शक्ति-सम्पन्न अर्जुन को इस रूप में चित्रित कर उसे मानवीय भावनाओं से युक्त दिखाया गया है। कवि ने अर्जुन को मानवीय यथार्थ की दृष्टि से अंकित किया है। पत्नी से ऐसी ललकार सुनकर ऐसा अविश्वास मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक है। 'महाभारत' के चरित्र को कवि ने अपनी नयी दृष्टि दी है, और स्थिति की सम्भावना से चरित्र का पुनस्सर्जन किया है। इस प्रकार की द्वन्द्व की स्थिति से मूल में जिस वीरत्व का उत्कर्ष हुआ है, वही मानव की सच्ची वीरता है। अर्जुन को अपने पूर्व प्रसंगों की स्मृति हो आती है। 'महाभारत' का अर्जुन गर्व से अपने वीरत्व का वर्णन करता है किन्तु 'सेनापति कर्ण' का अर्जुन सहज प्रकृति से अपने वीरत्व का वर्णन करता है।[4] मिश्र जी ने अर्जुन को मानव रूप में चित्रित किया है। 'जयद्रथ वध' मे अर्जुन की वीरोक्ति गर्वमिश्रित अवश्य है किन्तु स्वजनों की रक्षा के लिए कटिबद्धता को अभिव्यक्ति भी करती है।[6]

अन्य गुण : द्रौपदी स्वयंवर एवं द्यूत के प्रसंग में अग्रज के प्रति अर्जुन की आज्ञाकारिता व्यक्त हुई है। 'महाभारत' के पाण्डवों के चरित्र की अनेक क्षमताएं एवं दुर्बलताएं भ्रातृ संगठन से ऊँची नहीं है। अर्जुन द्रौपदी को जीतते हैं, किन्तु अग्रज के कहने पर माता की आज्ञा से उसके पंच पतित्व का विरोध भी नहीं करते। स्त्री के कारण होने वाले संघर्षों को निवारण करने के लिए यद्यपि यह मुख्य समाधान नहीं है, तथापि मातृभक्ति एवं आज्ञाकारिता का आदर्श अवश्य प्रस्तुत करती है।

---

१. सेनापति कर्ण, पृ० १६२
२. सेनापति कर्ण, पृ० १६४
३. सेनापति कर्ण, पृ० १६५
४. म० कर्ण० ७४।८,१९-२०
५. सेनापति कर्ण, पृ० १६५-६६
६. मेरा नियम यह है जहां तक बाण मेरा जायगा
अपने जनों को आपदा से वह अवश्य बचायगा। जयद्रथवध, पृ० ४८

अर्जुन अग्रज के प्रति सम्पूर्ण महान आदर्श की व्यंजना करते हैं, क्योंकि वे अपने प्रत्येक कार्य को युधिष्ठिर के लिए समर्पित करते हैं।[1]

'जयभारत' मे गुप्त जी ने अर्जुन की आज्ञाकारिता का इसी रूप मे चित्रण किया है।

मैं कृष्णा को लाया भर हू,
परिवेत्ता नहीं सुदेवर हू।[2]

अग्रज के प्रति जिस अनन्य भक्ति का परिचय 'महाभारत' में मिलता है वैसा आधुनिक काव्य मे नही। 'महाभारत' मे अर्जुन के चरित्र की पृष्ठभूमि राजनैतिक है। उनका अनन्य समर्पण राजनीति के कारण है। अर्जुन कर्ण को मार कर युधिष्ठिर को चिन्ता मुक्त करना चाहते हैं।[3]

अर्जुन के चरित्र मे दुःख, क्षोभ, करुणा की अभिव्यक्ति के लिए अभिमन्यु वध प्रसग सर्वाधिक मार्मिक है। इस स्थल पर उनके शौर्य की व्यंजना हम देख चुके हैं। करुणा का प्रसार 'महाभारत' मे अधिक नही हुआ है, और आधुनिक काव्य म इस प्रसग पर लिखे गये काव्यों मे 'जयद्रथ वध' 'अभिमन्यु वध' आदि कुछ काव्य ही स्वतन्त्र रूप मे लिखे गये हैं। शेष काव्यो मे यह घटना प्रसग रूप से चित्रित है अत अर्जुन के इस गुण की अधिक अभिव्यक्ति नही हो पाई है। 'महाभारत' मे अर्जुन को चक्रव्यूह की रचना की सूचना मिलते ही अपने पुत्र के अनिष्ट की आशका होती है।[4] वीर पिता का हृदय व्याकुल हो उठता है। वे व्याकुलता म अभिमन्यु को न देखकर स्वय मृत्यु की कामना कर बैठते हैं।[5]

दिव्य शक्ति सम्पन्न होने के कारण 'महाभारत' मे मानवीय दुर्बलताओं का चित्रण नही हुआ। व्यासजी के दिव्य पात्र साधारण मानव के समान चित्रित क्यों होने लगे ? किन्तु आधुनिक काव्य मे उसे मानव रूप मे प्रतिष्ठित किया है। यही कारण है कि वीरत्व, मातृभक्ति, और दयाशीलता आदि गुणो से वेष्टित अर्जुन का चरित्र आधुनिकता के प्रभाव मे चित्रित हुआ है।

अभिमन्यु

'महाभारत' मे अभिमन्यु थोडे समय के लिए आता है। आचार्य द्रोण के द्वारा चक्रव्यूह की रचना और अर्जुन की अनुपस्थिति मे अभिमन्यु का चक्रव्यूह भेदन,

---

१ म० आदि० १६०।८-६
२ जयभारत, पृ० १२०
३ म० कर्ण० ७८।४०-४१
४ म० द्रोण० ७२।५ जयद्रथ वध, पृ० ३१
५ हा पुत्र का वितृप्तस्य सतत पुत्र दर्शने।
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात्। म० द्रोण० ७२।४३

अभिमन्यु के व्यक्तित्व को प्रधान बना देता है। अभिमन्यु के इस कार्य में उसका वीरत्व, कर्त्तव्य-निष्ठा, साहस, निर्भयता आदि गुण प्रकाश में आते हैं। इस कारण आधुनिक काव्यकारों ने अभिमन्यु के प्रसंग को लेकर काव्य-रचना की है। अभिमन्यु के चरित्र द्वारा कवि कर्त्तव्यनिष्ठा के उस उच्चस्तरीय जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है जिसमे असफलता का पूर्ण निश्चय होने पर भी व्यक्ति निर्भयता से कार्य की ओर अग्रसर होता है। वह केवल कर्म-सौन्दर्य के प्रति आस्थावान है, फल के प्रति नहीं। आधुनिक जीवन मे अभिमन्यु का यह सन्देश निश्चित ही प्रेरणादायक है।

अभिमन्यु के चरित्र में आत्म-बलिदान और लोकोपकार की भावना का पूर्ण विस्तार है। लोक-रक्षा के हेतु, मान-मर्यादा के कारण क्षत्रियत्व आत्म बलिदान करता है।

वीरत्व का आदर्श : अभिमन्यु के चरित्र को आधुनिक काव्यकारों ने वीरत्व के आदर्श के रूप में स्वीकार किया है। अभिमन्यु का साहस और वीरता से कौरवों की सेना का साहस फीका पड़ गया। अभिमन्यु वीरो के लिए काल बन गया।[1] और भागने वाले वीरों की विवशता है कि उनसे इस वीर के समक्ष कुछ नहीं किया गया। वे अपनी जान छुड़ाकर भागे अवश्य पर जान-बूझकर पराजित नहीं हुए।

'अभिमन्यु पराक्रम' 'जयद्रथ वध' 'कृष्णायन' आदि काव्यों मे अभिमन्यु वीरत्व का आदर्श है।[2] 'महाभारत' में अभिमन्यु के चरित्र में वीरत्व की प्रमुखता है।[3] इसी को आधार मानकर इन कवियों ने चरित्र-चित्रण किया है

'अभिमन्यु का आत्म-बलिदान' और 'जयद्रथ वध' में वीरत्व के अतिरिक्त सिद्धान्त रूप से कर्त्तव्यनिष्ठा के प्रति सजगता का प्रतिपादन किया है। 'महाभारत' के अभिमन्यु के पराक्रम में अलौकिक शक्ति का आभास है।[4] इसी कारण सप्त महारथियों को युद्धधर्म के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा। आधुनिक काव्य में भी अभिमन्यु के वीरत्व में लोकोत्तरता का आभास मिल जाता है।[5] चरित्र की अलौकिकता का समाधान करने का प्रयास नहीं हुआ है।

'महाभारत' में आचार्य द्रोण भी अभिमन्यु के शौर्य की प्रशंसा करते है।[6]

---

१. अर्जुन सुत तब हो गया क्रोध वस्य कुछलाल।
   वीरन के सन्मुख फिरे जैसे होवे काल। अभिमन्यु वध, पृ० ७
२. क, अभिमन्यु वध, पृ० ३६ ख, अभिमन्यु पराक्रम, पृ० ३३ ग, कृष्णायन, दोहा १२८ घ, जयद्रथ वध पृ० १४-१५
३. म० द्रोण० ३६।४४
४. म० द्रोण० ३६।३६-३६
५. जयद्रथ वध, पृ० १८-१६
६. म० द्रोण० ३८।११-१३, अभिमन्यु वध, पृ० २२

शौर्य के साथ अभिमन्यु के रण कौशल का चित्रण भी समान रूप से किया गया है। संजय के द्वारा कहे गये वचनों मे अभिमन्यु की कर्मठता, विदग्धता और शूरता व्यक्त हुई है।[१] भगवान् कृष्ण ने सुभद्रा को अभिमन्यु का चारित्रिक उत्कर्ष बताते हुए उसे सान्त्वना दी।[२]

इस प्रकार 'महाभारत' का यह पात्र अपने अदम्य उत्साह, प्रखर वीरत्व और सात्विक आत्मबलिदान के कारण आधुनिक काव्य मे महनीय निष्ठा से चित्रित है।

नकुल-सहदेव

नकुल-सहदेव का चरित्र चित्रण 'महाभारत' और आधुनिक काव्य दोनो मे अत्यन्त सक्षेप मे हुआ है। 'महाभारत' मे उनके व्यक्तित्व के साथ प्रमुख घटनाओ का सम्बन्ध नही है, जो इन चरित्रो को अधिक प्रभावशाली और व्यापक बना सके। तथापि इन दोनो माद्री पुत्रो के व्यक्तित्व के गुण स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हो जाते हैं। दोनो भाई जीवन मे प्रवृत्ति मूलक विचारधारा का समर्थन करते हैं।[३] युधिष्ठिर की त्यागमयी और वैराग्य भावना का विरोध करके जीवन के कर्मक्षेत्र की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं।[४] विचारो की प्रौढि के साथ शक्ति और वीरत्व का स्रोत भी अजय रूप मे विद्यमान है। नकुल और सहदेव दोनो पश्चिम और दक्षिण दिशा विजय करते हैं।[५] इस युद्ध और 'महाभारत' के अठारह दिनो के युद्ध मे दोनो का शक्ति प्रदर्शन पर्याप्त रूप मे हो जाता है।

आधुनिक काव्य मे अत्यन्त सक्षेप और प्रसग मात्र से नकुल सहदेव के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। सियाराम शरण गुप्त के प्रबन्ध काव्य 'नकुल' मे भी कथा का केन्द्र बिन्दु नकुल का चरित्र नहीं है। वह प्रत्यक्ष रूप से युधिष्ठिर से सम्बद्ध है और अन्तिम चरम स्थल पर नकुल की प्रधानता के कारण काव्य का नामकरण नकुल पर किया गया है। नकुल को अपने चारो बडे भाइयों का स्नेह प्राप्त होता है अत वह अपनी स्थिति मे सन्तुष्ट और सुखी है[६]। छोटा होकर किसी महत्ता को प्राप्त करने पर मानवीय स्वाभाविक क्षोभ की भावना का सर्वथा अभाव है। सहदेव मे वीरत्व, शौर्य, रणभूमि मे स्थैर्य आदि गुण उसके चरित्र को वीर युगीन परिवेश

१ म० द्रोण० ३४।६-१०

२ म० द्रोण० ७७।२१

३ म० शान्ति० अध्याय १२-१३

४ म० शान्ति० १३।२-५

५ म० सभा० अध्याय ३१-३२

६ पीछे आकर नहीं किसी विधि से मैं वचित।
मेरा भाग्य सुदीर्घ चार अको तक सचित। नकुल, पृ० ५५

के अनुकूल बनाये रखते हैं।[1] शल्य के युद्ध करते हुए सहदेव तीव्र प्रहारों को सहन करता हुआ अविचल रहता है।[2] वह प्रलय-कालीन शंकर के समान रुष्ट होकर शरों का संधान करता है। युद्ध में वह अन्य महारथियों की भाति भयंकर रूप धारण करता है।

ले सप्त सायक हाथ में सहदेव ने संरुष्ट हो।
पीड़ित किया जैसे प्रलयकालीन शंकर रुष्ट हो।

नकुल और सहदेव के चरित्रांकन मे आधुनिक कवि अधिक नहीं रम सका है। इसका मुख्य कारण यही है कि चरित्र की जिस विलक्षणता से कवि प्रभावित होता है, मूल ग्रन्थ मे उसका अभाव है।

पितामह भीष्म

'महाभारत' में महामना भीष्म अखण्ड ब्रह्मचारी, आदर्श पितृभक्त, सत्य प्रतिज्ञ एवं अद्‌भुत वीर के रूप में समादृत है। 'महाभारत' में भीष्म का चरित्र सर्व गुण सम्पन्न और आदरणीय है।

आधुनिक युग में भीष्म के चरित्र पर आधारित कोई पृथक् महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य नही लिखा गया। तथापि अन्य काव्यों में भीष्म का आदर्श चरित्र उच्चता के गौरव से मंडित है। उनके चरित्र से मानव के उन विशेष गुणों की पुनः प्रतिष्ठा की गई है, जिनके द्वारा मानव को देवत्व प्राप्त होता है।

'महाभारत' के भीष्म स्थिर चरित्र हैं। वे अपनी शक्ति और विचारधारा में पूर्ण आश्वस्त है। उनमें मानसिक संघर्ष का अभाव है। अपने कार्य क्षेत्र के प्रति पूर्णरूप से सुनिश्चित भीष्म के चरित्र में कोई संघर्ष हो भी कैसे सकता था ? तथापि आधुनिक कवियों ने उनके आदर्शवादी स्थिर चरित्र में भी मानसिक द्वन्द्व के स्थलों को खोजने का प्रयास किया। 'महाभारत' की परम्परा को स्वीकार करने वाले कवियों ने भीष्म को 'महाभारत' के आदर्श के अनुरूप चित्रित किया किन्तु नवीन जीवन में मनोवैज्ञानिकता के समर्थकों ने उनके चरित्र में भी अनेक मानसिक द्वन्द्वों को व्यक्त किया है।

आदर्श पितृ भक्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य : भीष्म के चरित्र के मुख्य गुणों में उनको विश्वव्यापी व्यक्तित्व प्रदान करने का कारण आदर्श पितृ भक्ति है। वे पिता के भौतिक सुखभोग के लिये राज्य, पत्नी-सुख का परित्याग करके प्रारम्भ मे ही संसार के समक्ष अलौकिक त्याग का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।[3] आधुनिक काव्य में

---

१. म० सभा० अध्याय, ३६
२. पर रिपु शरों की वार से सहदेव सुस्थिर समरहा।
सत्वर शरासन अन्य ले रण स्रोत में जाता बहा। शल्यवध, पृ० ६७
३. म० आदि० १००।६४-६६

उनका यह गुण मूलग्रन्थ के समान ही स्वीकृत है।[1] धर्म के लिए उन्होंने सहर्ष प्राणों का त्याग किया।[2] उनका यह रूप दधीचि के अस्थि-त्याग से कम महत्व पूर्ण नहीं है। वे अपने वचनों पर दृढ रहे। विचित्र वीर्य के निधन के बाद वंश-संकट को बचाने के लिए भी उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं की।[3] अम्बा की प्रार्थना पर भी ध्यान नहीं दिया।[4] और अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया।[5]

वीरत्व भीष्म में वीर युगीन चरित्र के सभी गुण विद्यमान हैं। अपनी शक्ति का वर्णन, वीरत्व की प्रशंसा अनेक स्थलों पर निज की अद्वितीयता का चित्रण किया गया है।[6] युद्ध क्षेत्र में भीष्म विकराल रूप धारण कर लेते हैं।[7] और मंत्रित शरों से शत्रु-पक्ष को पीड़ित करते हैं।[8]

कर्ण के प्रसंग में भीष्म के चरित्र का परिवर्तित रूप 'अंगराज' में उपलब्ध होता है। 'महाभारत' में भीष्म कर्ण को अधरथी कहते हैं और अन्त में यह मानते हैं कि युद्ध को टालने के लिए कर्ण को अधरथी कहा। आनन्द कुमार ने भीष्म के प्रति अधिक आदर भाव व्यक्त नहीं किया। यह केवल कर्ण के महत्व को सर्वोपरि रखने के लिए किया गया। 'महाभारत' में भीष्म अपने या कर्ण के मध्य एक को पहले युद्ध करने के लिए कहते हैं किन्तु 'अंगराज' में भीष्म कहते हैं कि कर्ण हमारा कहना नहीं मानेगा[9]। इससे भीष्म का आत्म विश्वास दुर्बल हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक संघर्ष भीष्म के चरित्र में लक्ष्मी नारायण मिश्र ने मानसिक संघर्ष की अवतारणा की है। इसके लिए अम्बा और कुन्ती के पुत्रों का प्रसंग ग्रहण किया है। महाभारतकार ने इस प्रकार का संघर्ष चित्रित नहीं किया और न उस युग के भीष्म को सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से इतना कुछ सोचने की आवश्यकता थी। यद्यपि भीष्म का अन्तर्द्वन्द्व महाभारतीय विचारधारा के अनुकूल नहीं, किन्तु आज का मनोवैज्ञानिक कवि उन सम्भावनाओं के प्रकाश में द्वापर के स्थिर चरित्र को देखता है। दुर्योधन भीष्म के चारित्रिक गुणों को स्मरण करके दुःखी होता है[10]

---

१ जयभारत, पृ० ३५
२ म० भीष्म० १०७।८४-८६
३ म० आदि० १०३।१६-२१
४ म० उद्योग० १७८।३४
५ सेनापति कर्ण, पृ० २१-२२
६ म० भीष्म १०७।७५-७६
७ म० भीष्म ५६।६२-६४
८ अंगराज पृ० १६१
९ म० उद्योग० १५६।३२-२४, अंगराज, पृ० १७०
१० सेनापति कर्ण, पृ० २३

और उनके अखण्ड व्रत की प्रशंसा करता है।[१]

देवराज और कामदेव के प्रसंग को उठाकर मिश्र जी देवव्रत भीष्म के मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति करते हैं। शैया पर पड़े भीष्म को अम्बा की स्मृति हो आती है।[२]

भीष्म के चरित्र को इस रूप में प्रस्तुत करना मिश्र जी की मौलिकता है। इसके समर्थन में यही कहा जा सकता है कि यह केवल मानवीय संवेदना के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। भीष्म-कुन्ती संवाद की अवतारणा कवि ने भीष्म के चारित्रिक द्वन्द्व के लिए की है :

भीष्म कहते हैं :

> मर्मान्तिक पीडा मुझे हो रही है देख के
> कुरुकुल राजलक्ष्मी आई रणभूमि में।[३]

और जब कुन्ती अपना रहस्योद्घाटन करती है तब भीष्म इस कार्य को आचारहीन बताते हैं और गुप्त रखने का परामर्श देते हैं।[४] भीष्म के चरित्र की मार्मिक कथा वहां व्यक्त होती है जब वे ममर पर विचार करते हैं। कुन्ती एक पुत्र की रक्षार्थ आई है किन्तु रण में मारे जाने वाले वीर भी किसी ममत्व के आधार हैं, जब उनकी चिन्ता नहीं की तो हम अपनों की चिन्ता क्यों करें ?[५] यहां पर कवि ने 'महाभारत' के वीर, दृढ़, जयी चरित्र को मानवता की व्याख्या करते चित्रित किया है।

'सेनापति कर्ण' में भीष्म के चरित्र की कोमलता और व्यथापूर्ण अंश वहां व्यक्त होता है जहां वे द्रौपदी के कटु वाक्यों का स्मरण करते हैं। कितनी अन्तर्वेदना की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है।

> विष बुझे शब्द द्रौपदी के पड़े कानों में
> दे रही थी प्रतिफल जो मुझको अभागा मैं
> जीवित था सुनने को अपशब्द उसके।[६]

आधुनिक काव्य में भीष्म के चरित्र की समीक्षा इसी रूप में की जा सकती है। कवियों ने 'महाभारत' के भीष्म के चरित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किए और उसमें अवकाश भी नहीं था। मिश्र जी ने कतिपय स्थलों को लेकर भीष्म के

---

१. भीष्म व्रत भीष्म का जो न टोलेगा जगत में
चाहे टोल जाये धरा सूर्य शशि टोले या। सेनापति कर्ण, पृ० २४
२. सेनापति कर्ण, पृ० १०७
३. सेनापति कर्ण, पृ० ११५
४. सेनापति कर्ण, पृ० १२०
५. सेनापति कर्ण, पृ० १२२
६. सेनापति कर्ण, पृ० १२५

हृदय की व्यथा की अभिव्यक्ति अवश्य की है, जिसका सीधा सम्बन्ध 'महाभारत' के चरित्र से नही है किन्तु कवि की मौलिक उद्भावनाओं को नितान्त असगत भी नहीं कहा जा सकता।

आचार्य द्रोण

आचार्य द्रोण 'महाभारत' के यशस्वी पात्र हैं और भीष्म के समान ही मुख्य हैं। आचार्य द्रोण का चरित्र-चित्रण 'महाभारत' मे एक वीर साहसी तपस्वी ब्राह्मण के रूप मे हुआ है। भौतिक ऐश्वर्य के अभाव में द्रोण ने शस्त्र-विद्या को अपने जीवन का आधार बनाया। शस्त्र-विद्या के चमत्कार से द्रोण राजकुल मे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए।

आधुनिक काव्य मे द्रोण के चरित्र पर पृथक् रूप से कोई प्रबन्ध काव्य नही लिखा गया। डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' काव्य मे द्रोण के चरित्र का अन्त-र्द्वन्द्व चित्रित किया है।

आचार्य द्रोण का वीरत्व आधुनिक काव्य मे मूलग्रन्थ के अनुरूप ही चित्रित हुआ है। द्रोण की वीरता भीष्म-अर्जुन के समकक्ष ही मानी गई। द्रोण अर्जुन के गुरु रहे, किन्तु अर्जुन ने इन्द्रलोक जाकर एव तपस्या करके विशेष शिक्षा प्राप्त की अत वह अपने गुरु से भी आगे बढ गये। तथापि युद्ध-भूमि मे द्रोण अर्जुन से परास्त नही हुए, जब कभी गुरु शिष्य का द्वैरथ युद्ध हुआ, अर्जुन गुरु को परास्त किये बिना ही अन्य महारथियो से युद्ध करने लगे। द्रोण पाण्डवो के पक्षपाती होते हुए भी सच्चे हृदय से युद्ध करते थे। उनमे धर्म प्रेम और कर्तव्य का अद्भुत समन्वय प्राप्त होता है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने द्रोण के वीर हृदय में हिंसा के प्रति विरक्ति उत्पन्न कर उनके ब्राह्मणत्व के उत्कर्ष को प्रकट किया है। 'महाभारत' मे इस अन्त-र्द्वन्द्व का अभाव है। द्रोण लडते हैं और प्राण पण से विजय प्राप्ति के इच्छुक हैं[1] किन्तु 'जयभारत' के द्रोण को अपने कर्म पर पश्चाताप है। क्षात्र धर्म की कठोरता उनके दयालु हृदय को सालती है।[2] द्रोण का हृदय अपने कर्म की कठोरता से द्रवित हो गया। 'जयभारत' के कवि ने द्रोण की अन्तर्व्यथा को पढने का प्रयास किया। नि सन्देह दोनो पक्ष द्रोण के लिए समान थे फिर किसी एक का पक्ष लेने की चर्चा ही नहीं थी, किन्तु द्रोण को सेवावृत्ति की विवशता से कौरवों का पक्ष लेना पड़ा।[3]

द्रोण की वीरता का एक पृष्ठ कलंकित भी है। वह है अभिमन्यु वध। द्रोणाचार्य ने ६ महारथियों के साथ मिलकर अभिमन्यु का वध किया। यह हुआ

---

१ म० द्रोण० २१।१७-२४

२ जयभारत, पृ० ३८४

३ जयभारत, पृ० ३८५

सर्वथा क्षात्र धर्म के विरुद्ध थी। महाभारतकार ने इस हत्या के प्रसंग में द्रोण के चरित्रांकन का प्रयास नहीं किया। अभिमन्यु वध प्रसंग पर लिखे गये काव्यों में द्रोण के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण किया गया है।

पाण्डवों के पक्ष को लेकर जब दुर्योधन द्रोण पर पक्षपात का आरोप करता है तो द्रोण का व्यथित हृदय कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति करता है।

मैं पाण्डवों को प्यार कर लड़ता तुम्हारी ओर से,
विचलित मुझे क्या जानते हो आत्म धर्म कठोर से।[1]
मैंने तुम्हारे हित स्वयं ही क्या उठा रक्खा कहो,
अभिमन्यु के वध के सदृश मुझसे हुआ है अघ अहो।[2]

द्रोण के सन्तप्त होने का कारण दुर्योधन के कटुवचन हैं। स्वयं कर्ण द्रोणाचार्य की शक्ति एवं पवित्र सामर्थ्य में कोई आशंका व्यक्त नहीं करता।

ब्रह्म-तेज और दण्ड : द्रोण के चरित्र का प्रमुख गुण ब्रह्म तेज और दण्ड भावना है। द्रुपद ने द्रोण की भावना का तिरस्कार किया, उसके बदले द्रोण ने गुरु-दक्षिणा मे द्रुपद की पराजय ग्रहण की और आधा राज्य देकर मित्रता बनाये रक्खी। यह प्रतिकार की भावना अपराधी को दण्ड देने के लिए है। भौतिक मद में मदान्ध व्यक्ति शाश्वत मानवता को भूल जाय तो दण्डित होना ही पड़ेगा।[3]

द्रोण ब्राह्मणत्व की क्षमा-शीलता का परिचय देते है। जयभारतकार ने मूलग्रन्थ के अनुसार ही द्रोण का चरित्रांकन किया है 'महाभारत' में द्रोण क्षमा की मूर्ति है 'जयभारत' मे द्रोण शाश्वत मनुजत्व का चित्रण करते है।[4]

डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' में द्रोणाचार्य के चरित्र को नये रूप में उपस्थित किया है। 'महाभारत' मे द्रोण अर्जुन की अद्वितीयता के रक्षार्थ एकलव्य जैसे अनन्य शिष्य के दक्षिण अंगुष्ठ को गुरु दक्षिणा में मांगते है। मानवता की दृष्टि से यह कार्य अनुचित है। वर्मा जी ने द्रोण के चरित्र को स्पष्ट करते हुए लिखा है।

'वे गुरु होने के कारण आचार्य का दायित्व और कर्त्तव्य समझते थे। साथ ही भीष्म की राजनीति और तत्कालीन समाज की स्थिति से भी वे परिचित थे। यही कारण है कि उन्होंने एकलव्य की प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया और उसे अपना शिष्य नहीं बनाया।[5]

---

१. जयद्रथ वध, पृ० ६८
२. जयद्रथ वध, पृ० ६८
३. म० आदि० १३७।६५-६५
४. जयभारत, पृ० ६६
५. एकलव्य, पृ० ४

'महाभारत' में द्रोण वेतन मागते हैं—

यदि शिष्योऽसि मे वीर वेतन दीयता मम[1]

अन्तर्द्वन्द्व डा० वर्मा ने 'एकलव्य' मे आचार्य द्रोण की इस मनोवृत्ति को अस्वीकार किया है। महान आचार्य की मनोवृत्ति क्या इतनी क्षुद्र हो सकती है ? इस स्थल पर द्रोण के चरित्र मे अन्तर्द्वन्द्व की सम्भावना है। कवि ने 'महाभारत' के स्थिर कठोर गुरु को मानवीय द्रवणशीलता के साथ और भीष्म की राजनीति से विवश चित्रित करके द्रोण के चरित्र को मौलिक तथा नवीन सदर्भ मे उपस्थित किया है।

'महाभारत' के द्रोण एकलव्य की उपेक्षा करते हैं। 'एकलव्य' म द्रोण शिष्य के बुद्धि-वैभव को देखकर उसकी प्रशसा करते हैं।[2] 'एकलव्य' में द्रोण का अन्तर्द्वन्द्व उनके चरित्र का मुख्यरूप है। द्रोण राजगुरु हैं अत राजनीति की आज्ञा से व केवल राजपुत्रो को ही शिक्षा दे सकेंगे।[3]

एकलव्य की चरम उन्नति द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व का मुख्य कारण है। स्वप्न मे कवि ने द्रोण के द्वन्द्व का चित्रण किया है। इससे परोक्ष रूप मे यह सिद्ध किया है कि एकलव्य जैसे निश्छल शिष्य को राजनीति के कारण अस्वीकृत करने के उपरान्त भी द्रोण उसे भुला न सके। वह उनकी अन्तश्चेतना के तारो को झकृत करता रहा।[4]

द्रोण के चरित्र के द्वारा कवि सामाजिक असमानता का विरोध करता है। प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा का अधिकारी है[5] द्रोण ब्राह्मण के मुख्य कर्तव्य शिक्षादान का निर्वाह न कर सके, अत उन्हे इसका क्षोभ है और अन्त से नीम हो जाने पर पश्चात्ताप भी। 'एकलव्य' मे द्रोण के हृदय मे ब्राह्मणत्व और राजकुल की सीमाओ को लेकर जो मानसिक द्वन्द्व होता है वह कवि की मौलिक सूझ है।

धृतराष्ट्र

'महाभारत' मे धृतराष्ट्र आद्योपान्त विद्यमान हैं। किन्तु आधुनिक काव्य मे इनका चरित्राकन अन्य प्रसगो पर लिखे काव्यो मे ही यत्किंचित रूप से हो पाया है। 'महाभारत' म राजा धृतराष्ट्र के चरित्र की तीन मुख्य वृत्तिया परिलक्षित है।

१ सत्य-प्रेम, २ पुत्र प्रेम, ३ राज्य प्रेम।

सत्य प्रेम इन तीनों वृत्तियो का चित्रण अन्तर्द्वन्द्वात्मक रूप म हुआ है।

---

१ म० आदि० १३२।५४

२ एकलव्य, पृ० १२५

३ एकलव्य, पृ० १२६

४ यहा और वहा दोनों स्थानो मे जीवित हूँ
ऐसी यथाविचित्र मेरे जीवन की स्थिति है। एकलव्य, पृ० २१६

५ एकलव्य, पृ० २२२

'महाभारत' के धृतराष्ट्र पर विदुर, कृष्ण, भीम और द्रोण के विचारों का प्रभाव है। इसी प्रभाव के कारण उनका सत्य-प्रेम व्यक्त होता है। दुर्योधन धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ पुत्र है। धृतराष्ट्र की ममत्वपूर्ण भावना पुत्र-प्रेम के कारक अनेक ऐसे कार्य कराती है, जिन्हें स्वयं धृतराष्ट्र अनुचित मानते है।

धृतराष्ट्र के चरित्र में सत्यप्रेम की प्रवल भावना है। धृतराष्ट्र पाण्डवों के अधिकार[1] और कृष्ण के सन्धि-प्रस्ताव को भी मानते है तथा कृष्ण के आगमन पर प्रसन्न होते है।[2] विदुर के समझाने पर उनकी और शकुनी के समझाने पर उसकी बात मानना अस्थिरता का द्योतक है। तथापि वे सत्यप्रेम और दयाभाव के कारण ही द्रौपदी को वर देते है।[3] 'अंगराज' में इस प्रसंग के आधार पर धृतराष्ट्र का चरित्रांकन यथावत किया गया है।

राज्य-लोलुपता : 'महाभारत' के धृतराष्ट्र कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ध्यान न रखने वाला राज्य लोलुप राजा है। उनकी राज्य-लालसा प्रत्यक्ष रूप से प्रकट नही होती किन्तु पुत्र की दुष्कृति मे सहयोगी होने के कारण अप्रत्यक्ष रूप से राज्य-विस्तार की भावना प्रकट होती है। पाण्डवो को वारणावत भेजना[4], द्यूत की आज्ञा देना[5] और द्यूत के समय 'क्या जीत लिया'[6] प्रश्न करके प्रसन्न होना, इस तथ्य का द्योतक है कि धृतराष्ट्र भी परोक्ष रूप से पाण्डवों से छल करते थे।

धृतराष्ट्र पुत्र-स्नेह के कारण मोहान्ध होकर विदुर जैसे हितचिन्तक के निर्वासन में सकोच नही करते।[7] वे अपनी भावनाओं को भाग्यवादिता के ऊपर छोड़ देते है।[8]

अन्तर्द्वन्द्व : महाभारत कार ने धृतराष्ट्र के चरित्र में अनेक दुर्गुणों से युक्त होते हुए भी मानसिक द्वन्द्व की सृष्टि की है। अपने पापपूर्ण विचारो से अवगत वे उनको प्रकट करने मे लज्जित होते है।[9] इसी द्वन्द्व के कारण वे अत्यन्त स्पष्ट शब्दो में युधिष्ठिर के समक्ष अपने अहंकारी पुत्रो की दुष्टता को स्वीकार करते है। उन पर कभी सात्विकता का और कभी लोभ का आक्रमण होता रहा, सात्विकता के प्रभाव

---

१. म० आदि० १२८।१-२
२. म० उद्योग० ७१।१६
३. म० सभा० ७१।२७
४. म० आदि० अध्याय १४२ जयभारत पृ० ७०
५. म० सभा० अध्याय ५६
६. म० सभा० अध्याय ५५
७. म० वन० अध्याय ४
८. म० वन० अध्याय ६
९. म० आदि० १४१।१६

से वे दुर्योधन को बन्धु-प्रेम का परामर्श देते है।[1] इस प्रकार धृतराष्ट्र मे मानवीय दौर्बल्य की प्रधानता के कारण स्वाभाविक रूप से पुत्र-प्रेम की स्थिति है।

आधुनिक काव्य मे धृतराष्ट्र के चरित्र मे अत्यन्त अल्प परिवर्तन किया गया है। 'महाभारत' के धृतराष्ट्र स्वय पापपंकिल है[2] पर गुप्त जी के धृतराष्ट्र विवशता से पीडित हैं।[3] 'जयभारत' मे धृतराष्ट्र मोहान्ध अवश्य है पर दुरभिसन्धियो मे उनका हाथ नही है। गुप्त जी भी धृतराष्ट्र को पूर्ण रूप से न बदल सके।

श्री कृष्ण के दूतत्व प्रसग मे गुप्त जी ने धृतराष्ट्र की विवशता का व्यापक चित्रण[4] करके उनकी मनोव्यथा को जानने का प्रयास किया है।

दुर्योधन

आधुनिक प्रबन्धकाव्यो मे राजा दुर्योधन का चरित्र चित्रण एक महत्त्वाकाक्षी राजा, राजनीतिज्ञ एव अन्यायी व्यक्ति के रूप मे किया गया है। 'महाभारत' मे दुर्योधन के चरित्र मे तामसी एव राजसी वृत्ति की प्रधानता दिखाई है और उसी का अनुकरण आधुनिक कवियो ने किया है। आधुनिक कवियो की विचारधारा को दुर्योधन के विषय मे दो रूपो मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथमत मैथिली-शरण गुप्त, द्वारकाप्रसाद मिश्र, आदि ने दुर्योधन के चरित्र को पूर्णत 'महाभारत' के अनुसार कलि के अशावतार, राज्य-लोभी, अयोग्य शासक, दम्भी, गुरुजनाज्ञा अव हेलक के रूप मे चित्रित किया है। द्वितीय वर्ग के कवियो ने दुर्योधन के चरित्र की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है। आनन्द कुमार, लक्ष्मी नारायण मिश्र, दिनकर आदि प्रमुख कवियो ने दुर्योधन के चरित्र मे परिवर्तन किया है। इन कवियो के मत मे महाभारतकार का पाण्डव पक्ष अत्यन्त प्रबल है और वहा दुर्योधन के प्रति पूर्ण न्याय नहीं हुआ। वस्तुत दुर्योधन के चरित्र की दुष्ट वृत्तियो का मुख्य कारण राज्य था, किन्तु राज्य के विषय मे उसकी आसक्ति सामान्य थी।

'महाभारत' के दुर्योधन राजनीति मे निपुण, धन एव सम्मान देने मे और अन्यो को अपना बना लेने मे चतुर हैं। सम्भवत इसी कारण हृदय से इच्छा न होते हुए भी भीष्म और द्रोण दुर्योधन के पक्ष मे लडे।

आधुनिक काव्यकारो ने दुर्योधन के ऊपर आधारित किसी पृथक् प्रबन्ध काव्य की रचना नही की। 'महाभारत' के अन्याय प्रसगो पर रचित काव्यो मे ही दुर्योधन के चरित्र विषयक विचारो की झलक मिलती है। 'जयभारत' 'कृष्णायन' 'सेनापति कर्ण' 'अगराज' आदि रचनाओ मे दुर्योधन का चरित्र-चित्रण हुआ है। दुर्योधन के

---

१ म० सभा० ५४।१०
२ म० आदि० २००।१
३ जय भारत, पृ० ६६
४ जयभारत, पृ० ३३३

चरित्र के प्रति प्रत्येक कवि का अपना पृथक् दृष्टिकोण है। यद्यपि यह दृष्टिकोण उनके विचारों की व्यावहारिकता पर आवृत है किन्तु इससे 'महाभारत' के दुर्योधन को नये प्रकाश में आने का अवसर प्राप्त हुआ है।

तामसिकचरित्र : 'महाभारत' में दुर्योधन का विकास प्रारंभ से अन्ततक तामसी चरित्र के रूप में चित्रित किया गया है। अकारण पाण्डवों से वैमनस्य[1], भीमसेन को विष देना[2] निरन्तर पाण्डवों को कष्ट देना[3], वारणावत यात्रा की योजना[4], द्यूत क्रीड़ा[5], वनवास में भी पाण्डवों को तंग करने की योजना[6], कृष्ण के आगमन पर भी सुई की नोक के बराबर भूमि न देना[7] आदि कर्म उनकी दुष्टता के परिचायक हैं। वह शकुनि और कर्ण के परामर्श पर समस्त कार्य करता है और भीष्म, द्रोण तथा विदुर के परामर्श को ठुकरा देता है।

भारतीय परम्परा को यथावत स्वीकार करने वाले कवियों ने दुर्योधन के चरित्र के उक्त अवगुणों को 'महाभारत' के स्वर मे ही चित्रित किया है। उन्होंने पात्र की स्थिति परक भावानुभूति के प्रति उपेक्षा करके उसे स्थिर रूप में स्वीकार किया है। गुप्त जी का दुर्योधन प्रकृति-वश दुर्दान्त है, अन्यथा गुणज्ञ और कुल कान्त भी है।[8] 'जयभारत' के युधिष्ठिर दुर्योधन और एकलव्य की मित्रता में दुर्योधन की प्रीति को जघन्य बताते हैं।[9] वह मिथ्या अहंकार का प्रतीक है।[10]

स्वाभिमान एवं वीरत्व : दुर्योधन के चरित्र का प्रमुख रूप उसके स्वाभिमान और वीरत्व में है। उसमें रजोगुण की प्रधानता है। 'महाभारत' और आधुनिक काव्य में दुर्योधन के स्वाभिमान के प्रति उदारता की भावना का अभाव रहा। महाभारतकार इस भाव को दम्भ की सीमा मानकर चला और आधुनिक काव्य में भी भारती परम्परा के कवियों ने उसे स्वीकार किया। दुर्योधन को पाण्डवों के ऐश्वर्य से ईर्ष्या थी, किन्तु वह वीर क्षत्रिय की भांति रणभूमि में युद्ध करने की भावना का प्रकाशन करते हुए रण को ही एकमात्र निर्णायक मानता है।[11]

---

१ म० आदि० १२७।२५

२. म० आदि० १२७।४४-४५

३. म० आदि० अध्याय १२७

४. म० आदि० अध्याय १४१

५. म० सभा० अध्याय ५६

६. म० वन० अध्याय ७

७. म० उद्योग० अध्याय १२७

८. जयभारत, पृ० ४२

९. जयभारत, पृ० ५७

१०. दुर्योधन वध, पृ० ४०

११. म० सभा० ४६।३६ दक्षिणात्य पाठ

स्पष्ट वक्ता दुर्योधन के चरित्र में स्पष्ट वक्तृत्व की शक्ति विद्यमान है। वह अत्यन्त नीतियुक्त वचनों के द्वारा विदुर का विरोध करता है। अपनी मनोवृत्ति के कार्यों में ईश्वर को ही नियन्ता मानकर विश्वास करता है।[१] उसका कथन है कि इस संसार का शासक एक है, वही मुझे अनुशासित करता है, जैसे जगन्नियन्ता मुझे किसी काम में लगाता है, मैं वैसे ही करता हूँ।[२] दुर्योधन के इन वचनों से उसकी भाग्यपरता स्पष्ट होती है। किन्तु यह भाग्यवादिता उसे अकर्मण्य नहीं होने देती वह निरन्तर पुरुषार्थी बना रहता है। भाग्यवादी विचारधारा का विरलसूत्र उसके जीवन में विद्यमान था। आधुनिक कवियों में मिश्र जी ने दुर्योधन के चरित्र के इस रूप को देखने का प्रयास किया है।

पराक्रम-विश्वासी दुर्योधन को अपने पराक्रम पर विश्वास है।[३] वह युद्ध का संदेश भेजता है। वह हठधर्मी और गर्वी होते हुए आशावादी भी है। वह पराजय के कारणों को देखता हुआ भी उनके समक्ष परास्त न होकर संघर्ष करता है। यहीं पर आधुनिक कवि ने दुर्योधन के अहं के मध्य उसके वीरत्व की झलक देखी। दुर्योधन भीष्म, द्रोण के पतन को भाग्य की छलना मानता है।[४] अन्यथा इतने घोर विश्रुत वीर इस प्रकार न मारे जाते। इसी प्रसंग में वह धर्मराज की सत्यप्रियता पर व्यंग करता है।[५]

दुर्योधन को अपनी वीरता पर विश्वास है किन्तु पराजित होने पर वह आत्म-ग्लानि[६] से भरता है। चैत्ररथयुद्ध के प्रसंग में यह ग्लानि उसके मन का संचारीभाव है। यह अधिक समय तक उसे प्रभावित नहीं कर सकी। गुप्तजी ने स्वतन्त्र प्रसंग में दुर्योधन की ग्लानि को चित्रित किया है। इससे सिद्ध होता है कि दुष्ट व्यक्ति भी परोपकार को स्वीकार करता है और अपनी सीमा को मान लेता है। पर दुर्योधन क्षणिक आवेश के बाद पुनः पूर्ववत् हो जाता है।[७]

चरित्र की इस दुर्बलता के साथ उसका प्रबल पक्ष भी है। अन्धकाराच्छन्न मेघ-संकुल आकाश में विद्युल्लतिका के समान उसकी आस्था व्यक्त होती है। द्रोण के मरने पर वह इसलिए सन्धि नहीं करता कि यह अन्य मृत व्यक्तियों के प्रति विश्वासघात होगा। यह कर्त्तव्यनिष्ठा उसके चरित्र का उज्ज्वल रूप है। यहाँ पर महाभारतकार ने दुर्योधन के चरित्र के दो पक्ष चित्रित किए हैं। प्रथमतः उसके

---

१ म० सभा० ६४।६-७
२ म० सभा० ६४।८
३ म० उद्योग० १६०।८७-५२
४ सेनापति कर्ण, पृ० ६, ३१
५ सेनापति कर्ण, पृ० ७
६ म० वन० २४६।४-१२
७ जयभारत, पृ० २१६-२१७

मन में अपने पूर्वकृत पापों का स्मरण होता है।[1] द्वितीयतः ऐसे समय की सन्धि अपमानजनक है[2] वह एक वीर की भांति रणभूमि मे मृत्यु को वरेण्य समझता है।[3]

मनोवैज्ञानिकता : महाभारतकार ने दुर्योधन के चरित्र को मनोवैज्ञानिक रूप में उपस्थित किया है। परन्तु मिश्र जी के दुर्योधन में मानवीय दुर्बलताओं के कारण पराजय के उपरान्त स्वाभाविक दुर्बलता प्रकट होती है, पर उसका गर्व उसे पुनः प्रतिशोध के लिए प्रेरित करता है। यही मूल भाव दुर्योधन के चरित्र का केन्द्र बिन्दु है। कहीं-कहीं इस स्थल की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी हो पाई है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने दुर्योधन को उक्त मानवीय दुर्बलता और प्रतिशोध की भावना के जन्मजात संस्कारों की पृष्ठभूमि मे चित्रित किया है। उसे अपने वंश का गर्व है।[4] 'अंगराज' मे आनन्द कुमार ने द्रौपदी के अपमान के प्रसंग मे दुर्योधन के चरित्र की व्याख्या की है।[5] आज के युग में दुर्योधन का चरित्र ईर्ष्यालु, दम्भी और तामसी नहीं है जैसा 'महाभारत' मे। उसमें अडिग आत्म-बल की प्रधानता है।[6]

चरित्र परिष्कार : आधुनिक युग मे सामान्यतः दुर्योधन के चरित्र के परिष्कार की ओर ध्यान दिया गया है। यह परिष्कार केवल भावनागत नहीं अपितु तार्किक है। दुर्योधन के प्रत्येक अवगुण के पीछे एक तर्क है, एक स्नायविक उत्तेजना है, जिसके कारण वह पाण्डवों का द्रोही बन गया है। आधुनिक कवियों ने यह जानने का पूर्ण प्रयास किया है कि इन परिस्थितियों में व्यक्ति का चरित्र कैसा हो सकता था?

दुर्योधन के प्रारंभिक द्वेष का कारण पाण्डवों का जन्म था, इसकी अभिव्यक्ति 'रश्मिरथी,[7] 'सेनापति कर्ण'[8] और 'अंगराज' में हुई है। पाण्डवों के जन्म की कथा को दुर्योधन अपने वंश का कलंक मानता है।[9]

स्ववंशज न होने के कारण ही सम्भवतः दुर्योधन ने पाण्डवों को राज्य नहीं दिया। आधा राज्य न देने के विषय में 'महाभारत' के समाधान को स्वीकार न करके भी आधुनिक कवियों ने कोई तार्किक समाधान प्रस्तुत नहीं किया। आनन्द-

---

१. म० शल्य० ५।८-११, शल्यवध, पृ०२५
२. म० शल्य० ५।४४-४५, शल्यवध पृ० २८
३. म० शल्य ५।४७
४. सेनापति कर्ण, पृ० ८-९
५. अंगराज, पृ० ७९
६. सेनापति कर्ण, ३१
७. रश्मिरथी, पृ० ८
८. सेनापति कर्ण, पृ० ७
९. सेनापति कर्ण, पृ० ७

कुमार' ने तो द्यूत का उत्तरदायित्व भी युधिष्ठिर पर डाल दिया[1] और दुर्योधन के चरित्र को निष्कलंक बनाने का प्रयास[2] किया। 'अंगराज' के एकांगी आग्रह को तो हम स्वीकार नहीं करते, किन्तु इतना अवश्य है कि तत्कालीन वंश एवं जाति-बन्धन के युग में दुर्योधन का पाण्डवों के प्रति द्वेष-पूर्ण व्यवहार अनुचित इसलिए था कि अन्य व्यक्तियों से इस व्यवहार का समर्थन नहीं मिला। समग्र रूप में आधुनिक काव्य में 'महाभारत' का दुर्योधन पर्याप्त रूप में सुयोधन ही बनकर चित्रित हुआ है।

कर्ण

'महाभारत' के चरित्रों में कर्ण सर्वाधिक विवाद का विषय रहा है। 'महाभारत' के अन्य प्रमुख पात्रों में युग भावना के गहरे आग्रह के कारण भी अधिक परिवर्तन नहीं किया जा सका किन्तु कर्ण एकमात्र ऐसा चरित्र रहा, जिसके जीवन में आधुनिक सुधारवादी कवियों को वर्गभेद, धर्मभेद, जातिभेद के विरुद्ध स्वरघोष करने का आधार मिल सका। 'महाभारत' में कर्ण का चरित्र अत्यन्त प्रभावशाली और वीरता, दान, करुणा से परिपूर्ण है। वसुषेण, वृष, कर्ण, जीव आदि नाम भी परोक्ष रूप से उसके गुणों पर आधारित हैं। कवच कुण्डलधारी होने के कारण कर्ण का नाम वसुषेण रखा गया। कवच कुण्डल काटकर देने के कारण वैकर्तन कर्ण नाम हुआ, सत्यवादी, तपस्वी, वेदवादी होने के कारण उसका नाम वृष और बृहस्पति के समान बुद्धिमान होने के कारण उसका नाम जीव रखा गया। स्वयं कृष्ण ने कर्ण की चारित्रिक उच्चता का चित्रण इस प्रकार किया है—

त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादान्सनातनम्।[3]
त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः॥

भिन्न प्रतीकार्थ वाचक धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ, वीर, पुरुषार्थी, त्यागी, कर्ण का चरित्र आधुनिक काव्य में 'महाभारत' से भी अधिक उज्ज्वल रूप में चित्रित किया गया है। कर्ण पर लिखे गये प्रबन्ध काव्यों में कवियों की मूल दृष्टि कर्ण के चारित्रिक उत्कर्ष की ओर रही है। कर्ण के चरित्र को माध्यम बनाकर इन कवियों ने अपनी सुधारवादी वृत्तियों की स्थापना की है। कर्ण के चरित्र के प्रति महाभारत-कार की भी पूर्ण सहानुभूति रही है। हम पहले भी कह आये हैं कि कर्ण के चरित्रांकन में आधुनिक जीवन के दृष्टिकोण का अधिक प्रभाव है। वह कलंकित मानवता का प्रतीक है।[4] वीरत्व का आदर्श[5] पुरुषार्थ, निष्ठा और त्याग की मूर्ति[6]

१ अंगराज, पृ० ७४
२ अंगराज, पृ० ७५
३ म० उद्योग १४०।७
४ रश्मिरथी, भू० पृ० ख-ग।
५ सेनापति कर्ण, पृ० १२२, १३३
६ अंगराज, पृ० २८-२९

निष्कलंक एवं उदात्त[1] है। उसमें हम एक विशेष प्रकार की अहम्मन्यता पाते हैं, किन्तु यह अहम्मन्यता ही उसे अन्त तक पुरुषार्थी, दानी और शक्तिशाली बनाये रहती है।

आत्म-विश्वास पूर्ण वीरत्व : कर्ण के चरित्र का प्रमुख गुण आत्म-विश्वास-पूर्ण वीरता है। प्रारम्भ से ही कर्ण को अपने बल पर पूर्ण विश्वास है। रंगभूमि में अर्जुन की स्पर्धा में कर्ण का वीरत्व व्यक्त होता है। इस स्थल ने समान रूप में आधुनिक कवियो को प्रभावित किया है और सभी कवियों ने अपने अनुसार कर्ण के वीरत्व का चित्रण किया है। महाभारतकार ने कर्ण का व्यक्तित्व इस रूप में व्यक्त किया है।

सिंहर्षभगजेन्द्राणां बलवीर्य पराक्रमः।
दीप्तिकान्ति द्युति गुणैः सूर्येन्दुज्वलनोपम :।[2]

महाभारतकार की इस उक्ति के आधार पर ही दिनकर का कर्ण रंगभूमि में अपना वीरत्व प्रकट करता है।

पूछो मेरी जाति शक्ति हो तो मेरे भुज बल से।
रवि समान दीपित ललाट से और कवच कुण्डल से ।।[3]

गुप्त जी का कर्ण वीर एवं दम्भी है।[4]

वीर युग का प्रतिनिधि : कर्ण का चरित्र वीर युगीन भावनाओं का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। वीरता के साथ दम्भ और विश्वास दोनों होते हैं। कर्ण के साथ वीरत्व का प्रमुख रूप यह था कि वह कभी भी अपने को किसी से हेय न समझ सका। इसी विश्वास के साथ वह अन्त तक संघर्ष करता रहा। अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध के अनेक अवसर आये, द्रुपद के यहां द्रौपदी स्वयंवर में, विराट पर्व मे गोहरण प्रसंग मे तथा 'महाभारत' के मूल युद्ध में किन्तु 'महाभारत' का कर्ण सर्वदा परास्त होता रहा। 'अंगराज' में कर्ण का चरित्र मूल ग्रंथ की भावना को स्वीकार करते हुए भी अतिरंजित वीरत्व के साथ चित्रित किया गया है। कर्ण के चरित्र की विशेषता है कि वह निर्भयता से युद्ध में रत रहा। कर्ण शल्य से कहता है कि मैं भय प्राप्ति के लिए उत्पन्न नहीं हुआ हूं। मैं तो पराक्रम करने और यश बढ़ाने के लिए उत्पन्न हुआ हूं,[5] देवराज इन्द्र से भी युद्ध करते हुए मुझे भय नहीं हो सकता।[6]

---

१. त्रिपथगा, पृ० १
२. म० आदि० १३५।४
३. रश्मिरथी, पृ० ५
४. जयभारत, पृ० ६
५. नहिकर्णः समुद्भूतां भयार्थमिह मद्रक।
विक्रमार्थ महं जातो यशोऽर्थंच तथाऽऽत्मनः। म० कर्ण० ४३।६
६. म० कर्ण० ३७।१३

'अंगराज' में कर्ण की निर्भयता का सुन्दर चित्रण है। वीर व्यक्ति कभी भी शत्रु की सेना देखकर विचलित नहीं होता, शत्रु सेना उसके क्रोध का अवलम्बन है। अपने ध्येय की प्राप्ति के हेतु जीवन-संग्राम में कूदना व्यक्ति के पुरुषार्थ की चरम स्थिति है। कर्ण इसी स्थिति का द्योतक है।[1]

कर्ण की दर्पोक्ति में उसका वीरत्व निहित है। वह अपने पुरुषार्थ के बल पर दिव्य शक्तियुक्त अर्जुन को ललकारता है। दिनकर ने कर्ण की ललकार को अत्यन्त सशक्त रूप में चित्रित किया है।

हो छिपा जहां भी पार्थ सुने अब हाथ समेटे लेता हूं,
सबके समक्ष द्वैरथ रण की मैं उसे चुनौती देता हूं।[2]

पार्थ को कर्ण की यह चुनौती[3] उसके वीरत्व का साक्षात प्रमाण है।

'सेनापति कर्ण' में कर्ण के वीरत्व का व्यापक चित्रण नहीं हो पाया। वीर व्यक्ति के हृदय में शत्रुवीर के लिए भी आदर का भाव होता है। 'महाभारत' का कर्ण अर्जुन के महत्व को स्वीकार करता है।[4] 'सेनापति कर्ण' का कर्ण अर्जुन की निन्दा सुनना नहीं चाहता क्योंकि वीरत्व-धर्म में वीर-निन्दा त्याज्य है।[5]

वीरत्व के चरम कर्मक्षेत्र में पहुंचकर कर्ण दैव की क्रूर गति से भी भयभीत नहीं होता है। 'महाभारत' का कर्ण विप्रशाप और परशुराम के शाप के स्मरण से भयभीत है।[6] इस पर भी उसे पुरुषार्थ में विश्वास है।[7] यहां पर कर्ण का चरित्र अन्य युद्ध-वीरों में उच्च हो जाता है। अन्य वीर जहां दैव विरोध को हटाकर युद्धरत हुए, कर्ण दैव विरोध के होते हुए भी युद्ध में संलग्न रहा। अर्जुन की विजय के हेतु इन्द्र को कवच कुण्डलों का दान मांगना पड़ा। इस स्थल पर दिनकर जी ने 'महाभारत' के कर्ण के चरित्र का परिष्कार कर अत्यन्त तेजस्वी रूप में चित्रित किया है। 'महाभारत' का कर्ण सौदा करता है, किन्तु 'रश्मिरथी' का कर्ण अपनी विजय की घोषणा करते हुए कितना प्रसन्न होता है।[8]

---

१ अंगराज, पृ० २२१
२ रश्मिरथी, पृ० १४४
३ रश्मिरथी, पृ० १६१
४ म० कर्ण० ४२।१५
५ सेनापति कर्ण, पृ० १८४
६ म० कर्ण० ४२।३
७ अंगराज, पृ० २२१
८ अब जाकर कहिये कि पुत्र मैं वृथा नहीं आया हूं,
अर्जुन तेरे लिये कर्ण से विजय मांग लाया हूं॥
दो वीरों ने किन्तु लिया कर आपस में निबटारा
हुआ जयी राधेय और अर्जुन इस रण में हारा। रश्मिरथी, पृ० ७५

दिनकर जी के कर्ण में महान वीर के गुणों की अभिव्यक्ति है। कर्ण शूर-धर्म की व्याख्या करता है कि शूर व्यक्ति भाग्य को भी परिवर्तित कर सकता है।[१] कर्ण के चरित्र में वीरत्व के साथ सत्यता की अडिगता[२] दिनकर के कर्ण की मुख्य देन है। मानवता छल और छद्म से कलंकित होती है। अपने बाहुबल पर भरोसा रखने वाला मर कर भी विजयी बनता है। अतः कर्ण बाहुबल का समर्थन करता है।[3]

धर्मयुद्ध : कर्ण के चरित्र की मुख्य विशेषता है कि उसने कभी भी क्रूर युद्ध का आश्रय नहीं लिया। उसकी मानववादी भावना युद्ध-क्षेत्र में भी जीवित रही।[४] वह अपने परलोक को इस जीवन मे पाप करके मिटाना नहीं चाहता।[५]

कर्ण के वीरत्व और बलवत्ता के अनेक स्थल 'महाभारत' में आते हैं। कलिंग युद्ध का प्रसंग निश्चित ही कर्ण के शौर्य की अभिव्यक्ति करता है। आधुनिक काव्य में 'अंगराज' में ही इसकी चर्चा की गई है। कर्ण का चरित्र इतना महान रहा कि कुरुराज ने भीष्म-द्रोण के प्रति अविश्वास प्रकट किया, पर कर्ण के प्रति वह पूर्ण आश्वासित रहा। कर्ण के चरित्र के सभी गुण कृष्ण ने एक ही स्थल पर व्यक्त कर दिये।[६] कर्ण के इन चारित्रिक गुणों के कारण ही आधुनिक काव्यों में यह चरित-नायक बना दिनकर[७] और आनन्द कुमार ने[८] कर्ण के चरित्रांकन में वीरता का आदर्श उपस्थित किया है। भारती वीर कर्ण आज भी पुरुषार्थ प्रेमी व्यक्तियों के लिए आदर्श है। अपने जीवन से सब प्रकार की शक्ति को खोकर भी कर्ण पराक्रम के बल से लड़ा यही पुरुषार्थ प्रियता इन काव्यों की उपलब्धि है।

---

१. वह करतब है यह कि शूर जो चाहे कर सकता है,
नियति भाल पर पुरुष पांव निज बल से धर सकता है। रश्मिरथी, पृ०७३

२. रश्मिरथी, पृ० ७३

३. रश्मिरथी, ७३

४. करके दूषित शरका प्रयोग, हम नहीं चाहते विजय भोग।
अंगराज, पृ० २५६

५. अगला जीवन किसलिए भला
तब हो द्वेषान्ध बिगाड़ूँ मैं।
सांपों की जाकर शरण
सर्प बन क्यों मनुष्य को मारूं मैं॥ रश्मिरथी, पृ० १८१

६. तेजसा वन्हि सदृशो वायुवेग समो ज वे
अन्तक प्रतिमः क्रोधे सिंह संहननो बली। म० कर्ण० ७२।२६

७. रश्मिरथी, पृ० २०२-२०३

८. अंगराज, पृ० २३७, २५६, २६०

मानसिक द्वन्द्व—आधुनिक कवि ने कर्ण में मानसिक द्वन्द्व का चित्रण कर 'महाभारत' से पृथक् एक चारित्रिक विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

'महाभारत' में कर्ण के मानसिक संघर्ष के अनेक स्थल आते हैं। उन सभी स्थलों में महाभारतकार मानसिक द्वन्द्व को अन्तर्व्यथा की गहरी अनुभूति के रूप में नहीं उतार सका। इसका कारण यह है कि 'महाभारत' के विशाल रूप में मानसिक द्वन्द्व को अधिक स्थान नहीं दिया गया। वहाँ प्रत्येक पात्र अपनी शक्ति की सीमा से परिचित है। अतः कर्ण के मानसिक संघर्ष को व्यक्तिगत रूप में 'महाभारत' में चित्रित नहीं किया गया। मानसिक द्वन्द्व के मुख्य स्थलों में कुन्ती-कर्ण-संवाद, इन्द्र-कर्ण-प्रसंग, भीष्म-कर्ण संवाद, परशुराम-कर्ण प्रसंग ही प्रमुख हैं। आधुनिक काव्यकारों ने 'महाभारत' के स्थलों के आधार पर कर्ण के चरित्र का मानसिक संघर्ष प्रस्तुत किया है।

जातिगत संघर्ष—'महाभारत' में कर्ण का चरित्र जिस रूप में विकसित हुआ है उसके कई मनोवैज्ञानिक कारण माने जा सकते हैं। रंगभूमि में प्रथम बार कर्ण वीरत्व प्रदर्शन के लिए आता है। कर्ण वीर है, तेजस्वी है और जन्मजात कवच कुण्डल-धारी व्यक्ति है, अतः उसे अपने वीरत्व, व्यक्तिगत शक्ति पर अटूट विश्वास होना स्वाभाविक है। समान शक्तिशाली होने पर भी कर्ण जातिहीनता के कारण तिरस्कृत हुआ। इस जातिगत तिरस्कार के कारण वह पाण्डवों का घोर शत्रु और दुर्योधन का अनन्य मित्र बना था। कर्ण के मानसिक संघर्ष का मूल यही जाति और कर्म का संघर्ष है। 'महाभारत' में यह संघर्ष व्यापक नहीं है। कृपाचार्य के प्रश्न को सुनकर कर्ण केवल लज्जित हो उठता है।[1]

दिनकर जी ने इस स्थल पर कर्ण के चरित्र के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण किया है।[2] इस प्रसंग में जन्म और कर्म की विवेचना की है।[3] कुल और जाति के अहंकार की समाप्ति हेतु कर्ण के चरित्र को प्रस्तुत करके कामना की है कि भविष्य में व्यक्ति-सामर्थ्य के अनुसार समाज में स्थान ग्रहण कर सकेगा[4] केवल जन्म के कारण नहीं। कर्ण के चरित्र के द्वारा यह सिद्धान्त व्यापक रूप में उपस्थित किया गया है जो आज की बौद्धिकता का परिचायक है।

कुन्ती और कर्ण के संवाद में 'महाभारत' का कर्ण अधिक उग्र है[6] किन्तु आधुनिक कवियों ने कर्ण के हृदय को अत्यन्त कोमल चित्रित किया है। दिनकर का

---

१ म० आदि० १३५।३४

२ रश्मिरथी, पृ० ४

३ रश्मिरथी, पृ० ५-६

४ रश्मिरथी, पृ० ७

५ रश्मिरथी, पृ० ४९-५०

६ म० उद्योग० १४६।८

कर्ण भावुक है[1] अंगराज में भी कर्ण भावनामय है।[2] मिश्र जी का कर्ण तो कुन्ती को वासव की शक्ति के विषय में बताकर अपनी पराजय और भी स्वीकार कर लेता है। बन्धुओं के प्रति त्याग की यह उदार भावना 'सेनापतिकर्ण' में मिश्र जी की मौलिक सूझ है।[3] इस प्रसंग के आधार पर कर्ण के चरित्र को द्वन्द्वमय दिखाया है। वह नितान्त स्वाभाविक रूप में कुन्ती की भर्त्सना करता है। उसके हृदय का सम्पूर्ण रोष व्यक्त होता है पर अन्ततः वह दयालु हो जाता है।

परशुराम और कर्ण के प्रसंग में भी कर्ण के मानसिक द्वन्द्व को स्वर दिया गया है। कर्ण जन्मगत हीनता के कारण ही परशुराम से शिक्षा प्राप्त न कर सका, उसे इस बात का क्षोभ नहीं, किन्तु परशुराम के मुख से ब्राह्मणकुमार शब्द सुनते ही कर्ण के हृदय में क्षोभ भर जाता है। मन धिक्कारने लगता है[4] कर्ण ने परशुराम से छल किया, यह उसके चरित्र का दुर्बल अंश है। कर्ण आत्मग्लानि और रक्त की धार बहाकर छल के पाप को धो देता है और गुरु के शाप को शिरोधार्य कर, पुनः पवित्र हो जाता है। कर्ण के चरित्र के इस उदाहरण से आज का कवि छल का विरोध करता है और कहता है कि अनुचित रीति से प्राप्त विद्या यशः करी एवं अर्थकरी नही होती।[5]

भगवती चरण वर्मा ने कर्ण के चरित्र का चित्रण द्रौपदीस्वयंवर के संदर्भ मे किया है। निश्चित ही यह वह दृष्टि है जिसकी ओर अन्य कवियों का ध्यान नही गया। वर्मा जी ने कर्ण के जीवन मे अर्जुन के प्रति शत्रुता का मुख्य कारण द्रौपदी से अपमानित होना माना है। समान वीर होने के कारण भी कर्ण द्रौपदी से अपमानित हुआ। ऐसी स्थिति में वह उस व्यक्ति का चिर शत्रु क्यों न बनता जिसने द्रौपदी का प्राप्त किया।[6]

दानवीरता : कर्ण के चरित्र का मुख्य गुण दान वीरता थी। 'महाभारत' में वह ब्राह्मणों को अधिक दान देता दिखाई देता है। कवच कुण्डल दान, माता कुन्ती को चार भाइयों का प्राणदान निश्चित ही उसके चरित्र को प्रशस्त बनाते है।[7] मिश्र दिनकर,[8] आनन्द कुमार[9] तथा अन्य कवियों ने कर्ण की दानशीलता का यथावत

१. रश्मिरथी, पृ० १०५-१०६
२. अंगराज, पृ० १५
३. सेनापति कर्ण, पृ० १२६
४. रश्मिरथी, पृ० १७
५. अंगराज, पृ० ५१
६. त्रिपथगा, पृ० ४१
७. सेनापति कर्ण, पृ० ३४
८. रश्मिरथी, पृ० ६०
९. अंगराज, पृ० ६५

चित्रण किया।

कर्ण के चरित्र का मूल आधार उसके जन्मजात एवं अर्जित गुणों के संघर्ष में है। आधुनिक कवि कर्ण के वीरत्व पर और दानशीलता पर मुग्ध है अतः कर्ण की वीरता और दानशीलता की पुनः प्रतिष्ठा के हेतु कर्ण पर काव्य रचना की गई। इनके साथ कर्ण के चरित्र का सामाजिक रूप भी है। दिनकर ने 'रश्मिरथी' की भूमिका में स्पष्ट किया है कि कर्ण चरित्र का उद्धार निश्चित ही नयी मानवता की स्थापना है।[1] वस्तुतः आज का कवि जन्मगत उच्चता, धर्मगत प्रतिष्ठा के विरोध में अपना स्वरघोष करना चाहता है। 'सेनापति कर्ण' में जातिगत उच्चता और हीनता का विरोध किया गया

'महाभारत' का कर्ण आदर्श पात्र है। कृष्ण, भीष्म और स्वयं अर्जुन उसकी प्रशंसा करते हैं। वह पराक्रम के बल पर युद्ध करता है। उसे अपने पुरुषार्थ पर पूर्ण विश्वास है। आधुनिक कवि पराजित जाति के रक्त में एक बार पुनः आत्म-गौरव, कर्म की उच्चता, पुरुषार्थ के प्रति विश्वास और अनन्य मित्रता के गुण भरना चाहता है। दुर्योधन के प्रति कर्ण की मित्रता किसी महान् चरित्र का आचरण ही हो सकती है। ऐसी अभिन्न और अटूट मित्रभक्ति का निर्वाह कर्ण जैसा वीर ही कर सकता था। ऐसे उत्कृष्ट गुण जिस चरित्र में विद्यमान हैं उसका पुनरुत्थान आवश्यक है। कर्ण-चरित्र पर लिखे काव्य इसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। कर्ण का चरित्र इन शब्दों में अपने अस्तित्व की घोषणा करता है।

मैं उनका आदर्श किन्तु, जो तनिक न घबरायेंगे।
निज चरित्र बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।[2]

अश्वत्थामा

द्रोण पुत्र अश्वत्थामा का चरित्र 'महाभारत' में अदम्य वीरत्व,[3] मैत्री की दृढ़ता[4] उदारता,[5] आदि सद्गुणों से युक्त है। वह ब्रह्म और क्षात्र तेज का अलौकिक समन्वय है। इन गुणों के अतिरिक्त 'महाभारत' के युद्ध के अन्तिम दिन की रात्री में द्रौपदी के पुत्रों, धृष्टद्युम्न तथा अन्य वीरों की जघन्य हत्या का अपराध भी अश्वत्थामा के चरित्र का मुख्य रूप है।[6] इस प्रकार 'महाभारत' का यह चरित्र दो विरोधी किनारों पर एक साथ व्यक्त हुआ है।

---

१ रश्मिरथी, भूमिका, पृ० ख
२ रश्मिरथी, पृ० ६७
३ म० आदि० १२६।४७ म० द्रोण० अध्याय, १५६, १६०, १६५, २०१
४ म० शल्य० अध्याय ६५
५ म० सौप्तिक० १३।१६
६ म० सौप्तिक० अध्याय ८

आधुनिक काव्य में अश्वत्थामा के चरित्र का चित्रण उसके समस्त गुणों के साथ किया गया है और हत्या के अपराधी के रूप में उसकी भर्त्सना भी उतनी ही मात्रा में की गई है। लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने अश्वत्थामा के चरित्र का परिष्कार किया है। चरित्र-सृष्टि की नवीनता इस रूप में प्रस्तुत की गई है कि मिश्र जी को 'महाभारत' की अनेक लोक-विश्रुत घटनाओं को अस्वीकार करना पड़ा।[१] यद्यपि कवि प्राचीन कथानकों के संग्रहण में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है, किन्तु मिश्र जी ने बिना किसी पुष्ट तर्क के द्रौपदी के पुत्रों की स्थिति को अस्वीकृति दी है और इस कारण अश्वत्थामा के ऊपर लगे हत्या के[१] आरोप को मिथ्या सिद्ध करने का प्रयास किया है। सौप्तिक पर्व से सम्बन्धित घटनाओं को न मानकर कवि ने अपने ग्रन्थ में चरित्र का परिष्कार कर दिया है किन्तु संस्कार पुष्ट न होने के कारण हमें यह स्वीकृत नहीं है। मैथिलीशरण गुप्त, आनन्द कुमार,[२] द्वारकाप्रसाद मिश्र,[३] उग्रनारायण आदि कवियों ने अश्वत्थामा के चरित्र को 'महाभारत' के अनुरूप चित्रित करके उसके व्यक्तित्व में शौर्य की प्रतिष्ठा की है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अश्वत्थामा के चरित्र को नवीन रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उन्होंने सौप्तिक पर्व की घटना का मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध द्रोण की हत्या से लिया है। द्रोण का वध भी युद्ध करते नहीं हुआ था अपितु ध्यानस्थ द्रोण का सिर धृष्टद्युम्न ने काट डाला और पिता का प्रण पूर्ण किया। अश्वत्थामा को अपने ब्रह्मशर पर पूर्ण विश्वास है, इसी कारण वह अपने पितृघाती से प्रतिकार के लिए आश्वस्त है।[४]

इस मानसिक क्षोभ की पृष्ठ-भूमि में अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के वध की बार बार प्रतिज्ञा करता है।[५] मिश्र जी अश्वत्थामा के सावन को अन्य कृत प्रतिज्ञ वीरों के सावनों के अनुरूप देखते हैं और हत्या के दोष से अश्वत्थामा को मुक्त करते हैं।[६] मिश्र जी द्रौपदी के पाचों पुत्रों के जन्म की कहानी को असत्य मानकर अश्वत्थामा के चरित्र-दोष को मिटाने का प्रयास करते हैं। इस चरित्र-सृष्टि में जहां तक धृष्टद्युम्न की हत्या की मानसिक पृष्ठभूमि का प्रश्न है, हमें वह मान्य हो सकती है और कवि ने उसे जिस रूप में प्रस्तुत किया है वह मनोवैज्ञानिक है। इसके साथ द्रौपदी के पाच पुत्रों की अस्वीकृति से हमें सहमति नहीं है। वह मिश्र जी की निर-

१. सेनापति कर्ण, पृ० २९
२. जयभारत, पृ०४१४
३. अंगराज, पृ० २८७
४. सेनापति कर्ण, पृ० २९
५. सेनापति कर्ण, पृ० ३०
६. सेनापति कर्ण, पृ० ६३

र्थक कल्पना है इसमे द्रौणि के चरित्र का समुचित परिष्कार भी नही होता। 'जय-भारत' मे इस जघन्य कार्य की भर्त्सना की है। 'जयभारत' मे अश्वत्थामा अपने को केवल मात्र प्रतिहिंसा से पूर्ण मानता है।[1] यह उसके चरित्र का वास्तविक रूप है और मिश्र जी ने उसे जिस रूप मे चित्रित किया है उसमे वास्तविकता कम और कवि की भावना का आरोपण अधिक है।

शल्य

कर्ण वध के उपरान्त कौरव सेना को युद्धभूमि मे उत्साहित करने वाले इस सेनापति के चरित्र का आलेखन विस्तार से नही हुआ है। 'महाभारत' मे शल्य माद्री के भाई और पाण्डवो के मामा है। शल्य के ऊपर स्वतन्त्र रूप से एक ही प्रबन्ध काव्य लिखा गया है। 'शल्य वध' मे शल्य के चरित्र को 'महाभारत' के अनुरूप ही चित्रित किया है। वीरत्व, प्रण पालन, अदम्य उत्साह और कर्त्तव्य-निष्ठा की प्रति-मूर्ति शल्य इस भावना के प्रतीक हैं कि किस प्रकार प्रणबद्धता के कारण अपने सम्ब-न्धियो से युद्ध किया जा सकता है।

शल्य के चरित्र का प्रमुख दर्शन सर्वप्रथम महाभारत के युद्ध मे भाग लेने के लिए मार्ग मे आते हुए होता है।[2] दुर्योधन छल से शल्य को अपनाने की चेष्टा मे सफल होते हैं[3] मार्ग मे स्वागत करने वाले के प्रति शल्य वचन बद्ध होते हैं।[4] बाद मे वास्तविकता जान लेने पर भी दुर्योधन की ओर रहते हैं। युधिष्ठिर को भी उनका प्रिय कार्य करने का वचन देते हैं।[5] इस वचन का अपने सारथ्य काल मे पूर्ण रूप से निर्वाह करते हैं।

शल्य का चरित्रांकन वीर युगीन भावना के अनुरूप हुआ है। सेनापति बनने के प्रस्ताव के उत्तर मे शल्य अपनी कर्त्तव्य निष्ठा की अभिव्यक्ति करते हैं। इस अभिव्यक्ति मे उनके शौर्य की व्यंजना हो पाई है। शल्य के चरित्र को आधुनिक काव्य मे विशिष्ट नवीन कलेवर नहीं दिया गया। शल्य युद्ध की निन्दा करते हैं और बन्धु विग्रह को दुर्भाग्य के रूप मे मानते हैं। किन्तु अवसर पर विशुद्ध क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए प्राण त्याग देते हैं।

---

१ सचमुच ही मुझमे पाप पुण्य का अब क्या बोध बचा है।
लेने को देकर और सभी कुछ, बस प्रतिशोध बचा है।

जयभारत पृ० ४१४

२ म० उद्योग० अध्याय ८७

३ शल्यवध, पृ० ७

४ शल्यवध, पृ० १०

५ शल्यवध, पृ० १२

६ शल्यवध, पृ० ३१-३२

वीर युग के चरित्र के सभी गुण शल्य में व्यक्त हुए हैं। उनका स्थायीभाव उत्साह है और आत्मश्लाघा अनुभाव। वे अन्य वीरों की भांति अनेक स्थानों पर अपने वीरत्व की प्रशंसा करते है।

नहुष

नहुष 'महाभारत' का उपाख्यानात्मक पात्र है। गुप्त जी ने नहुष के चरित्र को 'महाभारत' के अनुकूल चित्रित किया है किन्तु व्यक्तिगत दृष्टि की विशेषता के कारण 'नहुष' खण्डकाव्य का नहुष कतिपय नवीनताओं के साथ प्रस्तुत हुआ है। नहुष के चरित्र की पृष्ठभूमि में कवि के विचार द्रष्टव्य है।

'परन्तु व्यासदेव के द्वारा वर्णित इस आख्यान मे स्पष्ट दिखाई दिया कि मनुष्य बार-बार ऊँचे उठने का प्रयत्न करता है और मानवीय दुर्बलताएं बार-बार उसे नीचे ले आती हैं। मनुष्य को इन पर विजय पानी ही होगी।[1]

नहुष के चरित्र में मानवीय दौर्बल्य का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। 'महाभारत' का नहुष साविकार शची की मांग करता है[2] किन्तु नहुष में यह अंश मनोविज्ञानिकता से चित्रित है। पहले नहुष शची को देखकर विचार करता है कि मैंने इसकी उपेक्षा की[3] तदुपरान्त प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर शची के लिए संघर्ष करता है।[4] यह मनोवैज्ञानिक संघर्ष चरित्र को स्वाभाविकता प्रदान करता है।

नहुष के चरित्र को मानवीय सद्वृत्तियों के विकास और असद्वृत्तियों के दमन के रूप में व्यंजित किया है। सद्वृत्ति से मानव देवता बनता है पर उसके विपरीत होने पर उसका पतन भी हो सकता है।[5] नहुष के चरित्र से कवि ने आधुनिक जीवन में भोग की लालसा का विरोध किया है। पर-स्त्री अनुरक्तता के दोषों को व्यंजित करके आदर्श की स्थापना की है।

राजा नल

'महाभारत के उपाख्यानों में नल का कथानक आधुनिक कवियों को अधिक प्रिय रहा। आधुनिक काव्य के पूर्व भी नल की कथा को लेकर अनेक लघु आख्यान-काव्यों की रचना की गई। यद्यपि पूर्व आधुनिक काल के काव्यों के कथानकों और चरित्र-चित्रण में कवियों की मौलिकता का प्रश्न नहीं उठता, न तो इन कवियों ने कथा में कुछ परिवर्तन किया और न पात्र की रूपरेखाओं मे। इस काल के काव्य 'महा-

---

१. नहुष, निवेदन, पृ० ४

२. अहमिन्द्रोऽस्मि देवानां लोकानां च तपेश्वरः
आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रं मद्य निवेशनम्। म० उद्योग० ११-१८

३. नहुष, पृ० ४३

४. नहुष, पृ० ४८

५. नहुष, पृ० ६३

भारत' के भावानुवाद की भांति 'महाभारत' के प्रभाव की परम्परा की एक कड़ी मात्र हैं।

नल दमयन्ती का कथानक मुख्यतः प्रेम कथा है और दोनों पात्र शुद्ध एक-निष्ठ प्रेम के प्रतीक हैं। प्रेम व्यक्तिगत सम्पत्ति होते हुए भी सामाजिक व्यवस्था की अपेक्षा करता है अतः ऐसे चरित्रों का आलेखन सामाजिकता की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक होता है। वर्तमान युग का कवि इसी भाव से प्रेरित होकर इस उपाख्यान पर काव्य-रचना करता है।

धीर ललित नायक 'नल नरेश' और 'दमयन्ती' काव्यों में नल धीर ललित नायक हैं। उनमें धीर ललित नायक के सभी गुण विद्यमान हैं। एकनिष्ठ प्रेमी, सुराज्य व्यवस्थापक, प्रणपालक आदि गुणों से युक्त नल का चरित्र अपने समय के सामाजिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करता हुआ उस काल के सामन्ती जीवन का स्पष्ट चित्र अंकित करता है।

'महाभारत' के नल समस्त कथा में एक यंत्र की भांति चलते प्रतीत होते हैं जब कि आधुनिक काव्य में नल का व्यक्तित्व एक स्वतन्त्र नायक के रूप में हुआ है और उनमें व्यक्तित्व प्रेम तथा सामाजिक संघर्ष के कारण मानसिक द्वन्द्व की पूर्ण स्थापना है। इस रूप में आधुनिक नल 'महाभारत' के होते हुए भी नवीन रूप में उपस्थित हुए हैं।[1] उनका चरित्र महाभारतकालीन प्रेम और जीवन की स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है।

'महाभारत' में हंस एवं नल के वार्तालाप के मध्य नल का व्यक्तित्व अधिक-मुखर नहीं हो पाता, 'दमयन्ती' में इस सम्वाद के समय कवि ने नल के चारित्रिक उत्कर्ष में मानव-धर्म की सशक्त अभिव्यक्ति की है। नल हंस का दुःखी देखकर पर दुःख कातरता के कारण स्वयं भी दुःखी होते हैं। इसमें कवि ने विशुद्ध मानव धर्म का प्रतिपादन किया है।[2]

एकनिष्ठ प्रेम नल के गुणों में उनकी एकनिष्ठता प्रमुख गुण है। नल के चरित्र में यह प्रेम की एकनिष्ठा मानव के सर्वोच्च गुण के रूप में प्रतिष्ठित है।

आज के युग में जबकि हमारी जीवन-पद्धति आमूल परिवर्तित हो रही है, प्रेम को व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में मानकर सामाजिक दायित्व से पृथक् किया जा रहा है, ऐसे चरित्रों की स्थापना प्रेय और श्रेय के समन्वय के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रेम हृदय की पवित्रतम अनुभूति है, उसकी सत्यता के आधार पर व्यक्ति संसार की सर्वोच्च शक्ति 'देवत्व' से भी संघर्ष करके विजयी हो सकता है। 'नल-

---

१ म० वन० ५३।२४ दमयन्ती, पृ० २६

२ दमयन्ती, पृ० ५१

नरेश' और 'दमयन्ती' दोनों काव्यों में प्रेम की एकनिष्ठता का चित्रण इसी सामाजिक दायित्व पर हुआ है।

देव-वार्तालाप-प्रसंग में 'महाभारत' मे नल सत्यता बता कर क्षमायाचना करते है।

> कथं तु जात संकल्पः स्त्रियमुत्सृजते पुमान्।
> परार्थमीदृशं वक्तुं तत् क्षमन्तु महेश्वरा.।[1]

प्रण-प्रेम-संघर्ष : 'दमयन्ती'[2] मे इस स्थल पर नल के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया गया है। नल के हृदय में वचन और प्रेम के मध्य संघर्ष होता है। इस संघर्ष में कवि ने चरित्र का उत्थान किया है। 'महाभारत' का यन्त्र-चालित नल 'दमयन्ती' में अनुभूति सवेद्य, गम्भीर और विवश चित्रित किया गया है। वह मानवीय भावनाओं के अधिक निकट है।[3] दमयन्ती मे प्रेम की एकनिष्ठता के साथ कर्म, वचन पालन की प्रतिष्ठा का चित्रण किया है। 'दमयन्ती' मे नल पर पत्नी रत पति के त्याग की व्यवस्था देते है[4] 'महाभारत' में इस प्रकार की स्थिति का चित्रण नहीं है।

'महाभारत'[5] और आधुनिक काव्य दोनों मे नल को सुराज्य संस्थापक राजा के रूप मे चित्रित किया गया है। नल के इस गुण से आज का कवि योग्य शासक के गुणो की प्रतिष्ठा करता है। वस्तुतः प्राचीन राज्यतंत्र में जनता अधिक सुखी थी और आज प्रजातंत्र मे भी उसे उतना सुख प्राप्त नही है। इसका एकमात्र कारण राजा का अपना चरित्र है। शासक का चरित्र सर्वगुणसम्पन्न स्वार्थहीन होता है तभी जनता सुखी होती है। आज का कवि नल के चरित्र के माध्यम से आधुनिक-शासक को धर्मात्मा और कर्त्तव्यनिष्ठ तथा प्रजा-पालक बनने का सन्देश देता है।

भौतिक सुख-त्याग : पुरोहित जी ने नल के चरित्र की मौलिक रूप से उद्भावना की है। 'महाभारत' के नल पुनः द्यूत खेलते हैं। 'नल नरेश' में उनका चरित्र मनुष्यत्व की सीमा से ऊपर देवत्व की सीमा मे चित्रित किया गया है। पुष्कर को तपस्यारत देखकर नल ऐहिक वैभव को स्वीकार नहीं करते। वे पुनः सिंहासन पर उपस्थित न होकर पुत्र को राज्य देकर वनगमन करते है। इस प्रसंग मे कवि नल के चरित्र के द्वारा अधिकार सुख की सारहीनता की अभिव्यक्ति करता है। नल का भौतिक सुख-त्याग उनके चरित्र की महत्ता है। चरित्र के इस गुण से

१. म० वन० ५५।८
२. दमयन्ती, पृ० ६०-६१
३. नल नरेश, पृ० ६६
१. दमयन्ती, पृ० २६८
२. म० वन० ५७।४३-४४
३. दमयन्ती पृ० २१-२२, नलनरेश, पृ० २८

कवि आधुनिक जीवन मे व्याप्त अधिकार लोलुपता के प्रति अधिकार त्याग की भावना का मार्ग प्रशस्त करना चाहता है। त्याग की चरम स्थिति मे मानव को जीवन के चरमोत्कर्ष सदेह स्वर्गत्व की प्राप्ति होती है।

सक्षेप मे नल के चरित्र को 'महाभारत' की भावना के अनुकूल चित्रित करते हुए भी आधुनिक कवियो ने आदर्श राजा, आदर्श प्रेमी, पति और भाई के रूप मे चित्रित किया है। द्यूत के व्यसन को चरित्र का अवगुण कहा जा सकता है जो तत्कालीन राज्यतत्र की सामाजिकता की देन है।

एकलव्य

एकलव्य 'महाभारत' का गौण पात्र है। यह एक प्रासगिक कथा का आधार है। 'महाभारत' मे कथा इतनी सक्षिप्त और शीघ्रता मे कही गई है कि एकलव्य के चरित्र-चित्रण के व्यापक स्थल का अभाव होना स्वाभाविक है। किन्तु कथा की सक्षिप्तता मे ही एकलव्य मे चरित्र और निषाद सस्कृति का उदात्त रूप व्यक्त हो जाता है। एकलव्य की चारित्रिक उच्चता के कारण ही डा० वर्मा ने 'एकलव्य' प्रबन्ध काव्य की सृष्टि की। इस काव्य मे कवि ने आचार्य द्रोण के चरित्र का परिष्कार किया और एकलव्य के चरित्र की उच्चता घोषित की। कवि का कथन है कि—

"एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है, वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिए भी आदर्श है। वह 'अनार्य' नही है आर्य है, क्योकि उसमे शील का प्राधान्य है। यही उसमे महाकाव्य के नायक बनने की क्षमता है।"[1]

'महाभारत' मे एकलव्य का चरित्र चित्रण अधिक समीचीन नही हो पाया। गुरुद्रोण से शिक्षा की भीख मागकर अस्वीकृत शिष्य मूर्ति स शिक्षा प्राप्त करता है और दक्षिण हाथ का अगूठा काटकर गुरु दक्षिणा देता है। यह बात निश्चित ही उज्ज्वल चरित्र की द्योतक है। एकलव्य के चरित्र चित्रण मे डा० वर्मा ने अभिजात और अनभिजात वर्ग के भेद को समाप्त करने का प्रयास किया है। शील केवल अभिजात वग की ही सम्पत्ति नही, वह उसी मात्रा म एक साधारण व्यक्ति मे हो सकता है। इन्ही मान्यताओ के आधार पर एकलव्य का चरित्र-चित्रण हो पाया है।

एकलव्य के चरित्र की मुख्य विशेषताए—शिक्षा, धनुर्वेद के प्रति तीव्र एव सच्ची जिज्ञासा, साधक के रूप मे साधना की गम्भीर अनुभूति, अटूट गुरुभक्ति और शीलाचरण है। 'महाभारत' मे उक्त सभी गुण साकेतिक रूप से चित्रित है। डा० वर्मा ने तथा अन्य कवियो ने इन साकेतिक गुणो को मनोवैज्ञानिक सम्भावनाओ के आधार पर चित्रित किया है।

धनुर्वेद-निष्ठा एकलव्य के चरित्र का मुख्य गुण धनुर्वेद के प्रति अनन्य सलग्नता है। वह गुरु द्रोण के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए आता है। निषाद-

---

१ एकलव्य आमुख पृ० ६

पुत्र होने के कारण अस्वीकृत होता है किन्तु इस अस्वीकृति से उसकी धनुर्वेद-साधना की जिज्ञासा समाप्त नही होती, अपितु बढ़ती है।[1]

'महाभारत' में चरित्र का संकेत भर मिलता है। आधुनिक काव्य में इस स्थल पर एकलव्य के चरित्र की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की गई है। गुरुद्रोण का शिष्य बनने के पूर्व उसके मन में कितनी स्वाभाविक भावनाएं उदित होती हैं।

प्रार्थना मैं उनसे करूगा भक्ति-भाव से
देव-आपसे ही पूर्ण शिक्षा धनुर्वेद की
चाहता है दास एकलव्य एकलव से।
कर दें कृतार्थ मुझे शिष्य का गुरुत्व दे।[2]

'महाभारत' में आचार्य और शिष्य के मध्य संवादों के माध्यम से चरित्र-चित्रण का अवकाश नही रहा। 'एकलव्य' में कवि ने एकलव्य की जिज्ञासा सुन्दर रूप में व्यक्त की है।[3]

एकलव्य की जिज्ञासा धनुर्वेद शब्द के उच्चारण और उसके व्यक्त रूप से ही प्रारम्भ होती है।[4] स्वयं आचार्य द्रोण एकलव्य के गुणों से अभिभूत हो जाते है।[5] एकलव्य के चरित्र की महत्ता इस बात में अधिक है कि वह मन से गुरु की भक्ति को अक्षुण्ण रखता है। अस्वीकृत होने पर भी उसकी साधना में अन्तर नही आता।

साधक एकलव्य : साधक के रूप मे एकलव्य का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल है। 'महाभारत' में उसके कुशल अभ्यास तथा बाणों के लौटने और छोड़ने की तीव्रता व्यंजित की है।[6] इस संकेत के प्रभाव से आधुनिक काव्य में एकलव्य के साधक रूप का चित्रण किया गया है।

थापीवन मे स्वयं बनाकर गुरु की मृण्मयमूर्ति।
और उसी के सम्मुख उसने अशन शयन भी भूल,
साधन किया बाण विद्या का इच्छा के अनुकूल।[7]

गुरु की मिट्टी की प्रतिमा के समक्ष साधना करने वाला व्यक्तित्व कितना विलक्षण प्रतिभावान हो सकता है, यह सहज अनुभव जन्य तथ्य है। एकलव्य के चरित्र के इस गुण से कवि आधुनिक जीवन मे गुरु-शिष्य के मध्य स्नेह और आदर

१. म० आदि० १३१।३३-३४
२. एकलव्य, पृ० ७६
३. एकलव्य, पृ० १२०
४. एकलव्य, पृ० १२३
५. एकलव्य, पृ० १२५
६. म० आदि० १३१।३५
७. जयभारत, पृ० ५४

के क्षीण तंतु को दृढ़ करना चाहता है। एकलव्य की साधना किसी भी शिष्य के लिए अनुकरणीय हो सकती है।

गुरुभक्ति शील-आचरण एकलव्य के उच्च चरित्र का मूल उसका शील है।[1] उसका शील गुरुभक्ति के रूप में और गुरु की वास्तविक स्थिति के ज्ञान के रूप में व्यक्त होता है। 'महाभारत' में एकलव्य दक्षिण हाथ का अंगूठा देकर गुरु दक्षिणा देता है[2] किन्तु 'एकलव्य' में एकलव्य की मानसिक संतप्तता का मार्मिक चित्रण किया गया है। डा० रामकुमार वर्मा तथा गुप्त जी ने एकलव्य के मन को पढ़ने का प्रयास किया है। गुप्त जी का एकलव्य कहता है—

> एकलव्य बोला परन्तु मैं उऋण हो गया आज,
> देव न मेरे लिए दुःखी हों और क्या कहे दास,
> जितना हो सकता था, मैंने कर डाला अभ्यास।[3]

डा० वर्मा ने एकलव्य को शिष्यत्व के आदर्श की चरम सीमा पर चित्रित किया है। वह अपने गुरु की विवशता समझ लेता है और ब्राह्मण गुरु के उस बंधे हुए हृदय में झांकता है जो भीष्म की राजनीति की सीमा-शृंखलाओं से आबद्ध है।[4]

एकलव्य के चरित्र की प्रमुख विशेषता यह है कि वह गुरु द्रोण के मर्म को जान लेता है[5] और भीष्म की नीति को अस्वीकृति का मुख्य कारण मानकर गुरु के प्रति असीम श्रद्धानमित होता है।

इस विचारधारा के साथ ही एकलव्य का आशावाद आलोकित होता है। वह राजकुल से गुरुकुल की कल्पना करता है[6] कि कुछ समय में गुरुकुल भी बनेगा और वहां गुरु की प्रतिभा, गुरु का ज्ञान, राजनीति से प्रचारित न होकर मानवता से प्रचारित होगा।

एकलव्य लेखक के सामाजिक विचारों का प्रतीक है। डा० वर्मा ने एकलव्य के चरित्र में अछूतोद्धार की विचारधारा अभिव्यक्त की है। यह भावगत मान्यता निश्चित ही 'महाभारत' के सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समर्थित है। एकलव्य जातिवाद का विरोध और मानव मात्र की समानता की स्थापना करता है। एकलव्य के अनन्य भक्त हृदय में जातिवाद की समाप्ति के लिए क्रांति के भाव भी विद्यमान हैं। वह व्यक्ति के कर्म की प्रतिष्ठा करता है। जन्म-गत उच्चता सामाजिक अन्याय है और कर्मगत प्रतिष्ठा व्यक्ति का वास्तविक अर्जित धन। एकलव्य कर्मक्षेत्र

---

१ एकलव्य, आमुख पृ० ४
२ म० आदि० १३१।५०-५८
३ जयभारत, पृ० ५९
४ एकलव्य, पृ० १३४
५ एकलव्य, पृ० १७७
६ एकलव्य, पृ० १७९

के धनी आधुनिक व्यक्ति का आशा-लोक है जिसका समर्थन 'महाभारत' भी करता है, और आज का युग भी।

महाभारत के स्त्री पात्र

नारी के चरित्र-चित्रण का स्वरूप : प्रबन्ध काव्यान्तर्गत चरित्र-चित्रण स्वाभाविक और आवश्यक तत्व के रूप में विद्यमान रहता है। कवि चरित्र के द्वारा अनेक भावरूपों और अन्तः प्रकृतियों का व्यापक चित्रण करता है। पुरुष पात्रों के समान नारी पात्र भी काव्य विशेष के रचयिता की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार नारी पात्रों का व्यक्तित्व द्वैध होता है। एक तो उनका शाश्वत पूर्व ग्रन्थ में चित्रित व्यक्तित्व, दूसरा कवि द्वारा परिवर्तित व्यक्तित्व। आधुनिक स्त्री-चित्रण को हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है।

'नारी ने अपने समानाधिकार के दावे के साथ साहित्य में प्रवेश किया है और दृढ़ तथा उदात्त कंठ से पिछली शताब्दी की कल्पित, अवास्तविक नारी-मूर्ति के चित्रण का प्रतिवाद किया है।[1]

आधुनिक काव्यकारों ने नारी-चित्रण में इस तथ्य का विशेष ध्यान रखा है, कि हमारी परम्परागत साधना लब्ध नारी अति आधुनिकता के भ्रमजाल में भ्रमित न हो। इसके साथ, जिन मनोवृत्तियों के उदात्त उद्घाटन में प्राचीन साहित्यकार का आदर्शवाद चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता के मार्ग को अवरुद्ध कर सका, आधुनिक कवि ने उस आदर्श के आवरण के मोह से अलग होकर मनोविकारों की भिन्न प्रकृति और भिन्न अवस्थाओं में सामन्जस्य करने की चेष्टा की है। केवल इसी नवीन उपलब्धि के प्रकाश में महाभारतकाल की नारी के स्वरूप में आधुनिक कवि परिवर्तन कर सका है।

इसके अतिरिक्त जहां भी नारी का चरित्र-चित्रण किसी अन्य आधार को लेकर हुआ है वह केवल आधुनिक कवि का बुद्धि-विलास है, जिसमें प्राचीनता के प्रति अनावश्यक एवं उग्र विरोध की झलक विद्यमान है। इस विरोध से किसी सांस्कृतिक एवं सभ्यतागत सामाजिक उत्थान की आशा नहीं की जा सकती। आनन्दकुमार के 'अंगराज' में द्रौपदी के चरित्र को इसी उग्र विरोधी भावना के परिणाम स्वरूप देखा जा सकता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी मनोविज्ञानिकता के नाम पर द्रौपदी के चरित्र का महाभारत विरोधी रूप चित्रित किया है और हिडिम्बा को अपनी सहानुभूति 'वह भी स्वकल्पित कथा के आधार पर' देने की मौलिक चेष्टा की है।

'महाभारत' से प्रभावित काव्यों के नारी-चित्रण में सामान्यतः मानववादी दृष्टिकोण को आधुनिक सुधारवादी और आदर्शवादी रूप के समन्वय से चित्रित किया है। 'जयभारत' में द्रौपदी और कुन्ती, 'पांचाली' में द्रौपदी 'कृष्णायन' में कुन्ती एवं

---

१. हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १३३

द्रौपदी 'दमयन्ती' मे दमयन्ती आदि स्त्री पात्रो का चरित्र-चित्रण कवियों के मानवतावादी दृष्टिकोण से सम्पुष्ट है। इसमे इन्होंने प्राचीन आदर्श की रक्षा करते हुए युगीन सुधारवादी दृष्टिकोण के प्रभाव से नारी के व्यक्तित्व को अधिक शक्तिशाली चित्रित किया है। विकृत पात्रो का परिष्कार भी इसी सुधारवादी मनोवृत्ति के कारण सम्भव हो सका है।

महाभारत के स्त्री पात्र सामान्य विशेषताए 'महाभारत' के स्त्री पात्रो के विषय मे स्वर्गीय चिन्तामणि विनायक वैद्य ने लिखा है 'महाभारत' के स्त्री पात्र साधारण स्त्रियो की अपेक्षा बहुत बडे चढे हैं, परन्तु जो मनुष्यत्व का तत्व हमको अन्यत्र देखने मे आता है वह इनमें भी है।"[1] इसके आगे वैद्य जी लिखते हैं" स्त्री जाति की विशुद्धता के सूचक ऐसे-ऐसे प्रसगो का समावेश कवि ने अपने ग्रन्थ मे किया है, जिसके कारण 'महाभारत' के स्त्री पात्रो की ओर हमारा विशेष प्रेम उत्पन्न होता है।"[2]

'महाभारत' मे स्त्री पात्रो का चरित्र-चित्रण दैवी विचारधारा के अनुसार अवश्य किया गया है किन्तु कही कहीं उनमे मानवीयता के ऐसे अन्त सघर्ष का रूप प्रस्फुटित होता है जो पात्रो को स्वाभाविक बना देता है। उदाहरणार्थ द्रौपदी सुभद्रा को देखकर स्वाभाविक ईर्ष्या से ग्रस्त अवश्य होती है[3] इसके अतिरिक्त अनेक स्थलो पर कुन्ती, सुभद्रा एव गान्धारी की दुर्बलताए चित्रित हैं और वे साधारण मानवो की तरह व्यवहार करती हैं। किन्तु यह दुर्बलता सर्वथा क्षणिक होती है। मनोविकार की क्षुब्धता के उपरान्त वे पुन आश्वस्त होती हैं और अपने गौरव के अनुकूल आचरण करती हैं।[4]

'महाभारत' के प्रत्येक नारी पात्र मे धर्म-भीरुता और पतिव्रत की अमोघ भावना विद्यमान है। वे सभी अपने व्यक्तित्व को किसी न किसी प्रकार धर्माचरणयुक्त रखती हैं और अनेक भिन्न परिस्थितियो मे भी महाभारतकार ने उनकी चारित्रिक रक्षा का विधान उपस्थित किया है।

द्रौपदी पाच पतियो की होने भी पचसतियो मे गणनीय है। गान्धारी पति की अन्धता के कारण आखो पर पट्टी बाध लेती है। कुन्ती धर्म के सरक्षण के कारण ही अनेक देवताओ का आवाहन कर वश-रक्षा करती है। इन सभी नारी पात्रा का चरित्र अन्तर विरोधी प्रकृति के द्वारा चित्रित है।

आधुनिक कवि ने 'महाभारत' के नारी पात्रो को मूल ग्रन्थ की भावना के अनुसार चित्रित किया है। कुछ कवियो ने इन शाश्वत चरित्रो की विशुद्धता पर

१, महाभारत परिचय, पृ० ५६
२ महाभारत परिचय, पृ० ५६
३ म० आदि० २२०।१६-१७
४ म० आदि० २२०।२४

अपने मलिन विचारों की कीचड़ अवश्य उछाली है किन्तु उससे भारतीय परम्परा के इन निष्कलुष चरित्रों पर आंच नहीं आती। 'अंगराज' के कवि ने द्रौपदी को विलासी स्त्री के रूप में चित्रित किया है और पूरे प्रयास से उसके चरित्र पर कलंक लगाने की चेष्टा की है, किन्तु ऐसे प्रयासों की न्यूनता ही उनकी हेयता की द्योतक है।

द्रौपदी

द्रौपदी 'महाभारत' की प्रमुख स्त्री पात्र है चिन्तामणि ने द्रौपदी के चरित्र को अत्यन्त उज्ज्वल चरित्र बताया है। उनका कथन है कि द्रौपदी जैसे पात्र द्वारा महाभारतकार ने स्त्री स्वभाव की उच्चता का ऐसा प्रबल उदाहरण हमारे सामने रक्खा है कि इस प्रकार के पात्र की योग्य प्रशंसा करने के लिए हमें खोजने से भी शब्द नही मिलते।[1]

'महाभारत' में द्रौपदी द्रुपद की अयोनिजा पुत्री है। इसकी उत्पत्ति यज्ञ वेदी से हुई। जन्म के समय आकाशवाणी ने कहा कि देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए क्षत्रियों के संहार के उद्देश्य से इस रमणी रत्न का जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवों को बड़ा भय होगा।[2] जिस प्रकार द्रौपदी का जन्म अलौकिक था उसी प्रकार उसके जीवन की अन्य घटनाएं भी असाधारण रहीं। इन कारणों से महा-भारत' की द्रौपदी का चरित्र-चित्रण अलौकिकता लिए है और आधुनिक काव्यकारों ने उसे अधिक मानवीय और यथार्थवादी बनाने का प्रयास किया है।

अटल पातिव्रत : द्रौपदी के चरित्र का मूलाधार उसका अटल पातिव्रत है। एक आदर्श पत्नी के रूप में द्रौपदी समस्त 'महाभारत' में आदरणीय है। वह केवल साधारण पत्नी नहीं, अपितु गुणशीला और चिन्तक भी है। द्रौपदी के आदर्श पत्नि-स्वरूप का चित्रण आधुनिक काव्य में अत्यन्त सम्मान के साथ हुआ है।

अपने पतियों में एकनिष्ठ प्रेम, सभी कष्ट सहते हुए वन में सहवास एवं निर्वाण प्राप्ति तक साथ रहना आदि स्वरूप द्रौपदी के चरित्र को विलक्षणता प्रदान करते हैं। 'जयभारत' 'द्रौपदी' 'कौन्तेयकथा' 'रश्मिरथी' 'पांचाली' आदि काव्यों में द्रौपदी का चरित्र 'महाभारत' की दिव्यता से मंडित है, यद्यपि युगानुसार उसमें आवश्यक परिवर्तन किए गये हैं।

द्रौपदी का व्यक्तित्व असाधारण है। उत्पन्न होने के उपरान्त वह साक्षात देवी दुर्गा के रूप में प्रतीत होती है।[3]

कविवर नरेन्द्र शर्मा ने 'द्रौपदी' में द्रौपदी का व्यक्तित्व इसी रूप में चित्रित किया है। कवि ने द्रौपदी को योगिनि-शक्ति, पंचाग्नि शक्ति की साकार प्रतिमा

---

१. महाभारत, परिचय, पृ० ५८

२. म० आदि० १६६।४८-४९

३. म० आदि० १६६।४६

माना है।[1]

कवि के चरित्र का मुख्य आधार द्रौपदी की शक्ति है। वह प्रेरणादायिनी और नारी शक्ति का दृप्त दीप्त प्रतीक है।[2] आधुनिक काव्य मे द्रौपदी का व्यक्तित्व तेजस्वी रूप मे चित्रित है। भगवतीचरण वर्मा ने द्रौपदी को शक्ति का प्रतीक मान कर उसका चरित्र-चित्रण किया है। उसमे अवतार के अश को मानकर कवि ने द्रौपदी की दिव्यता को यथावत सुरक्षित रक्खा है।[3]

अपने पतियों के प्रति अनन्य निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण द्रौपदी वनगमन के अवसर पर प्रस्तुत करती है। द्रौपदी का वनगमन पतिसेवा के हेतु है। स्वय कुन्ती द्रौपदी के निष्पाप चरित्र के प्रति आश्वस्त है। उसे उसके कर्तव्यो के प्रति सचेष्ट करने की आवश्यकता नहीं वह स्वय अपने कर्तव्यो के प्रति सचेष्ट है।[4]

द्रौपदी की एक निष्ठा,[5] सपत्नियो के प्रति भी स्नेह,[6] एक मन से पतियों का चिन्तन,[7] नारी-धर्म की सीमाओ को भली प्रकार समझना,[8] पति के सुख दुःखों मे समभाग[9] और पति की अनन्य भाव से सेवा करना ही, द्रौपदी नारी का महान धर्म मानती है।[10]

व्यावहारिक रूप द्रौपदी के चरित्र के गुण उसके व्यवहार मे पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। 'महाभारत' मे द्रौपदी का चरित्र अनेक प्रश्न विवादो से ग्रस्त है किन्तु इतना अधिक विलक्षण होते हुए भी उसम इतनी क्षमता विद्यमान है कि 'जयभारत' मे वह नारी के कर्तव्यो की प्रतीक बनकर उपस्थित होती है।[11] द्रौपदी का स्वाभिमान और एकनिष्ठता वन मे जयद्रथ के प्रसग मे स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। जयद्रथ द्रौपदी को पाण्डवो की असहायता बताकर अपने वश मे करना चाहता है किन्तु द्रौपदी स्वाभिमानी फटकार से उसे उत्तर देती है।[12]

---

१ द्रौपदी, पृ० १२
२ द्रौपदी, भूमिका पृ० ८
३ त्रिपथगा, पृ० ६३
४ न त्वा सदेष्टुमर्हामि भर्तृनप्रति शुचिस्मिते
साध्वी गुण समापन्ना भूषित ते कुल द्वयम् ॥ म० सभा० ७६।५
५ म० वन० २३३।२०
६ म० वन० २३३।१६
७ म० वन० २३३। २३-२४
८ म० वन० २३३।३७
९ म० वन० २३३।५७
१० म० वन० २३४।४-५
११ जयभारत, पृ० १६१
१२ म० वन० २६८।२

द्रौपदी को अपने पतियों की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। विराट पर्व में भी कीचक से त्रस्त होने पर वह अपने विश्वास को दोहराती है।[1] 'जयभारत' में गुप्त जी ने इस विश्वास को अत्यन्त शक्तिशाली शब्दों में चित्रित किया है।[2] और द्रौपदी के तेजस्वी रूप को अभिव्यक्त किया है।

द्रौपदी के चरित्र के माध्यम से कवि स्त्रियों के सतीत्व, पातिव्रत एवं अनन्य निष्ठा का आदर करता है और आधुनिक युग में उसी आदर्श को अपनाने की प्रेरणा देता है। द्रौपदी आपत्ति के समय भी दृढ़ता एवं साहस से कार्य करती है उसे अपने सतीत्व पर विश्वास है और यही भावना उसकी शक्ति का आधार है।[3]

सदयता : गुप्त जी ने स्त्री का शारीरिक दुर्बलता के साथ उसके आन्तरिक सतीत्व बल को महान चरित्र के गुण-रूप में चित्रित किया है।[4] 'महाभारत' की द्रौपदी-कीचक वध पर सदय नहीं होती किन्तु 'जयभारत' के कवि ने इस स्थल पर उसकी सदयता का चित्रण कर नारी के शाश्वत स्वरूप की झांकी प्रस्तुत की है।[5]

'महाभारत' का काल सामन्त-प्रथा का सबसे अधिक अव्यवस्थित काल माना जा सकता है। उस काल में विवाह भी राजनीति के महत्वपूर्ण अंग थे। द्रुपद की पराजय के प्रमुख कारण कौरव थे अतः द्रुपद की सन्तान अपने वैरशोधन के हेतु कटिबद्ध थी। द्रौपदी का पंच पाण्डवों से विवाह भी इसी राजनैतिक दांव के रूप में माना जा सकता है। किन्तु धर्मशास्त्रों से अनुमोदित अपवाद के रूप में, या तत्कालीन बड़े व्यक्तियों के द्वारा समर्थित होने के कारण भी द्रौपदी का पंचपाण्डवों से विवाह अनैतिक नहीं था। द्रौपदी के चरित्र के प्रसंग में ही इस बात की विवेचना अपेक्षित है।

'अंगराज' के अनुसार द्रौपदी को पंचपति प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। इसमें कारण था उसका कामोद्दीपन।[6] इसके अतिरिक्त 'जयभारत' में कितना सुन्दर चारित्रिक समाधान खोजा है।

> पाण्डवों के मन में जो ग्लानि नहीं होती है।
> तो मैं मानता हूं, धर्म हानि नहीं होती है।[7]

---

१. म० विराट० १४।४८

२. आर्या को दासी कहते हो, जाति तुम्हारी जानी।
मेरे प्रभु रखते हैं, अब भी मुझे बनाकर रानी।
अपने को—मुझको भी हारे, धर्म नहीं वे हारे।
पंचतत्व मय इस तनु के हैं प्राणों से भी प्यारे॥ जयभारत, पृ० २२५

३. जयभारत, पृ० २६६

४. जयभारत, पृ० २६६

५. जयभारत, पृ० २७७

६. अंगराज, पृ० ६८

७. जयभारत, पृ० १२५

नरेन्द्र शर्मा ने भी द्रौपदी को अग्नि कुमारी के रूप मे सती पत्नी के गौरव के साथ चित्रित किया है।[१] इस प्रकार द्रौपदी का पक्ष धर्म-सम्मत हो जाता है और उसके चरित्र को लेकर जिस प्रकार की अनर्गल और अमानविक बातें 'अगराज' मे कही गई है उनका कोई मूल्य नही रह जाता।

द्रौपदी के चरित्र को बलिदान और आत्म-त्याग का चरित्र न मानकर भोगी मानना अपनी असास्कृतिक दृष्टि का प्रकाशन करना है।

बौद्धिकता 'महाभारत' मे वह समय-समय पर अपने शक्तिशाली विचारो की अभिव्यक्ति करती है। युधिष्ठिर को पुरुषार्थ की शिक्षा देती है। वह तेज और क्षमा के अवसरो की दार्शनिक विवेचना करती है।[2] और युधिष्ठिर के न्याय और धर्म पर भी आक्षेप करती है।[3]

द्रौपदी के चरित्र निर्माण मे उसकी असाधारण परिस्थितियो ने अधिक योग दिया। विवाह के समय उसे सब के समक्ष सूतपुत्र का विरोध करना पडा।[४] पाच पतियों से विवाह करने की विवशता को स्वीकार करके भी अनेक बार अपमानित होना पडा। इसी लाच्छना के प्रसग मे उसका प्रतिकार, उग्र रूप धारण करता है। भगवान कृष्ण को अपनी दुःखद गाथा का स्मरण दिला कर वह सधि न करने की प्रेरणा देती है।[५] उसके अपमान पर भी युधिष्ठिर धर्म-निष्ठ बने रहे[६] अत उसमे सुस्थिरता न होना अस्वाभाविक नहीं।[७]

'पाचाली' 'द्रौपदी' और 'त्रिपथगा' तथा अन्य रचनाओ मे महाभारत' के आधार पर द्रौपदी के चरित्र को विभिन्न स्वरूपों मे चित्रित किया है। भगवती-चरण वर्मा की दृष्टि उसे युग की प्रतिहिंसा की प्रतीक मानती है।[८] रागेयराघव ने उसे तत्कालीन दास प्रथा के प्रकाश मे चित्रित किया है।[९]

'सेनापति कर्ण' मे वह साक्षात युद्धनीति मे भाग लेती है।[१०] यह यथार्थ-वादी किन्तु दिव्य शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व आधुनिक काव्य मे यथार्थवादिता के परि-

---

१ द्रौपदी, पृ० ४८-४९

२ म० वन० २८।२८

३ म० वन० ३०।१८, ३५ ३६

४ म० आदि० १८६-२३

५ म० उद्योग० ८२।१-१०

६ म० उद्योग० ८२।२८-२९

७ म० उद्योग० ८२।२९-४०-४१

८ त्रिपथगा, पृ० ६८

९ पाचाली, पृ० ६

१० सेनापति कर्ण, पृ० २०१

वेश में देखा गया है।[1] परम्पराप्रिय कवियों के लिए द्रौपदी उच्चकुल का आदर्श, अप्रश्नवाचक व्यक्तित्व, सती-साध्वी और कर्त्तव्य-परायण[2] है किन्तु कुछ कवियों ने इतने श्रद्धा से द्रौपदी के चरित्र का अंकन न करते हुए उसे विशुद्ध मानवीय धरातल पर व्यक्त किया है और प्रत्येक प्रकार के संघर्ष की सम्भावनाओं के साथ चरित्र-सृष्टि की है।[3]

सहनशीलता : रांगेय राघव की द्रौपदी के चरित्र का मूलाधार सहनशीलता है। 'पांचाली' में भी द्रौपदी पुरुषार्थ का समर्थन करती है[4] किन्तु स्वयं सब कष्टों और अपमान को सहन करती है। अनाचार के नाश के लिए अपमान भी सहती है। नारी का आत्मघात अधर्म का मार्ग प्रबुद्ध करता है, क्योंकि आत्मघात से एक नारी तो छूट जाती है पर सम्पूर्ण नारीत्व नहीं छुटपाता। 'महाभारत' में जयद्रथ बलात द्रौपदी को बिठाता है पर 'पांचाली' में वह स्वयं उसके रथ पर इस विश्वास के साथ बैठती है, कि पाण्डव शीघ्र ही इसका नाश कर देंगे।[5]

'पांचाली' में कवि 'महाभारत' की स्पष्टवादी और किसी अंश में पतियों को दोष देने वाली द्रौपदी के चरित्र का परिष्कार करके उसे अत्यन्त विचारशील सांस्कृतिक रूप में प्रस्तुत करता है।[6] द्रौपदी युधिष्ठिर के शान्त व्यक्तित्व पर मुग्ध है, किन्तु उसका अन्तःकरण इच्छाओं का आगार है। वह युधिष्ठिर से अपना मन खोलने को कहती है।[7] 'महाभारत' की द्रौपदी में जहां प्रत्येक स्थल पर प्रतिशोध की भावना है वहां 'त्रिपथगा' में भी उसका चरित्र इसी प्रतिकार की ज्वाला पर विकसित होता है।[8] किन्तु 'पांचाली' में प्रतिकार की भावना के साथ उसके हृदय की निर्मलता अपने निर्विकार रूप में अभिव्यक्त हुई है। यहां द्रौपदी के चरित्र को अधिक मानवीय संवेद्य रूप में उपस्थित करके 'महाभारत' की स्थिर पात्र के मन में द्वन्द्व की स्थापना की है। द्रौपदी अनुभव करती है कि युधिष्ठिर अपनी अवस्था से दुःखी है[9], और त्रस्त व्यक्ति को बार-बार संघर्ष के लिए प्रेरित करना उचित

१. क. पांच पति मेरे बलि मेरी जो हुई थी हा!।
राजनीति देवी या कि दानवी की तुष्टि को। सेनापति कर्ण, पृ० ६१
ख. द्रौपदी, पृ० ४८
२. कृष्णायन, पृ० २४८
३. कृष्णायन, पृ० २४२
४. त्रिपथगा, पृ० ६७
५. पांचाली, पृ० ३३
६. पांचाली पृ० ६६
७. पांचाली पृ० २३
८. पांचाली पृ० ३५
९. त्रिपथगा, पृ० १०८
१०. पांचाली पृ० ३०

नही है।[१]

'महाभारत' की द्रौपदी की महत्ता उसके दिव्य व्यक्तित्व और पाण्डव पत्नी के रूप मे निहित है।[२] आधुनिक काव्य की द्रौपदी की महत्ता उसके मन के संघर्ष और अन्तत तेजस्वी विजय पर आधारित है।[३] 'महाभारत' मे द्रौपदी अपनी व्यथा को सुनाकर कौरवो पर क्रोध करने के लिए प्रेरित करती है 'जयभारत' की द्रौपदी एक और पग आगे जाकर उसी प्रसग मे अपने पतियो की सहनशीलता पर उनकी भर्त्सना करती है। इस दृष्टि से आधुनिक कवियो ने अनेक रूपो मे द्रौपदी को देखा है। 'जयभारत' की द्रौपदी दुर्बलता को दुर्नीति के रूप मे देखती है।[४]

सतीत्व पर आस्था द्रौपदी को अपने सतीत्व पर पूर्ण आस्था है अत वह कहती है कि यदि मैने अपने पूजनीय पतियो का किसी तरह उल्लघन नही किया तो आज इस सत्य के प्रभाव से मैं देखूगी कि पाण्डव तुझे जीत कर अपने वश मे करके जमीन पर घसीट रहे हैं।[५] 'महाभारत' मे द्रौपदी की उक्ति मे आत्म-विश्वास के साथ सतीत्व का बल है पर 'पाचाली' मे द्रौपदी स्त्रीत्व की मर्यादा का मूल रूप समझती है। शाश्वत स्त्रीत्व का अपमान ईश्वरत्व का अपमान है, ऐसा मान कर अपने को आश्वस्त करती है।[६]

प्रतिहिंसा और पश्चाताप द्रौपदी अपनी पूर्ण प्रतिहिंसा की ज्वाला कौरवो पर बरसाती है। वह अपने पतियों के बलिदान की स्निग्धता, त्याग और सहिष्णुता को अन्तत रक्त की तरल लालिमा से अभिषिक्त करती है। द्रौपदी युधिष्ठिर की ही तरह इस महासहार पर पश्चाताप करती है। यह भी उसकी मानवीय स्वाभाविकता है।[७] आधुनिक कवियो ने द्रौपदी के पश्चाताप मे विजेता स्त्री के स्वाभाविक रूप का चित्राकन किया है। भगवती चरण वर्मा ने इतना कहकर ही सन्तोष किया कि द्रौपदी अपने को युद्ध का मूल कारण मानती है।[८] प्रारम्भ म वह शत्रु

१ पाचाली, पृ० ६
२ म० उद्योग० ८२।३६
३ जयभारत, पृ० ३१४
४ जयभारत, पृ० ३१५
५ म० वन० २६८।२१
६ कुलगुरु कुलनारी आज सग चलते हैं,
दो वैश्वानर अरि दल मे घुस जलते हैं,
उनका क्या ये अपमान करेंगे कुत्ते।
हम नहीं मृत्यु से भी डरते, हसते हैं। पाचाली, पृ० ६८
७ म० स्त्री० १५।३७
८ त्रिपथगा, पृ० १०८

का अपमान करना अपना धर्म समझती है[१] पर बाद में वही पाश्चाताप भी करती है।[२] वर्मा जी ने द्रौपदी के पश्चाताप में उसका अन्तर्दाह चित्रित किया है।[३] निश्चय ही आज के युग में जब कि प्रत्येक मानव युद्ध-पिपासु, स्वार्थ-लिप्सक और प्रतिहिंसक होता जा रहा है यह आवश्यक है कि अतीत पर पड़े उन चरण चिन्हों को देखा जाय जिनसे उसी अवस्था की दुर्दशा दिखती है, जो आज जन-जन में व्याप्त है। आज का कवि यह घोषणा करता है कि जब-जब नारी लांच्छित होगी तभी प्रलय हो सकती है।[४]

एतदर्थ द्रौपदी के चरित्र मे एक ओर महाभारतीय काल की प्रतिहिंसात्मक प्रवृत्ति का चित्रण है दूसरी ओर उसी आलोक में आधुनिक युग की अनेक समस्याओं का स्पर्श किया गया है।

गान्धारी

गान्धारी 'महाभारत' की प्रतापशालिनी स्त्री पात्र है। गान्धारी के चरित्र को लेकर किसी स्वतन्त्र काव्य की रचना नहीं हुई। 'महाभारत' के आधारित काव्यों मे अत्यन्त अल्प स्थान पर गान्धारी का चरित्रांकन हुआ है। मुख्यरूप से 'जयभारत' 'अंगराज' 'कृष्णायन' आदि काव्यों मे यथास्थान गान्धारी का प्रसंग आया है।

पतिव्रत धर्म : गान्धारी के चरित्र का मुख्य आधार उनका पतिव्रत धर्म, पुत्र-स्नेह और नारी का स्वाभाविक स्वरूप है। पतिव्रत धर्म के अन्तर्गत वे अपने पति को चक्षुहीन देखकर सर्वदा के लिए अपने नेत्रो पर पट्टी बांध लेती है।[५] अपने पति के लिए गान्धारी ने इन्द्रिय सुख का त्याग किया। गान्धारी का तप और त्याग संसार के लिए अपूर्व वस्तु है। युद्ध की भयंकरता से त्रस्त युधिष्ठिर जब गान्धारी के पास क्षमायाचना हेतु जाते हैं तो वह नेत्रो की पट्टी खोलकर उनके दीप्तिमान नखो को काला कर देती है।[६] यह उनके अटूट पतिव्रत तेज का परिचायक है। आधुनिक काव्य मे गान्धारी के पातिव्रत तेज का चित्रण महाभारतीय गौरव के साथ हुआ है। गुप्त जी ने 'जयभारत' मे गान्धारी के चरित्र में स्वाभाविक रोष की व्यंजना करके 'महाभारत' में व्यक्त प्रतिकार की भावना का परिष्कार कर दिया। 'महाभारत' की गान्धारी कृष्ण को शाप देते कहती है, जिस प्रकार कौरवों और पाण्डवो की उपेक्षा तुमने की है उसी प्रकार तुम्हारे वंश का भी नाश होगा। तुम भी

३. त्रिपथगा, पृ० ९३
४. त्रिपथगा, पृ० ११०
५. त्रिपथगा, ११२
६. पांचाली, पृ० ६९
७. म० आदि० १०९।१४
८. म० स्त्री० १५।२९-३०

निर्दिन उपाय से मृत्यु को प्राप्त करोगे।[1]

'जयभारत' के कवि को गान्धारी की यह स्पष्टवादिता अधिक स्वाभाविक नहीं जान पड़ी। गान्धारी अपने शाप पर दुखित भी नहीं होती। 'जयभारत' में गान्धारी के आवेग में उसके मुख से प्रश्नवाचक रूप में शाप के शब्द निकलते हैं।

कुरुकुल सरीखा वृष्णि कुल भी लड़ परस्पर नष्ट हो
तो पूछती हूँ, कृष्ण, क्या तुमको न इससे कष्ट हो ?[2]

पर बाद में आश्वस्त होकर वह कहती है।

क्या कह गई मैं हाय, मेरा दोष देव क्षमा करो।[3]

हमारे विचार में गान्धारी का चरित्र-परिष्कार यथार्थवादी भावना के प्रतिकूल है। 'महाभारत' में दिव्य शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व गान्धारी पहले कृष्ण के समक्ष विलाप करती है।[4] विलाप करते-करते उनका हृदय रोष से भर जाता है। उसका कृष्ण को अपने वंश की पराजय का मूल मानकर उन्हें शाप देना, सम्भवतः अधिक स्वाभाविक है।

निर्भीकता, न्यायप्रियता और नीति-प्रियता गान्धारी के चरित्र के अनुपम गुण हैं। असामान्य परिस्थितियों को छोड़कर गान्धारी ने सदा न्याय का पक्ष लिया। वह हमेशा नीति और सत्य की शिक्षा देती रही। द्यूत के समय गान्धारी धृतराष्ट्र को समझाती है। वह अपने पुत्र की अनिष्टकारक प्रवृत्ति पर संतप्त है। वह स्पष्ट रूप से अपने पति को कहती है कि इस कुल के भयंकर विनाश के कारण न बनिए और पाण्डवों को कुपित न कीजिए।[5]

गान्धारी के वाक्यों में उसकी निर्मल और दूरदर्शिनी दृष्टि का प्रकाशन होता है।

अन्य गुण भगवद्यान पर्व में गान्धारी अपने पूर्ण आवेग से दुर्योधन को फटकारती है। माता का कोमल हृदय पुत्र को स्नेह से समझाने की चेष्टा करता है।[6] 'महाभारत' के युद्ध की भयंकरता का चित्रण कर गान्धारी पाण्डवों को आधा राज्य देने के लिए कहती है पर दुर्योधन नहीं मानता।

पुत्र पर ममत्व गान्धारी समझती है कि उसके पुत्र कुमार्ग पर हैं फिर भी माता की ममता अन्त में उन सबके लिए क्षोभ और विलाप करती है। वह अपने प्रत्येक पुत्र को देखकर रोती हुई कृष्ण को उपालम्भ देती है। पुत्रों के अनिष्ट को सुनकर

---

१ म० स्त्री० २५।४३-४५
२ जयभारत, पृ० ४२८
३ जयभारत, पृ० ४२८
४ म० स्त्री० अध्याय २०-२४
५ म० सभा० ७५।५-६
६ म० उद्योग० १२६।४७

गान्धारी पाण्डवों को शाप देने का अनिष्ट संकल्प करती है कि व्यास जी आकर उसे समझाते हैं। वस्तुतः गान्धारी का संयम तप-त्याग और नीतिज्ञता तथा अन्ततः आहत मातृत्व आज के युग के लिए उपदेश देता है कि अनेक परिस्थितियों में भी स्त्री को अपनी स्वाभाविक करुणा नहीं त्यागनी चाहिए और अपने आप में आश्वस्त होना चाहिए।

आधुनिक काव्य में गान्धारी के चरित्र को अधिक अवकाश नहीं मिला फिर भी नारी के कुपित होने की अवस्था में उसकी अवज्ञा न करने की महती भावना का प्रकाशन कृष्ण के द्वारा हुआ है। प्रत्यक्ष रूप से यह गान्धारी के व्यक्तित्व के प्रति समर्पण नहीं अपितु समस्त नारीत्व के प्रति पुरुष की श्रद्धांजलि है।[1]

कुन्ती

कुन्ती 'महाभारत' की आदर्श पात्र है। महाराज पाण्डु की पत्नी और पंच पाण्डवों की माता कुन्ती का चरित्र दिव्य है। 'महाभारत' में कुन्ती के चरित्र में परस्पर विरोधी भावना के दर्शन होते हैं। उनका जीवन त्यागमय, तेजस्विता-पूर्ण और कष्टमय रहा। उन्होंने समय पर अपने पुत्रों को युद्ध के हेतु प्रेरित किया और विजय के उपरान्त भौतिक ऐश्वर्य को त्याग कर गान्धारी एवं धृतराष्ट्र के साथ वनगमन किया।

आधुनिक कवियों ने कुन्ती के चरित्र में पर्याप्त परिष्कार किया है। जयभारत कार ने कुन्ती को स्त्री की स्वाभाविक मानवता का प्रतीक मानकर उसके अन्तः संघर्ष का चित्रण किया है। 'रश्मिरथी' 'सेनापति कर्ण' तथा 'अंगराज' के रचयिताओं ने कर्ण के जन्म की समस्या को लेकर कुन्ती का चरित्रांकन किया है।

कुन्ती के चरित्र की विलक्षणता पुत्रोत्पत्ति में है। वह आदर्श पत्नी हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश पाण्डु सन्तानोत्पादन के लिए ब्राह्मण के शाप-वश अनुपयुक्त हो जाते हैं और कुन्ती के समक्ष वंश-रक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है। वह समस्त घटना अलौकिक वातावरण में घटित होती है अतः यहां कुन्ती का चरित्र भी दिव्य रूप से अंकित किया गया है। आधुनिक कवि ने किसी भी बौद्धिक नियोजन से कुन्ती चरित्र के इस अलौकिक स्वरूप की विवेचना न करके उसे यथावत स्वीकार किया है।

अन्तः संघर्ष : 'महाभारत' में इस प्रसंग में कुन्ती के अन्तर संघर्ष का व्यापक चित्रण किया गया है। कुन्ती कुल की शालीनता के भंग होने के भय से पाण्डु का प्रस्ताव अस्वीकार करती है[2] किन्तु अनेक तार्किक उपायों से समझने के बाद उसे

---

१. द्रौपदी, पृ० ५२

२. नह्यहं मनसाप्यन्यं गच्छेयं त्वदृते नरम।
त्वत्तः प्रतिविशिष्टश्च कोऽन्योऽस्ति भुवि मानवः। म० सभा० १२०।५

स्वीकार कर लेती है।[1] कुन्ती के चरित्र के इस पक्ष को लेकर आधुनिक स्त्री की सच्चरित्रता और पवित्रता की विवेचना आधुनिक प्रसग म कर सकता था किन्तु वैसा नहीं हुआ। इस घटना को अलौकिक मानकर इस चरित्र-सृष्टि को भी अलौकिक मान लिया गया।[2]

परोपकार कुन्ती के गुणो मे सहनशीलता, त्याग, विनय शीलता, शिष्टा-चार, गुण ग्राहकता अतिथि-सेवा और परोपकार श्लाघ्य हैं। पुत्रो के साथ एक ब्राह्मण के घर मे निवास करने पर जब अपने आतिथेयो के सकट को जानती है तो परोपकारी भावना से प्रेरित होकर कुन्ती अपने पुत्र का बलिदान करने को तत्पर हो जाती है। 'महाभारत' मे इस प्रसग मे कुन्ती का चरित्र सरल मानवी के रूप में चित्रित न करके पुत्र की शक्ति के प्रति आश्वस्त स्त्री की तेजस्विता के रूप मे चित्रित किया है।[3]

भीम की शक्ति से आश्वस्त कुन्ती के हृदय मे द्वन्द्व का प्रश्न ही नही उठता। 'जयभारत' मे वह भावना के आवेग मे अपने पुत्र को भेजने की बात तो स्वीकार कर लेती है किन्तु तदुपरान्त मन मे क्षुब्ध होती है।[4]

बाह्य अटलता कुन्ती के दर्प-दीप्त व्यक्तित्व की परिचायक है और आन्तरिक क्षोभ नारी के स्वाभाविक मातृत्व का द्योतक है। इसी प्रसग मे कवि ने कुन्ती के सचित क्षोभ की मार्मिक अभिव्यजना की है।[5] उसे राज्य एव स्वामी के चले जाने का नितान्त स्वाभाविक क्षोभ होता है। इस रूप मे 'महाभारत' की दिव्यता सम्पन्न कुन्ती हमारे मध्य सामान्य तेजस्वी परोपकारी स्त्री के रूप में उपस्थित होती है।

वीर क्षत्राणी कुन्ती के चरित्र का उत्साही, वीर क्षत्राणी का रूप उद्योग पर्व के विदुलोपाख्यान की प्रस्तावना मे अभिव्यक्त होता है। वह भगवान कृष्ण के द्वारा अपने पुत्रो को तेजस्विता से जीने का सदेश भेजती है। उस समय वह उसी को धर्म समझती है।[6] 'जयभारत' मे कुन्ती का सदेश क्षत्रियोचित वाणी से सम्पन्न और उत्साहवर्धक है।[7] कवि ने 'महाभारत' के चरित्र के गौरव की पूर्ण रक्षा की है।[8]

---

१ म० सभा० १२१।१५-१७

२ जयभारत, पृ० ८२

३ म० आदि० १६०।१४-१६

४ जयभारत, पृ० ९९

५ जयभारत, पृ० १००

६ म० उद्योग० १३७।९-१०

७ जयभारत, ३३५

८ जीवन का यह प्रश्न मरण से भी न रुकेगा।
मानी का सिर कटे, कभी भय से न झुकेगा। जयभारत, पृ० ३३५

मानसिक द्वन्द्व : 'महाभारत' के कर्ण-कुन्ती प्रसंग को लेकर आधुनिक कवियों ने कुन्ती के चरित्र को तत्कालीन सामाजिक परिवेश के साथ मानसिक द्वन्द्व के आलोक में चित्रित किया है। कर्ण-जन्म के कारण भी कुन्ती के चरित्र में किसी प्रकार के कलंक की स्थापना नहीं है, क्योंकि वह युग चरित्र के संकुचित स्वरूप का युग नहीं था, व्यक्ति का चरित्र परिस्थिति-सापेक्ष था और उसी सापेक्षता में अनेक अन्तर्विरोधी तत्वों के होते भी प्रत्येक व्यक्ति सम्मान का पात्र था।

कुन्ती का मातृत्व अनेक स्थानों पर कर्ण के कारण आहत हुआ किन्तु वह सामाजिक भय से अपने स्नेह की वाणी को सर्वदा उपेक्षित करती रही। रंगभूमि में कर्ण-अर्जुन को संघर्षरत देखकर कुन्ती मूर्छित होती है[1] 'रश्मिरथी' में दिनकर ने कुन्ती की मानसिक व्यथा का चित्रण अत्यन्त मार्मिक शब्दों में किया है।[2]

कर्ण को अवश्यम्भावी युद्ध का प्रमुख कारण जानकर कुन्ती उसके समीप जाती है। 'महाभारत' में कुन्ती अपने मन की व्यथा को उन्मुक्त रूप में नहीं खोल पाती किन्तु आधुनिक कवियों ने 'महाभारत' के पात्र के साथ पूर्ण न्याय किया है। कुन्ती को अपनी व्यथा खोलने का पूर्ण अवसर दिया। इस रूप में कुन्ती का आहत दर्प, त्रस्त स्वाभिमान एक भिखारिणी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। 'महाभारत' की राजरानी केवल मां बनकर पाठकों के समक्ष उपस्थित होती है।

'महाभारत' में संग्राम की आशंका के साथ कुन्ती राजनैतिक स्तर पर कर्ण को समझाने की बात सोचती है[3] यह नारी के शाश्वत मातृत्व के ऊपर आघात है, 'रश्मिरथी' में वह मां के रूप में अपने हृदय की व्यथा का तीव्र अनुभव करती है।[4] दिनकर जी ने चरित्र-शुद्धि के लिए जिस भावनामय आवेग के साथ कुन्ती की व्यथा चित्रित की है उसे नारी के शाश्वत मूल्यों का चित्र मानना चाहिए। कवि यहां हृदय का समर्पण करता है। नीति के जाल से दूर मां और पुत्र का अभिनव मिलन कराता है।

'सेनापति कर्ण' ने कुन्ती का हृदय इतना अधिक त्रस्त दिखाया है कि वह पहले भीष्म के समक्ष कर्ण को अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करती है। मानो इस स्वीकृति से कवि एक ओर कुन्ती की अन्तर्व्यथा की गहराई चित्रित करता है[5] दूसरे

---

१. म० आदि० १३५।२७

२. और हाय रनिवास चला जब वापस राज भवन को,
सबके पीछे चली एक विकला मसोसती मन को,
उजड़ गये हों स्वप्न, कि जैसे हार गई हो दांव
नहीं उठाये भी उठ पाते थे कुन्ती के पांव॥ रश्मिरथी, पृ० ६

३. म० उद्योग० १४४।१७-१६

४. रश्मिरथी, पृ० ८२

५. सेनापति कर्ण, पृ० ११५

यह प्रदर्शित करता है कि अन्तत उसमे समाज के समक्ष यह स्वीकार करने की शक्ति आ हो गई कि कर्ण उसका पुत्र है। मिश्र जी ने कुन्ती के चरित्र को अधिक मनोवैज्ञानिक सघर्ष के साथ चित्रित किया है।[1]

भीष्म कुन्ती की चिन्ता का कारण अधिरथ पुत्र को बताते हैं तो वह अपना समस्त साहस बटोरकर अपनी व्यथा की कथा सुना देती है।[2]

'महाभारत' की कुन्ती अपने गौरव की यथावत रक्षा करते हुए स कहती है।

कौन्तेयस्त्वनराधेयो न तवाधिरथ पिता।[3]

इसके उपरान्त उसे भावना से नही अपितु वैभव के लालच स अपनी ओर करने के लिए कहती है

अजु नार्जितां पूर्व हृता लोभाद साधुभि
आच्छिद्य धार्त राष्ट्रेभ्यो भु क्ष्व यौधिष्ठिरीं श्रियम्।[4]

'महाभारत' मे कुन्ती की भावुकता अत्यन्त अल्प है। वह मानो एक सौदा करके लौटती है। आधुनिक कवि की भावुकता को कुन्ती का यह रूप स्त्री के मातृत्व के गौरव क उचित नही जान पडा, इसके अतिरिक्त उसे कुन्ती के चरित्र के मूलाधार के साथ ऐसे स्त्री चरित्र की सृष्टि करनी थी जिसम समाज की नवीन का आवेग यौवन की शक्ति का अभ्युदय हो, जो अपने पुत्रो को अपनी गोदो मे लेकर उच्चकुल वश-मर्यादा-सम्पन्न माननीयो से कह सकें कि 'तुमने हमारा अन्य अधिकार छीना पर हम अपना मातृत्व नहीं देगी'। कवि ऐसे चरित्र की सृष्टि करना चाहता है जो समाज की जड मान्यताओ के ऊपर पैर रखकर चल सकें। अत उसे 'महाभारत' के स्थिर व्यवस्थित पात्र का भी परिष्कार करना पडा। कुन्ती अपनी व्यथा की सामाजिक उद्घोषणा के लिए तत्पर है।[5]

दिनकर ने कुन्ती के मुख से नारी की शाश्वत पराधीनता की भावना व्यक्त की है, कि *नारी यदि पतिता है तो उसे अपने चरित्र का परिष्कार भी नहीं करने* दिया जाता, वह तो अपने कलक को छिपाकर ही सम्मानपूर्वक रह सकती है।[6] किन्तु इतना सोचकर कवि कुन्ती के भीत चरित्र मे निर्भयता का सचार करता है।[7] अब

---

१ पाप की घडी में जन्म मैंने लिया। पाप मे,
लिप्त यहा आई हो अधीर यही आशा है,
पुण्यव्रती पुण्य की शिखा में आज आपकी,
भस्म पाप पुंज मेरा होगा। सेनापति कर्ण, पृ० ११५

२ सेनापति कर्ण, पृ० ११८

३ म० उद्योग० १४५।२ सेनापति कर्ण, पृ० ११८

४ म० उद्योग० १४५।८

५. रश्मिरथी, पृ० ८७

६ रश्मिरथी, पृ० ८६

७ रश्मिरथी, पृ० ८७

वह समाज से नही डरेगी और उसके समक्ष अपने मूल स्वरूप को स्वीकार करते संकुचित नही होगी।[1]

'अंगराज' मे आनन्द कुमार ने कुन्ती के चरित्र के साथ न्याय नहीं किया। पाण्डव विरोधी भावना की उग्रता के कारण उन्होंने कुन्ती के स्नेह को लांच्छना की दृष्टि से देखा। 'आत्मज को छलने'[2] 'आकृति से जग को छलती थी, आदि वाक्य खण्डो मे अपनी दुर्भावना व्यक्त की है। 'महाभारत' एवं परम्परा की चरित्र-सृष्टि को इस प्रकार विपरीत रूप से चित्रित करना असास्कृतिक है। 'अगराज' मे ऐसा लगता है मानो कुन्ती पाण्डवो के प्राणो की भीख मागने तथा निज दुष्कर्म की क्षमा याचना करने आई है।[3]

'भगवती चरण' तथा 'आनन्द कुमार' ने कुन्ती की वास्तविक व्यथा को जानने का प्रयत्न नही किया। 'अंगराज' मे पुत्रघाती के रूप मे कुन्ती का चरित्र अपरम्परागत है और उससे आधुनिक युग मे किसी भी उपलब्धि की आशा नही है। संस्कृति के प्रति यह ध्वंसात्मक दृष्टिकोण काव्य के गौरव को नष्ट करता है।

उक्त भाव के विपरीत और गौरव के अनुकूल दिनकर जी की चरित्र-सृष्टि कितनी स्वाभाविक है। कर्ण के कटु शब्द सुनकर कुन्ती की पीड़ा जल प्रवाह की तरह विगलित हो जाती है। वह अपने को कोसती है।[4] कर्ण के जलप्रवाह की स्मृति करती है।[5] वह अपने को धिक्कार कर कर्ण के दानी मन को टटोलती है।[6] 'महाभारत' और 'रश्मिरथी' मे कुन्ती का चरित्र चित्रण नितान्त वास्तविक, स्वाभाविक और गौरवानुकूल है।

वस्तुत: कुन्ती के चरित्र का यही मूल आधार था। आधुनिक काव्यकारों ने पर्याप्त रूप से कुन्ती के इस रूप की अभिव्यक्ति की है।

हिडिम्बा

हिडिम्बा की चरित्र-सृष्टि 'महाभारत' में भीमसेन की प्रेयसी-पत्नी के रूप मे होती है। वारणावत से सकुशल निकलकर वन मे निवास करते समय भीम की भेंट हिडिम्बा से होती है।

'महाभारत' में हिडिम्बा के चरित्र को यथार्थवादी वातावरण में चित्रित

---

१. त्रिपथगा, पृ० २३
२. अंगराज, पृ० १५५
३. अंगराज, पृ० १६२
४. रश्मिरथी, पृ० १०१
५. रश्मिरथी, पृ० १०१
६. रश्मिरथी, पृ० १०३

किया है। हिडिम्बा भीम को देखकर मुग्ध हो जाती है[1] और उनके साथ वर्षा उपभोग और आनन्द की कल्पना करती है।[2] मैथिलीशरण गुप्त तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र ने हिडिम्बा के चरित्र को परिष्कृत रूप में उपस्थित किया है। गुप्त जी के चरित्र का आधार दानवों को आर्यत्व देने की भावना है और मिश्र जी का आधार परित्यक्त नारी की मानसिक व्यथा के मनोवैज्ञानिक रूप का चित्रण है।

महाभारत' में हिडिम्बा स्वयं विवाह का प्रस्ताव रखती है इससे हिडिम्बा के चरित्र म आर्य नारीत्व का अभाव लक्षित होता है।

एतद् विज्ञाय धर्मज्ञ युक्तं मयि समाचार

कामोपहत चित्तांगी भजमाना भजस्व माम।[3]

किन्तु गुप्त जी की हिडिम्बा आर्य नारी की भांति अपने हृदय को भीम के समक्ष उस समय उपस्थित करती है जब कि उसका भाई मारा जाता है। गुप्त जी ने हिडिम्बा की वाचालता को तर्क के द्वारा परिष्कृत किया है। हिडिम्बा देवी का रूप धारण कर भीम के पास जाकर अपनी वास्तविकता को स्वीकार करती है।[4]

हिडिम्बा की सत्यवादिता से कि वह देवी नहीं राक्षसी है,[5] भीम प्रभावित होते हैं।[6] हिडिम्बा इससे भी आगे अपने पूत मनोरथ को प्रकट करती है।[7] और उसी साहस के साथ क्रोधित भाई को अपना निर्णय सुनाती।

'सावधान मैं वर चुकी हूं इन्हें मन में'[8]

हिडिम्बा के चरित्र को आर्यत्व प्रदान करने के हेतु गुप्त जी ने युधिष्ठिर और हिडिम्बा का वार्तालाप कराया है। हिडिम्बा युधिष्ठिर से कहती है कि हे आर्य आप मेरे से अपना भेद खुलने की आशंका न करें।[9] क्योंकि "हममें प्रवृत्ति नहीं ऐसे पुण्य पाप की।" हिडिम्बा अत्यन्त चतुराई से भीम के ऊपर अपना भार छोड़ती है।

न्याय से उन्हीं पर न भार मेरा सारा है।

---

१ म० आदि० १५१।१८
२ म० आदि० १५१।१९-२०
३ म० आदि० १५१।२८
४ जयभारत, पृ० ७६
५ जयभारत, पृ० ८६
६ जयभारत, पृ० ७७
७ जयभारत, पृ० ७८
८ जयभारत, पृ० ७९
९ जयभारत, पृ० ८१

रक्षक जिन्होंने एकमात्र मेरा मारा है।[1]

'महाभारत' की हिडिम्बा अपना मनोभाव प्रकट करती है। वह केवल भीम को चाहती है[2]—'जयभारत' की हिडिम्बा राक्षसत्व को परित्याग कर आर्यत्व की कामना करती है।

यदि तुम आर्य हो तो दो हमें भी आर्यता
अपनी ही उच्चता में कैसी कृतकार्यता।[3]

मिश्र जी ने हिडिम्बा के चरित्र को एक नये प्रसंग मे चित्रित किया है। उन्होंने हिडिम्बा को स्त्री-जाति की समस्त कोमलता से मण्डित त्यागमयी मूर्ति के रूप मे उपस्थित किया है। कर्णार्जुन युद्ध की सूचना से हिडिम्बा वन मे दुःखित होती है और घटोत्कच उसके दु.ख का कारण पूछता है।

मिश्र जी ने कथाश को नितांत मौलिक रूप में प्रस्तुत करके हिडिम्बा के अन्तर्द्वन्द्व को मौलिक रूप में चित्रित किया है।

पतिकुल को संकट में जानकर वह क्षुब्ध होती है।[4] अपने पुत्र से पितृकुल की रक्षा की याचना करती है।[5] घटोत्कच अपनी मा की चिरव्यथा का अंकन करता है।[6] घटोत्कच के द्वन्द्व में हिडिम्बा का मन आर्यत्व से मण्डित अपने पुत्र को प्रताड़ित करता है कि वह किन प्रकार पितृकुल के अनिष्ट की कामना करता है?[7] हिडिम्बा को पतिव्रतता पर पूर्ण विश्वास है, वह स्वामी को अपने दोनों लोकों को रंजित करने वाला मानती है।[8]

मिश्र जी ने हिडिम्बा के चरित्र में अनुपम शौर्य की सृष्टि की है। घटोत्कच के कहने पर वह स्वयं युद्ध के लिए प्रेरित होती है। वह कौरवों के नाश का प्रण करती है।[9] 'महाभारत' में हिडिम्बा के चरित्र के विकास के लिए इतना अवकाश नहीं था, वह एक प्रासंगिक चरित्र के रूप में आता है। मिश्र जी ने हिडिम्बा को आर्य नारी की अनोखी सहनशीलता से मंडित चित्रित किया है। हिडिम्बा ने अपने व भीम के प्रणय को इसलिए सबसे नहीं बताया कि विश्रुत भीम के वंश पर आघात

---

१. जयभारत, पृ० ८२
२. म० आदि० १५४।१०
३. जयभारत, पृ० ८३
४. सेनापति कर्ण, पृ० ७३-७४
५. सेनापति कर्ण, पृ० ७५
६. सेनापति कर्ण, पृ० ७७
७. सेनापति कर्ण, पृ० ७८
८. सेनापति कर्ण, पृ० ७९
९. सेनापति कर्ण, पृ० ८०

न हो।[1] अन्तत वह पतिकुल की रक्षा के लिए द्रौपदी, सुभद्रा की तरह अपने पुत्र का भी बलिदान करती है।

हिडिम्बा के चरित्र के इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण म मिश्र जी ने स्त्री के शाश्वत गुणो की अभिव्यक्ति की है। नारी अपने त्याग एव बलिदान मे पुरुष की सत्ता को सजीवता प्रदान करती है। पति के प्रति अनन्यनिष्ठा उसका मूल आधार है। एक दानवी मे इन सब गुणो का होना उसे आर्यत्व की सीमाओ मे ले आता है। कवि ने हिडिम्बा के अन्तर्द्वन्द्व के रूप मे पुरुष की शाश्वत कठोरता और नारी का अमूल्य समर्पण चित्रित किया है।

दमयन्ती

दमयन्ती के चरित्र पर आधुनिक जागृति एव सुधारवादी दृष्टिकोण का पूर्ण प्रभाव पड़ा है। 'महाभारत' की दमयन्ती का चरित्र स्थिर चरित्र के रूप में चित्रित है किन्तु आधुनिक काव्य मे उसकी मनोगत भावनाओ की अभिव्यक्ति को पूर्ण स्थान दिया गया है। दमयन्ती अपने गुणों के कारण भारतीय जीवन-परम्परा की मुख्य सतियो मे अपना स्थान बना लेती है। यह एकनिष्ठ प्रेमिका, सती और प्रत्येक दशा मे पति का साथ देने वाली है। 'नलनरेश' मे दमयन्ती का चरित्र 'महाभारत' की भावना के अनुकूल चित्रित हुआ है। उसमे स्त्री सुलभ परन्तु स्वच्छन्दता स्वाभाविक दौर्बल्य और स्वाभिमान का परिपाक है, किन्तु उसके गुणो पर परम्परागत विकास की स्थिति विद्यमान है। 'दमयन्ती' काव्य मे दमयन्ती का चरित्र सुधारवादी, मानवतावादी और समानतावादी दृष्टिकोणों के समन्वय से सवारा गया है।

एकनिष्ठ प्रेमिका प्रेम की एकनिष्ठता के क्षेत्र मे दमयन्ती पतिव्रत धर्म की उपासिका है।[2] वह सावित्री के मार्ग का अनुसरण करती हुई अपने प्रेम पर दृढ रहती है। दमयन्ती के चरित्र में आर्य कन्या का सतीत्व गौरव व्यक्त हुआ है।[3] 'महाभारत' मे दमयन्ती के प्रेम के विकास का अभाव है और एकनिष्ठ स्वरूप की झाकी उसके कर्तव्य-कार्य मे ही मिलती है। 'दमयन्ती' मे प्रेम की भावना के विकास के अन्तर्गत ही सतीत्व की भावना का प्रसार किया गया है।[4]

दमयन्ती के प्रेमिका रूप मे आधुनिक दृष्टि के कारण विशेष परिवर्तन किया गया है। प्राचीन नारी मे आत्म-विश्वास और सतीत्व विश्वास की भावना प्रबल

---

१ सेनापति कर्ण, पृ० ८५
२ नलनरेश, पृ० २२
३ दमयन्ती, पृ० १६
४ दमयन्ती, पृ० १७

थी। आज के वैज्ञानिक सुधारवादी युग में सतीत्व के विश्वास जैसी मान्यताओं पर कुठाराघात हुआ है, किन्तु व्यक्तिगत प्रेम की सफलता के लिए समाज के जीर्ण बन्धनों का भंजन आधुनिक नारी के आत्म-विश्वास और बौद्धिक सजगता का परिचायक है।

शक्तिशाली व्यक्तित्व : आज की नारी केवल प्रार्थना पर जीवित नहीं है। महाभारत काल की दमयन्ती देवों से प्रार्थना करती है।[1] पर 'दमयन्ती' में दमयन्ती का चरित्र-चित्रण व्यक्तिगत विश्वास[2] और शोषण के विरुद्ध ज्वालामयी नारी के रूप में हुआ है।[3] आज की दमयन्ती अपनी सतीत्व-रक्षा के लिए प्रार्थना नहीं करती, किन्तु सशक्त विद्रोह करती है।[4] इस रूप में आधुनिक काव्य की दमयन्ती स्त्री के चारित्रिक उच्चता के प्रकाशन मे परम्परावादी है किन्तु उस चरित्र-रक्षा के साधनों की उपलब्धि का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न हो गया है।

दमयन्ती के चरित्र में आज के कवि ने पति-पत्नी के श्रेयात्मक प्रेम के आदर्शवादी रूप की झांकी प्रस्तुत की है। वह दमयन्ती के चरित्र से उन सभी आदर्शों की पुनः प्रतिष्ठा करना चाहता है[5] जिनके अभाव में मध्य युगीन नारी केवल विलास का साधन बनकर सामन्तवादी दृष्टि के कारण अपने आर्यत्व पद से च्युत हो गई थी।

सेविका : वनवास के समय दमयन्ती के चरित्र के सात्विक गुणों की अभिव्यक्ति होती है। पति-सेवा, निश्पाप मन से संसार की बाधाओं को सहन करने की क्षमता, ईश्वर की शक्ति पर अटूट विश्वास, उसकी शक्ति एवं आस्थावादी दृष्टिकोण का परिचायक है। इन गुणों से आधुनिक सुधारवादी कवि मानवतावादी आदर्श चरित्र की अवतारणा करता है।

अन्य गौण पात्र

प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त 'महाभारत' के गौण पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रसंग रूप में आधुनिक काव्य में हुआ है। इन पात्रों में जयद्रथ, दुःशासन, सात्यकि, विकर्ण, द्रुपद, कृपाचार्य और धृष्टद्युम्न हैं। सभी पात्र अपनी मूलभूत विशेषताओं के साथ आधुनिक काव्य में चित्रित हुए हैं।

जयद्रथ

'महाभारत' में जयद्रथ दुःशला का पति, कामुक, और कायर व्यक्ति के रूप

---

१. म० वन० ५७।२०-२१

२. दमयन्ती, पृ० ७०, नलनरेश, पृ० २२८

३. नलनरेश, पृ० २२९

४. दमयन्ती, पृ० १३६-१३७

५. दमयन्ती, पृ० १३८

मे चित्रित है। जयद्रथ वीरयुगीन पात्रो की उस उच्चता का प्रतिनिधित्व नही करता, जिसके मुख्य गुण अर्जुन, कर्ण, दुर्योधन आदि पात्रो मे विद्यमान हैं। गुप्त जी ने 'जयद्रथ वध' मे जयद्रथ के चरित्र का विकास स्वतत्र रूप से नही किया। वहा उनकी दृष्टि अभिमन्यु के शौर्य और अर्जुन के वीरत्व पर अधिक रही है। चरित्र के जिस अग के दर्शन 'जयद्रथवध' मे होते हैं वह तमोगुणी चरित्र है। 'पाचाली' मे जयद्रथ एक कामुक व्यक्ति है जो अवसर पडने पर अपने निकट सम्बन्धी की पत्नी से दुष्ट प्रस्ताव करता है।

भार्या मे भव सुश्रोणि त्यजैनान सुखमाप्नुहि,
अखिलान सिन्धु सौवीरानाप्नुहि त्व मया सह।[1]

पीनारू तोड दे दरिद्रता के बन्धन
आ चल तू मेरे साथ सुकोमल नारी
अपने हाथो मे कमल कली गू थू गा।[2]

जयद्रथ के इन शब्दो मे 'महाभारत' का एक निकृष्ट पात्र अभिव्यक्ति हो उठता है, उसमे शौर्य का अभाव है। जयद्रथ कायर और शक्तिहीन है।[3] प्रतिकार के कारण वह शिव की पूजा करके वर प्राप्त करता है तथापि अर्जुन की प्रतिज्ञा सुन-कर भयभीत होता है।[4] जयद्रथ के चरित्र से आधुनिक कवि अतिरिक्त कामुकता का विरोध करता है और उसे दण्डनीय मानता है। इसी भावना के आधार पर जयद्रथ का चरित्राकन किया गया है।

दु शासन

दुर्योधन के अनुजों मे दु शासन का व्यक्तित्व प्रमुख है। वही अनुज ऐसा है जो सर्वथा अग्रज के साथ है, और उनकी आज्ञा का पालन करता दिखाई देता है। दुर्योधन की आज्ञाकारिता के वश वह शुभाशुभ को नहीं देखता, वह केवल मात्र आज्ञापालक है।[5] भीम के साथ प्रारम्भिक सघर्ष, द्रौपदी-चीर हरण, और युद्ध के

---

१ म० वन० २६७।१७

२ पाचाली, पृ० ६३

३ म० वन० २७२।४-५

दया करो मत मारो मुझको मैं हू दास तुम्हारा। जयभारत, पृ० २२६

४ क प्रहर्षं पाण्डवेयाना श्रुत्वा मम महद् भयम्।
सीदन्ती ममगात्राणि मुमुर्षोरिव पार्थिवा। म० द्रोण० ७४।६

ख कर्त्तव्य अपना इस समय होता न मुझको ज्ञात है।
भय और चिन्ता युक्त मेरा जल रहा सब गात है। जयद्रथ वध, पृ०४१

५ म० सभा० अध्याय ६७-७७

भाई नहीं किंकर मैं तुम्हारा, जयभारत पृ० २१५

प्रमुख अवसरों पर[1] वही अग्रज की सहायता करता है। अग्रज के प्रति घोर आस्था ही उसके व्यक्तित्व का मुख्य गुण है। आधुनिक काव्यों में उसके चरित्र का उक्त रूप सर्वथा सुरक्षित है। 'जयभारत' का दुःशासन दुर्योधन की मानसिक व्यथा के समय उसे धैर्य बंधाता है।[2] 'सेनापति कर्ण' में मिश्र जी ने दुःशासन के चरित्र को सुशासन के रूप मे चित्रित किया है।[3] उसके व्यक्तित्व के प्रति कवि की पूर्ण सहानुभूति है।[4] दुःशासन का चरित्र भी सामान्यतः प्रसंग रूप से चित्रित हुआ है और मिश्र जी के अतिरिक्त अन्य कवियों ने विशेष रूप से परिष्कृत करने का प्रयास भी नही किया।

मिश्र जी का दुःशासन पत्नी को सतप्त को देखकर धैर्य बंधाता है और रणभूमि मे कर्म-सिद्धि की कामना करता है।[5]

इस प्रकार नवीन रूप में दुःशासन के चरित्र का परिष्कार व्यक्तिगत आशा और विश्वास का आधार बनाकर उपस्थित किया गया है।

विकर्ण

'महाभारत' में विकर्ण का चरित्र दुर्योधन के आज्ञाकारी अनुज और पाण्डव समर्थक के रूप में चित्रित है। वह अपने भाई की आज्ञा का पालन करते हुए भी कई स्थलों पर कर्ण की कटु भावना का विरोध करता है और पाण्डवों के न्याय-सम्मत-पक्ष को स्वीकार करता है। द्रौपदी-चीर-हरण प्रसंग मे वह पाण्डवों का पक्ष लेता है और बुद्धि सम्मत तथा तर्क-युक्त चेतावनी देता है। कौरवों में वही ऐसा व्यक्ति है जिसका वध भीम अनिच्छा से केवल प्रतिज्ञावश होकर करते है। विकर्ण द्रौपदी को जीती हुई नही मानता।

> इयंच कीर्तिता कृष्णा सौबलेन पणार्थिना।
> एतत सर्व विचार्याहि मन्ये न विजितामिमाम्॥[6]

'जयभारत' में विकर्ण का चरित्र 'महाभारत' की विचारधारा के अनुकूल है।

---

१. म० द्रोण० अध्याय ४६,१२०-१२१, म० कर्ण० अध्याय ६१

२. स्वयं तुम्हीं अग्रज, राज्य मेरे
समाप्ति में ही सुख जो तुम्हें है
तो क्यों न मैं भी निज भाग पाऊं
मैंने तो धर्म न कर्म जाना
माना सदा जीवन में तुम्हीं को। जयभारत, पृ० २१४-१५

३. सेनापति कर्ण, पृ० १४४

४. सेनापति कर्ण, पृ० १४५

५. सेनापति कर्ण, पृ० १४७

६. म० सभा० ६८।२४

द्रौपदी के पाण्डवों की भार्या बनने के उपरान्त अन्य व्यक्तियों ने जब इस कार्य को समाजविरोधी, धर्म के प्रतिकूल बताया तो विकर्ण अन्त करण के प्रमाण को सर्वाधिक महत्व देता हुआ द्रौपदी के पंच पतित्व का समर्थन करता है।[1] पाण्डवों का सौभ्रातृत्व उसके जीवन के लिए आदर्श है[2] अत वह उसका पालन करता है। इस प्रकार विकर्ण के चरित्र से इस बात की व्याख्या की गई है कि न्याय का पक्ष सर्वथा ग्राह्य है और अन्याय सम्बन्धी भी विरोध का पात्र है।

सात्यकि, धृष्टद्युम्न, कृपाचार्य, आदि पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रसंगवशात् कहीं-कहीं आधुनिक काव्य में उपलब्ध होता है। उसमें चरित्र-सृष्टि का प्रयास नहीं है अत उसे पात्र विशेष का उल्लेख मात्र ही समझना उचित होगा। सामान्यत ऐसे पात्रों की स्थिति पूर्णरूप से मूलग्रंथ के आधार पर विद्यमान है।

निष्कर्ष

'महाभारत' और आधुनिक हिन्दी काव्य के पात्रों के इस अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 'महाभारत' के पात्रों के आधार पर रचे गये काव्यों में अधिकांश कवियों की दृष्टि व्यक्तिगत पात्र के जीवन से प्रेरित है। जिस पात्र ने कवि को जितनी मात्रा में प्रभावित किया, उसने अनुभूति की उतनी ही गहराई और व्यापकता में उस पात्र के महाभारतीय रूप की रक्षा करते हुए अपने युग के प्रतिनिधि-रूप में उपस्थित किया। प्रत्येक कवि ने पात्र के आधार पर उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन करके अपनी बात कही है। इसमें प्राचीन पात्रों की गतिविधि का आधुनिक मूल्यांकन उच्चस्तर पर हुआ है। 'महाभारत' के प्रमुख पात्रों के व्यक्तित्व के साथ धर्म के जिस शाश्वत रूप का अभिन्न सम्बन्ध है, उसकी पुनर्स्थापना ही आज के युग में कवियों को अभीष्ट रही है। महाभारतकालीन हिंसा-प्रतिहिंसा के वातावरण में विकसित पात्रों को कवि ने अपने युग की समस्याओं का प्रतीक बनाकर इस रूप में व्यक्त किया है कि उनके सांस्कृतिक और परम्परागत स्थान की रक्षा हो सके और वे नवीनता के आधार में आज का प्रतिनिधित्व कर सकें। 'महाभारत' के पात्र महाभारतकालीन व्यक्ति की सीमा से आगे आकर आज के युग में सामाजिक सुधार के स्तम्भ बन गये हैं। 'प्रियप्रवास' और 'कृष्णायन' के कृष्ण 'जयभारत' के युधिष्ठिर 'रश्मिरथी' 'अंगराज' और 'सेनापति कर्ण' के कर्ण, अर्जुन, भीम, भीष्म, द्रोण, नल आदि पुरुष पात्र और द्रौपदी, गान्धारी, कुन्ती, हिडिम्बा, आदि स्त्री पात्र आज के स्वार्थ संघर्ष के युग में मानवता के संदेशवाहक हैं। इन पात्रों को अपने

---

१. पाण्डवों के मन में जो ग्लानि नहीं होती है।
तो मैं मानता हूं धर्म हानि नहीं होती है। जयभारत, पृ० १२५

२ दीजिए न आयें मुझे बाता कोई सुन के।
मैं सौभ्रातृत्व से ही तो प्रभावित हूं उनके। जयभारत, पृ० १२६

मध्य देखकर आज का मानव अपने प्राचीन साहित्य और संस्कृति के सदगुणों के प्रति पूर्ण सचेष्ट है और उनका व्यापक प्रसार चाहता है। इससे सिद्ध होता है कि हमारा अतीत हमारे भविष्य-निर्माण में सहायक है।

—०—

महाभारत की धर्म-विधि का प्रभाव

धर्म का स्वरूप

आधुनिक कवि की धर्म-दृष्टि

षष्ठ अध्याय

महाभारत को धर्म-विधि का प्रभाव

धर्म मानव-जीवन-साधना का सर्वाधिक रहस्य मय[1] सूक्ष्म[2] और महाविशिष्ट[3] शब्द है। मानव-जीवन-केन्द्र धर्म से अनुप्राणित है और धर्म ही उसकी रक्षा करता है। "धर्मो रक्षति रक्षित"[4] भावना से मानव और धर्म का परस्पर अन्योन्याश्रित भाव व्यक्त होता है। धर्म का स्वरूप और व्यापकत्व इस तथ्य से व्यंजित होता है कि धर्म शब्द का प्रयोग अनेकविध किया जाता है। मानव के सभी शुद्धाचार धर्म के अन्तर्गत आते हैं। 'महाभारत' में धर्म शब्द का व्यवहार धारणकर्ता के रूप में किया गया है। धर्म से ही समस्त प्रजा का धारण होता है।[5] इसके अतिरिक्त धर्म का प्रयोग कर्तव्य-पालन[6] शुद्धाचरण[7] अद्रोह[8] सत्कर्मों का अनुष्ठान[9] भय, मात्सर्य, सन्ताप, ईर्ष्या, द्वेष, भेद का अभाव[10] परोपकार,[11] सत्य, जितेन्द्रियत्व, कोमल-स्वभाव[12] के रूप में किया है। धर्म को पारिभाषिक रूप में आबद्ध करते हुए न्याययुक्त आरम्भ को धर्म कहा गया है।[13] अनेक स्थानों पर सदाचार को ही धर्म माना

---

१ सरहस्यो महाफल । म० अनु० १३३।२

२ सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य बहुशाखा ह्यनन्तिका । म० वन० २०६।२

३ पुण्य पद तात महाविशिष्टम् । म० उद्योग० ४०।१२

४ म० वन० ३०।८

५ (क) धारणाद्धर्ममित्याहु धर्मेण विधृता प्रजा ।
स्याद्धारणसयुक्त सधर्म इति निश्चय । म० शान्ति० १०९।११
(ख) नमो धर्मायमहते धर्मो धारयति प्रजा । म० उद्योग० १३७।९

६ म० वन० १४९।११,१३

७ म० वन० १४९।१६

८ अद्रोहेणैव भूताना योधर्म स सतामत । म० शान्ति १२।११

९ म० वन० १४९।२१

१० म० वन० १४९।१६

११ The doing good to others is the highest Dharma'
—*Shakti and Shakta, Madras 1951, p 465*

१२ दयावान् सर्वभूतेषु हिते रक्तो न सूयक ।
सत्यवादी मृदुर्दान्त प्रजाना रक्षणे रत । म० वन० १९१।२३

१३. आरम्भो न्याययुक्तो य स हि धर्म इतिस्मृत । म० वन० २०७।७.

गया है।[1]

धर्म-लक्षण

'महाभारत' में धर्म के विभिन्न अंगों का वर्णन इतने विस्तार से है कि केवल कर्त्तव्यकर्म या आचार-संहिता को ही धर्म न कहकर उसे सम्पूर्ण जीवन-साधना का सिद्धान्त और व्यवहार माना गया है। मानव-जीवन के सम्पूर्ण साधारण सदाचार, आपत्तिकालिक असाधारण कर्म, स्थिति-सापेक्ष आचरण और विधि-निषेध आदिका निरूपण धर्म की परिधि के अन्तर्गत हुआ है। धर्म सनातन है, और अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति का परम सोपान है। यज्ञ, दान, परोपकार आदि धर्मांग अभ्युदय के हेतु हैं और साधना रूप में अष्टांग योग निःश्रेयस का साधन है। जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। मोक्ष प्राप्ति के साधनों में प्रथम साधन धर्म-पालन है। अतः 'महाभारत' में निष्कामभाव से धर्म पालन का निर्देश है। धर्म का पालन इसीलिए नहीं कि उससे सिद्धि मिले अपितु इसलिए कि वह मानव का प्रमुख कर्त्तव्य है।[2]

धर्म साधना के दो पक्ष : लोक-यात्रा के निर्वाह हेतु धर्म का आचरण मनुष्य का सर्व प्रमुख कर्त्तव्य है।[3] जो व्यक्ति धर्म का पालन करता है वही परम शान्ति प्राप्त करता है। धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाला पाप का भागी होता है एवं सांसारिक कष्टों को भोगता है।[4] वस्तुतः जीवन की सामान्य प्रवृत्तियां तो पशु और मानव दोनों में समान होती हैं परन्तु मानव को मानव बनाने वाला धर्म ही है।[5] व्यक्ति की जीवन-प्रक्रिया दो रूपों में आबद्ध है, उसका एक रूप नितान्त वैयक्तिक है और दूसरा सामाजिक। वह व्यक्तिगत सीमा में उन धर्मों का आचरण करता है जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति के साधन हैं। सामाजिक पक्ष में वह समाज के नियमों का पालन करता है। वास्तव में प्रत्येक धर्माचरण एक ही समय

---

१. आचारश्च सतां धर्मः सन्तश्चाचारलक्षणाः। म० वन० २०७।७५

२. धर्मं चरामि सुश्रोणि न धर्मफलकारणात्।
आगमाननतिक्रम्य सतां वृत्तिमवेक्ष्य च॥
धर्म एव मनः कृष्णे स्वभावाश्चैव मे धृतम्।
धर्म वाणिज्यको हीनो जघन्यो धर्मवादिनाम्॥ म० वन० ३१।४-५

३. लोक यात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः। म० शान्ति० २५९।४

४. उभयत्र सुखोदर्कइह चैव परत्र च।
अलब्ध्वा निपुणं धर्मं पापः पापेन युज्यते। म० शान्ति० २५९।५

५. आहारनिद्राभय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहितेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिः समानाः॥ संकलित

मे वैयक्तिक और सामाजिक दोनो पक्षो का साधक होता है।[1]

धर्म के द्वारा अभ्युदय और नि श्रेयस दोनो की सिद्धि होती है।[2] अभ्युदय का क्षेत्र जनजीवन है, जबकि नि श्रेयस आन्तरिक साधनाओ द्वारा आत्म तत्व की प्राप्ति है। भारत म वैयक्तिक धम का चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति समझा गया है। इस दृष्टि मे धम मानव के अन्त करण को साधनाओ द्वारा शक्तिशाली बनाते हुए उसकी रहस्यमयी शक्तियो को जाग्रत कर विराट के साथ एकाकार कर देता है। अध्यात्म विद्या की यही चरम उपलब्धि है। यही धम जिज्ञासा दशन, उपासना, पूजा, आदि को जन्म देता है—जिसका क्षेत्र अपने आप मे अत्यन्त विस्तृत है।

मानव-धम धम अपने सम्पूर्ण रूप मे एक अविरोधी भावना है। वह जीवन को खडश तृप्त नही करता, जो केवल खड का परिचायक है वह धर्म नही। जीवन की समग्रता का प्रतिनिधि होने के कारण धम एक अटल नियम की भाति है। जिस प्रकार अग्नि का धर्म जलना है, उसी प्रकार इस जगत् के प्रत्येक पदार्थ के अपने अपने धम है, और अन्तत उन सब धर्मों का समाहार एक विशाल व्यापक धम के अन्तर्गत होता है।

मानव अपने व्यापक परिवेश मे इस सृष्टि का एक अग है। वह व्यक्ति होते हुए भी समष्टि स पृथक् नही है। उसका अस्तित्व अपने आप मे स्वतन्त्र होते हुए भी, समाज-सापेक्ष है। अत मानव का प्रत्येक आचरण व्यक्ति सापेक्ष और समाज सापेक्ष होकर ही धर्म का रूप ग्रहण करता है। प्रत्येक देश मे जहा-जहा मानव धर्मों का व्याख्यान किया गया है, वहा-वहा मानव के उन समस्त गुणो का सकलन ही दृष्टिगोचर होता है, जो उसे वैयक्तिक दृष्टि से श्रेष्ठ बनाते हुए सामाजिक भी बनाये रखते है। 'महाभारत' म भी मानव-धर्म का विवेचन इसी दृष्टि पर आधारित है।

मनुस्मृति के अनुसार मानव धम के दस लक्षण हैं—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध।[3] 'महाभारत' मे धर्म के लक्षणों की कोई निश्चित सख्या सीमित नही की गई है। वहा मनुकथित गुणो के अतिरिक्त और भी अनेक महत्वपूर्ण मानव गुणो को धम की परिधि मे वर्णित किया गया है।[4] इनमे मे कुछ प्रमुख धम गुणो का विवेचन सक्षेप मे किया जा

---

१ Each religious act is always simultaneously an individual and a social act'

—*Sociology of Religion Joa Chinwach, p 29*

२ क यतोऽभ्युदय नि श्रेयस् सिद्धि स धर्म। वैशेषिक, कणाद, १।२
ख धम एव कृत श्रेयानिह लोके परत्र च। म० शान्ति० २९०।६

३ धृति क्षमादमोऽस्तेय शौचमिन्द्रियनिग्रह।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशक धमलक्षणम्॥ मनुस्मृति ६।९२

४ म० शान्ति० १०९।१२-१३

रहा है।

धृति : धर्म और धृति के मूल में 'धृ' धातु है, जिसका अर्थ धारण करना होता है। धर्म के द्वारा धारण होता है—धर्मोधारयति प्रजा[1] धृति के द्वारा भी धारण होता है—धृत्या धारयते।[2] धर्म धारण का व्यापक रूप है, धृति उसका एक अंग है। धर्म समस्त प्रजा का धारण करता है तो 'धृति' मन, प्राण, और इन्द्रिय-क्रिया को धारण करती है। चित्त के उस सामर्थ्य पूर्ण अवस्थापन को धृति कहते हैं, जिसके द्वारा मानसिक क्षोभ शमित होता है।[3] सुख या दुःख प्राप्त होने पर मन में विकार न होना धृति है और ऐसी धृति के सेवन को अभीष्ट बताया गया है।[4] शंकराचार्य के अनुसार धृति को बुद्धि की सतोपरूपावृत्ति कहा गया है।[5]

'महाभारत' मे मानव के आवश्यक गुणों मे धृति को स्थान-स्थान पर महत्व दिया गया है। धृति की विशेष व्याख्या करते हुए गीता मे उसे तीन प्रकार की कहा गया है। जिस अव्यभिचारिणी धारणा शक्ति से योग द्वारा मन, प्राणादि का धारण होता है वह सात्विकी धृति है।[6] फल की इच्छा करते हुए जिस धारणा शक्ति से आसक्ति पूर्वक धर्म, अर्थ और काम की धारणा होती है वह राजसी धृति है।[7] इसी प्रकार दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारणा शक्ति-द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता, दुःख तथा उन्मुक्तता को निरन्तर धारण किए रहता है वह तामसी धृति है।[8] उक्त विवेचन से धृति के वैज्ञानिक वृत्ति रूप को स्पष्ट किया गया है। मानव को श्रेष्ठ संकल्पयुक्त धृति-स्थिति प्राप्त करने के लिये निश्चित ही सात्विकी धृति का अभ्यास करना चाहिये, यही धृति मानव के प्रथम गुणों में से एक है और प्रत्येक संकटपूर्ण अथवा द्विविधा ग्रस्त परिस्थिति में धैर्य रूपा होकर उसे आश्वस्त करती है।

क्षमा : 'महाभारत' में क्षमा का विस्तार से महिमा गान हुआ है। वन पर्व में क्षमा को श्रेष्ठ धर्म बताया गया है। यही नहीं, युधिष्ठिर के शब्दों में क्षमा ही धर्म है, क्षमा ही यज्ञ है, क्षमा ही शास्त्र है,[9] क्षमा ही ब्रह्म है, क्षमा ही सत्य है,

---

१. म० उद्योग० १३७।९
२. गीता १८।३३
३. गीता रा० भा० १८।२६
४. म० शान्ति० १६२।१६
५. गीता शा० भा० १८।३०
६. गीता १८।३३
७. गीता १८।३४
८. गीता १८।३५
९. क्षमा धर्मः क्षमायज्ञः क्षमावेदा क्षमा श्रुतम्। म० वन० २९।३६

क्षमा ही भूत है, क्षमा ही भविष्य है, क्षमा ही तप है, क्षमा ही शौच है। उनके अनुसार क्षमा ने ही सम्पूर्ण जगत् को धारण कर रक्खा है।[1] क्षमाशील मनुष्य यज्ञविद् ब्रह्म विद् तथा तपस्वी पुरुषो से भी ऊंचे लोको को प्राप्त करते हैं।[2] क्षमा करने वालो को अन्त मे ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है।[3] जगत् मे भी क्षमा शील साधु की सदा जय होती है।[4] पृथ्वी के समान क्षमाशील मनुष्य मे ही समस्त प्राणियों का जीवन बनाया गया है।[5]

मानव का दुर्लभ गुण होते हुए भी क्षमा के सम्बन्ध मे 'महाभारत' की धारणा अत्यन्त स्पष्ट है। अनुचित पात्र और अनुचित अवसर पर की गई क्षमा अपराध बन जाती है। बलि के यह पूछने पर कि क्षमा और तेज दोनो मे कौन श्रेष्ठ है[6] प्रह्लाद का उत्तर अत्यन्त सतुलित है। उनका कथन है कि न तो तेज ही सदा श्रेष्ठ है न क्षमा ही।[7] अनवसर क्षमा करने से व्यक्ति के भृत्य, शत्रु, उदासीन व्यक्ति उसका तिरस्कार करने लगते हैं अत ऐसी क्षमा वर्जित है।[8]

दम 'महाभारत' के अनुसार किसी अन्य की वस्तु को लेने की इच्छा न करना, गम्भीरता और धैर्य, भय त्याग, तथा मन के रोगो को शान्त करना दम कहलाता है।[9] यद्यपि धर्म की अनेक शाखाए और विस्तार हैं, परन्तु युधिष्ठिर के इस प्रश्न के उत्तर मे कि धर्म का मूल क्या है? भीष्म का कथन है कि 'दम निःश्रेयस का साधन है और श्रेष्ठ व्यक्तियों के लिए वही सनातन धर्म है।[10] दम के द्वारा ही शुभ कर्मों की सिद्धि मानव को शीघ्रता से होती है अत उसे दान, यज्ञ, स्वाध्याय से भी श्रेष्ठ बताया गया है।[11] दम से तेज की वृद्धि होती है। दम ही

---

१ क्षमा ब्रह्म, क्षमासत्य क्षमा भूत चा भाविच।
क्षमा तप क्षमाशौच क्षमयेद धृत जगत्। म० वन० २९।३७

२ म० वन० २९।३८

३ म० वन० २९।३९

४ म० वन० २९।१४

५ म० वन० २९।२२

६ म० वन० २८।३

७ म० वन० २९।६

८ म० वन० २९।७-५

९ दमोनामस्पृहा नित्य गाम्भीर्य धैर्य मेव च।।
अभय रोग शमन ज्ञाने नैतद्वाप्यते ।। म० शान्ति २६२।१२

१० म० शान्ति० १६०।७

११ म० शान्ति० १६०।८

परम पवित्र साधन है। दम से पाप नष्ट होते हैं और अन्त में उससे परमपद की प्राप्ति होती है।[1] सभी धर्मों में दम की प्रशंसा की गई है इसीलिए उसकी उत्कृष्टता निर्विवाद है।[2] अदान्त पुरुष के वश में मन और इन्द्रियां नहीं होती वह निरन्तर क्लेषों का भोग करता है[3] अतः दम एक उत्तम व्रत है।[4] इसी एक गुण के आधार पर क्षमा धृति, अहिंसा, समता, सत्यवादिता, सरलता, इन्द्रिय-विजय, दक्षता, कोमलता, लज्जा, स्थिरता, उदारता, क्रोध-हीनता संतोष, प्रियभाषिता, आदि सद्गुणों का उदय होता है।[5]

'महाभारत' के उद्योग पर्व मे दम की विशेष व्याख्या करते हुए कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय में विपरीत धारणा, असत्य भाषण, गुणो मे दोष-दृष्टि, स्त्री-विषयक कामना, कामार्थी होना, भोगेच्छा, क्रोध, शक्ति, तृष्णा, लोभ, पिशुनता मात्सर्य, हिंसा संताप, शास्त्र मे अरति, कर्त्तव्य की विस्मृति, अतिवाद, तथा अपने को बड़ा समझना—जैसे अष्टादश दोषों से मुक्त होने को दम कहा गया है।[6] इस रूप में दम अत्यन्त व्यापक और महत्वपूर्ण गुण है।

शौच : शौच का अर्थ है अन्तर बाह्य मल-प्रक्षालन। अन्तर के राग-द्वेषादि विकारों को दूर करना आन्तरिक शौच है।[7] आन्तरिक शौच के आधार पर ही बाह्यशौच सम्भव है। 'महाभारत' में आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार के शौच का सम्मिश्रण करते हुए कहा कि ब्रह्मचर्य, तप, क्षमा, मधु-मांस का निषेध धर्म-मर्यादा का पालन, मन की स्वच्छता शौच के लक्षण हैं।[8] इस शौच को धर्म के लक्षणों में महत्व पूर्ण स्थान दिया गया है।[9]

इन्द्रिय-निग्रह : मनुष्य के शरीर को रथ माना गया है, जिसका सारथी आत्मा है। इन्द्रियों को उस रथ का अश्व कहा गया है। यदि रथ के अश्व सारथी

---

१. म० शान्ति० १६०।६

२. दमेन सदृशं धर्मं नान्यं लोकेषु शुश्रुम।
दमो हि परमो लोके प्रशस्तः सर्व धर्मिणाम्। म० शान्ति० १६०।१०

३. म० शान्ति० १६०।१३

४. म० शान्ति० १६०।१४

५. म० शान्ति० १६०।१५-१६

६. म० उद्योग० ४३।२३-२५

७. गीता, शा० भा० १३।७

८. ब्रह्मचर्य तपः क्षान्तिर्मधुमांसस्यवर्जनम्।
मर्यादायां स्थितिश्चैव क्षमा शौचस्य लक्षणम्। म० आश्व० अध्याय ६२ पृ० ६३५३

९. म० आश्व० ६२। पृ० ६३५३

के वश मे न हो तो जीवन-यात्रा कुशल पूर्वक नही हो सकती[1] अत मानव का प्रथम धर्म है इन्द्रिय-निग्रह। इन्द्रियो का धैर्य पूवक वश मे करने का प्रयत्न ही साधना का आरम्भ है।[2] मन मे ससपृक्त होकर इन्द्रिया मनुष्य की बुद्धि को उसी प्रकार हर लेती हैं जैसे जलगामी नौका को वायु हर लेती है।[3] स्वग और नरक का मूल कारण इन्द्रिया ही हैं। वश मे की हुई इन्द्रिया स्वर्ग की प्राप्ति कराती हैं और विषयो मे प्रवृत्त इन्द्रिया नरक मे ले जाती है।[4] अत सिद्धि प्राप्त करने के लिए इन्द्रियो का नियमन परमावश्यक है। जो अपने शरीर मे विद्यमान रहने वाले मन सहित इन्द्रियो पर अधिकार पा लेता है, वह जितेन्द्रिय पापवृत्त नही होता।[5] अत इन्द्रिय निग्रह मानव-साधना का मुख्य सोपान है।

सत्य 'महाभारत' की कथा का मूल केन्द्र बिन्दु धर्माधम अर्थात सत्यासत्य का निर्णय है। सत्य की सत्ताशीलता उसे धम के प्रमुख आधार रूप मे स्थित करती है। इसीलिए 'महाभारत' कहता है कि जो सत्य है वही धम है। जो धर्म है वही प्रकाश है और जो प्रकाश है वही सुख है। जहा सत्य नही है वही अधर्म है अर्थात् अन्धकार है।[6] सत्य सनातन धर्म है[7] और सत्य को ही परब्रह्म कहा गया है।[8] सत्य और धर्म की धारणा को स्पष्ट करते हुए कहा है कि सत्य से ही लोक की धारणा होती है।[9] धर्म की भी यही परिभाषा है। अत सत्य को मस्तक झुकाना चाहिए और उसे ही परम गति समझना चाहिए।[10] महाभारतकार की दृष्टि मे तप, योग, यज्ञ, आदि भी सत्य के अतिरिक्त नही है।[11] सत्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। मानव के समस्त श्रेष्ठ गुण सत्य के अभाव मे स्थिर नही रहते। इसी कारण सम्पूर्ण लोको मे सत्य के तेरह भेद गिनाते हुए कहा है कि समता, दम, अमात्सय, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, अनसूया, त्याग, ध्यान, आर्यता, धृति और अहिसा आदि

---

१ म० वन० २११।२३

२ म० वन० २११।२५

३ म० वन० २११।२६

४ म० वन० २११।१६-२०

५ म० वन० २११।२२

६ तत्र यत्सत्य सधर्मो यो धर्म । स प्रकाशो य प्रकाशस्तत् सुखमिति ।
तत्र यदनृत सोऽधर्मो योऽधमस्तत् तमो यत् तमस्तद् दु खमिति ॥
म० शान्ति० १६०।५

७ सत्य धर्म सनातन । म० शान्ति० १६२।४

८ सत्य ब्रह्म। म० शान्ति० १६०।१

९ सत्येन धार्यते लोक । म० शान्ति० १६०।१

१० सत्यमेव नमस्येत सत्यहि परमागति । म० शान्ति० १६२।४

११ म० शान्ति० १६२।५

सत्य के रूप है।[1] सत्य का पुष्ट लक्षण है उसका नित्य एक रस अविनाशी और अविकारी होना।[2] यही सत्य मानव का परम धर्म है।

अक्रोध : क्रोध मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है, क्रोधी मनुष्य अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का निर्णय नहीं कर सकता, क्योंकि क्रोधी मर्यादा को नहीं जानता।[3] वह पाप कर सकता है, गुरुजनों की हत्या, तथा कठोर वाणी द्वारा श्रेष्ठ मनुष्यों का अपमान कर सकता है।[4] क्रोधी के लिए कुछ भी अकार्य या अवाच्य नहीं है[5] यहां तक कि वह आत्महत्या भी कर सकता है।[6] क्रोध के आधार पर ही सब पाप पनपते हैं अतः श्रेष्ठ मानव जीवन के लिए अक्रोध परमावश्यक है। जो मनुष्य क्रोध को रोक लेता है उसकी उन्नति होती है।[7] क्रोध के दोषों को देखकर मनस्वी पुरुषों ने-जो इस लोक और परलोक में भी परम उत्तम कल्याण की कामना करते है—क्रोध को जीत लिया है।[8]

अहिंसा : मानव के महान् और सामान्य धर्म के रूप मे अहिंसा का गौरव गान 'महाभारत' मे विस्तार से उपलब्ध है।[9] अहिंसा को परम धर्म[10] और धर्म के मुख्य लक्षण[11] के रूप में माना है। सम्पूर्ण भूतो के लिए जिन धर्मों का विधान किया गया है उनमें अहिंसा ही सबसे बड़ी मानी गई है। जो व्यक्ति धर्म की मर्यादा से भ्रष्ट हो चुके है, मूर्ख है, नास्तिक है तथा जिन्हें आत्मा के विषय में सन्देह है उन्होंने ही हिंसा का समर्थन किया है।

'महाभारत' मे अहिंसा की विवेचना केवल मानव-धर्म के ही रूप में न होकर राज्य-धर्म के रूप में हुई है।

'महाभारत' के अनुशासन पर्व में बृहस्पति युधिष्ठिर से कहते हैं कि जो मनुष्य अहिंसा युक्त धर्म का पालन करता है वह मोह, मद और मत्सरता तीनों

---

१. म० शान्ति० १६२।७-६
२. म० शान्ति० १६२।१०
३. म० वन० २६।१८
४. म० वन २६।४
५. म० वन० २६।५
६. म० वन० २६।६
७. म० वन० २६।२
८. म० वन० २६।७
६. म० अनु० अध्याय ११३,११५,११६
१०. अहिंसा परमो धर्मः। म० अनु० ११५।१
११. म० अनु० ११४।२

दोषों को अन्य समस्त प्राणियों में स्थापित करके काम-क्रोध का संयम कर सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।[1] किसी भी प्राणी को पीड़ा न पहुँचाना ही अहिंसा है।[2] अतः अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है, अहिंसा परम तप है और अहिंसा ही परम यज्ञ, फल, मित्र और परम सुख है।[3]

अहिंसा को धर्म-लक्षण के रूप में इतना महान् पद देते हुए भी अहिंसा के व्यवहार में 'महाभारत' की दृष्टि अत्यन्त वैज्ञानिक और यथार्थवादी है। अहिंसा धर्म का पालन करना आलम्बन-सापेक्ष है। अहिंसा के अधिकारी आलम्बन के हेतु पालन की गई अहिंसा धर्म है, किन्तु अपराधी तथा अन्य दुर्गुणों से युक्त अनधिकारी आलम्बन के प्रति अहिंसा-पालन अधर्म है। ऐसी परिस्थिति में दंड-धर्म ही सर्वोपरि है। इस प्रकार 'महाभारत' में अत्यन्त व्यवस्थित और व्यावहारिक रूप में अहिंसा-धर्म का निर्वचन किया गया है।

दान मानव के परम धर्म के रूप में दान-धर्म का विवेचन 'महाभारत' की विशेषताओं में से एक है। अपने अर्जित धन को दूसरे के लिए दे देना ही दान है।[4] इस दान की महत्ता अनेक रूपों में गाई गई है। राजा के कर्त्तव्य का एक मुख्य अंग अन्य धर्मों के साथ दान को भी स्वीकार किया है।[5] ब्राह्मण को दान देने की प्रतिज्ञा करके दान न देने से दोष की स्थिति मानी गई है।[6]

अनेक प्रकार के दानों का वर्णन करते हुए 'महाभारत' में कहा गया है कि दानों में द्रव्य-दान[7] गो-दान[8], भूमिदान[9], अन्न, जल और रसदान आदि करने वाला

---

१ अहिंसा पाश्रय धर्मं य साधयति वै नर ।
त्रीनदोषान् सर्वभूतेषु निधाय पुरुष सदा ।
कामक्रोधौ च सयम्य तत सिद्धिमवाप्नुते ॥ म० अनु० ११३।३-४

२ गीता १०।५

३ अहिंसा परमोधर्मस्तथाहिंसा परोदम ।
अहिंसा परमदानमहिंसा परम तप ।
अहिंसापरमो यज्ञस्तथाहिंसा परफलम ।
अहिंसापरम मित्रमहिंसा परम सुखम ॥ म० अनु० ११६।२८-२९

४ गीता १०।५

५ म० शांति० ७५।२५

६ म० अनु० ९।१-२

७ म० अनु० ५६।३०

८ म० अनु० ५६।२८-२९

९ म० अनु० ५६।३२

व्यक्ति परम-पद को प्राप्त होता है।[1] 'महाभारत' में वर्णित सामान्य मानव धर्म सामान्यत: द्विजातियों के धर्म हैं।[2] अत: उनका सिद्धान्त रूप से विवेचन होते हुए भी वर्ण-सापेक्ष वर्णन अधिक हुआ है। इसलिए 'महाभारत' में दान की भावना की उत्कृष्टता को अधिक महत्व दिया गया है। जो दान श्रद्धा से पवित्र और कर्त्तव्य-बुद्धि से किया हुआ हो उसे पुण्य कर्मों का अनुष्ठान करने वाले कर्मण्य पुरुष उत्तम मान कर स्वीकार कर लेते हैं।[3] दान मनुष्य को पाप से मुक्त कर देता है। अत: वह मानव का परम धर्म है। याचक को दिया हुआ दान परम धर्म है।[4] इस प्रकार व्यक्ति के धर्मों मे दान का महत्व अक्षुण्ण है, क्योंकि धर्म-शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार जैसा दान किया जाता है वैसा ही भोग मिलता है।[5] इसलिए दान कीर्ति-प्रदाता और मोक्ष-दाता है।[6]

अन्य धर्म : विशेष मानव धर्मों के अतिरिक्त भी अनेक धर्माचार ऐसे हैं जिनका विवेचन व्यापक रूप से तो नहीं, किन्तु यत्र-तत्र संकेत रूप मे अवश्य मिलता है। इन धर्मों में शील[7] शिष्टाचार[8], अद्रोह, सहनशीलता, कर्त्तव्य पालन, समता की भावना की गणना होती है। मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में इन धर्मों का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्म के रहस्य का चित्रण करते हुए ब्रह्मा, अग्नि, लक्ष्मी, अंगिरा और स्कन्द ने धर्म को अत्यन्त व्यापक रूप में चित्रित किया है। उक्त धर्म सम्बन्धी रहस्य का विवेचन धार्मिक अनुष्ठान से अनुप्राणित है। गुरुजनों का आज्ञापालन करना, पितरों और देवताओं को प्रसन्न करना भी धर्म का मुख्य रूप माना गया है।

संक्षेप में, मानव-जीवन धर्म के उक्त सम्पूर्ण रूपों से आबद्ध है। और उसका प्रत्येक कर्मानुष्ठान धर्म की उक्त परिधि में आ जाता है। 'महाभारत' में धर्म की महत्ता अक्षुण्ण है और उसको जीवन में अत्यधिक उपयोगिता के कारण 'महाभारत' में इतना व्यापक स्थान मिला है।

आधुनिक कवि की धर्म-दृष्टि

महाभारतकार ने धर्म की एक नई परिभाषा की है जिसके अनुसार प्रजा

१. म० अनु० ५६।३७
२. म० शान्ति० ६०।८
३. म० अनु० ५६।१६
४. आनृशंस्यं परोधर्मो याचते यद् प्रदीयते। म० अनु० ६०।६
५. यथादानं तथाभोग इति धर्मेषु निश्चय:। म० अनु० ६२।८
६. म० अनु० ५६।१६
७. म० उद्योग० ३४।४८
८. म० अनु० १६२।२५-५०

और समाज को धारण करने वाले नियमों का नाम धर्म है। जिस तत्व में धारण करने की शक्ति है उसे ही धर्म कहते हैं।[1] धर्म का यह रूप व्यक्तिगत धर्माचरण से बहुत अधिक व्यापक लोकधर्म का रूप है। महाभारत-काल में धर्म के विभिन्न आधारों पर एक ऐसे समन्वयात्मक लोक धर्म की प्रतिष्ठा हुई जो सामाजिक धर्म की श्रेणी में आया। आज का कवि धर्म के व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों रूपों को स्वीकार करता है। व्यक्तिगत धर्म-भावना के अन्तर्गत जिन गुणों का स्थान है, उनको भी सामाजिक दायित्व का मूल मानकर उपस्थित किया गया है। आज का युग विज्ञान का युग है। धर्म, आचार, आस्था आदि मनोवृत्तिमूलक विश्वासों में विलक्षण परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। अतः धर्म के जिस रूप में पूजा-पाठ आदि का विधान है उसका प्रभाव आधुनिक कवि पर अत्यन्त विरल रूप में पड़ा है।

धर्म और युग धर्म आधुनिक कवि धर्म और युग धर्म को समन्वित करता है। काव्य में युग धर्म का चित्रण होना चाहिए अथवा शाश्वत धर्म का ? सामान्यतः साहित्य और शाश्वत धर्म के अटूट सम्बन्ध पर प्रत्येक व्यक्ति सहमत है, किन्तु युग-धर्म की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। क्योंकि कवि की कल्याणकारी भावना इस जड़ पृथ्वी पर शाश्वत जीवन का निर्माण करना चाहती है। अतः शाश्वत जीवन शाश्वत धर्म के आचरण पर ही अवलम्बित है। धर्म, साधना, कर्म का अनुष्ठान आदि सबका समग्र ध्येय जीवन को उन्नत बनाता है। अधर्म का विरोध कवियों की कल्याणकारी वाणी ने इस युग में अत्यन्त शक्ति से किया है। धर्म के सूक्ष्म और व्यापक स्वरूप पर युग-धर्म की छाप अंकित करता हुआ आधुनिक कवि युग-धर्म के व्यापक चित्रण में धर्म के शाश्वत रूप को अक्षुण्ण रखता है। जिस प्रकार 'महाभारत' में केवल पूजा विधान धर्म के प्रधान नहीं माने गये और जीवन के समस्त कर्म-विधान को धर्म का रूप दिया गया उसी प्रकार आज का साहित्यकार भी व्यक्ति के उन सभी आचरणों को धर्म के अन्तर्गत मानता है जिससे अन्ततः समाज का कल्याण हो।[2] वह वर्ण-धर्म, आश्रम धर्म आदि को महाभारतकार के अनुसार स्वीकार तो करता है किन्तु उसका स्वरूप पूर्ण रूप से आधुनिक है। 'महाभारत' की ही विचार-सम्पत्ति का आश्रय लेकर आज का कवि एक ओर तो सम्पूर्ण धर्मों का समन्वय करना चाहता है[3] और दूसरी ओर उन समस्याओं को आधुनिक संदर्भ में उत्तेजना देता है जो महाभारत-काल में जितनी सजीव थी उतनी ही आज है। धर्म के अनेक रूपों को 'महाभारत' में तत्कालीन राजनैतिक

---

१ म० शान्ति० १०९।११

२ दाबाली, पृ० २२

३ भारत सब धर्मों की भू,
 सबका हो यहाँ समन्वय। लोकायतन, पृ० १३८

दृष्टि से विवेचित किया गया है उसी प्रकार आज का कवि राजनैतिक, सामाजिक आन्दोलनों के आलोक में धर्माचरण की व्याख्या करता है। युग-धर्म और युग-सत्य सतत परिवर्तनशील तत्व है। अत: शाश्वत धर्म की व्याख्या शाश्वत साहित्य में प्राणाधार के रूप में विद्यमान रहती है।[1]

आधुनिक कवि ने सिद्धान्त रूप से धर्म की व्याख्या अथवा धर्म के स्वरूप पर बहुत कम कहा है किन्तु वह उसके महत्वपूर्ण स्थान के प्रति उपेक्षित नहीं है। वह जानता है कि यही एक शब्द ऐसा है जो मानव-जीवन में सबसे अधिक व्यापक और प्रभावशाली है। आधुनिक कवि अहिंसा, क्षमा, दया, अक्रोध, धैर्य, कर्त्तव्यनिष्ठा आदि सामान्य मानव-धर्मों को सामाजिक उपलक्ष्य से प्रस्तुत करता है। धर्म की व्यापक महत्ता को स्वीकार करते हुए दिनकर ने दया-धर्म से युक्त प्राणी को ही पूज्य माना है।[2] 'महाभारत' की धर्मविषयक मान्यता के अनुसार ही इन कवियों ने चारित्रिक उच्चता को मानव का धर्म माना है।[3] धर्म कभी क्षय नहीं होता[4] किन्तु उसका रूप परिवर्तित होता रहता है।[5] धर्म मानव का मित्र है।[6] क्षमा, धैर्य, शुद्धाचरण ही धर्म है। समय के अनुकूल मानव जितने कर्त्तव्य कर्म करता है वे सब मानव-धर्म के अंतर्गत आते हैं। आधुनिक कवि 'महाभारत' में वर्णित मानव धर्मों की स्थिति सापेक्ष विवेचना करते हुए सिद्धान्त की अपेक्षा व्यवहार पर अधिक बल देता है। 'महाभारत' के उत्कृष्ट पात्रों में मानव-धर्म का वह रूप उपलब्ध होता है जिसमें शाश्वतता की रक्षा के साथ युग-धर्म की भी अभिव्यक्ति हो। जहां मानव-गुणों की सीमा में किसी व्यापक सामाजिक विचार की अभिव्यक्ति करनी होती है, वहां कवि 'महाभारत' की सीमा से आगे आकर युग के परिवेश में स्वतन्त्र चिन्तन करने लगता है। यद्यपि ऐसी स्थिति 'महाभारत' से पूर्ण रूप में पृथक् नहीं कही जा सकती।

क्षमा : 'जयभारत' के युधिष्ठिर धर्म को सर्वोपरि स्थान देकर सम्मान, यश, ऐश्वर्य सबको तुच्छ मानते हैं।[7] 'महाभारत' में जिस प्रकार क्षमा को मानव जीवन का व्यापक धर्म और परम उच्च आचरण माना है। उसी सीमा में आधु-

---

१. विवेचना, पृ० ३५
२. दया धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है। रश्मिरथी, पृ० १
३. बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम,
　नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश धन धाम। रश्मिरथी, पृ० ७
४. यह धर्म पूछती हो यदि मुझसे ऐसा,
　तो सुनो कि मेरा धर्म नहीं क्षत होता। पांचाली, पृ० ३७
५. है धर्म बदलता रहता इस जगती में,
　पर परिवर्तन का मूल लोक का हित है। पांचाली पृ० ५६
६. दमयन्ती, पृ० २१८
७. क जीवन यशस् सम्मान धन, सन्तान, सुख सब मर्म के,
　मुझको परन्तु शतांश भी लगते नहीं निज धर्म के। जयभारत पृ० ३१८
　ख वैर की यथार्थ शुद्धि वैर नहीं प्रेम है,
　और इस विश्व का इसी में छिपा क्षेम है। जयभारत, पृ० ८२

निक कवि क्षमा का समर्थन करता है।[1] क्षमा मानव जीवन का एक शाश्वत धर्म है किन्तु उसकी अपनी सीमाएं हैं और उसका आचरण समय-सापेक्ष है। 'महाभारत' मे क्षमा का महिमा-गान अवश्य हुआ है, किन्तु अनुचित अवसर पर की गई क्षमा को अपराध माना गया है।[2] आधुनिक कवि क्षमा का समर्थन करने मे नितान्त यथार्थवादी है। वह 'महाभारत' के अनुरूप क्षमा और तेज दोनो मे से तेज की महत्ता स्वीकार करता है। क्षमा का अतिरेक दौर्बल्य है और उससे अपर पक्ष अनेक बार लाभ उठा लेता है।[3] क्षमा के विषय मे आधुनिक कवि जिन भावनाओ की अभि-व्यक्ति करता है उनके ऊपर आज की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का व्यापक प्रभाव है। इस कारण वह क्षमा के विषय मे और भी अधिक सतर्क हो गया है। क्षमा व्यक्ति का धर्म है किन्तु जब समुदाय का प्रश्न उठता है तब हमें क्षमा, विनय तप, और त्याग को भूलना पड़ता है।[4] राजनैतिक दृष्टि से क्षमा दुर्बल का शस्त्र है 'महाभारत' क्षमा के महत्व को स्वीकार करते हुए भी व्यवहार मे उसकी प्रतिष्ठा को सर्वोपरि नही मानता। दिनकर महाभारतकार के इस विचार से प्रभावित है और

---

१. क म० वन० २९।३७

ख धर्म आचरण से ही पाप ताप कटता,
पूर्व गुण मानव का क्षमा धैर्य, धर्म है।
उन्हें हम छोड़े क्यो अनन्त ताप सिर ले,
कष्ट से ही बनता है मानव विशुद्ध रे ।। कौंतेय कथा, पृ० ३०

२ क म० वन २८।३

ख है जीत शेष स्वराज्य, नीच अति चारी।
फिर क्षमा किस लिए, आर्या कर दिया उनको।
जो बन्दी करना चाह रहे थे हमको। पाचाली, पृ० ३१

३ त्याग, तप, करुणा, क्षमा से भीगकर,
व्यक्ति का मनलो बली होता मगर।
हिंस्र पशु जब घेर लेते हैं उसे,
काम आता है बलिष्ठ शरीर ही। कुरुक्षेत्र, पृ० २७

४ व्यक्ति का है धर्म, तप, करुणा, क्षमा,
व्यक्ति की शोभा विनय भी त्याग भी,
किन्तु उठता प्रश्न जब समुदाय का,
भूलना पड़ता हमे तप त्याग को। कुरुक्षेत्र, पृ० २६

अत्यन्त यथार्थवादी भूमि पर क्षमा की वास्तविकता की अभिव्यक्ति करते हैं।[१] महाभारतीय पात्रों के आधुनिक रूपों में उनके मूल गुणों की प्रतिष्ठा यथावत् की गई है। जयद्रथ से अपमानित होने पर 'पांचाली' की द्रौपदी प्रतिहिंसा के क्रूरतम आवेग से भर जाती है किन्तु अन्ततः वह धर्म की प्रतिष्ठा को स्वीकार करती हुई, स्त्रीत्व की मर्यादा को मानकर अपराधी को क्षमा कर देती है।[२] एकलव्य के चरित्र में धैर्य, कर्त्तव्यनिष्ठा, सदाचार, गुरुभक्ति, सहनशीलता आदि सभी गुण विद्यमान है, जो चरित्र की उच्चतम प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक हैं। युग के प्रभाव के कारण एकलव्य की धर्म-निष्ठा मूलग्रंथ के आधार से स्वतन्त्र रूप में अभिव्यक्ति की गई है। 'महाभारत' में एकलव्य उपेक्षित पात्र है किन्तु आज का कवि उसे व्यक्तिगत महत्ता के राजनैतिक संस्करण में न देखकर मानवता के अंश में चित्रित करता है।

कर्त्तव्य पालन . 'महाभारत' में कर्त्तव्य-पालन को मुख्य धर्म के रूप में माना है।[३] आधुनिक काव्य में प्रमुखपात्र आदर्शवादी हैं और कर्त्तव्य-पालन में दक्ष हैं। यद्यपि उनका आदर्श युग सम्मत है। तथापि कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा का विरोध नहीं है। कर्ण के मत में अदम्य कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहना परम आवश्यक है।[४] आधुनिक युग के युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, द्रौपदी, शल्य[५] एकलव्य आदि पात्र कर्त्तव्य-निष्ठा के आलोक में आपूरित हैं। गीता के 'लोक-संग्रह मेवापि सपश्यन् कर्तुमर्हसि' के आधार पर गुप्त जी निस्पृह कर्त्तव्य-पालन और लोक संग्रह की दृष्टि से ऐसी व्यवस्था की कामना करते हैं, जो वैयक्तिकता के साथ सार्वजनिक भी हो सके।[६]

समत्व · मानव-धर्म के अन्तर्गत 'महाभारत' में समत्व पर पर्याप्त बल डाला गया है। अपने को अकिंचन समझकर दूसरे के महत्व को स्वीकार करना समानता का मुख्य लक्षण है।[७] इसीलिए भट्ट जी के शिव समता के प्रबल स्थापक हैं।[८] प्राप्ति और अप्राप्ति के लिए समान भावना, हर्ष और शोक में समान भावना, विजय और पराजय में समानता, मानव जीवन का ऐसा गुण है, जो उसे मानसिक उच्चता

---

१. क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो
उसको क्या जो दन्त हीन
विष रहित विनीत सरल हो। कुरुक्षेत्र पृ०, ३६

२. मैं वही करूंगी जिसमें धर्म विजय हो
अपराधी को दो छोड़ क्षमा करती हूं। पांचाली, पृ० ८४

३. म० वन० १४९-१८

४. मम जीवन-रक्षा-विचार से होकर ममताग्रस्त विमोहित
आप स्वयं ही करें न हमको निज कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित।
अंगराज, पृ० १०५

५. सेनापति कर्ण, पृ० १५८

६. दुःख शोक जब जो आ पड़े तो धैर्य पूर्वक सब सहो
होगी सफलता क्यों नहीं कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहो। जयद्रथ, वध, पृ० ५

७. अंगराज पृ० १६३, रश्मिरथी पृ० ७२

८. कौन्तेय कथा, पृ० ७३

पर ले जाता है। आधुनिक कवि ने समता को सामाजिक गुण के रूप मे स्वीकार किया है। केवल व्यक्तिगत जीवन मे तो समानता का महत्व है ही किन्तु सामाजिक व्यवस्था के निर्माण मे समानता का योगदान महत्वपूर्ण है। 'महाभारत' मे युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के उपलक्ष मे जिस समानता का व्यवहार करते हैं वह मानव का श्रेष्ठगुण है।[1] राजनीति का उपदेश देते हुए भी युधिष्ठिर ने समस्त प्रजा मे समता बनाये रखने की चर्चा की गई है। वस्तुत यह समत्व मानव के अहकार को नष्ट करने मे बहुत सहायता देता है। भट्ट जी के शिव सम-स्वतन्त्रता के समर्थक है[2] और 'दमयन्ती' के नल भी इसी समत्व के आधार पर राज्य त्याग के अवसर पर अनासक्त योगी की भाति वन की ओर चल देते हैं।[3] दिनकर ने समता को राजनैतिक व्यवस्था का मुख्य आधार माना है।[4] युद्ध, हिंसा, प्रतिहिंसा की अग्निमय लपटें तब तक विश्व मे शान्ति नही होने देगी जब तक प्रत्येक को समानभाग न मिलेगा दिनकर वैयक्तिक भोगवाद के विरोध मे महाभारत की चिन्तन सीमा मे ही अपने विचार की प्रतिष्ठा करते हैं।[5]

दान 'महाभारत' के अनुशासन पर्व मे दान-धर्म की व्यापक व्याख्या की गई है। दान को मानव-कतव्य का महनीय रूप बताया गया है। विविध प्रकार के दानो का वर्णन करते हुए तप, त्याग और सत्य निष्ठा से प्राप्त किए हुए फल और दान से प्राप्त फल को एक समान बताया है और जलदान, अन्नदान, वस्तुदान आदि के महत्व की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो मनुष्य दानीय वस्तुओ का दान करता है वह स्मरण शक्ति और मेधा प्राप्त करता है।[6] वस्तुत दान मानव मन की सात्विक प्रवृत्ति है। 'महाभारत' के युधिष्ठिर, कर्ण, भीष्म आदि प्रमुख पात्रो ने दान-धर्म की प्रतिष्ठा इस रूप मे की कि उससे महनीय धर्म भी उसके अन्तर्गत निहित हो गये। उनके आचरण से यह सिद्ध होता है कि इस सात्विक प्रवृत्ति से मानव मन के अहकार, क्रोध, शोक, मोह, आदि भावो पर विजय प्राप्त करके चित्त को शुद्ध-बुद्ध रखकर परमपद प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिक कवि दान की सात्विक प्रवृत्ति का पूर्ण समर्थन करता है। आज के अपार सामाजिक सघर्ष के मध्य व्यक्तिगत स्वार्थो से ऊपर उठने वाले चरित्र नायको की प्रबल आवश्यकता है। साहित्यकार का दायित्व है कि वह सात्विक मनोभावो की उपस्थापना करने वाले

---

१ जयभारत, पृ० ४४३

२ और इसलिए सर्वाधिक समता के प्रबल समर्थक
हैं आप, आपकी संस्कृति जो सबके हेतु बनी है। कौतेय कथा पृ०, ७३
वैषम्य नाश का कारण वैषम्य ह्रास का कारण
मैं इसी हेतु कहता हू हैं प्राणिमात्र जग मे सम। कौतेय कथा, पृ० ७३

३ दमयन्ती पृ० २००

४ जब तक मनुज का यह सुखभाग नहीं सम होगा
शमित न होगा कोलाहल सघर्ष नहीं कम होगा। कुरुक्षेत्र, पृ० १११

५ कुरुक्षेत्र, पृ० ११२

६ म० अनु० ५७।२२

चरित्रों और कथा-खंडों को हमारे समक्ष उपस्थित करें। 'दिनकर' दान धर्म को विश्व का प्रकृत धर्म मानते हैं। उनके विचार में एक दिन तो हम सबको सब कुछ दान कर देना पड़ता है :[१] 'मिश्र' जी जीवन के मोह को मानव का स्वभावजगुण मानते हैं किन्तु दान की निर्मल प्रवृत्ति से व्यक्ति इस मोह पर भी विजय प्राप्त कर लेता है।[२] नरेन्द्र शर्मा ने त्याग के फल को मीठा कह कर त्याग और दान की प्रतिष्ठा की है।[३] सियाराम शरण गुप्त दान को स्वयं में प्रतिदान मानते हैं और स्वीकार करते हैं कि दानी का कोष युग-युगान्त तक भी क्षय नहीं होता।[४] दिनकर जी दान को व्यक्ति धर्म की सीमा में न बांध कर सृष्टि के व्यापक धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं। समस्त विश्व दान के अजस्र स्रोत से संयुक्त है। जो व्यक्ति दान को अहंकार वश अपने स्वत्व का त्याग समझते हैं[५] वे भूल करते हैं और सृष्टि-धर्म को नहीं समझ पाते। अतः आधुनिक कवि की दृष्टि 'महाभारत' के विचार-पक्ष को आज के वातावरण में शाश्वत धर्म के रूप में देखती है।

दया : मानवधर्म के अन्तर्गत दया को व्यक्तिगत उच्चता एवं लोक-कल्याण के लिए मानव-कर्त्तव्य के रूप मे माना है। दया का भाव मनुष्य मात्र के जीवन में कोमलता, सदगुण, प्रिय भाषिता, उदारता आदि गुणों की प्रतिष्ठा करता है।[६] किसी भी दुःखित प्राणी पर कृपा करना, आपत्तिग्रस्त की रक्षा करना, दुर्बल की सहायता करना दया है।[७]

---

१. दान जगत का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है
एक रोज तो हमें स्वयं सब कुछ देना पड़ता है।
बचते वही, समय पर जो सर्वस्व दान करते हैं
ऋतु का ज्ञान नहीं जिनको, वे देकर भी मरते हैं। रश्मिरथी, पृ० ६१

२. एक व्रत, एक धर्म, निष्ठा एक दास की
जानते हो प्राण भी अदेय नहीं मुझ को।
कामना है एक मेरी स्वप्न में भी भूल के
याचक न जाये कभी मुझसे विरत हो। सेनापति कर्ण, पृ० ३४

३. त्याग का फल मधुर। द्रौपदी, पृ० ३४

४. दान स्वयं प्रतिदान, काल में अक्षय अक्षात।
यह वह ज्योतिष्णा काल जिसको कर सुरुचिर,
देता है प्रति तिमिर-मूर्छिता निशि को फिर फिर।
युग युगान्त तक निःस्व नहीं होगा वह दानी। नकुल, पृ० १०६

५. यह न स्वत्व का त्याग,, दान तो जीवन का झरना है।
रखना उसको रोक मृत्यु के पहले ही मरना है।
किस पर करते कृपा वृक्ष यदि अपना फल देते हैं।
गिरने से उसको संभाल क्यों रोक नहीं लेते हैं। रश्मिरथी, पृ० ६०

६. दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्। गीता १६।२ पर शा० भा०

७. जीव हैं सारे दया के पात्र,
हो उन्हीं के हेतु व्यय यह गात्र। दमयन्ती, पृ० १६०

आधुनिक कवियों के समस्त अनुकरणीय पात्र दयालु हैं। 'दमयन्ती' के नल समस्त जीवों को दया का पात्र बता कर विश्व के सुख की कामना करते हैं। उनके अनुसार मानव का परमधर्म है कि जहां कहीं भी दुःख की सृष्टि देखे वहीं दीन दुखियों को सुखी बनाने का प्रयत्न करे।[१] 'जयभारत' के युधिष्ठिर[२] 'द्रौपदी'[३], 'पांचाली' की 'द्रौपदी, 'कृष्णायन' के कृष्ण[४], 'रश्मिरथी' के कर्ण[५], आदि पात्र सिद्धान्त और व्यवहार में दया के महत्त्व की स्थापना करते हैं। मिश्र जी ने करुणा को आर्य-धर्म का आधार कहा—'करुणा आर्य धर्म आधारा, मानवसम पशु संग व्यवहारा'।[६] भट्ट जी ने परहित की चिन्ता-आहुति[७] में ही संसार के शिवत्व की स्थापना की है। इस प्रकार आधुनिक काव्य में दया का व्यापक व्यावहारिक रूप उपलब्ध होता है।

धैर्य आधुनिक काव्य में धैर्य को प्रमुख गुण माना है[८], और सभी प्रमुख पात्र धैर्य युक्त हैं।[९] जीवन के विस्तृत क्षेत्र में धैर्य बन्धु के समान मानव का साथ

---

१ हो कहीं पर यदि दुखों की सृष्टि
तो, करे जिह्वा सुधामय वृष्टि।
दीन दुखियों को बधावे धीर
कायरों को भी बनावे वीर। दमयन्ती, पृ० १६०

२ जयभारत, पृ० २३५-४१०

३ पांचाली, पृ० ८४

४ सकल सृष्टि नरधर्म यह, दयाधर्म उपकार
जानत सब जो करि नहिं, यह दुःख प्रद अविचार। कृष्णायन, पृ० ४२६

५ जग में जो भी निर्दलित प्रताड़ित जन हैं
जो भी निहीन हैं, निन्दित हैं, निर्धन हैं,
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बन्धु सहचर है
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है। रश्मिरथी, पृ० १०७

६ कृष्णायन, पृ० ३८०

७ निर्वृत्ति विश्व के हित हो, भासित आत्म ज्वाला से
परहित चिन्ता आहुति से जग में शिव राजित होता।
कौन्तेय कथा पृ० ७८

८ कौन्तेयकथा, पृ० ३०

९ जयभारत, पृ० २३३

देता है।[1] 'कृष्णायन' के युधिष्ठिर अपनी पत्नी को अपमानित होते देखकर भी नियमबद्धता के कारण धैर्य से मन को शान्त करते हैं और भीम के क्रोध का शमन करते हुए अर्जुन अग्रज के धैर्य की प्रशंसा करते है।[2] गुप्त जी धैर्य को तनुधारियों के संकट काल की परम गति मानते है।[3] यह व्यक्ति के मानसिक क्षोभ का शमन करता है अतः सबसे बड़ा है।[4] धैर्य धारण करने वाली शीलरक्षिका कुलवधुएं भी धर्म की रक्षा करती है।[5] धैर्य के व्यावहारिक आचरण में आधुनिक कवियों को 'महाभारत' का मत मान्य है।

दम : दम की सैद्धान्तिक व्याख्या आधुनिक काव्य में अत्यन्त विरल रूप मे प्राप्त होती है[6] किन्तु इन्द्रिय दमन, स्वार्थ दमन आदि मनोवृत्तियां व्यक्तिगत एवं सामाजिक आवश्यकता के रूप मे चित्रित है। 'एकलव्य' में द्वेष को ज्वालामुखी कहकर यह स्थापना की है कि अहंकार, द्वेष और स्वार्थ मानव के प्राथमिक शत्रु हैं इन पर विजय पाना व्यक्ति का प्रथम धर्म है। 'महाभारत' मे जिन अठारह दोषों से मुक्ति को दम कहा है[7] यहा उनमे से उक्त तीन दोषों को जीतना ज्ञान गिरि पर चढ़ने के लिए आवश्यक माना है।[8]

कवि दम के महत्व को जीवन के सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रो के लिए अपरिहार्य मानता है। 'महाभारत' मे अनेक बार अतिरिक्त भोग, हिंसा, काम,

---

१. दमयन्ती पृ० २१८

२. 'कस तुमतात ! धैर्य विसरावा।
अनुचर सव हम अग्रज केरे,
वे आचरत धर्म नय-प्रेरे।
धारे धैर्य अजहुं मन मांहीं
होइहि तात ! अमंगल नाहीं। कृष्णायन, पृ० ४३२

३. जयद्रथ वध, पृ० ४४

४. तुम मन मतहारो यह संग्राम बड़ा है
पर धैर्य धरो जो सब से बढ़ा चढ़ा है। पांचाली, पृ० २३

५. दमयन्ती, पृ० २६८

६. कृष्णायन, पृ० ४३८

७. म० उद्योग० ४३।२३-२५

८. ज्ञान-गिरि चढ़ना सहज है, किन्तु वीर !
अहंकार-द्वेष जीतना महा कठिन है।
जीतो इसको हे वीर ! युद्ध में प्रवीण हो
अग्रशत्रु ये हैं फिर अन्य कोई शत्रु है। एकलव्य, पृ० ६१

असत्य भाषण आदि दुर्गुणों के प्रसग मे इनके दमन की चर्चा की गई और पाण्डवो को दम के पूर्ण व्यावहारिक पक्ष के रूप मे प्रस्तुत किया है। अनेक उत्तेजित स्थलो पर अर्जुन, भीम आदि पात्रो ने युधिष्ठिर के इंगित पर दम का ही आश्रय लेकर युद्ध की सम्भावना को पर्याप्त समय तक टालने का प्रयत्न किया।[1] 'कुरुक्षेत्र' मे दिनकर ने व्यक्तिगत सीमा से पृथक् सामाजिक आवश्यकता के रूप मे दम की विवेचना की है। उन्होंने युद्ध और शान्ति का सामाजिक दम के साथ सम्बन्ध जोड कर स्वार्थ-वृत्तियो के दमन को शाति का मुख्य आधार माना है।[2] और अन्तत मानव गुण के रूप मे तप, त्याग बलिदान को स्वीकार किया है।[3]

शौच आधुनिक काव्य मे शौच को भी अन्य मानव धर्मो के साथ स्थान दिया है। इन कवियो ने आन्तरिक शुद्धि पर पर्याप्त बल दिया और उसे व्यक्तिगत उच्चता तथा सामाजिक शक्ति का प्रतीक माना है। 'अगराज' के कर्ण के चरित्र में 'शौच' के समस्त लक्षण विद्यमान हैं। वह सत्यवादी, पुरुषार्थी, एकपत्नीव्रत, क्षमाशील, और धर्म-मर्यादा का पालन करता है।[4] 'कौन्तेय-कथा' का अर्जुन आन्तरिक तप, त्याग रूपी 'शौच' से ही शिव के प्रकाश को पाने मे समर्थ हुआ है।[5]

सत्य किसी भी महान साहित्य की प्रेरणा असत्य का विनाश और सत्य की प्रतिष्ठा होती है। 'महाभारत' का केन्द्र-बिन्दु धर्माधर्म और सत्यासत्य का निर्णय है। अत सत्य ही धर्म है। आधुनिक काव्य भी सत्य की महती भावना से अनुप्राणित है। 'महाभारत' के प्रभाव के आलोक मे आधुनिक कवि कठोर सत्य को शिरोधार्य करता है।[6] कर्तव्य का पालन सत्य की सीमा मे आता है और जो सत्य है, वह ग्रहणीय है, जो असत्य है वह त्याज्य है। असत्य से प्राप्त की हुई विद्या रक्षिका नही हो सकती।[7] सत्य दान, यज्ञ, सद्गति, सत्कर्म सब का प्रतिष्ठान

---

१ म० सभा० ७२।१६-१७ ७७।१६

२ युद्ध को तुम निंद्य कहते हो मगर,
जब तलक हैं उठ रही चिनगारियाँ
भिन्न स्वार्थों के कुलिश सघर्ष की
युद्ध तब विश्व मे अनिवार्य है। कुरुक्षेत्र, पृ० २५

३ लोभ, द्रोह, प्रतिशोध, वैर
नरता के विघ्न अमित हैं
तप, बलि दान, त्याग के सबल
भी न किन्तु, परिमित हैं। कुरुक्षेत्र, पृ० १५२

४ अगराज पृ० १०६, ११२, १३६, १५३

५ कौन्तेय कथा पृ० ५६-६०

६ कठिन कठोर सत्य ! तो भी शिरोधार्य है। नहुष पृ० ६४

७ अनुचित रीति से सत्कार्य की सिद्धि भी शास्त्र-वर्जित है।
अगराज, भूमिका पृ० ३१

है।[1] सत्यवादिता मानव की सुवरिष्ठता के हेतु आवश्यक धर्म है।[2] युधिष्ठिर ने जब द्रौपदी का दांव लगाया तो सत्य खो बैठे, परिणाम स्वरूप वनवास के कष्ट उठाने पड़े।[3] 'जयभारत' के धर्मराज युधिष्ठिर सत्य-अहिंसा को वरेण्य धर्म मानते हैं।[4] वस्तुतः सत्य मानव जीवन का व्यापक धर्म है। सिद्धान्त और व्यवहार दोनों रूपों में महाभारतकार ने सत्य के जिन रूपों की प्रतिष्ठा की है, 'महाभारत' के कथानक से प्रभावित काव्यकारों ने उसे युग सम्मत रूप देकर अनुकरणीय पात्रों के जीवन में व्यक्त किया है। सत्य और सुव्रत का आचरण करने पर समस्त विश्व अपने वश मे हो सकता है।[5] जहां असत्य है, वहां संघर्ष होता है, संघर्ष से नाश होता है, अतः सत्य मार्ग पर चलकर ही देश में आनन्द, विद्या और वृद्धि का विस्तार होता है।[6]

अहिंसा : 'महाभारत' के अहिंसा सम्बन्धी विचारों का अत्यन्त व्यापक प्रभाव आधुनिक काव्य-धारा पर पड़ा है। महाभारतकार की दृष्टि हिंसा और अहिंसा के विषय में अत्यन्त सन्तुलित है। अहिंसा व्यक्ति का धर्म भी है और राजधर्म भी। व्यक्तिगत क्षेत्र में किसी को कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है तो व्यापक अर्थ मे अहिंसा, युद्ध का निषेध है। आधुनिक काव्यधारा की अहिंसा, जीवन दर्शन के रूप में एक ओर तो 'महाभारत' से प्रभावित है, दूसरी ओर महात्मा गांधी ने उसका सामयिक संस्करण किया है। महाभारत की अहिंसा से, कर्मवाद, दंडधर्म आदि का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है और इनका व्यवहार परिस्थिति-सापेक्ष है। 'गीता' में भगवान्

---

१. सुयोग में संचित सत्यवृत्ति से, सुसम्पदायें बनती सुसिमृद्ध।
सुसाध्य होके कृत धी सुपात्र से, सहाय होतीं वह कार्य काल में।
अंगराज, पृ० ५०

२. सत्य समान सुधर्म नहि, ताबिन सुगतिमिलैन। कृष्णायन, पृ० ४३७

३. सत्य खो बैठे युधिष्ठिर लगाया जब दांव पर।
देवदत्ता यज्ञजा को समझ कर निज उपकरण॥ द्रौपदी, पृ० ३२

४. तप है जो निजकर्म करें हम, सत्य-अहिंसा धर्म धरे हम।
जयभारत पृ० २३५

५. जो सत्यता सुव्रत आचरहु, सकल विश्व आपन वश करहु।
कृष्णायन, पृ० ४३७

६. यदि तुम चलहु सुसत्यमग, निजकर्महि नर नारि।
देश वसहि आनंदयुत्त, विद्या वृद्धि पसारि॥ कृष्णायन, पृ० ४३७

कृष्ण ने अहिंसा की व्यावहारिक उपचर्या कर्म-योग के उपलक्ष्य में सिद्ध की है।[1] "महाभारत' के अनुकरणीय पात्रों के व्यवहार में अहिंसा के अन्तर्गत, शान्ति, सहनशीलता, त्याग, बलिदान आदि भावों की अभिव्यक्ति की गई है किन्तु एक सीमा पर जाकर उक्त समस्त गुण अव्यावहारिक हो जाते हैं और हिंसा 'युद्ध' ही क्षात्र धर्म के रूप में अनुकरणीय हो जाता है। युधिष्ठिर याज्ञसेनी से बात करते हुए अन्य व्यक्तियों के क्षेम के साथ ही निज का क्षेम मानते हैं।[2] पीड़ा से बचने के लिए पर-पीड़न से भी विरत रहना चाहिए धर्म सत्य अहिंसा का धर्म धारण करना उचित है।[3] कोई भी धर्म हिंसा की आज्ञा नहीं देता, हिंसा के समान कोई पाप नहीं है।[4] जो व्यक्ति हिंसारत है वह ब्रह्मराक्षस, कर्महीन और त्याज्य है।[5] हिंसा को प्रश्रय देना लोक-धर्म की उपेक्षा करना है।[6] हिंसा और अहिंसा के विषय में 'पांचाली' के कवि की दृष्टि पूर्ण रूप से व्यावहारिक है। वह हिंसा के मूल में द्रोह और स्वार्थ मानता है।[7] संघर्ष मिटाने के लिए और अहिंसा के प्रसार के लिए सहनशीलता, क्षमा पर बल देता है।[8] मिश्र जी ने सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय-संयम को सब काल सुख देने वाला धर्म कहा है।[9] और नित्य धर्मों में अहिंसा को प्रथम स्थान दिया है।

मानव धर्म के अन्तर्गत उक्त धर्मों के अतिरिक्त शील, त्याग, सहनशीलता, अक्रोध, अद्रोह, आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक काव्य में यत्र तत्र इन सभी धर्मों का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्थापन हुआ है।[10] अपने से छोटे के हेतु

---

१ गीता १०।५, १६।२ पर शां० भा०

२ जयभारत, पृ० ६७

३ जयभारत, पृ० २३५

४ हिंसासम कछु पाप नहिं। कृष्णायण, पृ० ४४७

५ अंगराज, पृ० ४६

६ अंगराज, पृ० ४६

७ पांचाली, पृ० ४४

८ पांचाली, पृ० ४५-४६

९ कृष्णायन, पृ० ८१३

१० कृष्णायन, पृ० ८२४

त्याग की भावना से धर्म-धन का संरक्षण सम्भव[1] है। धर्म की पूर्ण रक्षा हेतु अविकार की समता और दुष्कृतियों का अन्त करना होगा।[2] अन्यथा धर्म का व्यापक और शाश्वत प्रसार सम्भव न हो सकेगा। मानवता के विकास के लिए धर्म के विविध रूपों का व्यावहारिक प्रसार अत्यन्त आवश्यक है। मानवता के महत्वपूर्ण अगरूप में 'महाभारत' में जिस भावना से धर्म की स्थापना है, उसी भावना से आधुनिक काव्य युगीन परिवेश में मानवता के चरम श्रेय को धर्म के आलोक में प्राप्त करना चाहता है। गुप्त जी व्यक्ति की उच्चता के हेतु अतिरिक्त भोग-वृत्ति का विरोध कर गीता के 'ध्यायतो विषयान् पुंसान्!'[3] के आधार पर असद्वृत्तियों का निराकरण करते हैं। व्यक्ति के हृदय में ही दैत्य प्रवेश करता है, उस असुर को हृदय से निकालना ही मानव का परम धर्म है।[4]

स्त्री-धर्म : मानव-धर्म के अन्तर्गत हमने जिन धर्मों की विवेचना की है वे सम्पूर्ण धर्म स्त्री के धर्म भी हैं, क्योंकि स्त्री भी मानव है; किन्तु सामाजिक व्यवस्था में उसका विशेष स्थान है, इस कारण सामान्य मानव-धर्मों के अतिरिक्त स्त्री के लिए कुछ अतिरिक्त धर्माचारों की व्यवस्था है। 'महाभारत' के वन पर्व में द्रौपदी और सत्यभामा सवाद में तथा अनुशासन पर्व में भी पार्वती के द्वारा स्त्री-धर्म-वर्णन है, वहां विस्तार से स्त्री-धर्म की चर्चा है। इसके अतिरिक्त स्त्री-धर्म का वर्णन अन्य अनेक प्रसगों में भी आया है।

महेश्वर के पूछने पर उमा स्त्री-धर्म का वर्णन करते हुए कहती है कि जिसके स्वभाव, बातचीत, और आचरण उत्तम हों, जिसको देखने से पति को सुख मिलता हो, जो अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष में मन नहीं लगाती हो, प्रसन्न मुख रहती हो वही धर्मपरायणा होती है।[5] स्त्री के धर्म में पति-पूजा अर्थात् पतिव्रत पालन सर्व प्रमुख धर्म बताया गया है।[6] पतिव्रत धर्म-पालन की श्रेष्ठता इसी से स्पष्ट है कि पति को ही नारियों का देवता, बन्धु-बांधव और परमगति बताया है।[7]

---

१. छोटे के भी लिए बड़े से बड़ा समर्पण।
   किया जाय जब, तभी धर्म धन का संरक्षण। नकुल, पृ० १०१
२. पांचाली, पृ० २२
३. गीता १२।६२
४. नहुष, पृ० ६५
५. म० अनु० १४६।३५-३६
६. म० अनु० १४६।३८
७. म० अनु० १४६।५५, म० वन २३३।३७

सत्यभामा के पूछने पर द्रौपदी पति-सेवा को स्त्री का प्रमुख धर्म बताती है।[1] पति में अनन्य भक्ति, सदाचार का आचरण, लज्जा, पति-सेवा में सावधानी आदि गुणों को भी स्त्री के धर्म के अन्तर्गत बताया गया है।[2] स्त्री धर्म के अनेक गूढ़ रहस्यों का उपदेश देती हुई द्रौपदी स्त्री के लिए वाणी-संयम[3] को आवश्यक मानती है। पति द्वारा कही बात को अपने तक ही सीमित रखना, सुख का परम साधन है, क्योंकि मुख से बात के निकलने पर, और पति को पता लगने पर, पति की ओर से विरक्ति का भाव प्रदर्शित होने का भय रहता है।[4]

गृहस्थ धर्म पति के प्रति निर्वाचित धर्मों का अनुष्ठान जहां पातिव्रत धर्म की मूल आवश्यकता है, वहां लोक-धर्म के कारण गृहस्थ-धर्म का पालन करना भी स्त्री का परम कर्त्तव्य है। स्त्री से ही गृहस्थ की प्रतिष्ठा है, वही गृहस्थ का मूल चक्र है। अत गृहस्थ-धर्म का उत्तरदायित्व पुरुष की अपेक्षा स्त्री पर ही अधिक है। सद्गृहस्थ स्त्री के लिए घर को स्वच्छ और पवित्र बनाये रखना, देवताओं को पुष्प और बलि अर्पण करना और अतिथि तथा अन्य पोष्य वर्ग को भोजन से तृप्त करने का विधान है। ऐसी स्त्री सती धर्म के फल से युक्त होती है।[5] स्त्री धर्म की व्यापक विवेचना के लिए अनुशासन पर्व का शाण्डिली और सुमना-संवाद महत्त्वपूर्ण है। इस संवाद में पतिव्रता स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन विस्तार से किया गया है। यहां पर स्पष्ट कहा गया है कि परिवार के पालन-पोषण के लिए भी स्त्री को चाहिए कि वह पति को कभी तंग न करे[6]। इस प्रकार मानव के सामान्य धर्माचरण के अतिरिक्त पति-सेवा, गृहस्थ धर्म का पालन, आदि अतिरिक्त कर्त्तव्य स्त्री के व्यक्तित्व के साथ अनुबद्ध हैं।

आधुनिक काव्य एवं स्त्री धर्म

आधुनिक जीवन में स्त्री की शक्ति और धर्म-सीमा में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। परम्परागत विचारधारा ने स्त्री को जिन धर्माचारों में बांध रखा था, वे बन्धन इस युग में शिथिल हुए हैं। स्त्री के धर्म को एक नवीन दृष्टि से देखा जाने लगा। सबसे बड़ा स्वर स्त्री-स्वातन्त्र्य का उठा, जिसने स्त्री के ऊपर पुरुष के अधिकार को कई क्षेत्रों में चुनौती दी और उसे नई व्याख्या देकर नये रूप में प्रस्तुत किया।

---

१ म० वन० २३३।२२

२ म० वन० २३३।२१

३ संयच्छ भाव प्रतिगृह्य मौनम्। म० वन० २३४।१०

४ म० वन० २३४।८

५ म० वन० १४६।४८ ५०, म० आदि० ६१।३

६ म० अनु० १२३।१६

परिवर्तित युग की दृष्टि, और परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था का समन्वय करके आधुनिक कवि ने स्त्री के शाश्वत धर्मों को स्वीकार कर यत्किंचित् संशोधन किया है। अतः महाभारतीय धर्म-व्यवस्था के साथ युगीन आलोक भी द्रष्टव्य है।

नायिका-प्रधान प्रबन्ध काव्यों में नारी धर्म की व्याख्या 'महाभारत' के आधार पर हुई है। नायक-प्रधान काव्यों में प्राचीन और नवीन का समन्वय हुआ है यद्यपि प्राचीन परम्परा की संशोधित दृष्टि सम्पूर्ण आचार-विचार उसके पत्नी-रूप में निहित है, किन्तु आधुनिक युग में पत्नी के अतिरिक्त माता, सखी, बहन आदि रूपों में उसके कर्त्तव्यों का विस्तार हो गया है।

स्त्री का क्षात्र धर्म : पति और पुत्र को रण में सुसज्जित करने के स्त्री-धर्म के प्रति आज का कवि भी उतना ही सजग है जितना महाभारत-काल का।[1] जो स्त्रियां सती होकर भी पति के कीर्ति पथ में बाधक होती हैं, वे अपना कर्त्तव्य-पालन नहीं करती।[2] 'महाभारत' की विदुला अपने पुत्र को क्षात्र-धर्म के लिए उत्तेजित करती है।[3] और आधुनिक कवि इस धर्म की पुनर्व्याख्या करके उसे लोक-जीवन में प्रतिष्ठित करना चाहता है।[4] विदुलोपाख्यान की पृष्ठभूमि में कुन्ती अपने पुत्रों को युद्ध के हेतु प्रेरित करके स्त्री के क्षात्र धर्म का निर्वाह करती है। आधुनिक युग में स्वतन्त्रता-संग्राम के लिए और चीनी आक्रमण के समय देश की रक्षा के लिए माता और बहनों के ओजस्वी संदेशों में 'महाभारत' की वाणी मुखरित हो रही है। स्त्रियों का क्षात्रधर्म 'महाभारत' के उपरान्त इस देश में किसी भी युग में नवीन नहीं रहा, वह सर्वदा सजग और सजीव रहा। 'अंगराज' में सेना के प्रयाण के समय माता का ओजस्वी संदेश विदुला के संदेश से प्रभावित और युग की ध्वनि से संयुक्त है।[5]

---

१. जयद्रथ वध, पृ० ६

२. जयद्रथ वध, पृ० ६

३. उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः।
अमित्रान् नन्दयन् सर्वान् निर्मानो बन्धुशोकदः। म० उद्योग० १३३।८

४. कापुरुष समझ युग की पुकार, तू पहले अपने आप सम्हल,
सुन मानवता की अभिलाषा, साहसी वीर आगे बढ़ चल।
विदुलोपाख्यान, पृ० ३१

५. माताएँ कहतीं थीं तुम हो आर्य प्रजाता की सन्तान।
तुममें है सब निहित हमारे जीवन, स्वप्न, जाति अभिमान॥
हम जिस दिन के लिए तुम्हें देती हैं जन्म यातना भोग।
बड़े भाग्य से हुआ उपस्थित आज वहीस्वर्णिम संयोग। अंगराज, पृ० १७८

उद्योग पर्व में सन्धि का प्रस्ताव ले जाते समय द्रौपदी युद्ध की प्रेरणा देती है।[1] 'जय-भारत' का कवि आज के युग मे उस प्रेरणा को पुन प्रतिष्ठित करके[2] कुन्ती के शब्दों मे क्षत्राणी के धर्म का आख्यान करता है।[3] द्रौपदी पचनत्वो के लिए प्रेरणा बनकर उनको सगठित करती है।[4] और 'सेनापति कर्ण' की हिडिम्बा क्षात्र धर्म से प्रेरित अपने पुत्र को वश-रक्षा के लिए उद्यत कर रण मे भेजती है।[5] इस प्रकार 'महाभारत' मे वर्णित स्त्री के क्षात्रधर्म के प्रति आज का कवि पूर्ण सजग है क्योकि यह मान्यता एक युग की नही, शाश्वत मान्यता है।

पतिव्रत धर्म पतिव्रत धर्म स्त्री के लिए प्रमुख धर्म है। अन्य सम्पूर्ण धर्मा-चरण इसकी परिधि म सन्निविष्ट हैं। आर्य-कन्या जिसका ध्यान कर लेती है उसी को पति रूप मे वरण करती है।[6] दमयन्ती, सती सावित्री, द्रौपदी आदि स्त्री-पात्रो के आचरण आज भी अनुकरणीय हैं। अत पतिव्रत धर्म की प्रतिष्ठा परम्परागत मान्य आधारो पर हुई है। नहुष की अमानवीय याचना पर शची अपने धर्म की रक्षा करती है।[7] देवो की शक्ति के समक्ष दमयन्ती पतिव्रत-धर्म के आधार पर ही नल का वरण करके अपनी रक्षा करती है।[8] पतिव्रत धर्म ही नारी का परम भूषण और

---

१ पच चैव महावीर्या पुत्रा मे मधुसूदन।
अभिमन्यु पुरस्कृत्य यो त्स्यन्ते कुरुभि सह॥ म० उद्योग० ८२।३८

२ जयभारत, पृ० ३१७

३ जीती हू मैं तात यहीतुम उनसे कहना
आया अवसर आप यह, प्रस्तुत हो इसके लिए,
क्षत्राणी पीडा प्रसव की, सहती है जिसके लिए॥ जयभारत, पृ० ३३५

४ द्रौपदी, पृ० ३८

५ सेनापति कर्ण, पृ० ६७

६ आर्य कन्या कृत्य कब ऐसा करें।
ध्यान वे जिसका करें, उसको वरें॥ दमयन्ती, पृ० १६

७ नहुष, पृ० ५८

८ निषधेश को तज अन्य के यदि कठ मे माला पडे।
तो, भस्म हो जाये प्रथम वह, क्षार बन नभ मे उडे॥ दमयन्ती, पृ० १३७

शुभ कर्म है।[1] 'नल-नरेश' में नल-दमयन्ती के वार्तालाप में स्त्री के पतिव्रत धर्म की व्यापक व्याख्या हुई है। प्रेम की दृढ़ता को असंयम-शमन के हेतु आवश्यक माना है।[2] आधुनिक युग में नारी को शिक्षित बनाने के साथ पति-भक्ति की शिक्षा भी देनी चाहिए इस कारण सतियों के आख्यानात्मक काव्यों का प्रणयन आवश्यक है।[3] 'सेनापति कर्ण' की हिडिम्बा पति की बुराई करने पर अपने पुत्र को पितृघाती कहकर तिरस्कृत करती है।[4] हिडिम्बा पति को सब सम्बन्धों से ऊपर बताकर नारी के दोनों लोकों का रक्षक बताती है।[5] नारी की पति भक्ति को देखकर देवता यही कहते हैं कि विश्व की नारी दमयन्ती की पति-भक्ति को अपना आदर्श माने इसी कारण हमने परीक्षा ली थी[6] और प्रत्येक युग में स्त्री-धर्म का आख्यान इसी हेतु होता आया है कि नारियां अपने धर्म की महत्ता को समझ सकें।

आधुनिक दृष्टि : आधुनिक काव्य में स्त्रीधर्म का एक दूसरा पक्ष है। इसमें परम्परागत बन्धनों से कुछ स्वतन्त्रता दी गई है।

परम्परागत दृष्टिकोण से स्त्री का घोरतम अपराध है पति-वंचना। किन्तु आधुनिक कवि परिस्थिति-सापेक्ष इस वंचना की स्वतन्त्रता देता है। 'द्वापर' की विधृता ने इस स्वतन्त्रता का उपयोग किया है।[7] यद्यपि यह स्वतन्त्रता भक्ति की सीमा में दी गई है, किन्तु कवि की मूल दृष्टि अधिकार-स्वातन्त्र्य और समता की है। आधुनिक काव्य की नारी विषयक भावना और 'महाभारत' की भावना में एक अन्तर यह है कि महाभारतकार नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा पर बल देता है। वह समाज सम्मत नियोग, समाज सम्मत पंचपति, समाज सम्मत केवल एक पुत्र की प्राप्ति के लिए प्रेम को आदर्श मानकर चलता है। कुन्ती[8],

---

१. नारि का जग में पति-व्रत धर्म ही
 है परम-भूषण तथा शुभ कर्म ही। दमयन्ती, पृ० १६
२. नल नरेश, पृ० १२८-१३०
३. सती सावित्री, पृ० ४०
४. अरे नीच जानती जो निजगर्भ से
 जन्म दे रही हूं पितृ निन्दक अभागे को
 तब तो बहाती उस पावस की धार में
 रात को ही हाय.........सेनापति कर्ण, पृ० ७८
५. किन्तु दान पति का अपरिमित अमोघ है
 रंजित करता है जो दोनों लोक नारी के। सेनापति कर्ण, पृ० ७६
६. दमयन्ती, पृ० १३८
७. द्वापर, पृ० २६, ३०, ३६
८. म० आदि० १२२।५

द्रौपदी[1], और हिडिम्बा[2], ऐसे ही स्त्रीपात्र हैं। आज का कवि समाज की सीमा से पृथक् भी स्त्री के धर्म की व्याख्या करता है। 'रश्मिरथी' का कर्ण कुन्ती के माध्यम से इस वैयक्तिक पक्ष की विवेचना करता है। क्या स्त्री का धर्म यज्ञ की ज्वालाओं के फेरों से प्राप्त पति के ही प्रति है? क्या पुत्र के प्रति चाहे वह किसी अवस्था में उत्पन्न हुआ हो, माता का कुछ कर्त्तव्य नहीं? दिनकर के कर्ण का आरोप है कि कुन्ती उसे लेकर समाज के समक्ष क्या नहीं आई?

विधि का पहला वरदान मिला जब तुमको,
गोदी में नन्हा दान मिला जब तुमको,
क्यों नहीं वीर माता बन आगे आई
सबके समक्ष निर्भय होकर चिल्लाई?
सुन लो समाज के प्रमुख धर्म-ध्वज-धारी
सुतवती हो गई मैं अनब्याही नारी।
अब चाहो तो रहने दो मुझे भवन में
या जातिच्युत कर मुझे भेज दो वन में॥[3]

दिनकर द्वारा वर्णित यह स्त्री-धर्म आज के युग में स्त्री के शोषण की प्रकृति के प्रति क्रांतिकारी विद्रोह है। कवि का अपने युग से प्रश्न है कि यदि उक्त अवस्था में नारी पूजनीय है, तो क्या ऐसी अवस्था में भी वह पूज्या है? इस प्रकार आधुनिक कवि महाभारतीय परम्परा को पूर्ण रूप से स्वीकार करते हुए युग के ज्वलन्त प्रश्नों की विवेचना भी करता है। वह यह भी मानता है कि धर्म के प्रति स्त्री की आस्था ने आज के युग को घोरतम पापों से बचा रखा है, उसकी मान्यता है कि यदि स्त्री धर्मच्युत हो जाये तो संसार नष्ट हो सकता है।[4] 'जयभारत' का कवि 'महाभारत' के स्त्री-धर्म को युगीन परिवेश में प्रस्तुत करता है, वह आधुनिक जीवन की अलंकरण-वृत्ति का विरोध करता है, जो बाह्य प्रदर्शन तक सीमित है।[5] वह शृंगार को केवल पति के निमित्त ही मानता है और जीवन के सुख के हेतु पति की व्यक्तिगत

---

१ म० आदि० १५४।११-१२
२ म० आदि० १६०।१६
३ रश्मिरथी, पृ० ६५
४ शुभ नारि-धर्म की लीक न शेष रहेगी।
फट जायेगी ध्रुव धरा। न भार सहेगी॥ दमयन्ती, पृ० २६७
५ जब बाहर आती हैं तब हम सजबज कर आती हैं।
घर भीतर ऐसी-वैसी ही बहुधा रह जाती हैं॥ जयभारत, पृ० १६०

देखरेख का समर्थन करता है।[1] गुप्त जी के दृष्टिकोण के विषय में डा० सत्येन्द्र के शब्द[2] भी यही सिद्ध करते है कि 'महाभारत' की प्रमुख चरित्र-सृष्टि में गुप्त जी ने सांस्कृतिक और क्रान्ति के स्फुलिंगों का समन्वय करके एक भव्य रूप में स्त्री-धर्म की समीक्षा की है।

वर्ण-धर्म

'महाभारत' में वर्ण-धर्म की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। 'महाभारत' वर्ण-धर्म का प्रबल समर्थक है और अनेक स्थान पर वर्णाश्रम धर्म की व्यापक प्रतिष्ठा है। अनेक लघु उपाख्यानों के द्वारा वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपादन अत्यन्त सरल और कथात्मक शैली में किया गया है। वर्णधर्म प्रतिपादन में धृतराष्ट्र को विदुर का उपदेश[3], भीष्म द्वारा ब्रह्माजी के नीति-शास्त्र और पृथु के चरित्र के प्रसंग में वर्ण और आश्रम धर्म का वर्णन[4], व्यास और शुक संवाद में आश्रम धर्म वर्णन[5] आदि ऐसे मुख्यस्थल हैं जिनके अध्ययन से महाभारत काल की वर्णाश्रम-धर्म-परम्परा का साक्षात्कार होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'महाभारत' वर्ण-धर्म को सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन का मूल मानता है तथा सामाजिक मोद-प्राप्ति के लिए आवश्यक भी। स्थान-स्थान पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों की कर्त्तव्य-सीमाएं अत्यन्त व्यापकता से चित्रित की गई हैं। तत्कालीन समाज ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को निर्विवाद रूप से

---

१. दास दासियां दिखलाते हैं कोरी प्रभुता जनकी।
सखि, सच्ची संभाल हमको ही करनी है निजधन की॥ जयभारत पृ० १९०

२. 'गुप्त जी ने स्त्रियों में भारतीय आदर्श के ढांचे में दिव्यता भरने की चेष्टा की है। स्त्रियों का जो भारतीय आदर्श दीर्घकालीन परम्परा-भुक्ति के कारण अनुदार और रूखा सा दीखने लगा था और क्रान्ति के स्फुलिंगों को प्रेरित कर रहा था, उसी को नये भावुक तर्क से सजाकर, नई आत्मा में अभिसिंचित कर दिया है।' गुप्त जी की कला, पृ० १३२

३. म० उद्योग० अध्याय ४०

४. म० शान्ति० अध्याय ६०-६३

५. म० शान्ति० अध्याय २४२-२४५

मानता है,[1] और राज्य-रक्षा के लिए क्षत्रिय धर्म का पालन भी उतना ही महत्वपूर्ण है। 'महाभारत' द्विजातीय धर्म के प्रति इतना अधिक जागरूक है कि आचार की महत्ता के साथ कर्मणा वर्ण की प्रतिष्ठा को भी स्वीकार करता है।[2] इस प्रकार जन्म और कर्म दोनों दृष्टियों से महाभारत चार वर्णाश्रम का प्रतिपादन करता है। सनातन धर्म की मान्यता के अनुसार जीव को सभी वर्णों में होकर जीवन-यात्रा करनी पड़ती है। वर्ण चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, अतएव 'महाभारत' के अनुसार चतुर्वर्णों के धर्म का पृथक्-पृथक् वर्णन स्पृहणीय है।

ब्राह्मण ब्राह्मण की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्मा जी ने ब्राह्मण को जन्म से महान्, भाग्यशाली समस्त प्राणियों का वन्दनीय और अतिथि के रूप में भोजन पाने का प्रथम अधिकारी बताया है।[3] ब्राह्मण धर्म की विवेचना करते हुए 'महाभारत' में विदुर कहते हैं कि प्रतिदिन जल से स्नान, सन्ध्या करना यज्ञोपवीत धारण, स्वाध्याय, सत्य वादन ब्राह्मण के धर्म हैं।[4] भीष्म युधिष्ठिर को उपदेश करते हुए कहते हैं कि इन्द्रिय-संयम ब्राह्मणों का प्राचीन धर्म है, जिस के साथ स्वाध्याय से उनके सब कर्मों की पूर्ति हो जाती है।[5] इसके अतिरिक्त समस्त जीवों के प्रति मैत्री भाव भी ब्राह्मण की कर्तव्य-परिधि में आता है।[6] ब्राह्मण का धर्म यज्ञ करना, कराना, विद्या पढ़ना, पढ़ाना, दान लेना और देना माने गए हैं।[7] इसके अतिरिक्त अन्य वर्णों के कर्तव्यों का पालन ब्राह्मण के लिए वर्जित है।[8]

ब्राह्मण सत्वगुण प्रधान होता है, इस कारण शम, दम, तप, शौच, ऋजुता ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य-ये नौ गुण ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म कहे गये हैं। इन्हीं गुणों के कारण ब्राह्मण सर्व पूज्य है, उसका सन्तोष मंगलमय है। विपरीत कर्मों में प्रवृत्त होने पर ब्राह्मणत्व से पतन का उल्लेख भी किया गया है। सत् पुरुषों का आश्रय लेकर अपने कर्मों में प्रवृत्ति उन्नति का मूल साधन है और विपरीत कर्मों

---

१ म० अनु० अध्याय ३३ ३५

२ म० वन० १८०।२५-२६, ३१३।१०८

३ म० अनु० ३५।१

४ म० उद्योग० ४०।२५

५ म० शान्ति० ६०।१२

६ म० शान्ति० ६२।६

७ म० शान्ति० ६२।४

८ गीता० ४।१३ शा० भा०

का आचरण पतन का कारण है।[1] साधारण धर्म की विवेचना करते हुए क्रूरता का अभाव, अहिंसा, अप्रमाद, देवता और पितरों के हेतु दान देना, श्राद्ध, अतिथि-सत्कार, सत्य, अक्रोध, अपनी पत्नी में सन्तुष्टता, पवित्रता, किसी में दोष न देखना, आत्मज्ञान और सहिष्णुता आदि धर्म द्विजातियों के मुख्य धर्म हैं।

क्षत्रिय · ब्राह्मण के लिए बताये हुए अध्ययन-यजन, दान आदि धर्म क्षत्रिय के लिए भी आवश्यक है। किन्तु प्रजा की रक्षा करना क्षत्रिय के लिए श्रेष्ठ धर्म है।[2] जो क्षत्रियोचित युद्ध आदि कर्म का सेवन करता है, वेदों के अध्ययन में लगा रहता है, ब्राह्मणों को दान देता है और प्रजा से कर लेकर उसकी रक्षा करता है, वह क्षत्रिय कहलाता है।[3] युद्ध-कर्म निंद्य अवश्य है किन्तु क्षत्रिय की धर्म-परिधि में युद्ध भी कर्म के अन्तर्गत आता है। क्षत्रिय मे सत्व गुण गौण और रजोगुण की प्रमुखता होती है। उसके अनुसार शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्ध मे शत्रु से पराङ्मुख न होना आदि क्षत्रिय के स्वभावज गुण कहे गये है।[4]

अर्जुन के मोह को विच्छिन्न करने के लिए भगवान् कृष्ण ने युद्ध को क्षत्रिय धर्म का मुख्य कर्त्तव्य कहकर उसे पाप की सीमा से असम्पृक्त कर दिया है।[5] धर्म के ज्ञाता आर्य पुरुषों का कथन है कि क्षत्रिय धर्म का फल महान् होता है अतः वह सर्वोच्च धर्म माना गया है।[6] क्षत्रिय राज्य करता है, अतः राजधर्म-वर्णन के अन्तर्गत नीतिमत्ता, दृढ़ता, शक्तिमत्ता आदि गुणों का विवेचन किया गया है। नीतिहीनता दुर्बलता और कायरता क्षत्रिय के दोष है। राजा के धर्म के अन्तर्गत पुरुषार्थ

---

१. म० शान्ति० २९६।२६

२. टिप्पणी : ब्राह्मण का लक्षण बताते हुए भृगु जी कहते है कि जो जाति कर्म आदि संस्कारों से सम्पन्न, पवित्र तथा वेदों के स्वाध्याय में संलग्न छः कर्मों में स्थित शौच एवं सदाचार का पालन तथा परम उत्तम यज्ञ शिष्ट भोजन करता है, गुरु के प्रति प्रेम, नित्य व्रत-पालन और सत्य में तत्पर रहता है और जिसमें दान अग्रह, दया, तप, आदि सद्गुण है वह ब्राह्मण माना गया है। म० शान्ति० १८९।२-३-४

३. रक्षा क्षत्रस्य शोभना। म० शान्ति० २९६।२०

४. क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययन संगतः।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्चते॥ म० शान्ति० १८९।५

५. शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रंकर्मस्वभावजम्॥ गीता० १८।४३ पर
शा० भा० पृ० ४३६

६. ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पाप मवाप्स्यसि। गीता० २।३८

७. म० शान्ति ६३।२६

की महत्ता प्रारम्भ से भी उच्चतर मानी गई है।[1] वन पर्व में भीम क्षत्रिय-धर्म को कठोर कर्म करने वाला कहते हैं।[2] क्षत्रिय के लिए न तो भीख मांगने का विधान है और न वैश्य और शूद्र की जीविका का, उसके लिए तो बल और उत्साह ही विशेष धर्म है।[3] वह तपस्या के द्वारा उन लोकों को प्राप्त नहीं होता, जिन्हें वह अपने लिए विहित युद्ध में विजय अथवा मृत्यु को अंगीकार करने में प्राप्त करता है।[4] इस प्रकार प्रजापालन, सत्य के द्वारा शक्ति-सहित राज्य धर्म का पालन युद्ध आदि कर्त्तव्य कर्म क्षत्रिय की धर्म-परिधि में आते हैं।

वैश्य वैश्य के लक्षण बताते हुए 'महाभारत' में कहा गया है कि जो वेदाध्ययन से सम्पन्न होकर व्यापार, पशुपालन, खेती का काम करके अन्न-संग्रह करने की रुचि रखता है, वह वैश्य कहलाता है।[5] इस प्रकार ब्राह्मण के लिए बताये गये धर्मार्थ कर्मों के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, वैश्य जाति के स्वभावजन्य कर्म कहे गये हैं। वैश्य को चाहिए कि वह धन-संग्रह करके कल्याण के कार्यों में लगाये। वैश्य क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा अन्य आश्रितजनों को समय-समय पर धन देकर उनकी सहायता करे और यज्ञों द्वारा तीनों अग्नियों[6] के पवित्र धर्म की सुगन्ध ले तो वह स्वर्गलोक में भी दिव्य सुखों का उपभोग करता है।[7]

शूद्र शूद्र के लक्षण बताते हुए 'महाभारत' में कहा गया है कि जो वेद, सदाचार का परित्याग करके सदा सब कुछ खाने में अनुरक्त रहता है, सब तरह के काम करता है और बाहर भीतर अपवित्र रहता है उसे शूद्र कहते हैं।[8] शूद्र के कर्म

---

१ म० शान्ति० ५६।१४

२ म० वन० ३३।५४

३ भैक्ष्यचर्या न विहिता नच विट्शूद्रजीविका।
क्षत्रियस्य विशेषेणधर्मस्तु बलमौरसम्। म० वन० ३३।५१

४ म० वन० ३३।७३

५ वाणिज्य पशुरक्षाच कृष्यादान रति शुचि।
वेदाध्ययन सम्पन्न स वैश्यइति संज्ञित। म० शान्ति० १८९।६

६ ये तीन अग्नियां हैं—गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि, और आहवनीयाग्नि।

७ म० उद्योग ४०।२८

८ म० शान्ति० १८९।७

विधान में द्विजाति सेवा ही प्रमुख है।[1] यद्यपि शूद्र के लिए सेवा-भाव के अतिरिक्त कुछ उच्च धर्मों की स्वीकृति भी है, किन्तु मुख्य रूप से सेवा ही उसका महान् धर्म है। शूद्र को किसी प्रकार का धन-संग्रह नहीं करना चाहिए क्योंकि धन प्राप्त करने पर वह पाप में प्रवृत्त हो जाता है। धर्मात्मा शूद्र के लिए राजा से आज्ञा लेकर धार्मिक कृत्य करने की स्वतन्त्रता का भी विधान है।[2]

आधुनिक काव्य में वर्ण-धर्म

आधुनिक कवि वर्ण-धर्म की स्वीकृति में अपने युग के सुधारवादी आन्दोलनों से अधिक प्रभावित हुआ है। वह 'महाभारत' की वर्णाश्रम परम्परा को यथावत् नहीं अपना सका। महाभारतकाल में वर्ण की प्रतिष्ठा समाज-व्यवस्था का मुख्य रूप था यद्यपि वह आज के युग में भी सिद्धान्त मे उसी रूप में विद्यमान है, किन्तु व्यवहार मे पर्याप्त शिथिलता आ गई है। उस युग में वर्ण परम्परा जन्म और कर्मगत थी आज के युग मे भी दोनों रूप सुरक्षित है, अन्तर केवल मात्र इतना है कि जन्म मात्र की प्रतिष्ठा उतनी बलवती नहीं रही। आधुनिक परम्परावादी कवि 'महाभारत' की परम्परा का यथाशक्ति निर्वाह करता है[3], किन्तु सुधारवादी कवि अनेक सामयिक प्रश्नों के साथ परम्परा को अपने युग के परिवेश में स्वीकार करता है।

महाभारत-युग में ब्राह्मण की सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद है। आधुनिक कवियों के ब्राह्मण पात्र भी उच्चविचारक, ज्ञानी, धार्मिक, परोपकारी और विशुद्ध पण्डित है। किन्तु उच्च पात्रों के साथ निम्न वर्ण के पात्रों के गुणों के प्रति भी आज का कवि श्रद्धानु है। एकलव्य के चरित्र पर लिखे गये प्रबन्ध काव्य व्यक्ति के गुण कर्म के प्रति वर्ण-परम्परा से ऊपर उठकर आदर भाव की प्रतिष्ठा करते हैं। आधुनिक युग में कानीन पुत्र कर्ण के चरित्र पर लिखे काव्य सुधारवादी प्रवृत्ति के

---

१. शुश्रूषा चद्विजातीनां शूद्राणां धर्म उच्यते। म० वन० १५०।३६

२. म० शान्ति० ६०।३१

३. ब्राह्मण बढ़ावे बोध को, क्षत्रिय बढ़ावे शक्ति को।
सब वैश्य निज वाणिज्य को, त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को।
यों एक मन होकर सभी कर्तव्य के पालक बने।
तो क्या न कीर्ति-वितान चारों ओर भारत के तने॥

भारतभारती, पृ० १६७

पोषक हैं। इन कवियों ने 'महाभारत' की वर्ण-व्यवस्था को यथावत स्वीकार नहीं किया। एकलव्य[1] और कर्ण[2] आज की समाज-व्यवस्था में आदर के पात्र हैं।

ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत 'महाभारत' के अनुसार ही आधुनिक कवि तप-त्याग की श्रेष्ठता स्वीकार करता है।[3] महाभारत-युग में ब्राह्मण की प्रतिष्ठा सर्वोपरि थी किन्तु आज के युग में ब्राह्मण केवल शख और गगाजल लिए खड़ा है तथा अत्याचारी राजा को रोकने में असमर्थ है।[4] राजा ब्राह्मण का अपमान करता है।[5] ऐसी परिस्थिति में ब्राह्मण का धर्म ब्रह्म-तेज के साथ खड्ग धारण करना भी हो जाता है।[6] यह खड्ग-धारण धर्म-रक्षा के लिए अनिवार्य है, अन्यथा हिंसा ब्राह्मण के धर्म के विरुद्ध है, ऐसी हिंसा से वह शाप प्राप्त करता है।[7] ब्राह्मण संसार की मेधा है अतः उसका धर्म है कि वह कल्याणकारी शिवत्व का प्रसार करे।[8]

क्षात्रधर्म के अन्तर्गत ब्राह्मण के समस्त गुणों की व्यवस्था है। युद्ध क्षत्रिय का धर्म है। ब्राह्मणों को दान देकर जो क्षत्रिय अपने क्षात्रधर्म का पालन करता है वह मोक्ष

---

१ 'एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है, वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिए भी आदर्श है। वह 'अनार्य' नहीं, 'आर्य' है, क्योंकि उसमें 'शील' का प्राधान्य है। यहीं उसमें महाकाव्य के नायक बनने की क्षमता है। भलेही वह 'सुर' अथवा 'सद्वंश' में उत्पन्न 'क्षत्रिय' नहीं। एकलव्य, आमुख, पृ० ६

२ 'कर्ण चरित्र के उद्धार की चिंता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है।' रश्मिरथी, भूमिका, पृ० ५

३ रश्मिरथी, पृ० १

४ रश्मिरथी, पृ० १४

५ रश्मिरथी, पृ० १५

६ रश्मिरथी, पृ० १६

७ अंगराज, पृ० ४६

८ कौन्तेय कथा, पृ० ७५

को प्राप्तहोता है। क्षत्रिय वही है, जिसमें तेजस्विता और आग भरी हो।[1] आधुनिक काव्य के सम्पूर्ण क्षत्रिय पात्र क्षात्र-धर्म का पालन करते हैं। पापियों को दंड देना क्षत्रिय वंश का प्रमुख धर्म है।[2] वीर मनस्वी क्षत्रिय काल के समक्ष भी भयभीत नहीं होता।[3] और प्राणों की चिन्ता न करते हुए भी उसे धर्मयुक्तकार्य करना ही अभीष्ट होना है।[4] क्षत्रिय रक्षा का प्रतीक है।[5] जब न्याय-स्थापन हेतु अन्य उपाय समाप्त हो जाये तब रण में जाना क्षत्रिय का परम धर्म हो जाता है।[6] पौरुष ही जीव-धारियों का संबल है।[7] पौरुष-हीन व्यक्ति समादरणीय नहीं हो सकता। वस्तुतः शूरधर्म निर्भय होकर अंगारो पर चलना है।[8] शूरधर्म का महान् पाठ यही है कि वह विश्व को बलिदान की ज्योति से ज्योतित कर दे[9] और एक ऐसी व्यवस्था को जन्म दे, जहां आशा हो और उन्नति के सम्पूर्ण मार्ग खुले हों।

ब्राह्मण और क्षत्रिय के उपलक्ष्य से कहे गये सभी धर्म वैश्य के भी धर्मार्थ कर्म है। आधुनिक काव्य मे वैश्य के धर्म का विस्तार से वर्णन नहीं मिलता किन्तु समाज की रचना-परम्परा में वैश्य धन का स्वामी और समाज को पालने वाला कहा गया है।[10] वैश्य और शूद्र वर्ण के विषय में आधुनिक कवि यत्रतत्र संकेत करता है।

---

१. क्षत्रिय वही भरी हो जिसमें निर्भयता की आग। रश्मिरथी, पृ० १

२. पापी जनों को दंड देना चाहिए समुचित सदा।
वरवीर क्षत्रिय-वंश का कर्त्तव्य है यह सर्वदा। जयद्रथवध, पृ० १०

३. कृतान्त के सम्मुख भी न दीन हो,
मनस्वियों की यह कर्मनीति है। अंगराज, पृ० ११२

४. अंगराज, पृ० २५६

५. क्षत्रिय प्रतीक रक्षा का। कौन्तेय कथा पृ० ७५

६. जब ध्वस्त उपाय सभी हों, तब न्याय सृष्टि के हित ही।
क्षत्रिय को रण के पथ में जाना तप धर्म्य, वरद है॥
कौन्तेय कथा पृ० ७६

७. पांचाली, पृ० ४०

८. शूर धर्म है अभय दहकते अंगारों पर चलना,
शूर धर्म है शाणित असि पर धरकर चरण मचलना। कुरुक्षेत्र, पृ० ६०

९. सबसे बड़ा धर्म है नर का सदा प्रज्वलित रहना,
दाहक शक्ति समेट स्पर्श भी नहीं किस का सहना। कुरुक्षेत्र, पृ० ६१,

१०. रश्मिरथी, पृ० १३

शूद्र का परमधर्म सेवा करना है। शूद्र अन्य वर्णों की भांति विद्या का अधिकारी नहीं है। इसी धर्म की सीमा के कारण एकलव्य आचार्यद्रोण से तिरस्कृत हुआ।[1] आज का कवि शूद्र की धर्म सीमा उतनी संकुचित नहीं मानता जितनी 'महाभारत' में वर्णित है। आज शूद्र भी शिक्षा का अधिकारी और गुणकर्म से उच्चतम स्थान प्राप्त कर सकता है।[2]

जातिवाद का विरोध 'महाभारत' की वर्ण व्यवस्था के प्रभाव की विवेचना करते हुए आधुनिक काव्य के मूल स्वर 'जातिवाद विरोध' की समीक्षा अप्रासंगिक न होगी। 'महाभारत' से प्रभावित काव्यों में सामान्यतः इस विरोध को पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ है। दिनकर, लक्ष्मी नारायण मिश्र, रामकुमार वर्मा, भगवती चरण वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त आदि प्रमुख कवियों ने वर्ण बन्धन को कर्म के आधार पर स्वीकार किया है। जैसा कि हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि 'महाभारत' में वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत जिन पात्रों की उपेक्षा हुई, कुल के विचार से जिन्हें अर्द्धरथी समझा गया, और धनुर्वेद की शिक्षा नहीं दी गई उन सब पात्रों के माध्यम से आज के कवि ने जाति व्यवस्था के उन्मूलन का प्रचार किया है। कर्ण, एकलव्य, हिडिम्बा, आदि पात्र प्रस्तुत आन्दोलन के आधार रहे हैं। दिनकर का कर्ण जातिवाद का विरोध करके व्यक्तिगत वीरत्व और शौर्य के कारण प्राप्त होने वाले सामाजिक महत्व की घोषणा करता है।[3] वीरों की जाति और नदियों का उद्गम जानना महा कठिन है।[4] आस्थावादी कवि सियाराम भी प्राचीन ऋषियों के उदाहरणों से कर्मणा जाति प्रथा का समर्थन करता है।[5] वस्तुतः जातिवाद ने जहां भारतीय जीवन पद्धति को एक रूप दिया, वहां उसके कारण अनेक विनाश भी हुए अतः आधुनिक कवि उस प्रथा को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करना चाहता। 'एक-

---

१ एकलव्य, पृ० ६

२ एकलव्य, पृ० २२

३ पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो मेरे, भुज बल से,
रवि-सम्मान दीपित ललाट से और कवच कुंडल से।
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।। रश्मिरथी, पृ० ५

४ मूल जानना महाकठिन है नदियों का वीरों का,
धनुष छोड़कर और गोत्र क्या होता रणधीरों का। रश्मिरथी, पृ० ५

५ जाति नाहिं कछु ऊंच सुकारन।
ऊंच अचार विचार महाजन कृष्णायण, पृ० ३७६

लव्य[1], 'जयभारत,[2] 'पांचाली[3]' 'सेनापति कर्ण'[4] आदि प्रबन्ध-काव्यों में जातिवाद का विरोध और मानवतावाद का स्वर मुखरित हुआ है। आधुनिक मानवतावाद की प्रमुखभावना है, समत्व। जाति, कुल, गोत्र के आधार पर निर्मित सामाजिक असमानता मानवता की उन्नति में बाधक है। अतः आज का कवि प्राचीन पात्रों के हृदय में गहरे और व्यापक मानसिक क्षोभ की आयोजना करता है।[5] यह क्षोभ प्राचीन जीवन-पद्धति के संदर्भ में आज के शोषित मानव का क्षोभ है और उनकी प्रतिक्रिया अनेक भयंकर रूपों में व्यक्त होती है।[6] गुरुद्रोण के मानसिक संघर्ष में आज का कवि ब्रह्म विद्या की राजकुलीय पराधीनता चित्रित करके उसे मानव मात्र के लिए सुलभ बनाने की कल्याणकारी भावना का प्रकाशन करता है।[7] इस प्रकार आधुनिक काव्य के जाति-विरोधी अभियान में आज के कवि की लोक-कल्याण-भावना, समत्व के प्रति अटूट आस्था और मानवता के प्रति गहरी श्रद्धा अभिव्यक्त होती है। एक व्यापक राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता के लिए भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय भेद की समाप्ति आवश्यक मानी गई है।[8]

---

१. किन्तु शूद्र और ब्राह्मणों में भेद कैसा है
जब कि सम्पूर्ण अंग मानवों के सब में ?
हमने सहन की है वर्ग की विगर्हणा,
शूद्र कहलाते रहे सेवा-भाव मान के
किन्तु जब मानव को विद्या का निषेध हो
बात क्या नहीं है क्रांतिकारी बन जाने की। एकलव्य, पृ० १६८

२. व्यर्थ विशुद्धि गर्व है किसको
जाति वर्ण कहते हैं जिसको॥ जयभारत, पृ० २३५
× × ×
परमात्मा के अंश रूप है आत्मा सभी समान। जयभारत, पृ० ५७

३. पांचाली, पृ० १४

४. सेनापति कर्ण, पृ० १२०-१२२

५. यह सूत पुत्र है सूर्य पुत्र वास्तव में
कुन्ती-कुमारिका-कुन्ती उसकी माता
उसकी माता से जन्म लिया है जिनने,
वे अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर जिसके भ्राता।
वह सूत्र पुत्र है नहीं शूद्र तक जारज
जारज समाज का कुष्ठ, और मानवता
का एक घृणित अभिशाप, जिसे वर्जित है,
अपनी माता को याकि पिता की ममता। त्रिपथगा, पृ० २१

६. गुरु दक्षिणा पृ० ७-८, रश्मिरथी पृ० ११०-१११

७. जाति भेद नहीं, वर्ग वंश भेद भी नहीं,
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं। एकलव्य, पृ० २२२

८. मंगल घट, मातृ मन्दिर, पृ० २६२

आश्रम धर्म 'महाभारत' में वर्ण-धर्म के समान ही आश्रम धर्म की प्रतिष्ठा स्वीकार की गई है। आश्रम-धर्म के व्यवस्थित अनुष्ठान को परमगति प्राप्ति का मुख्य साधन माना है। ब्रह्मचर्य आश्रम में चूडाकरण संस्कार और उपनयन के अनन्तर वेदाध्ययन पूर्ण करके गृहस्थाश्रम में रहते हुए मनस्वी पुरुष स्त्री को साथ लेकर अथवा बिना स्त्री के गृहस्थाश्रम से कृतकृत्य हो वानप्रस्थ में प्रवेश करे। वहां धर्मज्ञ पुरुष आरण्यक शास्त्रों का अध्ययन करके वानप्रस्थधर्म का पालन करे, तत्पश्चात् वानप्रस्थ से निकल कर विधिपूर्वक सन्यास ग्रहण करे। इस प्रकार सन्यास ग्रहण करने वाला व्यक्ति अविनाशी ब्रह्म-भाव को प्राप्त हो जाता है।[1] 'महाभारत' में अत्यन्त विस्तार से और अनेक स्थलों पर आश्रम-धर्म-पालन के सिद्धान्त को उपस्थित किया है। प्रत्येक आश्रम के विहित धर्मों की विवेचना करते हुए उनके अपालन से धर्मक्षय की स्थिति का विशद वर्णन मिलता है। आश्रम-धर्म का सैद्धान्तिक उपस्थापन ऋणशोधक रूप में व्यजित है। ब्रह्मचर्य में गुरु-सेवा से ऋषि-ऋण से मुक्ति, गृहस्थाश्रम में पितृऋण से मुक्ति और वानप्रस्थ में देवऋण से मुक्ति मिलती है। अत वैदिक जीवन-परम्परा में आश्रम धर्म का पालन अत्यन्त आवश्यक है। इनको ब्रह्मलोक प्राप्ति के हेतु चतुस्सोपान के रूप में माना है।[2]

ब्रह्मचर्य ब्रह्मचारी का मुख्य कर्तव्य अध्ययन है। उसे चाहिए कि वह वेदमन्त्रों का चिन्तन करते हुए आचार्य की सेवा में रत रहे।[3] मन और इन्द्रियों को वश में रखकर, दीक्षा लेते हुए अपने कर्त्तव्य-कर्मों का पालन करता रहे[4], जीविका-निर्वाह के लिए यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह—इन छ कर्मों

---

१ जटा धारण सस्कार द्विजातित्वमवाप्य च।
आधानादीनि कर्माणि प्राप्य वेदमधीत्य च।
सदारो वाप्यदारो वा आत्मवान् संयतेन्द्रिय ।
वानप्रस्थाश्रम गच्छेत् कृतकृत्यो गृहाश्रमात् ॥
तत्रारण्यक शास्त्राणि समधीत्य सधर्मवित् ।
उर्ध्वरेता प्रव्रजित्वा गच्छत्यक्षरमात्मताम् ॥ म० शांति० ६१।३-५

२ चतुष्पदी हि नि श्रेणी ब्रह्मण्येषा प्रतिष्ठिता।
एतामारुह्य निश्रेणीं ब्रह्मलोके महीयते। म० शान्ति० २४२।१५

३ म० शांति ६१।१८

४ म० शान्ति० ६१।१९

से पृथक् रहे[1], तथा अन्तर-बाह्य पवित्रता, गुरुसेवा, इन्द्रिय संयम का विशेष पालन करे।[2] जो ब्रह्मचारी अपने धर्म का पालन नहीं करता वह पातकी होता है।

गृहस्थ : गृहस्थाश्रम को 'महाभारत' में महान् कहा गया है[3], इसके अन्तर्गत शेष आश्रमों का निर्वाह होता है, इस कारण इसकी महत्ता सर्वोपरि है। गृहस्थ-धर्म के अन्तर्गत वेदों का अध्ययन, वेदोक्त-कर्मों का अनुष्ठान, आश्रम के न्यायोचित विषयों का भोग, शास्त्रों की आज्ञा-पालन, शठता और कुटिलता से पार्थक्य, उपकारी के प्रति कृतज्ञता, सत्यवादिता, क्षमा और अक्रूरता आदि धर्म आते हैं।[4] सद्गृहस्थ सरलता, अतिथि-सत्कार आदि अपने धर्मों का पालन करते हुए परलोक में भी सुख को प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण स्वभावतः यज्ञ-परायण हो, गृहस्थ-धर्म का पालन करता हो वही परम सुख को प्राप्त करता है।[5]

गृहस्थ धर्म के अन्तर्गत अतिथि-सेवा मुख्य गुण माना गया है। अपने आप न खाकर भी अतिथि को खिलाना, उसका सम्मान करना, गृहस्थ का मुख्य कर्त्तव्य है। शास्त्रों के विधान के अनुसार गृहस्थी को केवल अपने लिए ही भोजन न बनाकर पितर, देवता, अतिथियों के लिए भी बनाना चाहिए।[6] 'महाभारत' में गृहस्थधर्म के पालन रूप यज्ञ के साधन से अभ्युदय एव निःश्रेयस की सिद्धि का उल्लेख किया है, क्योंकि यज्ञ से बचा हुआ भोजन हविष्य कल्प एवं अमृत माना गया है।[7] अतिथि धर्म के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है कि यदि द्वार पर वेद के पारंगत विद्वान, स्नातक, श्रोत्रिय, हव्य, कव्य, जितेन्द्रिय, क्रियानिष्ठ और तपस्वी कोई ब्राह्मण अतिथि होकर आये तो गृहस्थ उनका सत्कार करे।[8] इसके अतिरिक्त कौटुम्बिक व्यक्तियों के साथ विवाद में न पड़ना गृहस्थ का धर्म है। जो इन सबके साथ कलह को त्याग

---

१. म० शान्ति० ६१।२०

२. म० शान्ति० २४२।२०-२४

३. गार्हस्थ्यं च महाश्रमम्। म० शान्ति० ६१।२

४. म० शान्ति० ६१।१६-११

५. म० शान्ति० ६१।१६

६. म० शान्ति० २४३।५

७. म० शान्ति० २४३।१२

८. म० शान्ति० २४३।८-९

देता है वह पापों से मुक्त हो जाता है,[1] उसे चाहिए कि वह बन्धु-बान्धवों पर दया माता-पिता और वृद्धों पर श्रद्धा का भाव बनाये रहे। इन्हें सन्तुष्ट रखने से महान् लोकों की प्राप्ति होती है।[2] धर्म, व्याध, और जाजली तुलाधार के उपाख्यान में गृहस्थ धर्म का व्यापक विवेचन हुआ है। पृथ्वी देवी और भगवान् श्रीकृष्ण के संवाद में गृहस्थ धर्म-पालन की विधि का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। इस उपाख्यान में गृहस्थ के धार्मिक आचरण और सामान्य धर्मों का उल्लेख है। अन्तत जो मनुष्य दोष-दृष्टि का परित्याग करके गृहस्थोचित धर्मों का पालन करता है, उसे इस लोक में ऋषियों का वरदान प्राप्त होता है और वह पुण्य लोकों में भी सम्मानित होता है।[3]

वानप्रस्थ वानप्रस्थाश्रम 'सांसारिक त्याग का प्रथम सोपान है।' मनुष्य अपनी आयु का तृतीय भाग व्यतीत करने के लिए वन में वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करे।[4] नियम के साथ रहना, प्रमाद से बचना, दिन के छठे भाग में एक बार अन्न ग्रहण करना, गृहस्थाश्रम की भांति अग्निहोत्र तथा यज्ञ के सम्पूर्ण अंगों का सम्पादन करना आदि धार्मिक चर्या का विधान उसके लिए विहित है।[5] वानप्रस्थ धर्म का पालन करने से अनेक मनुष्य स्वर्ग-लोक को प्राप्त होता है।[6]

संन्यास वानप्रस्थ की अवधि पूरी होने पर आयु के चौथे भाग में संन्यास की दीक्षा लेकर एक दिन में पूरे होने वाले यज्ञ में अपना सर्वस्व दक्षिणा में डालकर संन्यास लेने का विधान है।[7] संन्यासी आत्मा का ही भजन करता है, आत्मा में ही रत होकर क्रीडा करता है।[8] आत्म-ध्यान का क्रम इस प्रकार है कि अपने भीतर ही

---

१. म० शान्ति २४३।१४।१६

२ म० शान्ति २४३।१६

३ एतांस्तु धर्मान् गार्हस्थ्यान् य कुर्यादनसूयक ।
सऋषिवरान् प्राप्य प्रेत्य लोके महीपते ॥ म० अनु० ९७।२३

४ म० शान्ति० २४४।४-५

५ म० शान्ति० २४४।६

६ म० शान्ति० २४४।१८

७. म० शान्ति० २४४।२२-२३

८ म० शान्ति० २४४।२५

तीनों अग्नियों की विधि-पूर्वक स्थापना करके देहपात तक प्राणाग्निहोत्र की विधि से यज्ञ करता रहे। संन्यासी का परम कर्त्तव्य है कि वह आत्मज्ञानी सुशील, और सदाचारी होकर क्रोध, मोह और संधि-विग्रह का त्याग करके सब ओर से उदासीन रहे।[1] संन्यासी के लिए केवल भिक्षा-धर्म ही मुख्य है।[2] संन्यासी न तो जीवन का अभिनन्दन करे और न मृत्यु का ही[3] इस प्रकार ब्रह्म का चिन्तन, आत्मा के साथ क्रीड़ा, आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति और संसार के कल्याण की कामना करना संन्यासी का परम धर्म है।

आधुनिक काव्य : आधुनिक कवि प्रतिबन्ध के द्वारा मानव-जीवन-विकास की सम्यक् व्यवस्था को स्वीकार करता हुआ आश्रम व्यवस्था की प्रतिष्ठा करता है। यद्यपि आज के व्यापक व्यावहारिक लोक-धर्म के अन्तर्गत आश्रमधर्म का समुचित पालन कठिन हो रहा है, क्योंकि आज की विकासोन्मुख वैज्ञानिक विकृतियों ने मानव के समक्ष ऐसे विकट प्रश्न उपस्थित कर दिये हैं कि उसके व्यवस्थित जीवन का आदर्श छिन्न-भिन्न हो गया है। आदर्श सामाजिक व्यवस्था के लिए आश्रम धर्म को उसके रूढ़ रूप में स्वीकार करना इस वैज्ञानिक युग के बुद्धिजीवी के सामर्थ्य में नहीं हैं। यही कारण है कि 'महाभारत' से प्रभावित काव्यों में आश्रम धर्म का सैद्धान्तिक विवेचन अनुपलब्ध है। कहीं-कहीं पर प्राचीन पात्रों के मुख से अतीत के संदर्भ में आश्रम-व्यवस्था के क्षय होने पर सामाजिक अव्यवस्था की घोषणा में ही आज के कवि की आश्रम-धर्म-प्रियता का आभास होता है।

'महाभारत' में आश्रम-धर्म-पालन से धर्म की रक्षा और अपालन से पाप का वर्णन है।[4] आज का कवि राष्ट्रीय और सामाजिक उत्थान के लिए उसी स्वर मे आश्रम धर्म-पालन का समर्थन करके, अपालन की स्थिति में राष्ट्र क्षय

---

१. म० शान्ति० २४४।२६

२. म० शान्ति० २४५।७

३. नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्। म० शान्ति० २४५।१५

४. म० शान्ति० २४२।१५

का चित्रण करता है।[1] आश्रम-धर्म के व्यतिक्रम पर गुप्त जी के दशरथ ग्लानि प्रकट करते हैं।[2] आश्रम धर्म से हीन व्यक्ति वैदिक नहीं हो सकता।[3] गुप्त जी की विधृता आश्रम धर्म के अपालनार्थ ही अत्यन्त क्षुब्ध है और क्रान्तिकारी वचन कह देती है। उसे दुःख है कि वह अतिथि के लिए आतिथेय के धर्म का पालन न कर सकी।[4] विधृता के दुःख की पृष्ठभूमि मे परम्परा का पालन व्यंजित हो रहा है, क्योंकि यदि हमने परम्परा का पालन नही किया तो भावी सन्तति भी आश्रम धर्म-पालन से वंचित हो जायेगी।[5] आश्रम धर्म के व्यवस्थित पालन को समाज-स्वस्थता का द्योतक मानते हुए गुप्त जी गृहस्थ धर्म[6] और सन्यास के बाद परम शान्ति[7] का प्रतिपादन करते हैं।

---

१ आश्रम धर्म भूलकर हमने
सीख लिया बस एक विराग,
क्यो न विदेशी दस्यु लूटते
विभव हमारा-भवकामाग। गुरुकुल, स० स० २००४, पृ० २२१

२ साकेत, स०-स० २००५, पृ० १२२

३ हिन्दू, पृ० ३०५

४ मुट्ठी भर भी जो न दे सके
दासो घी मैं आहा। द्वापर, स०-स० २०१६ पृ० ३१

५ जहा 'दीनता' तथा 'भुग्नता' मुख्य यही दो बातें,
जहा अतिथि हों आप देवता, आज वहीं ये घातें।
भूखे जाय वहा से वे हीं, जो अब नौ बालक हैं।
किन्तु हमारी परम्परा के प्रश्रय हैं, पालक हैं। द्वापर, पृ० ३२

६ उठते विचार ही परन्तु नहीं मन मे,
सहज विकार भी तो जागते हैं जन मे।
मिटने को उनसे गृहस्थता ही युक्ति है,
मुक्ति की ही ओर पहुचाती यह युक्ति है। हिडिम्बा, पृ० ३७

७ जब काल आवे सहज गति से शान्ति से विश्राम लें। जयभारत, पृ० ३११

गृहस्थ के लिए अतिथि सत्कार का स्थान सर्वोच्च है। 'दमयन्ती' के नल गृहस्थ धर्म का पूर्ण रूप से निर्वाह करते हैं।[१] 'जयभारत' के युधिष्ठिर दुर्वासा मुनि का सत्कार करते है।[२] द्रौपदी दुर्वासा के शाप से भयभीत नहीं है अपितु 'यह गार्हस्थ्य धर्म का ह्रास' कहकर सन्तप्त होती है।[३] गुप्त जी दोनों ओर से धर्म पालन पर बल देते हैं—ब्रह्मचारी और सन्यासियों का भी यह धर्म नहीं कि वे असमय में अनावश्यक रूप से गृहस्थ को संतप्त करें।[४] गृहस्थ का धर्म है कि वह अपना पेट न भरकर भी अतिथि को सन्तुष्ट करे।[५] धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती युधिष्ठिर को राज्य-सिंहासन पर बिठाकर वन की ओर प्रयाण करते हैं। युधिष्ठिर कुन्ती को रोकते है किन्तु कुन्ती उन्हें अपने धर्म पर अविचल रहने की शिक्षा देकर वन को चल देती है।

आश्रम-धर्म पालन की व्यवस्था यद्यपि आज के युग मे अधिक व्यापक नहीं है, किन्तु गुप्तजी ने कंस और उग्रसेन के प्रसंग में इसके व्यतिक्रम के दुष्ट परिणामों की विवेचना भी की है। उग्रसेन कहते हैं कि यदि हम अपने पुत्र को उसका राज्य देकर वन को जाते[६] तो कारागृह का कष्ट सहन न करना पड़ता।[७] जीवन के बौद्धिक दृष्टिकोण के कारण आज का कवि आश्रम-व्यवस्था की परम्परा का सिद्धान्त और क्रिया—दोनों रूपों में पालन नहीं कर सका है। युग-परिवर्तन के साथ जीवन की परिवर्तित मान्यताओं का परिवर्तित चक्र उक्त व्यवस्था को कभी-कभी 'रूढ़ि' मानने पर विवश कर देता है।

---

१. दमयन्ती, पृ० २८

२. जयभारत, पृ० २२८

३. जयभारत, पृ० २२९

४. देख हमारा दुर्व्यवहार, अवशगृही पर अत्याचार।
कौन करेगा किसी प्रकार, आगत का स्वागत सत्कार॥

जयभारत, पृ० २३०

५. जयभारत, पृ० ४३३

६. जयभारत, पृ० ४३४

७. उसका राज्य सौंप कर उसको, यदि हम वन को जाते,
तुम्हीं विचारो, तो हम क्यों इस कारागृह में आते?
लोभ वस्तुतः रहा हमारा, क्षोभ वृथा हम मानें,
नये कहां बैठें सोचो, यदि, हटे न यहां पुराने? द्वापर, पृ० १०१

राजधर्म वर्णधर्म के अग राजधर्म का विस्तृत वर्णन 'महाभारत' ने राज धर्मानुशासन पर्व मे किया गया है। 'महाभारत' मे राजधर्म की महिमा का गुणगान राजतन्त्रीय व्यवस्था के अनुरूप है। उस काल मे प्रजा और राजा के पुत्र पिता सबन्ध की कल्पना व्यापक रूप से फैली हुई थी। इस कारण राजधर्म का और राजनीति की व्यवस्थाओ का व्यापक वर्णन धर्म-व्यवस्था के सामाजिक रूप मे हुआ है। राजधर्म को समस्त धर्माचारो का आधार, सचालक और समस्त समाज व्यवस्था का केन्द्र मान कर[1] अन्य धर्मो को राजधर्म पर अवलम्बित और लोको को राजधर्म मे प्रतिष्ठित माना है।[2] 'महाभारत' परम्परागत राजतन्त्र का समर्थक है। अत कहा गया है कि धर्म के ज्ञाता आर्य पुरुषो का कथन है कि समस्त अन्य धर्मों का आश्रय तो अल्प है, फल भी अल्प ही है परन्तु, क्षात्रधर्म का फल महान् है और सभी धर्मो मे राजधर्म प्रधान है।[3] यही सम्पूर्ण जीव जगत् का परमाश्रय है।[4] वन मे विभिन्न आश्रमो मे रहकर लोग जितना धर्म करते हैं, उनकी रक्षा करने मे राजा उससे सौ गुना धर्म का भागी होता है।[5] यही नही, जो राजा प्रजा-परायण है, वह उत्तम धर्म फल को प्राप्त करता है।[6] राजधर्म की प्रतिष्ठा के साथ राजा के होने से लाभ और न होने से प्रजा के अनाश का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।[7]

राजा का कर्त्तव्य गजधर्म-वर्णन मे सब से अधिक बल राजा के कर्त्तव्यों पर दिया गया है। 'महाभारत' मे जिस प्रसग और अवसर पर राज्य-धर्म का उपदेश दिया गया है, वह प्रसग भी इस विस्तृत वर्णन का मुख्य कारण है। युद्ध मे हुए

---

१ यथा राजन् हस्तिपदे पदानि,
सलीयते सर्वं सत्वोद्भवानि।
एव धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान्,
सर्वावस्थान् सम्प्रलीनान् निबोध ॥ म० शान्ति० ६३।२५

२ म० शान्ति० ६३।२६

३ म० शान्ति० ६३।२७-२८

४ म० शान्ति० ५६।३

५ वनेचरन्ति ये धर्ममाश्रमेषु च भारत।
रक्षणात् शतगुणं धर्म प्राप्नोति पार्थिव। म० शान्ति ६६।४१

६ म० शान्ति० ६६।३६

७ म० शान्ति० अध्याय ६८, ७८

भयंकर नरसंहार से निवृत्ति की ओर जाने वाले युधिष्ठिर को प्रवृत्ति की ओर अग्रसर करने के हेतु इस उपदेश की उपस्थापना की गई। अतः यह आवश्यक ही था कि साधु-प्रवृत्ति नृपति युधिष्ठिर को कर्म-संग्राम में प्रवृत्त करने के हेतु उनके कर्त्तव्यों का वर्णन विस्तार से किया जाए।

राजा का प्रथम और प्रमुख कर्त्तव्य प्रजापालन है।[1] राजा को चाहिए कि वह धर्मपूर्वक, विवेक, विराग, यम, नियम शान्ति और सुमति से प्रजा की सुख-सम्पत्ति की अभिवृद्धि करे। उसे सत्यवादी, पराक्रमी, क्षमाशील, दयालु निश्चयात्मिका बुद्धिवाला, समय पर दान देने वाला, नीति-निपुण होना चाहिए।[2] चारों वर्णों की रक्षा और प्रजा को वर्णसंकरता से बचाना भी उसका सनातन धर्म है।[3] राजनीति के छः गुणों-सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधी भाव और समाश्रय-का अपनी बुद्धि से पालन करे।[4] न्याय और धन राज्य-व्यवस्था के मूल हैं, अतः राजा को न्याय में यमराज तथा धन में कुबेर के समान होना चाहिए।[5] इसके अतिरिक्त ब्राह्मण और धर्म के उपलक्ष्य से राजा के अनेक कर्त्तव्यों का विधान भी है, इनमें से कुछ कर्त्तव्य नितान्त वैयक्तिक हैं और कुछ राजनीति से सम्बन्धित। धर्म का आचार, प्रजापालन, सात्विकता, आदि गुण वैयक्तिक सीमा मे आते हैं। राजनीति की सीमा में आने वाले राजा के प्रमुख कर्त्तव्यों का वर्णन शान्ति पर्व के ६९वें अध्याय में विस्तार से हुआ है। इसमें गुप्तचर नियुक्ति, अन्यान्य वर्णों की विश्वास प्राप्ति, भृत्यों, स्त्रियो के प्रति कार्य-कुशलता, राजकीय आचार-व्यवहार, शत्रु के साथ नीति, मन्त्रिमंडल आदि की व्यवस्था पर विचार किया गया है। इनमें से अधिकांश तत्व तत्कालीन राज्य-व्यवस्था के नितान्त अनुकूल थे किन्तु आज की राज्य-व्यवस्था में उनकी उपयोगिता संदिग्ध है।

---

१. म० शान्ति ५६।१२

२. लोकरंजनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।

सत्यस्य रक्षणंचैव व्यवहारस्य चार्जवम्।

न हिंस्यात पर वित्तानि देयंकाले च दापयेत्।

विक्रान्तः सत्यवाक् क्षान्तो नृपो न चलते पथः॥ म० शान्ति ५७।११-१२

३. म० शान्ति ५७।१५

४. म० शान्ति० ५७।१६

५. म० शान्ति० ५७।१८

राज्य धर्मानुशासन पर्व के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रजा में समान भाव बनाये रखना भी राज्य-व्यवस्था का एक गुण है। यद्यपि समत्व की सैद्धान्तिक समीक्षा नहीं की गई किन्तु जिन बातों से अराजकता फैलती है उनमें असमानता को एक तत्व के रूप में माना गया है। राज्य-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए राजा को पुरुषार्थी, बल-संग्रही, धर्मानुरागी और पुण्यात्मा होना आवश्यक है। जो राजा धर्म को अर्थ सिद्धि की अपेक्षा बड़ा मानता है और उसी को बढ़ाने में मन बुद्धि का उपयोग करता है, वह धर्म के कारण अधिक शोभा पाता है।[1] राजा का पुरुषार्थी होना राजव्यवस्था के लिए परम आवश्यक है।[2] राजा के लिए प्रारब्ध और पुरुषार्थ में पुरुषार्थ ही सर्वोत्तम नीति है।[3] राजा के लिए बलसंग्रह को परमावश्यक बताया गया है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् बल के अधीन होता है।[4] बलवान व्यक्ति जगत् में सम्पत्ति, सेना और मंत्री सब कुछ पा लेता है।[5] बल धर्म से भी श्रेष्ठ है क्योंकि बल से धर्म की प्रवृत्ति होती है। धर्म सदा बल के अधीन चलता है।[6] अतः बल-संचय की राजा के लिये महती आवश्यकता है।

राज्यरक्षा के उपाय : राजधर्म के अन्तर्गत शान्ति पर्व के ५८वें अध्याय में राज्य-रक्षा के उपायों की चर्चा विस्तार से की गई है। राज्य-रक्षा के ये उपाय राज्य-व्यवस्था, नीति, युद्ध आदि के अनुरूप हैं। इन उपायों में राजदूत नियुक्ति, समय पर वेतन देना, प्रजा पर अन्याय न करना, कार्य-दक्षता, शूरता, शत्रु पक्ष में फूट डालना, बुद्धिमान् पुरुषों का सत्संग, सेना को पुरस्कार आदि वितरण, पुरवासियों

---

१ म० शान्ति० ६२।७

२ म० शान्ति० ५६।१४-१५

३ म० शान्ति० ५६।१६

४ म० शान्ति० १३४।३

५ श्रियो बलममात्यांश्च बलवानिह विन्दति। म० शान्ति० १३४।४

६ प्रतिधर्माद् बलं मन्ये बलाद्धर्मः प्रवर्तते।
बले प्रतिष्ठितो धर्मो धरण्यामिव जंगमम्॥ म० शान्ति १३४।६

की गुट बन्दी में फूट, सदा उद्योगशील बने रहना[1] आदि प्रमुख उपाय राज्य की रक्षा के लिए बताये हैं। इन उपायों के साथ उद्योगशीलता राजा का प्रमुख धर्म और राज्य-रक्षा का मुख्य आधार माना है।[2] उद्योगहीन राजा सर्वदा शत्रु से परास्त हो जाता है।[3]

नीति और राज्य-रक्षा के उपाय-स्वरूप दंड-नीति की महत्ता निर्विवाद रूप में उपस्थापित की गई है। दंड-धर्म के अन्तर्गत यह स्पष्ट कहा गया है कि अपराध करने पर राजा अपने व्यक्ति को भी दंड दे।[4] धार्मिक अनुग्रह और दंड दोनों धर्मों के कारण राजा परमेश्वर और यम के समान होता है।[5] राजा अपने दंड-धर्म के कारण समस्त वर्णों को व्यवस्थित और आचारों का नियमन करता है। दंड की महत्ता सर्वोपरि है, उसके अभाव में प्रजा में पाप की वृद्धि होती है। राजा स्वयं दुर्बल हो जाता है और जिसका अन्तिम परिणाम राज्य-विसर्जन होता है। राजा के द्वारा क्षमा और दंड के विषय में 'महाभारत' की दृष्टि अत्यन्त सन्तुलित है। 'महाभारत' स्पष्ट घोषणा करता है कि क्षमा सर्वदा ही उचित नहीं होती, अनधिकारी को क्षमा करने से अधर्म की वृद्धि होती है।[6]

आधुनिक काव्य : 'महाभारत' के राजधर्म का प्रभाव आधुनिक काव्य में प्रत्यक्ष रूप से पड़ा है। यद्यपि महाभारतकालीन राज्य-व्यवस्था और आधुनिक राज्य-व्यवस्था में अन्तर है तथापि राज्य और राजधर्म के साथ कुछ ऐसे तत्व शाश्वत रूप से विद्यमान हैं जो युग की संकुचित सीमा से पृथक् सार्वकालिक है। 'महाभारत' का

---

१. म० शान्ति० ५८।५-१२

२. म० शान्ति ५८।१४-१५

३. म० शान्ति ५८।१६

४. म० शान्ति ६१।३५

५. म० शान्ति० ६१।८२

६. म० शान्ति० ५६।३७

मूल उद्देश्य एक ऐसे विराट् महाराष्ट्र का निर्माण करना था जिसमे क्षेत्रीय सीमाओं से उठकर राजा और प्रजा विराट् संस्कृति तथा महान् साम्राज्य की कल्पना कर सकें। 'महाभारत' के राजसूय प्रसंग मे जिस राष्ट्रीय भावना का व्यापक विस्तार मिलता है वह आज भी अनुकरणीय है। उस युग मे राजतन्त्रीय व्यवस्था में चक्रवर्ती राजा की कल्पना विद्यमान थी और आधुनिक युग मे परतन्त्रता और स्वतन्त्रता के काल में भारत राष्ट्र की सीमा के अन्तर्गत अखंड राज्य की स्थापना की भावना है। स्वतन्त्रता से पूर्व लिखे गये 'महाभारत' से प्रभावित प्रबन्ध काव्यों मे 'महाभारत' की विराट् भावना के अनुकूल आर्य-राज्य-संस्थापन की भावना पल्लवित हो रही थी। जिस अर्थ मे 'महाभारत' मे राजधर्म को समस्त धर्माचारों का आधार और संचालक कहा गया है। उसी भावना के अनुरूप आधुनिक काव्य मे राजधर्म की विवेचना हुई है। जो राजा है और जिसके ऊपर शासन-व्यवस्था का भार है, जिसने अपने राष्ट्र की रक्षा करते हुए विश्वशान्ति मे महान-योग देना है। ऐसे क्षत्रिय और राजधर्म का परमकर्तव्य धर्म की रक्षा करना है।[1] अतः राजधर्म ही जीवन का धर्म है।[2]

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यो के नायक राज-धर्म की महत्ता मे विभूषित है। राजा का प्रथम कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करते हुए आर्य-साम्राज्य की व्यवस्था करना

---

१ क्षत्रिय हो, राजधर्म चाहता है तुमसे

जीवन धनुष पर तीर रक्खो प्राण का

धर्म वीटिका पड़ी हो यदि कूप में

तो निकालो शीघ्र उसे लक्ष्य बेध करके। एकलव्य, पृ० १६

२ हम सब उसको निभावेंगे सदैव ही,

क्षत्रिय हैं, राजधर्म जीवन का धर्म है। एकलव्य, पृ० २०

× × ×

रच्छन जनजो हरि पदमूला, ममभत सोई सब धर्मन मूला।

अन्य धर्म बहु सशय कारी यह प्रभस सर्वहित कारी।।

कृष्णायन, पृ० ८२६

है। अर्जुन आर्य-साम्राज्य की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है।[1] युधिष्ठिर के चरित्र में राज्य धर्म की प्रतिष्ठा अत्यन्त उच्च आदर्शों के आधार पर हुई है। 'जय-भारत' के अर्जुन और युधिष्ठिर महाभारतीय पात्रों की उच्च भावना से विभूषित हैं। युधिष्ठिर के आदर्श चरित्र में भारत की शरणागत रक्षा की परम्परा सजीव रूप से विद्यमान है।

'महाभारत' का मुख्य उद्देश्य धर्म की स्थापना है। 'सेनापति कर्ण' में कवि उस महान् उद्देश्य के लिए प्रत्येक सम्भव प्रयत्न का समर्थन करता है। राजधर्म में नीति का स्थान आदर्श से भी ऊपर है। कृष्ण के शब्दों में शक्ति की आवश्यकता पर बल दिया गया है[2] और शत्रु की शक्तिहीनता तथा मित्र की शक्ति का समर्थन है।[3] प्रजा-पालन राजा का राष्ट्रीय और आन्तरिक कर्त्तव्य है किन्तु साम, दाम, दंड और भेद किसी भी नीति से राष्ट्र-रक्षा उससे भी महान् धर्म है।[4] व्यक्तिगत स्वार्थ और अधर्म के विनाश-हेतु युद्ध राजधर्म का अनिवार्य अंग है।[5] राज्यधर्म की छत्र

---

१. अवशेष आर्य शासन लाना,
पर क्या वह मुझे अलग पाना। जयभारत, पृ० १२१

२. भीम शरणागत का अपमान?
कहां है आज तुम्हारा ज्ञान? जयभारत, पृ० २०७

३. शक्ति दम्भ भारत से मुझको मिटाना है।
आत्मबल हारता रहा जो शस्त्र बल से,
जड़ के अधीन सदा चेतन बना रहा;

× × ×

सत्य हो कि नीति हो उसे ही मानता हूं मैं
जनमन रंजन की जिससे भुवन में
वैरी बल हीन बनें मित्र बलशाली हों। सेनापति कर्ण, पृ० २०६

४. एकलव्य, पृ० २६५-६६, शल्यवध, पृ० ११३, द्वापर, पृ० १११

५. औ समर तो और भी अपवाद है,
चाहता कोई नहीं इसको,
मगर जूझना पड़ता सभी को,
शत्रु जब आ गया हो द्वार पर ललकारता।
कुरुक्षेत्र, पृ० २४

छाया मे न्याय प्राप्ति-हेतु लड़ना पाप नहीं।[1] राजा का धर्म है कि वह प्रजा में भय का वातावरण हटा कर निर्भयता का प्रचार करे 'दमयन्ती' मे नल महाभारत-वर्णित राजधर्म के उच्च आदर्शों का पालन करते हैं।[2] आधुनिक कवि आज के राजनैतिक कटुतापूर्ण वातावरण मे प्राचीन आदर्शात्मक राज्यधर्म की पुनर्स्थापना करना चाहता है। दुर्योधन का पक्ष इस दृष्टि से असत्य का पक्ष है। अत सामान्यत उसका विरोध करके पाण्डवो के पक्ष का समर्थन किया गया है। 'अंगराज' के कर्ण के सुशासन मे उच्चादर्शों की व्यवस्था है।[3] राजा के अधिकार को मानते हुए भी आधुनिक कवि प्रजा के अधिकारो की उपेक्षा नही कर सकता। आधुनिक युग मे राजा के लिए दैवी सिद्धात की स्वीकृति नि शेष हो चुकी है। राजा प्रजा का प्रतिनिधि है उसके उत्तराधिकार का प्रश्न भी प्रजा की शक्ति की सीमा मे आता है। आधुनिक कवियो मे गुप्त जी राज्यतन्त्र के प्रतिनिष्ठावान् हैं, तथापि उनके काव्यों मे गणतन्त्र, प्रजातन्त्र आदि अनेक व्यवस्थाओ का प्रतिपादन भी है। कवि गणतन्त्र के विधान को सामाजिक बौद्धिकता का उत्कर्ष मानता है, राजा-प्रजा को सहभागी बनाकर एक व्यापक राष्ट्रीय समत्व की स्थापना करता है।[4][5] गुप्त जी के राजतन्त्र का आदर्श रामराज्य है और आदर्श राजा है राम। इसके साथ गुप्तजी की दृढ धारणा है कि सामान्य व्यक्ति अपने स्वार्थों के कारण सदाक्तता से श्रेष्ठ निर्वाचन

---

१ किसने कहा, पाप है समुचित
    स्वत्व-प्राप्ति हित लडना ?
  उठा न्याय का खड्ग समर मे
    अभय मारना-मरना। कुरुक्षेत्र, पृ० ३५

२ न नृप से भी है ऐसी भीति
  कि बल को वह लेगा भू छीन
  और हम रह जायेंगे दीन। दमयन्ती, पृ० २२

३. स्तम्भ बनाकर सत्य अहिंसा न्याय धर्म को।
  नृप ने किया प्रतिष्ठ लोक-सभ्यता-सद्म को॥
  किया देश व्यापक प्रचार विद्या-कौशल का।
  ज्ञान नाम का मिला सभी को बल निर्बल का। अंगराज, पृ० ३६

४ वे ही हम जो बुद्धि निधान, करते थे गणतन्त्र विधान। हिन्दू, पृ० २९८

५ राजवश भी रहे प्रजा के साथ सदा समभक्त। पृथ्वीपुत्र, पृ० २७

करने में असमर्थ रहते है[1] अतः शक्तिशाली को स्वयं ही उनका नेतृत्व करना अपेक्षित है। गुप्त जी प्रजातन्त्र की शासन-प्रणाली को दोषयुक्त मानते है, यद्यपि ये दोष प्रजा के ही है।[2] तथापि प्रजा की त्रुटियों का मूल राजा है। 'महाभारत' में प्रजा के समस्त कार्यों का उत्तरदायी राजा है, उसी रूप में गुप्त जी ने राजा-प्रजा को उत्तरदायी माना है।[3]

आधुनिक प्रमुख कवियों ने आदर्श राजा और प्रजा की कल्पना की है। इसकी मूल प्रेरणा 'महाभारत' है। आदर्श राजा के लिए प्रजापालन ही सर्वोपरि धर्म है।[4] 'जयभारत' के शान्तनु स्वयं कष्ट सहने के पक्ष में हैं, किन्तु वे प्रजा को कष्ट नही देना चाहते।[5] यदि राजा-प्रजा-धर्म का निर्वाह करने में असमर्थ है तो उसे पद त्याग कर देना उचित है।[6] यदि राजा निरंकुश और अत्याचारी है तो समय आने पर उनका नाश अवश्यमभावी है।[7] राजा केवल प्रजा के पालन के लिए जीवित रहे यदि वह अपने कार्य में अशक्त है तो उसे त्याग देना ही उचित है।[8]

---

१. स्वयं श्रेष्ठ को चुन लेने में लोक आज असमर्थ।
आसपास के स्वार्थो तक ही लोगों के व्यापार॥ जयभारत, पृ० १३९

२. राजा प्रजा, पृ० २७

३. राजा प्रजा, पृ० ६६

४. मंगलघट, पृ० ६६

५. मेरा जो हो, पाय न मेरी प्रजा हाय! वाधाव्याघात!
जयभारत, पृ० ३४

६. वक संहार, सं० सं० २००२, पृ० २२

७. ओ सत्ता मदमत्त! आज भी आंखें खोल अभागे।
वह साम्राज्य स्वप्न जाने दे, जाग, सत्य यह आगे॥ द्वापर, पृ० १०६

८. राजा प्रजा के अर्थ है,
यदि वह अपटु असमर्थ है

× × ×

यदि वह प्रजापालक नहीं तो त्याज्य है। वक संहार, पृ० २२

जिस देश की प्रजा सुखी और समृद्धिशाली है उस देश का राजा भी धन्य है।[१] इस प्रकार 'महाभारत' के आदर्श राजधर्म का व्यापक चित्रण इन कवियों की लेखनी से आधुनिक युग के परिवेश में हुआ है। द्वारकाप्रसाद मिश्र भारत में एक सुदृढ केन्द्रीय साम्राज्य की स्थापना की आवश्यकता पर बल देते हैं। यह आदर्श भगवान् कृष्ण के आदर्श का आधुनिक रूप है। जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर कृष्ण ने युद्ध का समर्थन किया था उसी उद्देश्य को आधार मानकर मिश्र जी विशुद्ध आर्य-साम्राज्य की कल्पना करते हैं।[२] दिनकर व्यक्तिगत स्वार्थ के हित प्रजा को दुःखी करने वाले राजा के विरुद्ध विद्रोह का समर्थन करते हैं। दिनकर के भीष्म को यही दुःख है कि यदि उन्होंने न्याय का पक्ष लिया होता तो सम्भव था कि दुर्योधन कुछ सम्हलकर पैर उठाता और इतना भारी नर-संहार न होता।[३] युधिष्ठिर की अतिरिक्त सहनशीलता को दिनकर राजधर्म के प्रतिकूल मानते हैं।[४] उनका सिद्धान्त है कि सहनशीलता असमय में अराजकता को जन्म देती है, जिससे भयंकर विस्फोट की आशंका रहती है, और समय आने पर यह विस्फोट अवश्य होता है।[५] अतः राजा का धर्म है कि वह सम भाव से शासन करे और प्रत्येक का अधिकार सुरक्षित रखे।

युद्ध और राजधर्म

'महाभारत' में राजधर्म के अन्तर्गत दण्ड विधान का व्यापक वर्णन है। दंड राजा का परमधर्म है क्योंकि वह सभी व्यवस्थाओं का आधार है। राजनीति के दो मुख्य मार्ग हैं। गृह-व्यवस्था और युद्ध। गृह-व्यवस्था से सम्बन्धित बातों पर विचार हो चुका है। युद्ध नीति का अनिवार्य अंग है, इसी कारण राजधर्म के अन्तर्गत

---

१ दमयन्ती, पृ० २३

२. कृष्णायन, पृ० ९०९

३ राजद्रोह की ध्वजा उठाकर

कहीं प्रचारा होता।

× × ×

स्यात सुयोधन भीत उठाता

पग कुछ अधिक सँभल के। कुरुक्षेत्र, पृ० ७४

४ कुरुक्षेत्र, पृ० २७,४१,६३

५ कुरुक्षेत्र, पृ ४८

सैन्यनिर्माण, व्यूह-निर्माण, गुप्तचर-विभाग आदि की व्यवस्था पर बल दिया गया है। यद्यपि अहिंसा के आधार पर निर्मित शासन-प्रणाली की प्रशंसा की गई है तथापि प्रतिरक्षा पर भी पर्याप्त विचार किया है। 'महाभारत' से प्रभावित आधुनिक काव्य में तत्कालीन युद्ध नीति का विस्तृत वर्णन इसलिए मिलता है कि कवि उस काल के युद्ध का चित्रण करता है किन्तु वह युद्ध नीति कुछ विभागों में आज पुरानी पड़ गई है। आज का कवि युगीन विचारधारा के कारण युद्ध, हिंसा, अहिंसा-त्याग का विवेचन राजनीति की दृष्टि से करता है। सभी काव्यों में शक्ति संचय पर बल दिया है। बलको ही समस्त धर्म का आधार माना है[1] और सैन्य-शिक्षा की अनिवार्यता स्वीकार की है।[2] न्याय की स्थापना के हेतु राज धर्म का अंतिम उपाय युद्ध है।[3] जहा न्याय की रक्षा नही होती, और राजा अत्याचारी हो जाता है, वहां विद्रोह होता है अतः राजनीतिक आवश्यकता के रूप में राजा को समानता, न्याय एवं धर्म का अनुकरण अपेक्षित है। असमानता के आवरण में विस्फोट की ज्वाला धधकती है और एक न एक दिन भयंकर विस्फोट होता है। दिनकर के भीष्म 'महाभारत' के वातावरण की सीमा मे युधिष्ठिर को राजा के कर्त्तव्यों की शिक्षा देते है, जिससे शान्ति की स्थापना हो।

राजधर्म के क्षेत्र मे आततायी को दंड देना सर्वोत्तम विधान है। आततायी को दंड देने से राजा को कलक नही लगता अपितु स्वत्व छीनने वाला उद्दड स्वयं ही अपने नाश का उत्तरदायी होता है।[4]

---

१. धन से आता है धर्म, धर्म से बल है,
बल से आता है धन जगती में निश्चय,
इन तीनों का है ध्येय व्यक्ति का सुख ही
जिसमें जितना बल हो वह उतना भोगे ॥ पांचाली, पृ० ५५

२. सैन्य शिक्षा भी है अनिवार्य
सभी गुरुकुल करते हैं कार्य। दमयन्ती पृ० २२

३. जब ध्वस्त उपाय सभी हों, तब न्याय सृष्टि के हित ही,
क्षत्रिय को रण के पथ में जाना तब धर्म्य, वरद है। कौंतेय कथा, पृ० ७६

४. कुरुक्षेत्र, पृ० १७,२०, ३७

कृष्ण अर्जुन से 'महाभारत' के युद्ध मे पाण्डवो की सहायता करने के कारणो पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—जो राजास्वार्थ वश दूसरे के राज्य का हरण करता है, उसको दड देना उससे बडे राजा का कर्त्तव्य है, और इसी कारण मैंने तुम्हारा साथ दिया।[1] 'जय भारत' के युधिष्ठिर कर्त्तव्य की कठोरता के प्रकाश मे अपने युद्ध धर्म की विवेचना करते हैं जिसका निष्कर्ष यह है कि राज्य-धर्म से प्रेरित होकर ही युद्ध किया गया।[2] युद्ध उस समय तक पृथ्वी पर अनिवार्य आवश्यकता के रूप मे विद्यमान रहेगा जब तक समस्त भूतल हिंस्र प्रवृत्ति का त्याग नही करेगा।[3] ऐसी परिस्थिति मे युद्ध ही महान् राजधर्म है। आधुनिक कवियो ने युद्ध का स्थिति-सापेक्ष समर्थन करते हुए भी उसे एक मात्र उपाय के रूप मे स्वीकार नही किया। महाभारतकार ने भी युद्ध की भयकरता के उपरान्त युधिष्ठिर को शान्ति हेतु और मानवता की रक्षा के लिए राजधर्म मे दीक्षित किया[4] उसी भावना के आधार पर आज का कवि भी शान्ति के लिए त्याग, तप, दया आदि की व्यवस्था को स्वीकार करता है।[5]

'महाभारत' की धर्म-विधि का आधुनिक काव्य पर प्रभाव देखते हुए एक बात विशेष रूप से आधुनिक काव्य मे द्रष्टव्य है कि यह प्रभाव परम्परागत दृष्टि से ही न होकर 'महाभारत' से मूलत सम्बद्ध होते हुए भी सामयिक आलोक मे हुआ है। मानव-धर्म स्त्री-धर्म, राजधर्म के अन्तर्गत 'महाभारत' की विचारधारा का

---

१ हरत जो स्वार्थ हेतु परराजू,
करत सो अधी समाज अकाजू।
× × ×
निहित राज्य महं जनकल्याणा,
होत न तासु दान प्रतिदाना।
लीन्ह तुम्हार पक्ष मे यहि रण। कृष्णायन, पृ० ८३३

२ दोष नहीं मेरा, यदि है तो क्षात्र धर्म का।
हम अपराधी निज धर्म पालने के हैं
वह है विगुण तो हमारा अपराध क्या? जयभारत, पृ० ४०९

३ कुरुक्षेत्र, पृ० ४१

४ म० शान्ति० अध्याय २३-२४

५ क उपाय से सचय राष्ट्र शक्ति का, प्रभाव से शासन लोक वर्ग का।
समाज का पालन सद्विचार से, यही प्रजारजक राजधर्म है।
अगराज, पृ० १२६

ख स्नेह बलिदान होंगे माप नरता के एक,
धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से॥ कुरुक्षेत्र, पृ० १५४

अधिक अनुकरण हुआ है किन्तु वर्णाश्रम धर्म की सीमा में आधुनिक काव्य में 'महा-भारत' के अनुकरण की अपेक्षा युगीन दृष्टि-सापेक्ष विवेचना अधिक है। आज का कवि समाज-चिन्तक है, अतः वह मूलरूप में एक स्रोत 'महाभारत' से स्वीकार करता है और फिर स्वतन्त्र रूप से अपने युग की समस्याओं का विश्लेषण करता है। कवि का विस्तृत मानसिक प्रवाहधारा में सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर महाभारतीय विचार-धारा की झलक दिखाई दे जाती है। 'महाभारत' में जिस प्रकार धर्म की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है, उसी प्रकार आधुनिक कवि भी धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है और धर्म की स्थापना के लिए बार-बार जनार्दन के अवतरण की कामना करता है।

जब तक न मनुज का धर्म भूमि पायेगा
आयेंगे सदा जनार्दन मेरे जैसे
जो धर्म स्थापना हेतु लड़ेंगे अविरत।[1]

---

१. पांचाली, पृ० २२

महाभारत के दर्शन का प्रभाव

महाभारत-पूर्व-युग
महाभारत-युग
आधुनिक काव्य

सप्तम अध्याय

महाभारत के दर्शन का प्रभाव

भारतीय दर्शन : दृष्टिकोण

मानव को अपने परिवेश और अपने प्रति जिज्ञासा ही 'दर्शन' का मूल कारण है। 'दर्शन' शब्द की व्युत्पत्ति 'दृश्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'देखना'। हमारे नेत्र बाह्य पदार्थों का दर्शन करते हैं, यह बाह्य विषय है। हमारी बुद्धि ज्ञान द्वारा तथा आत्मा 'अनुभूति' द्वारा जिन सूक्ष्म तत्वों का विश्लेषण और अनुभव प्राप्त करती है, उनका क्रमबद्ध स्वरूप ही 'दर्शन' या दर्शन-शास्त्र कहलाता है।[1]

भारत अत्यन्त प्राचीन देश है और यहां के आर्यों की प्रवृत्ति सर्वदा जीवन के उच्चतम मूल्यों को प्राप्त करने की ओर रही है। यही कारण है कि जहां अन्य दर्शन ऐन्द्रिय प्रवृत्तियों के विश्लेषण में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री मान लेते हैं, वहां भारतीय दर्शन एक उद्देश्यपूर्ण, साधन-प्रधान जीवन-दृष्टि है।[2] भारतीय दर्शन विश्लेषण मात्र नहीं है, वह जीवन-परिपाटी भी है।

नास्तिक मतों को छोड़कर प्राय समस्त भारतीय 'दर्शन' 'आत्मा' के अस्तित्व को स्वीकारते हैं और देहबद्धता को कष्टों का कारण मानते हैं। आत्मा के ही व्यापक स्वरूप ब्रह्म को जीवन का परम लक्ष्य मानकर मोक्ष-प्राप्ति के उपायों का अवलंबन भारतीय दर्शनों का अभिधेय है। भारतीय दर्शन का सर्वदा जीवन-धर्म से सम्बन्धित रहने का भी यही प्रमुख कारण है।[3]

भारतीयदर्शन जीवनानुभूति की नवता को सर्वदा धारण करते रहे हैं और मानव की चिर संघर्षशील परिस्थितियों में उनका विकासक्रम घटित होता रहा है। वेद-पूर्व प्रकृति परता, टोटम पूजा एवं जगत्कर्ता के प्रति रहस्यमय विश्वासों में से भारतीय आर्यों ने वैदिकयुग में मीमांसा-दर्शन को जन्म दिया। [पूर्व मीमांसाकर्मकांड प्रधान था तो उत्तर-मीमांसा ज्ञान-प्रधान हुई। प्रकृति के सूक्ष्मतत्व और पुरुष के ज्ञान ने 'सांख्य' को जन्म दिया तो ध्यान-धारणा-समाधि की मोक्षानुकूलता से 'योग' उत्पन्न हुआ। 'न्याय' ब्रह्म, जीव एवं जगत् की स्थापना की विशिष्ट-प्रतिपादन शैली पर आधृत हुआ तो उसी के वस्तु-विचार रूप में 'वैशेषिक' का विस्तार हुआ। इन छः दर्शनों को भारतीय तत्व-ज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ज्ञान-परम्परा के अनेक नवीन सोपानों में ढलता हुआ भारतीय वेदान्त परमात्मतत्व प्राप्ति के लिये भारतीयों को

---

१ भारतीय दर्शन, पृ० ३-४

२ तुलसीदर्शनमीमांसा, पृ० १८

३ *"The Philosophy of Rabindranath"*, p 31.

निरंतर प्रेरित करता रहा है और आज के भारत का सम्मान भी विशेषकर उसकी दार्शनिक थाती के कारण ही होता है। वस्तुत: जिस प्रकार पुष्प का पराग, ज्योत्स्ना की स्वच्छता, सूर्य का तेज अपने मूलाधार के अस्तित्व से अभिन्न है तद्वत् भारतीय चिन्ताधारा और 'दर्शन' का भी अभेद्य संबध है।

महाभारत : भारतीय दर्शन का विश्वकोश : भारतीय दर्शन की विकास-परम्परा में 'महाभारत' का महत्वपूर्ण स्थान है। 'महाभारत' से पूर्व वेद, उपनिषद् आदि आर्ष ग्रन्थों में जिस दार्शनिक विचारधारा का विकास सहस्त्रों वर्ष में हुआ उसके विभिन्न रूपों का संग्रन्थन 'महाभारत' के कलेवर में हुआ। उपनिषदों में जो तत्वज्ञान साधना और सिद्धि दोनों दृष्टियों से प्रौढ़ि प्राप्त कर चुका था उसी को समन्वित, व्यवहृत और नवीन रूपों में ढालने का कार्य 'महाभारत' में हुआ है। 'महाभारत' का दृष्टिकोण अपने युग में फैले हुए समस्त जीवन-चिन्तनों को सूत्रवद्ध कर उनके आधार पर ऐसे अविरोधी साधन पक्ष का निर्माण करने का रहा है, जो न केवल किसी विशेष युग में अपितु युग-युग तक मानव जीवन को अनुप्राणित करता रहेगा। 'महाभारत' के चिन्तन की सूक्ष्म शिराएं इतनी व्यापक है कि उसमें भारतीय जीवन का अतीत, वर्तमान और सम्भावित भविष्य सभी एक साथ प्रत्यक्ष होने लगता है। अत: जीवन के अन्य अंगों के साथ ही दर्शन की दृष्टि से भी 'महाभारत' को भारतीय दर्शन का विश्वकोश कहा जाता है।[१] 'महाभारत' में योग[२], सांख्य[३], पांचरात्र[४], पाशुपत[५] वेदान्त[६] आदि प्रमुख दार्शनिक मतों के साथ उन असंख्य विचार धाराओं का भी उल्लेख हुआ है जो आज परम्परा के रूप में हमारे समक्ष नहीं है।

महाभारत-पूर्व युग में दर्शन : वेदों में भारतीय मेधा की विभिन्न अतिप्राकृत शक्तियों के प्रति आदिम जिज्ञासा मन्त्रवद्ध है, और साथ ही परमात्मा के उस व्यापक निर्विकार, सर्वोपरि स्वरूप की समग्र अनुभूतियां भी संचित है, जो दर्शन की विकसित अवस्था की द्योतक हैं। अनेक पश्चिमी विद्वान् वेदों को वहुदेववाद की अवस्था

---

१. *"Mahabharata as fifth Veda".—Journal of the American Oriental Society, Vol. 13, p. 112.*

२. म० शान्ति० अध्याय ⋍४०

३. म० शान्ति० अध्याय ३१०

४. म० शान्ति० अध्याय ३३४-३५१

५. म० शान्ति० अध्याय १७-१८

६. हिन्दुत्व, पृ० ५६१-६२

तक विकसित मानते हैं।[1] अन्य लोग वेदो मे बहुदेववाद से भी पश्चात् की ब्रह्म की अद्वैत स्थिति को स्वीकार करते है, जहा ब्रह्म को ही जगत् का मूल तत्व स्वीकृत किया गया है। विभिन्न देवता उसी 'एक' के अग हैं और उसी एक की मान्यता विभिन्न रूपो मे होती है, ऐसा स्पष्ट उल्लेख है।[2] फिर भी यह निश्चित है कि शास्त्र की दृष्टि से किसी विशिष्ट दर्शन की स्थापना वैदिक काल मे नही हुई थी। जिन्हे वैदिक दर्शन कहा जाता है, उनकी विधिवत् स्थापना तो परवर्ती काल मे वैदिक सिद्धान्तो के आधार पर विभिन्न ऋषियो द्वारा की गई है। वैदिक कर्मकाड के आधार पर पूर्व मीमासा का विकास हुआ तथा वेदो के परवर्ती भाग-उपनिषदो के आधार पर उत्तर मीमासा या वेदान्त का। साख्य तथा योग की परम्पराए 'महाभारत' से पूर्व की हैं और इन दोनों का पर्याप्त उल्लेख 'महाभारत' मे हुआ है। न्याय और वैशेषिक की नीव भी महाभारत पूर्व युग मे पड चुकी थी, यद्यपि उनके विधिवत् सग्रन्थन की तिथियो के सबध मे पर्याप्त विवाद है।

चार्वाक तथा अन्य भौतिकवादी दर्शनो के कारण भी महाभारत पूर्व युग म पर्याप्त अव्यवस्था रही। चार्वाक मत ने एक ओर आध्यात्मिक बधनो को अस्वीकार कर समाज मे उच्छृ खलता को जन्म दिया था तो पूर्णकश्यप के अक्रियावाद ने भी उसी प्रकार सामाजिक वैश्रृखल्य को उत्तेजित किया। उसके दार्शनिक सिद्धान्तो की अन्तिम परिव्याप्ति थी 'किसी भी क्रिया का, फल चाहे वह शुभ हो या अशुभ कर्त्ता को भोगना नही पडता है। चोरी करने से, बटमारी करने मे, पर-स्त्री गमन करने से, झूठ बोलने से न तो पाप किया जाता है, न पाप का आगम होता है। इसी प्रकार दान देने से, दान दिलाने से, यज्ञ करने मे या कराने से न पुण्य होता है, न पुण्य का आगम होता है।[3] प्रक्रुध कात्यायन के शाश्वतवाद मे, सजय बेलिट्ठपुत्त के अनिश्चिततावाद मे मक्खलिगोसाल के नियतिवाद आदि मे भी ऐसे ही तत्व भरे पडे थे। वस्तुत 'महाभारत' का पूर्वकाल भारतीय चिन्तन के लिये भीषण आघात का काल था जब एक ओर से वैदिक धर्म पर जैन और बौद्ध जैसे लोक-प्रचलित दर्शन छाने लगे थे तथा दूसरी ओर अनेक भौतिकवादी तथा समाज विरोधी-दर्शन उसे छलनी बनाने मे लगे थे। इस पृष्ठ भूमि में 'महाभारत' के दार्शनिक चिन्तन का अत्यधिक महत्व है क्योंकि उसने नास्तिक दर्शनो की प्रतारणा करते हुए समस्त वैदिक दर्शनो मे समन्वय का, तत्कालीन उदित पाचरात्र मत के सिद्धान्तो के आधार पर दार्शनिक पुनर्स्थापना की।

---

१ *"The Rik is polythestic—The Crown of Hinduism, 1915, p 72-73*

२ महाभाग्यात् देवताया एक एव आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्य आत्मन अन्ये देवा प्रत्यगानि भवन्ति ॥ निरुक्त ७।४।८-९

३. भारतीय दर्शन, पृ० ६७

महाभारत के प्रमुख दार्शनिक सम्प्रदाय

उपनिषद्-काल से सूत्रकाल तक का सम्पूर्णदार्शनिक विचारधारा का विकास 'महाभारत' में प्राप्त होता है। सांख्य, योग, पांचरात्र, वेदान्त और पाशुपत मत 'महाभारत' में प्रसिद्ध थे।

सांख्यं योगः पांचरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै ॥[1]

यद्यपि इन मतों में भी परस्पर विभिन्न विचारधाराओं का उल्लेख हुआ है फिर भी यह निश्चय है कि 'महाभारत' के प्राचीनतम भाग से विकसित स्वरूप तक इन मतों की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। सांख्य और योग की चर्चा 'महाभारत' में प्राचीन मत के रूप में हुई है।[2] पांचरात्र और पाशुपत वेदान्त मत का विकास भी 'महाभारत' में हो चुका था। इन मतों की विशेष चर्चा इस ग्रन्थ में उपलब्ध है।

योग दर्शन : श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि योगदर्शन सांख्य से प्राचीन है। वस्तुतः 'महाभारत' में योग के आदि उपदेष्टा के रूप मे हिरण्यगर्भ का नाम लिया गया है। जिससे स्पष्ट है कि इस मार्ग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और उसका आरम्भ इसीलिए किसी एक व्यक्ति से न मान कर ब्रह्मा से माना गया है। 'महाभारत' के परवर्ती काल में महर्षिपतंजलि ने योगशास्त्र का व्यवस्थित संकलन और सम्पादन किया अतः वे ही उसके नियमित आचार्य माने जाते हैं। योग का स्पष्ट आधार उपनिषदों में प्राप्त है। कठोपनिषद् में योग की परिभाषा करते हुए कहा गया है—

तामयोगमिति मन्यन्ते स्थिराभिन्द्रियधारणम्।
अप्रमत्तस्तदाभवति योगोहि प्रभवाप्ययौ ॥[3]

अर्थात् मन और इन्द्रियों की अप्रमत्त धारणा का नाम ही योग है।

'महाभारत' मे भी योग की यही परिभाषा की गई है। शान्ति पर्व में व्यास जी का कथन है—

एकत्वं बुद्धि मनसोरिन्द्रियाणां च सर्वशः
आत्मनो व्यापिनस्तात ज्ञान मेतदनुत्तमम्।[4]

अर्थात् इन्द्रिय, मन और बुद्धि की वृत्तियों का सब ओर से निरोध कर सर्वव्यापी आत्मा के साथ उनका एकत्व ही योग है। उक्त परिभाषाओं का सारसंकलन ही

---

१. म० शान्ति ३४९।६४
२. म० शान्ति० ३०८।४५-४६
३. कठ० २।३।११
४. म० शान्ति० २४०।२

तञ्जलि ने 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध'[1] नामक सूत्र में प्रस्तुत कर दिया है।

'महाभारत' का योग शब्द अनेक स्थलो पर विविध अर्थों मे प्रयुक्त है। विभिन्न साधन मार्गों को भी यहा योग कहा गया है, जैसे साख्ययोग, कर्मयोग-ज्ञानयोग इत्यादि। योग शास्त्र के पारिभाषिक अर्थों मे भी ध्यानयोग आदि की चर्चा की गई है। वस्तुत योग के विभिन्न अगो को ही कही-कही स्वतन्त्र नाम से सम्बोधित किया गया है। योग के अष्टागो मे ध्यान का भी स्थान है, फिर भी कही-कही सामान्य योग मार्ग से पृथक् रूप मे ध्यान-योग या जपयोग का विकास हुआ प्रतीत होता है।

'महाभारत' मे योग के विभिन्न स्वरूपो का अध्ययन करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर सहज ही उपनीत हुआ जा सकता है कि महाभारत-युग मे योग एक जीवित और परिवर्धमान साधन था।

साख्य प्राचीनता और महत्व की दृष्टि से भारतीय दर्शनो मे साख्य का स्थान अन्यतम है। आरम्भ से ही इसके नाम की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विप्रतिपत्ति रही है। 'महाभारत' के अनुसार तत्वो की निश्चित सख्या होने के कारण ही इस मत का नाम साख्य पडा है[2] दूसरे मत के अनुसार प्रकृति तथा पुरुष के विषय मे विवेक ज्ञान होने से इस दर्शन का नाम साख्य है।[3]

'महाभारत' के अध्ययन से स्पष्ट है कि उस युग मे साख्य मत का प्रभाव विशेष रूप से था और साथ ही उसकी जीवित-परम्परा भी विद्वानो की स्मृति मे थी। जहा अन्य मतो के प्रथम उपदेष्टा के रूप मे किन्ही देवताओ का नाम लिया गया है, वहा साख्य मत के प्रवर्तक कपिल माने गये हैं।[4] उन्हें आदि विद्वान की उपाधि से भी विभूषित किया गया है। उनकी दो रचनाओ का उल्लेख किया जाता है। 'तत्व समास' तथा 'साख्य सूत्र'। यद्यपि 'तत्व समास' को डा० कीथ ने बहुत बाद की रचना माना है और इसी प्रकार 'सर्व दर्शन सग्रह' मे उल्लेख न होने से कुछ विद्वान 'साख्य सूत्र' को भी परवर्ती रचना मानते हैं, तथापि 'महाभारत' का साक्ष्य कपिल को साख्य का आदि आचार्य सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।[5] कपिल के शिष्य आसुरि और उनके शिष्य थे पचशिख। शान्ति पर्व मे इन्ही पचशिख और जनक का सवाद प्रस्तुत किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सवाद मे

---

१ योग शास्त्र १।१
२ म० शान्ति० ३०६।४२
३ भारतीय दर्शन, पृ० ३०६
४ म० शान्ति० ३५०।६
५ म० शान्ति० अध्याय ३०२-३०८

सांख्य दर्शन के अनुसार अनेक गम्भीर विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह माना जाता है कि पंचशिख ने साठ हजार श्लोकों की एक रचना 'षष्टितन्त्र' का निर्माण किया। इसी परम्परा में ईश्वर कृष्ण की 'सांख्यकारिका' एक अत्यन्त उल्लेखनीय ग्रन्थ है। जिसके उदाहरण शंकराचार्य ने भी अपने शारीरक भाष्य में दिये है। इनका समय भी ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है अतः ये 'महाभारत' के परवर्ती काल के आचार्य सिद्ध होते है। वास्तव में सांख्य के वर्तमान काल में प्राप्त सभी ग्रन्थ 'महाभारत' के परवर्ती है। इस सम्बन्ध में प्राचीन सिद्धान्त-ज्ञान-हेतु एक मात्र 'महाभारत' ही प्रमाण है।

'महाभारत' में सांख्य का उल्लेख जिस रूप मे हुआ है उससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि आरम्भ में यह मत निरीश्वरवादी था।[1] सांख्य में प्रथम सत्रह तथा बाद मे चौबीस तत्वो की मान्यता है परन्तु महाभारतकार ने इन २४ तत्वों के अनन्तर पच्चीसवे ईश्वरतत्व को भी असंदिग्ध रूप में स्थान दिया है।[2] इस प्रकार महाभारतकार ने ईश्वरवादी भूमिका पर सांख्य को ला खड़ा किया है तदनुकूल सांख्य की साधना में भी परिवर्तन किया गया है वस्तुतः 'महाभारत' में सांख्य के साथ ही योग और वेदान्त के ज्ञान का भी सूक्ष्म सम्मिश्रण किया गया है।

पांचरात्र : पांचरात्र शब्द की व्याख्या करते हुए 'रात्र' को ज्ञान का पर्याय माना गया है। परम तत्व, भुक्ति, मुक्ति योग तथा विषय इन पांच तत्वों के निरूपण से ही इस मार्ग का नाम पाचरात्र पड़ा।[3] पांचरात्र के अन्य नाम है—भागवत या सात्वत्। ऐसा अनुमान किया गया है कि सत्वत् शब्द का प्रयोग यादव क्षत्रियों के लिए होता था। सम्भव है श्री कृष्ण के साथ इस मत का सम्बन्ध होने के कारण ही इसको यह नाम प्राप्त हुआ हो।

पांचरात्र का सिद्धान्त वेदों से ही सम्बन्धित माना जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् में जिस एकायन विद्या का उल्लेख है उसी में पांचरात्र के प्राचीन सिद्धान्त सन्निहित है। शतपथ ब्राह्मण में पांचरात्र-सत्र का वर्णन मिलता है। परन्तु इसमें पांचरात्र सिद्धान्तों की व्याख्या विस्तार मे उपलब्ध नही है। ऐसा अनुमान है कि 'महाभारत' के युग में पांचरात्र अथवा सात्वत-परम्परा के अनेक संहिता-ग्रन्थ विद्यमान थे। उनमें से आज भी अनेक ग्रन्थ प्राप्त हैं, जिन्हें अनेक विद्वान प्राचीन प्रामाणिक मानते हैं। फिर भी पांचरात्र के प्राचीनतम प्रामाणिक उल्लेख 'महाभारत'

---

१. सांख्याः सांख्यं प्रशंसन्तियोगाः योग द्विजातयः।
अनीश्वरः कथंमुच्ये दित्येवं शत्रुकर्शन। म० शान्ति० ३००।२-३
२. म० शान्ति० ३०८।५-७
३. भारतीय दर्शन, पृ० ५३९
४. भारतीय दर्शन, पृ० ५४३

में ही मिलते हैं।

'महाभारत' मे शान्ति पर्व के अन्तर्गत ३३४वें अध्याय से ३८६ वें अध्याय तक नारायण उपाख्यान मे इस मत का विस्तृत वर्णन है। इस मत के मूल आधार नारायण हैं। नारद की जिज्ञासा शान्त करने के हेतु नारायण ने पांचरात्र धर्म का उपदेश दिया। इस धर्म का प्रथम अनुयायी राजा उपरिचर वसु था। चित्र शिखंडी नाम के सप्त ऋषियो ने वेदो का निष्कर्ष निकालकर पाचरात्र नामक शास्त्र तैयार किया। इस शास्त्र मे पुरुषार्थ-चतुष्टय का विवेचन है।

वेदान्त वेदो का तत्व ज्ञान उपनिषदो मे विस्तार से प्रतिपादित है। इसी हेतु उपनिषदो को वेदान्त भी कहा जाता है। तथा औपनिषद ज्ञान की अभिधा भी 'वेदान्त' ही है। भारतीय चिन्ता-धारा को जितना उपनिषदो ने प्रभावित किया है उतना अन्य किन्ही ग्रन्थो ने नही। वैदिक स्थूल कर्म-काड की प्रतिक्रिया मे ऋषियो का सूक्ष्म आत्मचिन्तन-रूपी अमृत इन उपनिषदो का प्राणतत्व है। आत्मा को जानने का प्रयत्न ही उपनिषदों का एक मात्र लक्ष्य है। परन्तु इनमे इस आत्म तत्व की खोज इतनी वैविध्यमयी है, कि परवर्ती दर्शन को विभिन्न विरोधी रूपो में उन्हीं से पृष्ठभूमि प्राप्त हुई। तत्व ज्ञान की एक व्यवस्थित परम्परा के निर्माण के लिए सूत्र युग मे जिन आचार्यों ने प्रयत्न किया वे बादरायण व्यास थे। 'ब्रह्मसूत्र' उनकी अमर कृति है, जिसकी रचना 'महाभारत' के पश्चात् हुई। 'महाभारत' मे जिन सूत्रो का उल्लेख हुआ है, विद्वानो का अनुमान है, वे किन्हीं अन्य आचार्यों की कृति रहे होगे, इस प्रसग मे अपान्तरतमा नामक ऋषि का नाम लिया जाता है।

साख्य-योग, पाचरात्र आदि के साथ ही 'वेदा' शब्द से इन्ही वेदान्त वादियो की चर्चा है[1] और सम्भव है इस सम्बन्धित श्लोक के आगे जिन अपान्तरतमा[2] की चर्चा है वे भी इसी मत से सम्बन्धित हो। गीता मे भी 'वेदान्तकृत' शब्द आया है। इससे वेदान्त की निश्चित परम्पराओ का उस समय प्रवर्तन हो चुका था, यह असदिग्ध है। अन्यत्र भी त्याग और जप आदि के प्रसगो मे वेदान्त शास्त्र का निर्देश हुआ है।

उपनिषदो का आत्मतत्व विश्लेषण और इनकी मोक्ष-सम्बन्धी परिकल्पना 'महाभारत' का मुख्य प्रतिपाद्य है। यदि परिमाण की दृष्टि से देखा जाय तो सम्भवत 'महाभारत' की विचार-सम्पत्ति का मूल केन्द्र वेदान्त ही सिद्ध होगा। गीता का ज्ञान समस्त उपनिषदो का सार कहा गया है। उपनिषद गाय हैं उन्हें दुहने वाले गोपाल हैं और दुग्ध है गीतामृत।[3]

---

१ म० शान्ति० ३४९।६४

२ म० शान्ति० ३४९।६६

३ सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दन। गीता माहात्म्य

'महाभारत' के भृगु-भारद्वाज संवाद में जीव का विवेचन,[1] मनु बृहस्पति संवाद में मोक्ष-धर्म-वर्णन वेदान्त-सिद्धान्त के अनुरूप मिलता है। वेदान्त का यह प्रमुख सिद्धान्त कि सुख-दुख, पुण्य-अपुण्य की मुक्ति पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है—'महाभारत' में निश्चित हो गया था।[2] उपनिषदों के मत में प्रणव की उपासना करने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है। 'महाभारत' में भी ब्रह्म-प्राप्ति के लिए प्रणवोपासना का विधान है।[3]

पाशुपत : जिस प्रकार विष्णु को प्रधानता देकर वैष्णवदर्शन का विस्तार हुआ उसी प्रकार शिव के ब्रह्म रूप को केन्द्र मानकर विभिन्न दर्शनों का भी प्रचार हुआ : उपनिषदो में शिव और शक्ति का विचार हुआ है। कालान्तर में शैव-मत के अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों की स्थापना हुई। 'महाभारत' से ज्ञात होता है कि उस युग में पाशुपत मत का प्रचार हो चुका था। यद्यपि इस मत का व्यवस्थित प्र वर्त्तन तो नकुलीश या लकुलीश द्वारा हुआ जिनका समय 'महाभारत' से परवर्ती है। परन्तु शिव के विभिन्न स्तोत्रों[4] में तथा अनुशासन पर्व के उपमन्यु उपाख्यान[5] में इस मत की चर्चा हुई है।

'महाभारत' में इन उल्लेखों का यही उपयोग जान पड़ता है कि तत्कालीन अवैष्णव विचार धारा का समन्वय भी वैष्णव धर्म के साथ किया गया। गीता में कृष्ण ने 'रुद्राणा शंकरश्चास्मि[6]' कहकर रुद्र और विष्णु को इसी रूप में अभिन्नता प्रतिपादित की है।

आधुनिक कवि की दृष्टि

आधुनिक कवि आध्यात्मवादी या दार्शनिक नहीं है। वह विचारक है, उसके विचार-चिन्तन की परिधि व्यक्त जीवन और प्रत्यक्ष जगत् है। यद्यपि ईश्वर एवं मानवेतर अन्य स्थितियों के प्रति भी उसकी जिज्ञासा रहती है, तथापि तद् विषयक जिज्ञासा गम्भीर दार्शनिक दृष्टि के रूप में परिवर्तित नहीं हो पाई। प्रत्यक्ष जगत् के परे जो कुछ सत्ता है और जिसका सांगोपांग विवेचन हमारे आर्ष ग्रन्थों में हुआ है उसके प्रति आधुनिक कवि दार्शनिक तर्क-वितर्क नहीं करता।

आधुनिक कवि के तीनवर्ग : प्रथम वर्ग में वैष्णव भावना अथवा श्रद्धा

---

१. म० शान्ति० अध्याय १८७
२. म० शान्ति० अध्याय २०५
३. म० शान्ति० अध्याय २३२
४. म० शान्ति० २८०-२८४
५. म० अनु १६।१५-१६
६. गीता १०।२३

विश्वास का क्षेत्र है, द्वितीय वर्ग मे श्रद्धा का मूल प्राचीन है किन्तु उसकी व्यावहारिक दृष्टि नवीन युग से प्रभावित है। तृतीय वर्ग मे श्रद्धा का अभाव है। 'महाभारत' के कथा-प्रभाव के दिग्दर्शन मे भी हम ने इसी प्रकार कवियो के तीन वर्ग किए हैं। 'महाभारत' के विचार-दर्शन से सामान्यत सभी आधुनिक कवि प्रत्यक्षत अथवा परोक्षत प्रभावित हैं। 'यन्न भारते तन्न भारते' की भावना के अनुसार किसी कृति मे 'महाभारत' की कथा और पात्रो का अभाव सम्भव है, किन्तु आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक, वैयक्तिक दर्शन किसी न किसी रूप मे विद्यमान रहता है।

भारतीय तत्व चिंतन परोक्ष सत्ता मे ही केन्द्रित नही हुआ, उसने सामाजिक जीवन-विकास की अनेक परिस्थितियो पर सम्यक् विचार किया है। वह आध्यात्मिक जीवन के उच्चतम शिखर पर पहुँचने की कामना से पूर्ण होते हुए भी व्यावहारिक जीवन का गहरा और व्यापक विवेचन करता है। उसमे जीवन-विकास के तत्व पूर्ण रूपेण सक्रिय हैं। उनमे उदात्तता का अभाव नही है। वस्तुत इन कवियो के प्रथम वर्ग ने महाभारतीय विचार दर्शन से संस्कृतियों के समन्वय की धारणा तथा मानवोत्कर्ष-सर्जक-निष्ठा, जीवन के प्रति आस्था, सामाजिक न्याय के प्रति दृढ विश्वास और अन्तत कुरीतियो के प्रति सशक्त विद्रोह की भावना प्राप्त की है।

'दर्शन' की दृष्टि से आधुनिक कवि विशिष्टाद्वैतवादी, अद्वैतवादी, द्वैतवादी आदि मतो की साम्प्रदायिक सीमा मे नहीं आते। प्रत्येक कवि ने दर्शन को जीवन की व्यावहारिक सज्जा के आवरण तथा युगीन परिवेश मे ग्रहण किया है। 'महाभारत' के कर्मवाद का जितना अधिक व्यावहारिक प्रभाव आधुनिक काव्य पर पड़ा है उस रूप मे पूर्ववर्ती काव्य कर्मवाद से चेतना प्राप्त न कर सका। इसका प्रमुख कारण यह है कि गीता का कर्मवाद आधुनिक युग-व्यवहारो के अधिक अनुकूल है।

प्राचीनता आधुनिक संदर्भ मे महाभारत का युद्ध हुआ। युद्धोपरान्त भीष्म ने मन से परास्त युधिष्ठिर को प्रवृत्ति का उपदेश दिया। यह उपदेश आज के संदर्भ मे उतना ही सजीव एव नूतन है जितना कि उस युग मे रहा होगा। अत आज के कवि ने आधुनिक काल की समस्याओ और उस काल के प्रश्नो मे अभूतपूर्व समत्व देखा और उन पर विचार किया। यदि यह कहा जाये कि आज के कवि की विचारधारा मे 'महाभारत' के कर्मवाद की पुन प्रतिष्ठा हुई है, तो अत्युक्ति न होगी। गुप्त जी का 'जयभारत' दिनकर का 'कुरुक्षेत्र' मिश्र जी का 'सेनापति कर्ण' एव द्वारका प्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' आदि काव्य इसी रूप मे 'महाभारत' के जीवन दर्शन से प्रभावित हैं, जिनमे 'महाभारत' के विचार पक्ष की पुन प्रतिष्ठा हुई है।

दो युगों मे अतर 'महाभारत' मे ब्रह्म के स्वरूप की प्रतिष्ठा जिस प्रकार

है उस प्रकार आधुनिक कवि ने उसे नहीं अपनाया। ब्रह्म-विषयक विचारणा ऊपरी तल पर व्यक्त हुई है। माया के विषय में सिद्धान्त रूप से प्राचीन मान्यता को स्वीकार किया गया, किन्तु उसके विवेचन में अन्तर है। माया स्वयं आलोच्य तत्व नहीं रहा; जगत्, जीव, सृष्टि आदि के स्वरूपों का भी वह गम्भीरता से विवेचन नहीं कर पाया। वह तो आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के सामाजिक स्वरूपों के विषय पर अधिक विचार करता है। अतः उसकी दार्शनिकता जीवन के व्यावहारिक चिन्तन में अधिक और आध्यात्मिक चिन्तन में न्यून है।

ब्रह्म

वेद में ब्रह्म : वेद भारतीय दर्शन के प्राण है, वे भारतीय दार्शनिक विचार-धारा के मूल स्रोत हैं। उनमे दार्शनिक विचारधारा की रूप रेखा जिस प्रकार मिलती है, उसके विषय मे आगे चलकर पर्याप्त विवेचन हुआ, जिसके फलस्वरूप अनेक दार्शनिक मतों की स्थापना हुई है। वेद नित्य, निखिल ज्ञान के अमूल्य भंडा-गार, और धर्म का साक्षात्कार करने वाले महर्षियो के द्वारा अनुभूत परमतत्व के परिचायक है। उनका वेदत्व इसी मे है कि वे प्रत्यक्ष से अगम्य तथा अनुमान के द्वारा अनुद्भावित अलौकिक उपाय का बोध कराते हैं।[1] उपनिषद् और महाभारतीय ब्रह्म विषयक विचारणा का स्रोत भी वेद ही है। ब्रह्म, जीव, माया सम्बन्धी जिन तत्वों का सांगोपांग विवेचन उपनिषदो मे हुआ है, उनका मूल रूप वेदों में सुरक्षित है।

ब्रह्म के स्वरूप और उसके सर्वव्यापी होने की महत्वपूर्ण कल्पना अनेक सूक्तो मे उपलब्ध होती है। पुरुष सूक्त (ऋग० १०।९०) अदिति सूक्त (१।८९) मे इसका सर्वोत्तम दृष्टान्त उपलब्ध है।

> सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र पात्
> सभूमि विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्।
> पुरुष एवेदंसर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्—

के अनुसार हजार मस्तक, हजार आंखें और हजार पैर वाला पुरुष है—भूतकाल में जो कुछ उत्पन्न हुआ, भविष्य में जो कुछ होगा वह सब पुरुष ही है।

इस सूक्त में सर्वेश्वर वाद का सिद्धान्त प्रतिपादित है। अदिति के वर्णन के अवसर पर भी पुरुष तथा अदिति की सर्व व्यापकता मानकर उसकी विश्व से अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया।

'अथर्ववेद' के उच्छिष्टसूक्त (११।९) से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म की व्यापकता और आत्मा से अभिन्नता का सिद्धान्त 'अथर्ववेद' को मान्य है। ब्रह्म की अन्यतम संज्ञा स्कम्भ (आधार) है। स्कम्भ को ज्येष्ठ ब्रह्म मानकर उसकी आत्मा

---

१. श्रुतिश्च नः प्रमाणमतीन्द्रियार्थ विज्ञानोत्पत्ती : शांकर भाष्य २।३।१

से एकता का प्रतिपादन किया गया है।

अकामो धीरो अमृत स्वयम्भू
रसेन तृप्ता न कुतश्चनोन
तमेव विद्वान् नबिभाय मृत्यो
रात्मान धीरमजर युवान। (१०।८।४४)

इस प्रकार उच्छिष्ट सूक्त में उच्छिष्ट नाम के द्वारा ब्रह्म के स्वरूप का ही परिचय दिया गया है। दृश्य-प्रपच के निषेध करने के अनन्तर जो अवशिष्ट रहता है वही उच्छिष्ट अर्थात् बाधारहित ब्रह्म है।

ब्रह्म-विषयक विचारधारा की अभिव्यक्ति करने वाले अनेक सूक्तो से यह स्पष्ट होता है कि प्रजापति, हिरण्यगर्भ, पुरुष स्कम्भ, उच्छिष्ट आदि नाम एक ही परम तत्व के वाचक है। इसको उपनिषदो के ब्रह्म तत्व तथा ब्रह्मात्मैक्यवाद की पूर्व पीठिका माना गया है। इन शब्दो म निहित गूढतत्वो का विवेचन ही उपनिषदो का प्रधान लक्ष्य है। नासदीय सूक्त भी ऋग्वेदीय अद्वैत भावना की अभिव्यक्ति करता है। तत्कालीन ऋषि ससार के प्रति जिज्ञासा के भाव से पूर्ण होकर स्थूल से सूक्ष्म की खोज की ओर अग्रसर होता है। सृष्टि के आदिकाल मे क्या था? आकाश, स्वर्ग था या नही? क्या गम्भीर जल था? मृत्यु और अमरत्व कहाँ था? आदि प्रश्नो के अनन्तर निषेधात्मक सज्ञाओं से सत्तात्मक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके उस ब्रह्म के स्वरूप को व्यक्त करता है कि उस समय बस एक ही था जो वायु रहित होकर भी अपने सामर्थ्य से श्वास लेता था।

वह एक है, तदेकम वह 'तत्' तथा 'सत्' शब्दों से सम्बोधित है क्योंकि वह लिंग रहित है, उसी से यावत् चेतन और अचेतन वस्तुओ की उत्पत्ति हुई है। वह एक है, अद्वितीय है, अग्नि आदि उसी के भिन्न रूप को धारण करने वाले हैं।[1]

उपनिषद् में ब्रह्म उपनिषदो का ब्रह्म अजन्मा, अखड निर्विकार और निराकार है। उनमें ब्रह्म के सगुण रूप की विवेचना भी है। मूलत ब्रह्म के दो स्वरूपो का विशद वर्णन किया गया है—'सविशेष सगुणरूप, तथा निर्विशेष अथवा निर्गुण रूप। अधिक स्पष्ट करने के लिए निर्विशेष को परब्रह्म और सविशेष को ब्रह्म कहा गया है। निर्विशेष ब्रह्म किसी लक्षण अथवा विशेषण से अभिहित नहीं किया जा सकता। अत परब्रह्म को निर्गुण, निर्विशेष, निरुपाधि, निर्विकल्प आदि सज्ञाओं से विभूषित किया जाता है। सविशेष की सत्ता भावात्मक है, वह गुण, उपाधि, लक्षण से

---

१ इन्द्रमित्र वरुणमग्नि माहुरथो
दिव्य स सुपर्णो गुरुत्मान्
एक सद्विप्रा बहुधा वदति
अग्नि यम मातरिश्वानमाहु। ऋ० १।१६४।४६

अलंकृत है। सविशेष ब्रह्म के लिए, पुल्लिंग शब्द और निर्विशेष के लिए नपुंसक लिंग का प्रयोग किया गया है, किन्तु दोनों मे वस्तुगत भेद का अभाव है। केनोपनिषद् में ब्रह्म के निष्प्रपंच रूप का सजीव चित्रण किया गया है। 'जिसे वाणी कह नहीं सकती पर जिसकी शक्ति से वाणी बोलती है, उसे ही ब्रह्म जानो, यह वह नही, जिसकी उपासना तुम करते हो।'[1]

मुंडकोपनिषद् कहती है—

यत् तद् अद्रेश्यमग्राह्यम्, अगोत्रम्, अवर्णम्, अचक्षुः श्रोत्रम् तद्अपाणिपादम् नित्यं विभुम् सर्वगतं सुसूक्ष्मं तद्व्ययं तद्भूत योनि परिपश्यन्ति धीराः।[2]

इस मंत्र मे उभयविद् पदों के द्वारा ब्रह्म-तत्व का प्रतिपादन किया गया है, अतः सगुण-निर्गुण मे निश्चय ही वस्तुगत भेद नही। ब्रह्म-विषयक सभी विचार-धारायें इस मान्यता से पुष्ट हैं। इस उभय वाचकत्व के कारण शास्त्रकारों में मत भेद है, शंकर श्रुतिको निर्गुण का प्रतिपादक मानते है और रामानुज सगुण का तथापि सभी ने यह माना है कि वह परम तत्व एक ही है।

परब्रह्म के वर्णन मे अभावात्मक 'न' का प्रयोग अधिक है। बृहदारण्यक उपनिषद्[3] मे याज्ञवल्क्य गार्गी को ब्रह्म के स्वरूप का परिचय देते हुए कहते हैं:— 'हे गार्गी, वह अक्षर ब्रह्म न स्थूल है, न अणु है, न दीर्घ है, न रक्त है, न चिकना है। वह छाया से भिन्न और अंधकार वायु तथा आकाश से पृथक् है वह असंग है और रस तथा गंध से विहीन। उसे न चक्षु ग्रहण कर सकती है न श्रोत्र। मन तथा मुख से भी उसका सम्बन्ध नहीं। वह परिमाण-रहित है, अतएव वह न अन्दर है न बाहर है; वह कुछ नही खाता न उसे कोई खा सकता है।'

मांडूक्योपनिषद् कहती है कि 'ब्रह्म जन्म रहित, निद्रा रहित, स्वप्न शून्य नाम रूप से रहित नित्य प्रकाश स्वरूप और सर्वज्ञ है, उसमें किसी प्रकार का कर्त्तव्य नही।'[4] अन्य उपनिषदों में अनेक अभावात्मक शब्दो के द्वारा ब्रह्म के स्वरूप की अभिव्यक्ति की गई है। ब्रह्म सब बन्धनों से रहित सर्वोपरि है, वह स्वयं प्रकाश है और वह सर्वानुभव स्वरूप, सृष्टि, पालन तथा संहार का प्रतीक अखंड, अजन्मा एवं स्वतः प्रमाणित है।

वस्तुतः भारतीय आर्ष ग्रंथो में जागृत चेतना के प्रतिभासित चरम सत्य को

---

१. यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते। केनो० १।४

२. मुंडकोपनिषद् १।१।६

३. बृहदारण्यक उपनिषद् ३।८।८

४. अजमनिद्रम स्वप्नमनामकम रूपकम्।
सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथंचन॥ मा० उ० पृ० ३६

ब्रह्म की संज्ञा दी गई है। समस्त जीवन का सत्व चर-अचर का मूल ब्रह्म ही है। इस कारण 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' के प्रतिपादकों ने ब्रह्म की प्रतिष्ठा की है। प्राचीन धर्म ग्रंथों तथा 'महाभारत' में भी परब्रह्म को 'सच्चिदानन्द घन' के नाम से अभिहित किया गया है।

महाभारत में ब्रह्म 'महाभारत' में स्वतन्त्र रूप से ब्रह्म की स्वरूपात्मक व्याख्या एक दो स्थानों पर हुई है। तब तक ब्रह्म और विष्णु की एकता का प्रसार हो गया था। विष्णु, ब्रह्मा और शिव ब्रह्म की तीन शक्तियों के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

ब्रह्म सबका कारण, अन्तर्यामी और नियन्ता है। यज्ञों में इसका आवाहन किया जाता है। यह सत्य स्वरूप (ऋत) एकाक्षर ब्रह्म (प्रणव एवं एकमात्र अविनाशी और सर्वव्यापी परमात्मा) व्यक्ताव्यक्त (साकार-निराकार) स्वरूप एवं सनातन है। यह ब्रह्म सत, असत् अथवा सद्सन् रूप में विराजमान होते हुए भी इस रूप में विलक्षण है। विश्व से अभिन्न सम्पूर्ण परापर (सूक्ष्म-स्थूल) जगत् का स्रष्टा और पुराण रूप है।[1]

इन पंक्तियों में ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करके उसके कर्त्तव्य और प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है। 'व्यक्ताव्यक्त' कहकर उसके साकार एवं निराकार रूप की स्थापना की गई है। यहीं से ब्रह्म के शुद्ध रूप में विष्णुत्व, शिवत्व, ब्रह्मत्व[2] आदि अनेक रूपों का समावेश है क्योंकि शुद्ध ब्रह्म साकार भी हो सकता है। पहले वह विष्णु के रूप में साकार हुआ और पुन कृष्ण आदि अवतार रूपों में व्यक्त हुआ।

महाभारतकार ब्रह्म के शुद्ध रूप में 'मांगल्य मंगल विष्णु वरेण्यमनघ शुचिम्।[3] कहकर मंगलमय विष्णु एवं ब्रह्म के एकत्व की स्थापना करता है। यद्यपि 'महाभारत' में शुद्ध ब्रह्म का अधिक विवेचन नहीं हुआ और जहाँ वहाँ ब्रह्म का स्वरूपात्मक परिचय दिया गया वहीं कृष्ण का नाम आ गया है अत यहाँ कृष्ण और ब्रह्म पृथक् नहीं हैं। 'महाभारत' में मुख्यरूप से 'कृष्ण' को ब्रह्म रूप में प्रतिपादित किया गया है। कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन 'महाभारत' की दार्शनिक उपलब्धि है। महाभारतकार कृष्ण को जगन्नियता, देवाधिदेव, अखिल लोकपति, नारायण स्वरूप वासुदेव मानते हैं। कृष्ण ही सत्य, ऋत और पुण्य हैं तथा अविनाशी सनातन ज्योति हैं।

शाश्वत ब्रह्म परम ध्रुव ज्योति सनातनम्।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिण ॥

---

१ म० आदि० १।२२।२३
२ म० शान्ति० २८०।८,३७,६२,६३
३ म० आदि० १।२४

असच्चसदसच्चैव यस्माद् विश्वं प्रवर्तते।
संततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्म मृत्यु पुनर्भवाः ॥[1]

यहां ब्रह्म के सनातन, निर्विकार, निराकार, अखंड रूप का आरोप कृष्ण के व्यक्तित्व में हुआ है। भगवान् विष्णु ही वसुदेव जी के यहां देवकी के द्वारा प्रकट हुए हैं वे सकल जगत् के कर्त्ता, अव्यक्त, अक्षर, ब्रह्म एवं त्रिगुणमय है।

अनुग्रहार्थं लोकानां विष्णुलोक नमस्कृतः
वासुदेवात् तु देवक्यां प्रादुर्भूतो महायशाः
अनादि निधनो देवः सकर्ता जगतः प्रभुः
अव्यक्तमक्षरं ब्रह्म प्रधानं त्रिगुणात्मकम्।[2]

धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे देवर्षि नारद को नारायण के अवतरण का स्मरण हो आता है।[3] यज्ञ मे अग्र-पूजा के रूप मे भीष्म श्रीकृष्ण के नाम का प्रस्ताव रखते है। भीष्म कहते है कि वासुदेव ही इस चराचर विश्व के उत्पत्ति स्थान एवं विश्राम-भूमि है और इस समस्त प्राणि जगत् का अस्तित्व ही उन्हीं के हेतु है। वासुदेव ही अव्यक्त प्रकृति, सनातन कर्ता और समस्त प्राणियों के अधीश्वर है, अतएव वे ही पूजनीय है।[4] 'महाभारत' के कृष्ण परम ब्रह्म है—डा० अग्रवाल ने 'महाभारत' के अनेक उद्धरणों से 'भारत सावित्री' मे श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन किया है।[5] भीष्म कृष्ण और अर्जुन के अभेदत्व की स्थापना करते हैं। भीष्म के द्वारा भागवतो के दार्शनिक तत्व को अत्यधिक शक्तिशाली शब्दों में व्यक्त किया गया है। एक ही तत्व या चैतन्य नारायण और नर इन दो रूपो में प्रकट हुए हैं।[6] मोटे तौर पर ऐसा विदित होता है कि भगवान् वासुदेव एवं संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की व्यूहात्मक उपासना प्राचीन सात्वत धर्म की विशेषता थी।[7]

भक्ति-प्रतिपादन : कृष्ण और ब्रह्म के अभेदत्व की पूर्णता के साथ भक्ति का विकास भी यथावत् हुआ किन्तु मध्यकालीन भक्त-कवियों की विचारधारा परवर्ती पौराणिक विचारधारा से अधिक प्रभावित है। वैष्णव पुराणों मे विष्णु को परब्रह्म मान कर कृष्ण को अवतार के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है। 'महाभारत' के गीता खंड में कृष्ण ने अर्जुन-मोह-भंग के हेतु अपने स्वरूप का जो परिचय दिया है

---

१. म० सभा० ६८।४१-४२
२. म० आदि ६३।६६-१००
३. म० सभा० ३६।१२
४ म० सभा० ३८।२३-२४
५. भारत सावित्री, पृ० १८५,१८६
६. म० उद्योग० ४६।१६-२०
७. भारत सावित्री, पृ० १८७

वही परवर्ती भागवत पुराण की मुख्य आधार शिला है।

सभापर्व मे द्रौपदी भगवान् कृष्ण को रक्षा के लिए पुकारती है और रक्षा भी होती है। द्रौपदी उस समय कृष्ण के ब्रह्मरूप[1] का चिन्तन करती है। वनवास के समय अर्जुन[2] और द्रौपदी[3] दोनो ही कृष्ण के अव्यक्त ब्रह्मरूप का वर्णन करते हैं। मार्कण्डेय समस्या पर्व, शान्ति पर्व और अनेक स्थानो पर महाभारतकार कृष्ण के ब्रह्म रूप की स्थापना करता है।

आधुनिक काव्य 'महाभारत' की ब्रह्म विषयक धारणा का प्रभाव आधुनिक कवियो पर प्रभूत मात्रा मे पड़ा है। 'महाभारत' से आधुनिक काल तक ब्रह्म विषयक धारणा पर अनेक रूपो मे विचार हुआ अत आधुनिक कवि की विचारधारा का सीधा सम्बन्ध 'महाभारत' से तो है ही, किन्तु वह मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलनों से भी प्रभावित है। भक्ति आन्दोलनो का स्रोत 'महाभारत' है, अत आधुनिक कवि का सीधा सम्बन्ध 'महाभारत' से हो जाता है।

नित्य-नैमित्तिक रूप 'महाभारत' के ब्रह्म का विकास नित्य और नैमित्तिक रूपो मे हुआ है। ब्रह्म का नित्य रूप भक्ति-सिद्धान्त की आधार-शिला और भक्तो का परम रूप है। वे नित्य रूप की उपासना करते हैं। द्रौपदी के कथन मे 'महाभारत' मे इस नित्य रूप के सकेत भी प्राप्त हो जाते हैं।[4] 'महाभारत' का ब्रह्म पौराणिक युग मे यात्रा करता हुआ मध्ययुगीन दार्शनिको के हाथो गोपीजन वल्लभ, राधावल्लभ बना। आधुनिक कवि अपनी वैष्णवी एव युगीन भावना के अनुसार उसे दो रूप मे स्वीकार करता है।

आधुनिक कवि के ब्रह्म का एक रूप नित्य रूप है। सम्पूर्ण आधुनिक कृष्ण-काव्य म भारतेन्दु से अब तक इस नित्य रूप के दर्शन होते हैं। भारतेन्दु, जगन्नाथदास रत्नाकर, और प्रकारान्तर भेद से मैथिलीशरण गुप्त, द्वारकाप्रसाद मिश्र तथा बिसाहूराय के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म है। इन कवियो की ब्रह्म विषयक मान्यता और उसका काव्यगत चित्रण 'महाभारत' से प्रभावित होने के साथ मध्ययुगीन आन्दोलनो से भी प्रभावित है।

ब्रह्म का महामानव रूप 'महाभारत' के ब्रह्म विषयक प्रभाव का द्वितीय रूप मानव-रूप है। इसमे 'महाभारत' के ब्रह्म को मानवी धरातल पर पुरुषोत्तम, लोक सग्रही, लोकरक्षक नेता के रूप मे चित्रित किया गया है। अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' दिनकर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, आनन्दकुमार आदि कवियो ने महा-

---

१ म० सभा० ६८।४१-४२
२ म० वन० १२।२१-२२
३ म० वन० १२।५१-५३
४. म० सभा० ६८।४१-४२

भारत' के ब्रह्म को बुद्धि वादिता के साथ लोकोत्तर महामानव के रूप में चित्रित किया है।

आधुनिक कवियों ने ब्रह्म के विषय में अधिक दार्शनिक विवेचन नहीं किया फिर भी उनके कृष्ण परब्रह्म हैं, यह मान्यता उन्होंने स्थान-स्थान पर व्यक्त की है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आधुनिक काव्य में ब्रह्म विषयक गूढ़ विवेचन तो अप्राप्त है, किन्तु 'महाभारत' के अनुसार कृष्ण के परब्रह्म रूप का चित्रण अनेक स्थलों पर उपलब्ध है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कृष्ण परब्रह्म हैं। भारतेन्दु ने कृष्ण-वन्दना के पदों में भगवान् से अपने विरद की रक्षा की प्रार्थना की है।[1] भारतेन्दु काल के प्रमुख कवियों ने[2] कृष्ण के ब्रह्मरूप का चित्रण किया है। यह समय पुनर्जागरण का अवश्य था, किन्तु कवि अपनी प्राचीन मान्यताओं को भी श्रद्धा के साथ व्यक्त करता था, जिसका स्वरूप प्राचीन ग्रन्थों में विद्यमान है।

जगन्नाथदास रत्नाकर के कृष्ण पूर्णब्रह्म हैं।[3] यद्यपि 'उद्धवशतक' में कृष्ण के स्वरूप का चित्रण मध्ययुगीन विकसित गोपी-कृष्ण के रूप में हुआ है किन्तु उसका मूल स्रोत 'महाभारत' है अतः इसे 'महाभारत' से प्रभावित मानने में कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती। उद्धव कृष्ण और ब्रह्म की एकता सिद्ध करता है तभी तो गोपियों को उस एकता का विरोध करना पड़ता है।[4]

प्रियप्रवासकार ने भी कृष्ण के ब्रह्म-रूप की चर्चा की है। यद्यपि 'हरिऔध' ने 'महाभारत' की ब्रह्म-विषयक मान्यता को महामानवीय धरातल पर व्यक्त किया है किन्तु मूल दृष्टि का आधार 'महाभारत' ही है। राधाब्रह्म के विश्व रूप को और विश्व और कृष्ण के अभेद को स्वीकार करती है। वह श्याम में ही जगपति को उस

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ० २३

२. प्रेमघन ग्रन्थावली पृ० २८

३. पंचतत्व में जो सच्चिदानंद की सत्ता सो तो,
हम तुम उनमें समान ही समाई है।
कहै रत्नाकर विभूति पंचभूत हू की,
एक ही सी सकल प्रभूतनि में पोई है।
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
कांच फलकानि ज्यौं अनेक एक सोई है।
देखो भ्रम पलक उघारि ज्ञान-आँखिन सौं
कान्ह सबही में कान्ह ही में सब कोई है। उद्धवशतक, पदसं० ३८

४. मान्यौ हम कान्ह ब्रह्म एक ही कह्यौ जो तुम। उद्धवशतक, पद सं० ४६

प्रकार देखती है।[1] जिस प्रकार महाभारतकार ने कृष्ण में ब्रह्म को देखा।[2] मिश्र जी ने 'कृष्णायन' और विसाहूराय ने कृष्णायण' में 'महाभारत' के अनुसार कृष्ण के ब्रह्म रूप की उपस्थापना की है। 'महाभारत' में गोपियों के साथ नित्य विहार की चर्चा नहीं है, किन्तु इन ग्रन्थों में मध्ययुगीन भक्ति-सम्प्रदायों के प्रभाव के कारण राधाकृष्ण का रूप व्यक्त हुआ है। ब्रह्म के शुद्ध रूप की व्याख्या करते समय विसाहूराम कहते हैं कि कृष्ण परब्रह्म, अगुण और अखड हैं, उन्हीं से चेतन और जड प्रतिभासित हैं, सारे ससार में उन्हीं का प्रकाश है।[3] कृष्ण का यह रूप 'महाभारत' से प्रभावित है। 'महाभारत' के अनुसार कृष्ण अवतार हैं इस कारण भी, 'महाभारत' का प्रभाव स्वीकार किया गया है। 'महाभारत' में लिखा है।

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्।[4]

अतएव 'कृष्णायण' में कहा गया कि—

जब जब होवहि धर्म की, हानि सुनहु मुनिवृन्द,
धरि तनु प्रभु थापहि बहुरि, करिनास्तिक निरकन्द।[5]

द्वारका प्रसाद मिश्र ने भी अवतार-प्रयोजन स्वरूप कृष्ण के 'असुर विनाशन जनहितकारी' रूप का चित्रण किया है।[6]

मिश्र जी पूर्ण श्रद्धा के साथ कृष्ण के पर ब्रह्मत्व की व्याख्या करते हैं। 'कृष्णायण' के 'तुम अनन्त तवगुणउ अनन्ता' आदि शब्दों में ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या की गई है। मिश्रजी तथा विसाहूराम ने ब्रह्म के नित्य और नैमित्तिक दोनों

---

१ मैंने की है कथन जितनी शास्त्र विज्ञात बातें।
वे बातें हैं प्रकट करतीं ब्रह्म है विश्वरूपी॥
व्यापी है विश्व प्रियतम विश्व में प्राण प्यारा।
यों ही मैंने जगत्पति को श्याम में है विलोका॥ प्रिय प्रवास, सर्ग १६

२ कृष्णस्यहिकृते विश्वमिद भूत चराचरम्। म० सभा० ३८।१८

३ कृष्ण सोई पर ब्रह्म मुनीशा। अवगुण अकल जिहि काहु न दीसा।
जिहि सन्मुख जड चेतन भासा। सकल विश्व मह जासु प्रकासा॥
जासु कृपा लवलेशनें, विष्णु विरंचि महेश।
करहि विभव मद पराभव, सोई कृष्ण भुवनेश। कृष्णायण, पृ० १७

४ गीता ४।७

५ कृष्णायण, पृ० १७

६ जय मे परब्रह्मसाक्षाता
असुर विनासन, जन हितकारी, नाम कृष्ण, विष्णुहि अवतारी।
कंस विनाश जासु कर होई, शिशु स्वरूप प्रकटे ब्रज सोई॥
कृष्णायन, पृ० ३५

कर्मों का चित्रण किया है। बिसाहूराम का परम पूज्य रूप नित्य लीला है अतः सम्पूर्ण नैमित्तिक कर्मों को करने के उपरान्त बिसाहूराम के ब्रह्म 'कृष्ण' 'महाभारत' की तरह निर्वाण को प्राप्त नहीं होते, किन्तु ब्रज में आकर वे नित्य रास करते हैं।[1]

कृष्णायनकार ने कृष्ण को पूर्णब्रह्म मानते हुए उन्हें सोलह कलाओं से युक्त अवतार बताया है।[2] इस प्रकार 'महाभारत' की ब्रह्म-विषयक मान्यताएं आधुनिक काव्य में पूर्ण रूप से प्राप्त होती है। 'जयद्रथ वध' के कृष्ण अवतारी चरित्र हैं, कवि उन्हें परम्परागत विश्वास के साथ स्वीकार करता है। 'जयद्रथवध' की सम्पूर्ण कथा में कृष्ण का ब्रह्मत्व धर्म की रक्षा करता है। 'जहां कृष्ण हैं, वहां धर्म है और जहां धर्म है, वहीं विजय है, यह भावना 'द्वापर' 'जयद्रथवध' और 'जयभारत' में प्राणधारा के समान विद्यमान है। 'द्वापर' का कवि 'महाभारत' की विचारधारा को यथावत् मानता है। उसका आराध्य कृष्ण 'महाभारत' का पूर्ण ब्रह्म ही है:—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥[3]

इसके अनुसार 'द्वापर' की घोषणा है कि:—

कोई हो, सब धर्म छोड़ तू
आ, बस मेरी शरण धरे,
डर मत कौन पाप वह जिससे
मेरे हाथों तू न तरे।[4]

'द्वापर' में गुप्त जी ने कृष्ण की ब्रह्म-विषयक मान्यता का सशक्त प्रतिपादन किया है। कवि आधुनिक जीवन में आर्य समाजियों की दृष्टि का विरोध करते हुए कृष्ण के सनातन रूप की अभिव्यक्ति करता है।[5] 'द्वापर' की इस मान्यता पर 'महाभारत'

---

१. कृष्णायण, पृ० ४५०

२. नयेहु कला षोडश सहित, कृष्णचंद्र अवतार,
पूर्ण ब्रह्म हरियश विमल, बरनहूं मति अनुसार। कृष्णायन, पृ० ३

३ गीता १८।६६

४. द्वापर, पृ० १२

५. कृष्ण अवैदिक और राम भी ?
ठहरो, धीरज धारो,
× × ×
रामकृष्ण का रूप कहां से देखे दृष्टि तुम्हारी।
इन्द्र वरुण तक ही परिमित है यह श्रुति सृष्टि तुम्हारी।
द्वापर, पृ० ३९-४०

के पूर्ण प्रभाव के साथ सहस्रों वर्षों की कृष्ण विषयक भावधाराओं का प्रतिबिम्ब भी अंकित है।

बुद्धिवादी दृष्टि आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टि प्राचीन आस्था में अविश्वास करती है, किन्तु पुनरुत्थानवादी कवि युग-धर्म को शाश्वत धर्म से पृथक् न होने की चेतावनी देता है। इस कारण वह ईश्वरत्व के प्रति अदम्य आस्था को जागृत करने के कारण प्राचीन अलौकिक रूप को यथावत् स्वीकार करता है। गुप्तजी के कृष्ण विष्णु ही हैं।[1] इस रूप का प्रतिपादन अनेक स्थलों पर हुआ है।[2] अर्जुन की सफलता इसी में है कि वह कृष्ण के इस रूप को जानते हैं[3], यद्यपि अविद्या माया से ग्रस्त कौरव इससे अपरिचित हैं।

अर्जुन मोह के कारण अपने को युद्ध तथा बन्धुओं की हत्या का कारण मानते हैं तो कृष्ण उन्हें वास्तविक रूप दिखाकर बताते हैं कि वह तो निमित्त मात्र है। मूल कर्ता तो ब्रह्म ही है।[4]

रामधारीसिंह दिनकर ने ब्रह्म विषयक दार्शनिक विवेचन अधिक नहीं किया, किन्तु उन्होंने कृष्ण के परब्रह्म रूप को महाभारतीय रूप में ही स्वीकार किया है।[5] कृष्ण अपने विराट रूप का दर्शन कराते अपने में अमरत्व एवं संहार रूप की स्थिति को व्यक्त करते हैं।[6] उनमें में समस्त ब्रह्माड व्याप्त है, चराचर जीव, जग क्षर-अक्षर सूर्य, चन्द्र सभी कुछ कृष्ण में स्थित हैं।[7] इस प्रकार स्पष्टत 'महाभारत' की ब्रह्म-विषयक विचारधारा का पूर्ण प्रभाव आधुनिक कवियों में प्राप्त है।

पुराकालीन ब्रह्म-विषयक विचारधारा को आधुनिक कवि ने अपने सामाजिक

---

१ श्री वत्स लाच्छन विष्णु तब कहकर वचन प्रज्ञा पगे
धीरज बधाकर पाडवों को शीघ्र समझाने लगे। जयद्रथवध, पृ० ३४

२ जयद्रथवध, पृ० ६४, जयभारत, पृ० १४८,२६७,२६६

३ अयुध्य मान सग्रामे वारयामास केशवम् ॥ म० उद्योग०, ७।२१

× × ×

सेना रहे, मुझको जगत् भी तुम बिनास्वीकृत नहीं।
श्रीकृष्ण रहते हैं जहा सब सिद्धिया रहती वहीं। जयभारत, पृ० ३०१

४ जयभारत, पृ० ३६७

५ रश्मिरथी, पृ० ३१

६ रश्मिरथी, पृ० ३१

७ दृग हों तो दृश्य अकाड देख, मुझमे सारा ब्रह्माड देख।
चर-अचर जीव, जग, क्षर, अक्षर, नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर,
शतकोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र शत कोटि सरित, सरसिन्धु-मन्द्र।
रश्मिरथी, पृ० ३२

एवं राजनीतिक वातावरण के मध्य लोक-जीवन के धरातल पर महामानव के रूप में स्वीकार किया है। प्राचीन जीवन से आधुनिक जीवन तक बुद्धिवाद के व्यापक प्रसार के कारण ब्रह्म विषयक विचारणा में शनैः शनैः परिवर्तन होता रहा है, और आधुनिक वैज्ञानिक अर्थतन्त्रात्मक जीवन-पद्धति ने ईश्वर-विषयक विश्वास में नवीनता का समावेश किया। 'महाभारत' के कृष्ण और 'प्रिय प्रवास' के कृष्ण में सहस्रों वर्षों का यही अन्तर विद्यमान है। धार्मिक दृष्टिकोण में अवतार भक्तों का रंजन करके पृथ्वी का उद्धार करते हैं, तो बुद्धिवादी दृष्टि से महापुरुषों का पृथ्वी पर अभ्युदय वर्षों में एक दो बार होता है और वे अपने कर्त्तव्यों से ऐसा ईश्वरीय जीवन विकसित करते हैं कि पाप की काई कट जाती है और पुण्य का पवित्रजल स्पष्ट हो जाता है। दिनकर ने परशुराम के अभ्युदय को[1] या सियाराम शरण गुप्त जी ने अर्जुन के नरावतार को[2] इसी बुद्धिवादी दृष्टि से चित्रित किया है।

आधुनिक कवि लोक-जीवन के आधुनिक बौद्धिक व्यापार के कारण ब्रह्मत्व को महामानवत्व मे चित्रित कर पुनः आस्थावादी विचार-धारा के कारण महामानव को ब्रह्म रूप में प्रतिष्ठित कर देता है। 'उपनिषद्' और 'महाभारत' की विचार-परम्परा में कविवर सुमित्रानन्दन पंत ब्रह्म को संसार का निमित्त, आत्मा, नित्य-स्वरूप, सगुण, निर्गुण, बहुरूप, अरूप आदि नामों से अभिहित करते हैं।[3]

'महाभारत' के ब्रह्म मे विष्णुत्व, कृष्णत्व और शिवत्व का समन्वय किया है। विष्णु, कृष्ण और शिव तीनों को परब्रह्म रूप में चित्रित किया है—कौन्तेय कथा में शिव प्राणी मात्र के पालक, संहारक, भूतेश्वर और प्रकृति, चेतन गुण के संचालक हैं।[4]

जीव

स्वरूप : ब्रह्म के स्वरूपात्मक विवेचन के साथ 'महाभारत' में जीवात्मा का

---

१. रश्मिरथी, पृ० १२

२. नकुल, पृ० ६८

३. ब्रह्म ही जगत् प्रपंच निमित्त
ब्रह्म ही उपादान, आधार,
जागतिक जीवन ब्रह्म विवर्त
ब्रह्म ही स्थूल सूक्ष्म का सार !
वस्तुमय रूप सगुण, सोपाधि,
ब्रह्म आत्मा, पर, नित्य स्वरूप,
ज्ञेय ज्ञाता या ज्ञान अनन्य,
सगुण निर्गुण, बहुरूप अरूप। लोकायतन, पृ० ३२८

४. कौन्तेय कथा, पृ० ७२

दार्शनिक विवेचन प्रचुर मात्रा मे हुआ है । 'महाभारत' के जीवात्मा विषयक विवेचन मे पूर्ववर्ती उपनिषदो के विवेचन को ही प्रमुखता दी गई है । महाभारतकारने उन्ही के मतो को अपने शब्दो मे व्यक्त किया है ।

भारतीय तत्व ज्ञान इस बात को स्वीकार करता है कि चित्त, मन, बुद्धि, पचेन्द्रिय और पचप्राण स्वय मे जड अथवा अव्यक्त के ही भाग हैं । इनमे अपनी कोई गति नहीं है । ये सभी जीवात्मा की गतिशक्ति से सम्प्रेरित होकर चलते हैं । जब तक जीव की सत्ता विद्यमान है तभी तक इन सब में गति है, जीव विमुक्त होने पर ये सब जड और निरूपयोगी हो जाते हैं । जीव विषयक कल्पना भारतीय दर्शन की उदात्त कल्पना है । इस विषय मे अनेक विवादो के उपरान्त इस निश्चय पर तो सभी पहुच गये हैं कि जीवात्मा ईश्वर का अश है । पचेन्द्रिय देह का कोई न कोई अभिमानी देही अवश्य है । इन्द्रिया को अपना ज्ञान नहीं होता किन्तु इन्द्रियो की प्रेरणा शक्ति जीव को इन्द्रियों का ज्ञान होता है ।

'उपनिषदो' मे जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया गया है । 'उपनिषदो' का विचार ही आगे चलकर सभी विचारणाओ का स्रोत बना ।

उपनिषद् मे आत्म तत्व आत्मा के विषय मे तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं –

१ आत्मा का स्वरूप क्या है ?

२ क्या आत्मा इसी जीवन काल तक रहता है या इसके उपरान्त भी उसका निवास है ?

३ आत्मा की कितनी अवस्थाए है ?

प्रथम और द्वितीय प्रश्न का विवेचन 'कठोपनिषद्' मे अत्यन्त व्यापकता के साथ हुआ है । 'कठोपनिषद्' मे आत्मा को अजर, अमर, सर्व व्यापी बताकर कहा है कि— आत्मा नित्य वस्तु है, न कभी वह मरता है, न कभी अवस्थादि कृत दोषो को प्राप्त होता है । नचिकेता और यमराज के प्रसग मे आत्मा विषयक मीमासा करते हुए उपनिषद्कार कहता है कि 'यह जीवात्मा विषय ग्रहण करने वाली सभी इन्द्रियो से, सकल्प विकल्पात्मक मन से, विवेचनात्मक बुद्धि से तथा हमारी सत्ता के कारणभूत प्राणो से पृथक् है । एक रूपक के द्वारा आत्मा की श्रेष्ठता और स्वरूप का सुदर परिचय किया गया है ।

आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेव तु ।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मन प्रग्रहमेव च ।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयान् तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रिय मनायुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिण ।[1]

---

१ कठोपनिषद् २।३।४

यह शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, मन प्रग्रह (लगाम) है, इन्द्रियां घोड़े हैं, जो विषयरूपी मार्ग पर चला करते हैं और आत्मा रथ का स्वामी है। "यहां पर यम ने आत्मा की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। रथादियों का समस्त कार्य-व्यापार रथ के स्वामी के हेतु होता है अतः शरीरादिका समस्त व्यापार रथी आत्मा के हेतु है अतः आत्मा ही श्रेष्ठ है।

'मुंडकोपनिषद्' में शुद्ध आत्मा को 'तुरीय' कहकर जागृत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति—आत्मा की तीन अवस्थाएं मानी हैं।

जागृत अवस्था में आत्मा बाह्य अवस्थाओं का अनुभव करता है। स्वप्नावस्था में यह मानसिक आभ्यान्तर जगत् का अनुभव करता है। सुषुप्ति में वह परमानन्द स्वरूपता का अनुभव करता है। इन्हीं रूपों के लिए आत्मा को विश्व तैजस और प्राज्ञ कहते हैं। 'मांडूक्योपनिषद्' उक्त अवस्थाओं से पूर्णात्मा का परिचय देती है, जिसकी स्थिति इस प्रकार है। कि उस समय न तो बाह्य चेतना रहती है न अन्तश्चेतना, और न दोनों का सम्मिश्रण ही, न प्रज्ञा रहती है न अप्रज्ञा उस समय तो अदृष्ट, अग्राह्य, अव्यवहार्य, अलक्षण, अचिन्तनीय अव्यपदेश्य केवल आत्मा प्रत्ययसार होता है। उस समय प्रपंचोपशम (बाह्य जगत् की शान्तता) शान्तशिव, अद्वैत जो चतुर्थ कहा जाता है—यह आत्मा है, इसे ही जानना चाहिए।[1] यही आत्मा निर्गुणब्रह्म के एकत्व से सिद्ध है। ओंकार इसी आत्मा का द्योतक अक्षर है। इस प्रकार 'उपनिषदों' में जीवात्मा को ब्रह्म से अभिन्न बताकर अद्वैत की स्थापना की गई है। किन्तु परवर्ती दार्शनिकों ने अपने-अपने अर्थ स्थापित किए हैं।

महाभारत में जीवात्मा : 'महाभारत' में जीवात्मा सम्बन्धी विचार कई स्थानों पर अभिव्यक्त हुए हैं। शान्तिपर्व के एक सौ छियासीवें अध्याय में भरद्वाज और भृगु का संवाद है। भरद्वाज जीव की सत्ता पर नाना उक्तियों से शंका उपस्थित करते है। महामुनि भृगु उनकी शंका का निवारण करके जीव की सत्ता और नित्यता को सिद्ध करते हैं।

भरद्वाज की शंका है कि यदि प्राणवायु ही शरीर को जीवित रखती है तो शरीर में जीव की सत्ता को स्वीकार करना व्यर्थ है,[2] क्योंकि जब किसी प्राणी की मृत्यु होती है तो वहां जीव की सत्ता की उपलब्धि नहीं होती, प्राण वायु ही उस

---

१. माण्डूक्य उप० पृ० ७

२. यदि प्राणयते वायुर्वायुरेव विचेष्टते।
श्वसित्या भाषते चैव तस्माज्जीवो निरर्थकः॥ म० शांति० १८६।१

शरीर का त्याग करके जाती हैं, और शरीर की गर्मी नष्ट हो जाती है।[1]

भरद्वाज की शंका का समाधान करते हुए भृगु कहते हैं कि शरीर के आश्रय से रहने वाला जीव उसके नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता, जैसे समिधाओं के आश्रित हुई आग उनके जल जाने पर भी विद्यमान रहती है उसी प्रकार जीव का प्रत्यक्ष अनुभव होता है।[2] अग्नि के बुझने की शंका का समाधान करते हुए आगे महामुनि भृगु जीव, अग्नि, प्राण वायु के सम्बन्ध को शरीर के साथ निश्चित करते हुए कहते हैं—'समिधाओं के जल जाने पर भी अग्नि का नाश नहीं होता, वह अव्यक्त रूप से आकाश में स्थित रहती है क्योंकि निराश्रय, अग्नि का ग्रहण होना कठिन है। उसी प्रकार शरीर को त्याग देने पर जीव आकाश की भांति स्थित होता है। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण वह बुझी हुई आग के समान दृष्टिगोचर नहीं होता, परन्तु रहता अवश्य है। अग्नि ही प्राणों को धारण करती है। जीव को उस अग्नि के समान ही ज्योतिर्मय समझो। वायु उस अग्नि को देह के भीतर धारण किये रहती है। श्वास के रुकने पर वायु के साथ अग्नि भी नष्ट हो जाती है।[3] भृगु मुनि के कथन का सार यह है कि देह के नष्ट होने पर भी जीव का नाश नहीं होता।[4]

यहां पर विचारणीय विषय यह है कि जीव को 'आकाशवत्' कहकर उसकी व्यापक एवं सूक्ष्म सत्ता का प्रतिपादन किया गया है। यदि यह कहा जाता कि जीव आकाश में चला जाता है तो फिर प्रश्न उठ सकता था कि आकाश में कहां रहता है? अतः आकाशवत् कह कर इस प्रश्न की सम्भावना को ही समाप्त कर दिया गया, और आकाशवत् कह कर आकाश की भांति ही जीवात्मा को अजर, अमर, अखंड, रूप में स्वीकार किया गया है।

भगवान् कृष्ण के द्वारा अर्जुन के मोह के अवसर पर आत्मा की नित्यता का प्रतिपादन हुआ है। वस्तुतः जीवात्मा के स्वरूप का विवेचन भी ब्रह्म के चिन्तन

---

१ जन्तोः प्रजीयमानस्य जीवो नैवोपलभ्यते।
वायुरेव जहात्येनमूष्मा भावश्च नश्यति। म० शान्ति १८६।२

२ न शरीराश्रितो जीवस्तस्मिन्नष्टे प्रणश्यति।
समिधामिव दग्धानां यथाग्निर्दृश्यते तथा। म० शान्ति० १८७।२

३ समिधामुपयोगान्ते यथाग्निर्नोपलभ्यते।
आकाशानुगतत्वाद्धि दुर्ग्राह्यो हि निराश्रयः॥
तथा शरीरसंत्यागे जीवो ह्याकाशवत् स्थितः।
न गृह्यते तु सूक्ष्मत्वाद् यथा ज्योतिर्न संशयः॥
प्राणान् धारयते ह्यग्निः सजीव उपधार्यताम्।
वायुसंधारणो ह्यग्निर्नश्यत्युच्छ्वासनिग्रहात्। म० शान्ति० १८७।५-७

४. न जीवनाशोऽस्ति हि देहभेदे। म० शान्ति० १८७।२७

वह ईश्वर का अंश है।

आत्मा का शरीर धारण आवागमन का प्रश्न भी इसी प्रसग मे उठाया गया है। प्रश्न है कि 'शरीर मे भी ईश्वराश आत्मा क्यो आता है? भारतीय तत्व-ज्ञान इसका उत्तर कर्म सिद्धान्त के आधार पर देता है। आवागमन का मुख्य कारण जीव के कर्म की उपपत्ति है।[1] ईश्वर की इच्छा और आत्मा की स्वाभाविक प्रवृत्ति की अपेक्षा कर्म-सिद्धान्त अधिक उपयोगी और व्यावहारिक है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार समस्त सृष्टि नियमबद्ध है। और प्रत्येक के कर्मानुसार आत्मा भिन्न देहो मे प्रवेश करता है। यह सासारिक कर्मानुसार प्रचलित रहता है। कर्म-भोग के नियमानुसार आत्मा इस अनन्त भाव-चक्र मे इस देह से दूसरे देह मे विचरण करता है।

अर्जुन-मोह के प्रसग मे भगवान कृष्ण जीवात्मा की चैतन्यात्मक स्थिति का वर्णन करते हैं। जीव परमेश्वर की उत्कृष्ट विभूति है। वही क्षेत्रज्ञ है, क्योंकि शरीर (क्षेत्र) मे ज्ञाता रूप से निवास करने वाला जीव (क्षेत्रज्ञ) है। आत्मा अजन्मा नित्य, शाश्वत है, हन्यमान शरीर मे भी उसका हनन नहीं होता।[2] जीव कभी नही मरता न वह किसी को मारता है। ऐसा न मानने वाला अल्पज्ञ है।[3] आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, नित्य और सर्वव्यापी है।[4] इस प्रकार 'महाभारत' मे ब्रह्म के अनुसार ही जीव के स्वरूप और उसकी अनेक स्थितियो पर विचार किया गया है।

आधुनिक काव्य 'महाभारत' की जीवात्मा सम्बन्धी विचारधारा का प्रभाव आधुनिक काव्य पर यथेष्ट रूप में पड़ा है। किन्तु यहा यह कह देना अव्यावहारिक नहीं होगा कि यह प्रभाव सीधा 'महाभारत' से अनुमानित है, यद्यपि इसके स्वरूप-निर्माण मे 'महाभारत' और पुराण-युग के उपरान्त मध्यकालीन भक्ति-काल का भी योग है। आधुनिक कवि ने महाभारत पूर्ववर्ती और परवर्ती पुराणो, तथा भक्ति विकास की दीर्घ परम्परा से यह प्रभाव-ग्रहण किया है। इस दीर्घ परम्परा मे 'महाभारत' का योगदान प्रत्यक्ष है और वह उसी रूप मे आधुनिक काव्य मे उपस्थित है।

'महाभारत' की जीवात्मा सम्बन्धी विचारधारा को जगन्नाथ दास रत्नाकर

---

१ म० शान्ति० २११।१०-११

२ न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाय भूत्वाऽभविता न भूय ।
अजो नित्य शाश्वतोऽय पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। गीता। २।२०

३ य एन वेत्ति हन्तार यश्चैन मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नाय हन्ति न हन्यते ॥ गीता। २।१९

४ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्य सर्वगत स्थाणुरचलोऽय सनातन ॥ गीता २।२४

आध्यात्मिकता से व्यक्त हुए।

× × ×

उन्मुक्त जीव से वे सुकृति
स्वच्छन्द, स्वस्थ सब दीख पड़े।[1]

यहां इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि जीवात्मा कर्म के नियमित नियम के द्वारा शरीर के विकारादि को भोगता है। शरीर के धर्म समाप्त होने पर जीवात्मा उन्मुक्त आत्म रूप हो जाता है। यही जीवात्मा का मूल रूप है। कृष्णायनकार ने आत्मा की नित्यता और ब्रह्म की एकता को 'महाभारत' के विचारानुसार ही अभिव्यक्त किया है। अद्वैत का प्रतिपादन जिस रूप में 'महाभारत' में किया गया है, उसी रूप को द्वारका प्रसाद मिश्र जी ने गीता कांड[2] में व्यक्त किया है।

'अगराज' में आनन्द कुमार ने जीवात्मा को लोक की ऐसी जीवनी शक्ति माना है, जो अपने मूल रूप में ब्रह्माण्ड कोष में स्थित है और लोक में जीवनधारा का संचारण करती है।[3] संसार में प्रतिभासित अनेकता ब्रह्म रूप में एक ही है। यह प्रतिभास सांसारिकता के कारण होता है। वस्तुत ब्रह्म ही एकमात्र चेतनाधार है और वही लोक में प्राणरूप में प्रतिष्ठित है।[4], जीव का यात्रा-क्रम नित्य है। जीव के सभी कर्म नित्य हैं और वह अमर है। कवि यह मानता है कि इस नित्य संसार में अनित्य कुछ भी नहीं।[5] कवि इस विचार का प्रतिपादन करता है कि देह 'जीव' का कृत्रिम शरीर है, देह नष्ट होने पर कृत्रिम शरीर नष्ट होता है, जो अक्षर, सत्य है वह विद्यमान है। वह अविनाशी है।[6]

कृष्णायनकार ने 'महाभारत' के अनुसार ही, ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति और सम्पूर्ण जगत् में एक ही तत्व की अभिव्यक्ति का प्रतिपादन किया है। ब्रह्म एवं जीव की एकता का दार्शनिक विचार भारतीय परम्परा में प्राणरस की भांति प्रविष्ट हो चुका है।

मैं तुम माहि, तुमहुं मोहि माहिं,
स्वल्पहु विस्मय कारण नाहिं।

---

१ जयभारत, पृ० ४८२

२ अद्भुतवत् आत्महि कोउ पेखत, कोउतस सुनत, कोउतस बरनत।
तदपि देखि, सुनि, बरनि अनूपा, जानत कोउ न तासु स्वरूपा।
कृष्णायन, पृ० ५४१

३ अगराज, पृ० ७

४ अगराज, पृ० ७

५ अगराज, पृ० ८

६ होता है बस नाश जीव के कृत्रिम तन का।
अम्मर रहता सत्य रूप उसके जीवन का॥ अगराज, पृ० ८

एकहि तत्व व्याप्त जगसारा,
नहिं कहुँ में, तुम, मोर तुम्हारा ॥[१]

कविवर सुमित्रा नन्दन पन्त ने आत्मा को अमर रथी और मानव शरीर को रथ के रूप में 'महाभारत' की विचारधार को ही वाणी दी है।[२] यह आत्मा अस्पर्श, अशब्द, अरूप, अरस, अव्यय, नित्य, आद्यन्त रहित, अजरामर है।[३] आत्मा के उक्त दार्शनिक विवेचन के उपरान्त कवि अन्तरात्मा के ज्ञानविद होने पर जीवन मे शाश्वत चेतना का विकास और शान्ति का अधिष्ठान मानता है।[४]

जगत्

उत्पत्ति क्रम : 'महाभारत' मे दार्शनिक दृष्टि से जगत् की उत्पत्ति, और स्वरूप पर विचार किया गया है। मूल प्रश्न यह है कि यदि सृष्टि है तो किसी ने उसे उत्पन्न किया होगा ? जिसने उत्पन्न की उसे किसने इसके लिए बाध्य किया ? इन प्रश्नों का समाधान 'महाभारत' मे सांख्य वेदान्त तथा अन्य मतो की दृष्टि से हुआ है। ब्रह्म की कल्पना का मुख्य प्रश्न सृष्टि उत्पन्न कर्त्ता, पालन कर्त्ता के रूप में दार्शनिकों के समक्ष आया और सभी दार्शनिक मतों में, यद्यपि, भिन्न क्रम से जगत् की उत्पत्ति बताई गई है तथापि ये भिन्न क्रम एक ही व्यवस्था से वेदान्तसूत्रों में उपस्थित किये गये हैं।

सांख्य-वेदांत मत : सांख्य मत में पुरुष-सम्बन्धी कल्पना जगत् सृष्टि कर्त्ता ईश्वर की कल्पना से भिन्न है। उनके विचार मे प्रकृति जड़ जगत् है, जो पुरुष के सान्निध्य से अपने स्वभाव से ही सृष्टि उत्पन्न करती है। वेदान्त के अनुसार परमेश्वर सृष्टि अपने में से उत्पन्न करता है। जैसे मकड़ी अपने में से जाला उत्पन्न करती है उसी प्रकार परमेश्वर अपने से सृष्टि उत्पन्न करता है और प्रलय काल में अपने मे ही लय कर देता है।[५] वेदान्त में यह सिद्धान्त अभिन्न निमित्तोपादन

---

१. कृष्णायन, पृ० २४

२. यह आत्मा अमर रथी, नरतन जीवन रथ,
सारथिसद् बुद्धि, मनस प्रग्रह, भू असि पथ। लोकायतन, पृ० २३९

३. अस्पर्श, अशब्द,अरूप, अरस, अव्ययनित
आद्यन्त रहित आत्मा, अजरामर निश्चित्। लोकायतन, पृ० २३०

४. वह एक अन्तरात्मा सबको कर अधिकृत
पहुनः वन करता सर्व कामना पूरित।
वह नित्य अनित्यों में, चेतन में चेतन,
उसको पा शाश्वत सिन्धु-शान्तिपातामन। लोकायतन, पृ० २४०

५. सृष्ट्वा देवमनुष्यांस्तु गन्धर्वोरगराक्षसान्।
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्मभायया। म० वन० १८९।३०

सिद्धान्त कहलाता है, इसका तात्पर्य है कि जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण अभिन्न अर्थात् एक ही है। उसमे कुम्हार और मिट्टी के समान तात्विक भेद नही है। सृष्टि और सृष्टा, जगत् और ईश्वर, प्रकृति और पुरुष अभिन्न है—उनमे द्वैत नहीं है।

महाभारत में जगदुत्पत्ति-क्रम 'महाभारत' मे कई स्थलो पर सृष्टि की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है। पुनरावृत्ति के कारण सृष्टि-क्रम मे कुछ अन्तर भी मिलता है। इस क्रमान्तर का एक कारण मत विभिन्नता भी हो सकता है। किन्तु मूलत यत्किंचित् भेद मे सब क्रमो मे एकसूत्रता की स्थापना हो जाती है।

वनपर्व मे बालमुकुन्द कहते है कि मैं ही समस्त स्थावर प्राणियो और देवता आदि की रचना तथा सहार करता हू।[1] प्रलय काल म समस्त प्राणियो को महा निद्रारूप माया से मोहित करके स्थित रहता हू, इस समय ब्रह्मा सोये रहते है।[2] उनके जागने पर उनसे एकीभूत होकर सृष्टि की रचना करूगा।[3] यहा यह स्पष्ट है कि ईश्वर ही जगत् की सृष्टि करता है और उसमे ही सृष्टि उत्पन्न करने के कारण, निमित्त एव उपादान की अभिन्नता रहती है।

भरद्वाज-भृगु-सवाद भरद्वाज-भृगु सवाद मे जगत् की उत्पत्ति का वर्णन' व्यापक रूप से किया गया है। 'भगवान नारायण के सृष्टि-विषयक सकल्प से सृष्टि उत्पत्ति हुई।[4] यह सृष्टि क्रम इस प्रकार है —सबसे प्रथम महत्तत्व की उत्पत्ति हुई, महत्तत्व से अहकार और अहकार रूप भगवान् से आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश से जल, जल से अग्नि, एव वायु उत्पन्न हुए। अग्नि एव वायु के सयोग से पृथ्वी का जन्म हुआ।[5] इस सृष्टि क्रम का मूलाधार क्या है ? यह 'महाभारत' मे स्पष्ट नहीं। एक वस्तु की उत्पत्ति मे दूसरी वस्तु कारण बनती है अत इस क्रम को भी पूर्वोक्त अभिन्न निमित्तोपादन क्रम के समान ही मानना उचित होगा।

देवल-नारद सवाद मे उपनिषदो के अनुरूप सृष्टि-क्रम बताया गया है।' उसके अनुसार अक्षर से आकाश, आकाश से वायु वायु, से अग्नि, अग्नि से जल, जल

---

१. म० वन० १८६।३०

२ म० वन० १८६।४१

३ म० वन० १८६।४८-११

४ म० शान्ति० १८२।११

५ म० शान्ति० १८२।१३-१४
टिप्पणी यह उत्पत्ति क्रम श्रुति-सम्मत क्रम से भिन्न है। यहा पर आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति बताई है।

से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधियों से अन्न और अन्न से जीव उत्पन्न हुआ।[1] इस उत्पत्ति के विरुद्ध ही सृष्टि का लय-क्रम भी माना गया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि महाभारतकार ने सृष्टि और उत्पत्ति के विषय में वेदान्त मत स्वीकार किया है।

व्यास-शुकसंवाद : व्यास जी शुकदेव से सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में कहते है कि सृष्टि की उत्पत्ति अविद्या (त्रिगुणात्मिक प्रकृति) द्वारा होती है।[2] व्यास-कथित सृष्टि-क्रम अन्य क्रमों के अनुसार ही है, उसमें अधिक भेद नही है। इस क्रम में सर्व प्रथम महत्तत्व फिर आधार भूत मन, मन से सात मानस-ऋषियों की सृष्टि और फिर सृष्टि की इच्छा से प्रेरित मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।[3]

सृष्टि क्यों ? : 'सृष्टि कैसे ?' के साथ, सृष्टि क्यों ?' यह प्रश्न जगत के स्वरूप और उसके अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है। जगत सत्य है अथवा मिथ्या, इस बात की विवेचना भी इसी प्रश्न के अन्तर्गत हो जाती है। महाभारतकार ने निरीश्वर वादियों के विपरीत उपनिषदों के मत का आधार लेकर ईश्वर को ही सृष्टि का मू माना है। 'उपनिषद' में 'आत्मैव इदमग्र आसीत् सोम-यत् बहुस्याम प्रजायते'[4] के अनुसार प्रथम केवल ब्रह्म ही था, ब्रह्म के मन में आया कि मैं अनेक होऊँ और प्रजा उत्पन्न करूं। अर्थात् निष्क्रिय परमेश्वर के मन में इच्छा हुई और इच्छा के कारण जगत् निर्मित हुआ।

इस सिद्धान्त को भी पूर्ण मान्यता इस हेतु नही मिली कि इच्छानुसार अच्छी और बुरी सृष्टि को क्यों उत्पन्न किया गया ? किन्तु 'गीता' में भगवान ने इस 'क्यों' का उत्तर अत्यन्त सशक्त तर्क से दिया है। 'कि प्रात: काल के समय धीरे-धीरे अंध-कार से संसार प्रकाश में आता है, उसी प्रकार सृष्टि के आदि में अव्यक्त से भिन्न-भिन्न व्यक्तियां उत्पन्न होती हैं। संध्या के समय जैसे संसार शनैः शनैः अदृश्य होता जाता है उसी प्रकार संहार काल में भिन्न-भिन्न व्यक्तियां अव्यक्त में लीन होती है।[5]

शंकर ने मायावाद के कारण संसार का अस्तित्व ही नहीं माना। 'महा-भारत' में उनके मायावाद का व्यापक रूप तो अप्राप्त है किन्तु उसके स्रोत अवश्य उपलब्ध हैं। 'महाभारत' मे माया के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति और संहार के साथ

---

१. म० शान्ति० २७५

२. म० शान्ति० २३२।२

३. म० शान्ति० २३२।३-८

४. बृहद्० १-४,११७

५. अव्यक्ता व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।
राज्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके॥ गीता ८।१८

जगत् की अनित्यता का जिस रूप में वर्णन किया गया है उसे मायावाद का स्रोत मानने में विशेष अवरोध नहीं।

सनत्सुजातपर्व का संवाद इस विषय में महत्वपूर्ण है।[1] धृतराष्ट्र प्रश्न करते हैं। 'उस पुराण अजन्मा परब्रह्म की उत्पत्ति के लिए कौन कार्य करता है, उसको इसमें क्या सुख होता है?' इसके उत्तर में विकार योग से विश्व की उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।[2]

आधुनिक काव्य

हिन्दी जगत के आधुनिक कवि ने सृष्टि के स्वरूप, उत्पत्ति और संहार के विषय में स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं किया है। महाभारत काल में व्यक्ति जगत् के भौतिक अस्तित्व को स्वीकार करके ब्रह्म की अमर सत्यता का प्रतिपादन करता था। आज का कवि भी जगत् को महान भौतिक सत्य के रूप में स्वीकार करता है तथापि अपने सामाजिक परिवेश के कारण दार्शनिक दृष्टि से जगत की स्थिति के विषय में विचार करना उसे अति प्राचीन लगता है। ब्रह्म की स्वीकृति आज के युग में भावात्मक है पर जगत् की स्वीकृति यथार्थ और वास्तविक है। वह वास्तविकता को उसके भौतिक परिवेश में स्वीकार कर उससे सन्तुष्ट है। 'महाभारत' की जगत् विषयक विचारणा का प्रभाव आधुनिक काव्य पर अत्यन्त विरल रूप में पड़ा है। महाभारत काल के दार्शनिक की दृष्टि आधुनिक युग में कठिन प्राय है अतः सृष्टि के विषय में तद्वत् मान्यता का अभाव दिखाई देता है। तथापि कहीं-कहीं पर सृष्टि विषयक विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है।

जैसा कि पहले कहा गया है। आधुनिक कवि की दृष्टि में जगत् वास्तविक है, यथार्थ है, वह उसके उत्पत्ति के कारणों पर उतना विचार नहीं करता जितना उसकी स्थिति, गतिमत्ता और स्वरूप पर। वह जगत् को असत्य नहीं मानता और उसके स्वाभाविक विकास में समस्त परम्पराओं का विकास मानता है। विश्व में दुःख, आनन्द, भौतिक कष्ट आदि सभी तत्व मानव के लिए वरेण्य हैं। सब में सन्तुलित समन्वय से जीवन की प्राणधारा का सम्यक् प्रतिमान रहता है। 'महाभारत' में सृष्टि को परमात्मा से उत्पन्न माना गया है। सृष्टि का कर्ता ईश्वर ही है वही इसे

---

1 योऽसौ निधुवते तमजं पुराणं
सर्वेदिदं सर्वमनुक्रमेण
किं वास्य कार्यमथवा सुखं च।
तन्मे विद्वन् ब्रूहि सर्वं यथावत्॥ म० उद्योग ४३।१६

2 विकार योगेन करोति विश्वम्। म० उद्योग० ४३।२१

अपनी इच्छानुसार निर्मित करता है।[१] 'दमयन्ती' काव्य में भी ईश्वर के अंश रूप में सृष्टि को स्वीकार किया गया है कि संसार उसी ब्रह्म का रूप है।

किन्तु यह भव है उसी का रूप,
व्याप्त कण-कण में अदृश्य अनूप।
सर्व व्यापक यों उसी का नाम,
वह स्वयं कर्त्ता बना निष्काम।[२]

इन पंक्तियों मे 'गीता' का प्रभाव स्पष्ट है कि ईश्वर त्रिगुणात्मक सृष्टि का रचयिता होकर भी उससे निर्लिप्त है। 'निष्काम' शब्द से कवि को ब्रह्म की निर्लिप्तता ही अभिप्रेत है। 'क्योंकि है यह विश्व ईश स्वरूप' ऐसा कहकर कवि संसार को सर्वथा मिथ्या नही मानता।

भगवान् कृष्ण के विराट रूप-प्रदर्शन में दिनकर ने जगत् के अस्तित्व को ब्रह्म में लीन माना है। गगन, पवन, अग्नि, संकल संसार और संहार सभी कुछ दृश्य मान, ब्रह्म मे लीन है अतः दिनकर 'महाभारत' के अनुसार अद्वैत की स्थिति को स्वीकार करते है।[3]

मैथिलीशरण गुप्त जगत् को माया के प्रपंच के रूप में मिथ्या मानते है। 'मिथ्या माया का प्रपंच है, दृश्यमान यह सारा'।[४] 'महाभारत' मे संसार के मिथ्यात्व का दार्शनिक सैद्धान्तिक प्रतिपादन नही किया गया, किन्तु ब्रह्म को ही परम सत्य मानकर संसार के सत्य को उस रूप में स्वीकार नहीं किया है। संसार को अनित्य माना गया है। जो वस्तु अनित्य और अविद्या माया से उत्पन्न है, वह नित्य नही हो सकती, अतः जो नित्य नही है वह नाशवान् है।

आधुनिक कवि जगत् की नश्वरता की विचारधारा का सम्बन्ध 'महाभारत' से जोड़ लेता है पर वह तत्कालीन दार्शनिकों की भाति उसे असत्य नही मानता। जब संसार है, दिखाई दे रहा है, देहात्मा उसके विकारों का अनुभव कर रहा है तो यह संसार असत्य नही है। इस तर्क का खंडन भी मिलता है। महाभारतकार प्रत्येक रूप से संसार को कष्टदायक मानता है। 'महाभारत' मे अनेक स्थलों में आत्मा की मुक्ति की बात कहकर सांसारिक वैभव को मुक्ति का बाधक माना है।[५] इस तथ्य की विवेचना इस प्रकार हो सकती है कि यदि चरम पदार्थ मुक्ति मोक्ष है और संसार की आसक्ति उसमें बाधक है तो यह विश्व सत्य कैसे हो सकता है हरिऔध भी संसार में आत्म-सुख को ही प्रधान मानते है, यद्यपि संसार के वश में होकर आत्म-

---

१. म० शान्ति० अध्याय २२०, २७५, २३२
२. दमयन्ती, पृ० १६०
३. रश्मिरथी, पृ० ३१
४. द्वापर, पृ० १७३
५. म० शान्ति० २०४।४-६

सुख मिलता नही[1]

मिश्र जी की दृष्टि मे प्रलयकाल की वेला मे सृष्टि जलमग्न हो जाती है। एकमात्र सत्य विद्यमान रहता है।[2] 'महाभारत' की इस विचारधारा का प्रत्यक्ष प्रभाव 'सेनापति कर्ण' मे उपलब्ध है—

चिन्ता नही डूबता तो अखिल जगत है,
डूबनी है सारी सृष्टि वेला मे प्रलय की।[3]

महाभारत कार की भावना शुद्ध दार्शनिक है। किन्तु आधुनिक कवि मान्य आध्यात्मिक सिद्धान्तों को लोक-व्यवहार के स्तर पर जीवन मे उतारता है। प्रलय काल मे सृष्टि का ब्रह्म मे लीन होना सत्य है, सृष्टि विलय के साथ समस्त सांसारिक तत्व समाप्त हो जायेंगे, ऐसी परिस्थिति में यह उचित प्रतीत होता है कि व्यक्ति सृष्टि को नश्वर मानकर न तो उसमे अधिक आसक्ति का प्रदर्शन करे, और न अपने कर्त्तव्य कर्मों से विमुख हो।

आज का दार्शनिक कवि ब्रह्म और जगत् मे अभेदत्व स्वीकार करता है। पंत जी के विचार मे प्रभु सृष्टि की रचना ही नही करते अपितु स्वयं सृष्टि बन जाते हैं और इस प्रकार वे जगत् मे अपनी ही अभिव्यक्ति पाते हैं।[4] संसार मिथ्या न होकर विश्वात्मा की सुखप्रेरित सृजन कला का अद्भुत चमत्कार है। अन्तर इतना है कि ब्रह्म अपरिवर्तित है और जगत् परिवर्तनशीलता के गुण से व्याप्त है। यह परिवर्तनशीलता उसका गुण भी है और क्षण-भंगुरता का आभास भी।

जग भगवत् सृजन कला, असीम सुख प्रेरित,
सब कुछ प्रतिपल होता रहता परिवर्तित।[5]

पंत जी संसार को मिथ्या नहीं मानते क्योंकि वह ईश्वर का क्रीडा आंगन है। जगत् के क्षण भंगुरत्व पर शाश्वत ब्रह्म अपने अखंड स्वरूप का आभास कराता है अत जगत् असत्य नही है।[6] यह विश्व स्वयं ब्रह्म का रूप है और ब्रह्म का चेतन

---

१ प्रिय प्रवास, १६।४५

२ म० वन० १८९।४० और म० शान्ति० अध्याय २३३

३ सेनापति कर्ण, पृ० ३१-३२

४ लोकायतन, पृ० २३३

५ लोकायतन, पृ० २३३

६ मिथ्या न जगत् यह ईश्वर का घर आंगन,
क्षण के लघुपग धर करना शाश्वत विचरण।।
× × ×
विश्वात्मा सत्य जगत्-विकास के पथ पर
अतश्नर्तन अभिव्यक्ति लक्ष्य अविनश्वर। लोकायतन, पृ० २३४

तत्व सृष्टि का संचालन करता है।[१] सृष्टि का अपना पृथक् अस्तित्व नहीं है वह ब्रह्म द्वारा संचालित, पालित और नष्ट होती है। ब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप से ही व्यक्त जगत् की स्थिति है।[२]

आधुनिक कवि उक्त अनेक रूपों में जगत् के विषय में विचार करता है। अन्ततः जगत् नश्वर है।[३] उसकी नश्वरता और क्षणिक सत्यता, उसे स्वीकार्य है वह जगत् को उसके समस्त गुण और अवगुणों से युक्त रूप में स्वीकार कर प्रवृत्ति-मूलक जीवन दर्शन की स्थापना करता है।

माया

'महाभारत' के दार्शनिक चिन्तन के अन्तर्गत माया का विचार ब्रह्म, जीवात्मा जगत् आदि के समान विस्तार से नहीं किया गया है। तात्पर्य यह है कि महाभारत-कार ने जिस प्रकार ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि, सृष्टि की उत्पत्ति, संहार आदि का विवेचन अनेक उपाख्यानों के द्वारा किया है और तात्कालिक अनेक सम्प्रदायों के तत्वचिन्तन में समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया है, उसी रूप में 'माया' को स्वतन्त्र विवेचन का विषय नहीं बनाया। चार-पांच स्थलों पर ही 'माया' की चर्चा हुई है। 'माया' को लेकर परवर्ती दार्शनिकों में जितना ऊहापोह हुआ है उसका मूलाधार 'महाभारत' से उत्सृष्ट नहीं मानना चाहिए। उसका विकास तो स्वतन्त्र रूप से हुआ है।

माया का उल्लेख : 'गीता में माया परमेश्वर की शक्ति है।[४] यहां पर भी माया के विषय में अधिक विस्तार से नहीं कहा गया। शान्ति पर्व में श्वेतकेतु-सुवर्चला के संवाद में श्वेतकेतु ईश्वर की अनेक मायाओं की चर्चा करते हैं।[५] सुवर्चला श्वेत-

---

१. मैं स्वयं सृष्टि हूं, भव हूं, कल्याण कामना चिन्तन।
मैं विश्व प्रकृति में चेतन गुण संचालन करता हूं। कौन्तेय कथा, पृ० ७२

२. निज अव्यय रूपहिं द्वारा
व्याप्त कीन्ह यह जग में सारा। कृष्णायन, पृ० ५७२

× × ×

यह जगत् सत्य रे नित्य ब्रह्म अवलम्बित,
अपने में मिथ्या, बाह्य द्वन्द से मंथित। लोकायतन, पृ० २३४

३. इस नश्वर जग में मरकर भी रहते अमर इसी विध सज्जन।
अंगराज, पृ० १०६

४. सम्भवाम्यात्ममयया:, गीता

५. यावत् पांसव उद्दिष्टास्तावत्योऽस्य विभूतयः।
तावत्यश्चैव मायास्तु तावत्योऽस्याश्च शक्तयः॥
म० शान्ति० २२०। दाक्षिणात्य पाठ का ६०वां श्लोक।

केतु से ससार, जन्म, अनेक प्रकार के विरोधो का प्रयोजन पूछती है[1] तो उसका उत्तर 'परमेश्वर सक्रीडा लोक सृष्टिरिय शुभे'[2] के रूप मे मिलता है। तदुपरान्त वे कहते हैं कि धूलि के जितने कण हैं, परमेश्वर श्री हरि की उतनी ही विभूतिया हैं, उतनी ही उनकी मायाए हैं और उनकी माया की उतनी शक्तिया भी हैं। इस कथन से यह स्पष्ट है कि माया को परमेश्वर की शक्ति के रूप मे मानना और उससे ससार की स्थिति की स्थापना महाभारत काल मे पूर्ण रूप से मान्य थी।

माया विकार 'माया शब्द के प्रयोग के अतिरिक्त एक दो स्थल ऐसे हैं जिनमे 'विकार' शब्द का अर्थ टीकाकारो ने माया किया है। इनमे उद्योग पर्व का सनत्सुजात पर्व अधिक महत्व पूर्ण है। उस पर्व मे ब्रह्म और माया का स्वरूपात्मक सम्बन्ध स्पष्ट रूप से चित्रित किया। धृतराष्ट्र और सनत्सुजात के सवाद मे धृतराष्ट्र प्रश्न करते हैं कि यदि यह परमात्मा ही क्रमश सम्पूर्ण जगत् रूप मे प्रकट होता है तो उस अजन्मा और पुरातन पुरुष पर कौन शासन करता है, अथवा उसे इस रूप मे आने की क्या आवश्यकता है ?[3]

सनत्सुजात धृतराष्ट्र के प्रश्न के उत्तर मे जीवात्मा की महत्ता और माया के सम्बन्ध की विवेचना करते हैं कि, 'अनादि माया' के सम्बन्ध से जीवो का काम सुख आदि से सम्बन्ध होता रहता है, ऐसा होने पर भी जीव की महत्ता नष्ट नहीं होती, क्योकि माया के सम्बन्ध से जीव के देहादि पुन उत्पन्न होते हैं।[4] जो नित्य स्वरूप भगवान् है, वे ही परब्रह्म माया के सहयोग से इस विश्व, ब्रह्माड की सृष्टि करते हैं। यह माया उन्ही परब्रह्म की शक्ति है। महात्मा पुरुष इसे मानते हैं।[5] इस रूप मे सनत्सुजात ने 'विकार' का प्रयोग किया। 'विकार' शब्द की अपनी कोई पृथक् सत्ता दार्शनिको मे नहीं अत टीकाकार का 'माया' अर्थ उचित ही जान पडता है। चिन्ता-

---

१ म० शान्ति० २२०१ दाक्षिणात्य पाठ, का ५६वा श्लोक।

२ म० शान्ति० २२०१दाक्षिणात्य पाठ ५वा श्लोक, पृ० ४६६२

३ कोऽसौ नियुङ्क्ते तमज पुराण
सचेदिद सर्व मनुक्रमेण,
कि वास्य कार्यमथवा सुख च
तन्मे विद्वन् ब्रूहि सर्व यथावत्। म० उद्योग० ४२।१६

४ म० उद्योग० ४२।२०

५ यएतद् वा भगवान् स नित्यो
विकार योगेन करोति विश्वम्।
तथा च तच्छक्तिरिति स्म मन्यते।
तथार्थ योगे च भवन्ति वेदा ॥ म०, उद्योग ४२।२१

मणि विनायक वैद्य ने भी इसे इसी रूप में स्वीकार किया है।[1]

शान्तिपर्व में भी एक स्थान पर कहा गया है कि माया के कारण ही परमेश्वर का रूप छोटा अथवा बड़ा होता है।[2] यहां भी टीकाकार ने 'माया' शब्द का प्रयोग किया है।

प्रकृति-माया : 'महाभारत' में भगवान् कृष्ण अर्जुन की शंका का समाधान करते हुए कहते हैं कि 'हे अर्जुन मेरे और तेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं सब को जानता हूं, तू नहीं जानता क्योंकि पाप पुण्यादि संस्कारों से आच्छादित तेरी ज्ञान-शक्ति इस ज्ञान में असमर्थ है। पर मैं नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला हूं'। इसके बाद ईश्वर का पाप-पुण्य से असम्बन्ध होने पर भी जन्म क्यों होता है ? इस विषय में भगवान कहते हैं : 'यद्यपि मैं अजन्मा, अव्यक्तात्मा, ज्ञानशक्ति स्वभाव वाला हूं और ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सम्पूर्ण भूतों का नियमन करने वाला ईश्वर हूं तो भी अपनी त्रिगुणात्मिक वैष्णवी माया को जिसके वश मे समस्त संसार रहता है, और जिससे मुग्ध हुआ मनुष्य अपने वासुदेव स्वरूप को नहीं जानता, उसी अपनी प्रकृति माया को अपने वश में रखकर अपनी लीला से ही शरीर वाला सा जन्म लिया होता हू।[3] यहां माया-विषयक दो बातों पर ध्यान देना चाहिए एक तो यह कि माया परमेश्वर की शक्ति है और परमेश्वर उसको अपने वश में रखता है, अर्थात् माया द्वारा प्रतिभासित तत्व ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध नही हो सकता। माया सर्वथा ब्रह्म के आधीन है। दूसरा तथ्य यह है कि जीव माया के कारण ही अपने मूल रूप को नहीं जान पाता। 'महाभारत' में माया को इन्द्रजाल की शक्ति,[4] रहस्य युक्त दैवी शक्ति[5] योग शक्ति[6] और मोहित करने वाली[7] शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया। माया को ऐसी कृत्या माना है जिसकी शक्ति से आकाश में उड़ना, और रसातल में जाना भी सम्भव हो सके। इल प्रकार अनेक रूपों में माया का व्यवहार हुआ है। इन सब प्रकारों का वर्णन आधुनिक कवियों ने अपनी विचार-धारा के अनुरूप किया है।

आधुनिक काव्य में माया : अ धुनिक कवियों ने माया को ईश्वर की शक्ति अथवा सांसारिक कष्ट माना है। यद्यपि माया का अधिक दार्शनिक विवेचन सम्भव

---

१. महाभारत मीमांसा, पृ० ५३६
२. म० शान्ति० १८२।३४
३. म० भीष्म २८।६
४. म० उद्योग० १६०।५४-५७, गीता ७।३५
५. म० वन ३१।३७
६. म० उद्योग० १६०।५५-५६
७. म० वन० ३०।३२

नहीं हो सका क्योंकि 'महाभारत' से प्रभावित काव्यों की दृष्टि सामाजिक और सांस्कृतिक अधिक रही, दार्शनिक नहीं, फिर भी यत्रतत्र माया के विषय में अभिव्यक्ति हुई है।

मैथिलीशरण गुप्त ने माया को कृष्ण की कौतुकी शक्ति माना है। इस माया के आश्रय से ही कृष्ण अनेक कौतुक करते हैं।[1] अर्जुन की प्रतिज्ञा के अवसर पर अर्जुन भगवान की विस्मयी माया का चमत्कार देखते हैं।[2] माया के इस रूप के साथ गुप्त जी परमात्म-साक्षात्कार के मार्ग में माया को बाधा मानते हैं और माया के विकार लोभ, मोह, काम, क्रोध को मार्ग का लुटेरा मानते हैं।[3]

'महाभारत' में समस्त सृष्टि की उत्पत्ति माया द्वारा मानी गई है।[4] द्वापर में गुप्त जी समस्त सांसारिक प्रपंच को मिथ्या और मायात्मक मानते हैं।[5] किन्तु उन्होंने यह भी माना है कि 'मिथ्या कैसे है माया भी, जब तक वह मायावी'[6] ब्रह्म और माया का सम्बन्ध शाश्वत है, अतः माया को मिथ्या मानना भी उचित नहीं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने माया मोह का दार्शनिक विवेचन तो नहीं किया किन्तु मोह को संसार-चक्र की मुख्य धुरी माना है। मोह के कारण ही व्यक्ति संसार में सदसत् कर्म करता है और सांसारिक माया-पाश से आबद्ध होकर पथ-भ्रष्ट होता है, और ब्रह्मज्ञानी सांसारिक मोहपाश से मुक्त, मोह-रहित, ब्रह्मधाम को प्राप्त होता है।[7] मानव अनेक बार मोहग्रस्त होता है। विश्व की सत्ता भ्रान्त करती है, तथापि वह आत्मज्ञान से माया पर विजय प्राप्त कर लेता है।[8] 'पार्वती' प्रबन्ध काव्य में

---

१ कर योगमाया को सजग निद्रित जगत की व्याप्ति को।
झट ले चले वे पार्थको शिव-निकट अस्त्र प्राप्ति को॥ जयद्रथवध, पृ० ४८

२ सब हो गई उनको विदित माया महा विस्मयमयी॥ जयद्रथवध, पृ० ८५

३ नहुष, मंगलाचरण, पृ० १३

४ म० उद्योग० ४२।२१

५ द्वापर, पृ० १७३

६ द्वापर, पृ० १७८

७ " परन्तु मोह-चक्र में
क्यों हो पड़े भाई तुम ? जन्म ब्रह्म कुल में
तुमने लिया जो ब्रह्मज्ञानी बनो लोक में।
काट यह माया-पाश साधना की असिसे
सिद्धिधरो आओ ब्रह्मधाम, इस लोक की
कामना में हो रहे हो हाय, पथ भ्रष्ट क्यों ? सेनापति कर्ण, पृ० ४०-४१

८ भ्रामति क्षत्रज नरवर खो गया था मोह में
मूढ़वन, विजड़ित चरण पासूक्ष्म दृष्टि विछोह में। द्रौपदी, पृ० ३८

रामानन्द तिवारी ने प्रकृति को संसारिक छल का मुख्य कारण माना है। सांसारिकता के योगात्मक प्रतिकार की विवेचना करते हुए 'योग एक प्रतिकार प्रकृति से सम्भव छलका'[1] कहकर प्रकृति की मायात्मिका स्थिति को स्वीकार किया है।

कृष्ण के प्रति गोपियों के सात्विक समर्पण का समर्थन करते हुए हरिऔध जी ने माया के अनेक रूपों का वर्णन किया है। मोह व्यक्ति को ममत्वपूर्ण बनाता है, पर सांसारिक ममत्व व्यक्ति को वासना, सुख लालसा की ओर ले जाता है। सुख लालसा की ओर जाकर वह अपने स्वरूप को भूलता है।[2] कृष्णायनकार माया के नष्ट होने पर ही जीव मुक्ति की कल्पना करते है।[3] त्रिगुणात्मिका प्रकृति माया से ग्रस्त व्यक्ति अल्पज्ञ, मंदमति है, वह जीवन की वास्तविकता को नहीं जान सकता। जो प्राणी माया-रहित और पूर्ण ज्ञानी है वह भ्रमित नही होता।[4] ईश्वर माया के द्वारा ही क्रीड़ा करता है। नराकार रूप में माया के द्वारा असत्य के सर्वनाश और सत्य की स्थापना का खेल करता है। अपनी शक्ति माया के द्वारा सर्वज्ञ ईश्वर स्वयं श्रेष्ठता का प्रदर्शन करता है।[5]

आधुनिकता : आज के कवि ने अपनी सामाजिक प्रवृति के अनुसार 'माया' के दार्शनिक स्वरूप को सामाजिक स्तर पर चित्रित किया है। 'दर्शन' के क्षेत्र में विषय वासना, स्त्री, पुत्र सांसारिक ऐश्वर्य सब कुछ माया है, इसे त्यागकर ही परम पद की प्राप्ति सम्भव है, किन्तु आधुनिक बुद्धिवादी कवि मानसिक जगत की विडम्बना के समस्त उपचारों को 'माया' के रूप में ही मानता है। हमारी स्वार्थदृष्टि केवल निज की उन्नति की कामना, हृदय के राग, विराग सभी मायात्मक हैं। जब तक इन पर विजय प्राप्त नही होगी तब तक समाज का सुख सम्भव नहीं है। अतः कुरुक्षेत्र के युधिष्ठिर मायाजन्य आत्म राग से संघर्ष करके मानवता की विजयकामना

---

१. पार्वती, पृ० २७१

२. प्रिय प्रवास, सर्ग १६

३. विनसेउ काया-माया-माना,
भेंटे मुक्त जीव भगवाना। कृष्णायन, पृ० ५२०

४. प्रकृति-गुणमय-मुग्ध मूढ़ जन,
अर्जुन ! लिप्त रहत गुण कर्मन।
ग्रस्त अल्पज्ञ, मंदमति मनुजन।
नरमहि नहि पूर्ण ज्ञानिजन॥ कृष्णायन, पृ० ५४८

५. अंगराज, पृ० २६६-६७

करते हैं।[1] दार्शनिक दृष्टि से माया के विकार काम, क्रोध, लोभ और मोह, व्यक्ति कोसाधना-पथ पर अग्रसर होने से रोकते हैं अतः मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग में इन पर विजय पाना आवश्यक है। इसी कारण अनेक भक्त-कवियों ने मायात्मक सांसारिकता से छुटकारा पाने की प्रार्थना की है। आधुनिक कवि समाज की बौद्धिक चेतना में व्याप्त इन मायात्मक रूपों की नई व्याख्या करता है लोभ, मोह, व्यक्ति के स्वार्थ का मूल हैं। यह व्यक्तिगत स्वार्थ अनेक राजनैतिक संघर्षों की जड़ है यदि लोभ की इस नागिन का ज्ञान व्यक्ति को हो जाय तो वह अपने क्षुद्रत्व की सीमा का त्याग करने में समर्थ हो सकता है। लोभ मन की उस ज्योति का हरण कर लेता है जिससे मानवलोक कल्याण के पथ पर अग्रसर हो सकता है।[2] अतः आधुनिक कवि महाभारतकार के स्वर में ही वैयक्तिक, सामाजिक और आध्यात्मिक चरमोत्कर्ष को प्राप्त करने के लिए 'माया' का खंडन और हृदय की निर्मल ज्योति का समर्थन करता है।

मोक्ष

भारतीय दर्शन में मोक्ष सर्वोच्च पद है और मोक्ष का स्वरूप भी ब्रह्म की भांति अचिन्त्य और केवल अनुभव जन्य है। यह इसलिए कहा गया है कि मोक्ष दृश्यमान निश्चय में अनुभूत नहीं है 'महाभारत' में मोक्ष को परमपद कहा गया है।[3] अत्यन्त सूक्ष्मानुभूति होने के कारण मोक्ष का स्वतन्त्र स्वरूपात्मक विवेचन सम्भव नहीं। सभी तत्त्वज्ञानियों ने इतना ही कहा है कि मोक्ष वह परम पद है जिसको

---

१ यह होगा महारण राग के साथ
युधिष्ठिर हो विजयी निकलेगा।
नरसंस्कृति की रण छिन्न लता पर
शांति सुधा-फल दिव्य फलेगा।
कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इतिपथ की
मानव ऊपर और चलेगा।
मनुजा यह युग निराश नहीं
नवधर्म प्रदीप अवश्य जलेगा। कुरुक्षेत्र, पृ० ६४

२ यह राज सिंहासन ही जड़ था
इस युद्ध की मैं अब जानता हूं
द्रुपदा-कच में थी जो लोभ की नागिन
आज उसे पहचानता हूं
मन के दृग की शुभ ज्योति हरी
इस लोभ ने ही यह मानता हूं। कुरुक्षेत्र, पृ० ६३-६४

३ प्रोच्यते परम पदम्। म० अनुशासन० पृ० ६००८

प्राप्ति मानव का सर्वोच्च ध्येय है। संसार में जीव सांसारिक बन्धनों के कारण विशेष संज्ञा-बोध होता है, और सांसारिक संज्ञा हीनता ही मोक्ष है। मोक्ष की स्थिति में जीव की कोई पृथक् सत्ता नही। पृथक् सत्ता के अभाव में वह संज्ञा शून्य और ब्रह्म से एकात्मत्व अनुभव करता है। अतः कहना होगा कि ब्रह्म से एकत्व ही जीवन्मुक्ति 'मोक्ष' है।

'महाभारत' में मोक्ष के स्वरूप की व्याख्या महेश्वर, इस प्रकार कहते हैं :—देवि, मोक्ष से उत्तम कोई तत्व नही और न मोक्ष से श्रेष्ठ कोई गति है, ज्ञानी पुरुष उसे कभी निवृत्त न होने वाला श्रेष्ठ एवं आत्यन्तिक सुख मानते है[1], वह नित्य, अविनाशी, अक्षोम्य, अजेय, शाश्वत, शिव स्वरूप देवताओं और असुरों के लिए स्पृहणीय है, ज्ञानी लोग ही उसमें प्रवेश करते हैं।[2] मोक्ष का अर्थ जीवनमुक्ति संसार-मुक्ति के रूप में किया गया है अतः समस्त सांसारिक तत्व मोक्ष-मार्ग में बाधक हैं और उन पर विजय प्राप्त करने वाला प्राणी ही मोक्ष का अधिकारी है।

मोक्ष के साधन : महाभारतकार ने मोक्ष के साधन-मार्गो पर व्यापकता से विचार किया है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उस काल में मुख्यरूप से दो प्रकार के साधन प्रचलित थे :—प्रथम साधन संसार-त्याग और निष्क्रियता से मोक्ष प्राप्ति अर्थात् वैराग्य निवृत्ति, द्वितीय मार्ग है संसार में रहकर धर्माचरण द्वारा मोक्ष प्राप्ति प्रवृत्ति। ईश्वर से जीवात्मा का तादात्म्य होना भारतीय आर्यों का अन्तिम ध्येय है, यही मोक्ष है। इस मोक्ष के लिए संसार छोड़कर अरण्य में जाकर निष्क्रिय बनकर परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। वेदान्त, सांख्य और योग का मोक्ष मार्ग यही है। यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जो मनुष्य संसार छोड़कर अरण्य में नहीं जाता, किन्तु संसार में रहकर धर्माचरण करके जीवन व्यतीत करता है, उस मनुष्य के लिए मोक्ष है या नहीं ?

मोक्ष के साधक को क्या वन-निवास अनिवार्य है ? अथवा जगत् के सब कर्मों का त्याग करके उनसे सम्बन्ध अवश्य तोड़ना चाहिए ? 'महाभारत' में इस प्रश्न की चर्चा अनेक स्थानों में की गई है और इस प्रश्न का उत्तर परस्पर विभिन्न आधारों से दिया गया है।

कस्यैषा वाग्भवेत्सत्या नास्ति मोक्षो गृहादिति ।[3]

"यह किसका कथन सत्य होगा कि घर में रहने से मोक्ष नहीं मिलता।" इस विषय में भिन्न मतों का विचार करते हुए महाभारत काल में यही मत विशेष

---

१. म० अनु० पृ० ६००८
२. म० अनु० पृ० ६००८
३. म० शान्ति० २६६।१०

ग्राह्य है कि सांसारिक को मोक्ष नहीं मिलता।

'महाभारत' का यह मत है कि मोक्ष पाने के लिए वैराग्य आवश्यक है। इन्द्रियों द्वारा आत्मा का विषयों से संसर्ग समाप्त कर जब मन स्थिर होगा तभी मोक्ष मिलेगा।

द्वितीय मार्ग 'महाभारत' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भगवान् कृष्ण ने वैराग्य को अधिक महत्व नहीं दिया उन्होंने निष्काम कर्म, धर्माचरण के आधार पर ही मोक्ष प्राप्त करने की भावना का प्रसार किया। कृष्ण ने संसार में रहकर धर्म तथा नीति का आचरण करना ही मोक्ष का मार्ग बताया। यह स्वतन्त्र मत गीता में प्रतिपादित हुआ है। उनके मत में मोक्ष प्राप्ति के लिए निष्क्रियत्व अथवा सन्यास जितना निश्चित और विश्वासपूर्ण मार्ग है, उतना ही स्वधर्म से, न्याय से, निष्काम बुद्धि से, अर्थात् फल त्याग बुद्धि से कर्म करना भी मोक्ष का निश्चित मार्ग है। धर्म युक्त निष्काम कर्माचरण का मार्ग सिर्फ भगवत् गीता में ही नहीं बतलाया गया किन्तु सम्पूर्ण 'महाभारत' में अथ से इति तक इसका प्रसार है।

वैद्यजी के अनुसार "इन राष्ट्रीय महाकाव्यों में राम, युधिष्ठिर, भीष्म आदि के चरित्र, कर्मयोग का अमर सिद्धान्त पाठकों के चित्त पर अंकित करने के लिए, अपनी उच्च वाणी से अत्यन्त उत्तम रंगों से रंगे हैं। इन चरित्रों के द्वारा उन्होंने उपदेश दिया है कि इसी उच्च तत्व के अनुसार आचरण करने से मनुष्य को परम पद प्राप्त होगा। हमारे मत से 'महाभारत' का पोथा चाहे जितना बढ़ गया हो तथापि उसका परमोच्च नीतितत्वों का यह सिद्धान्त कहीं लुप्त नहीं हुआ है। वह पाठकों की दृष्टि के सामने स्पष्ट अक्षरों में लिखा सदैव दिखाई देता है"।[1]

'महाभारत' में धर्म आठ प्रकार का बतलाया गया है। यज्ञ, वेदाध्ययन, दान और तप का एक वर्ग है और सत्य, क्षमा, इन्द्रिय दमन और निर्लोभ का दूसरा। इसमें कर्म और नीति मार्ग का वर्णन है। कर्म मार्ग उतना उच्च नहीं है क्योंकि यह केवल प्रदर्शन के लिए भी हो सकता है। नीति मार्ग ही वास्तविक मार्ग है। गीता में सद्गुणों की दैवी सम्पत्ति से मोक्ष प्राप्ति का विधान भी सुरक्षित है।

युधिष्ठिर का आचरण योग, सांख्य और वेदान्त के मत से सन्यास के निष्क्रियत्व के समान स्वधर्म से, निष्काम बुद्धि से, कर्म का आचरण भी मोक्ष के लिए विश्वसनीय है। सम्पूर्ण 'महाभारत' में धर्मराज युधिष्ठिर के चरित्र के द्वारा इसी

---

१. महाभारत मीमांसा, पृ० ५१२

२ इज्याध्ययन दानानि
तपः सत्यं क्षमा दमः।
अलोभइति मार्गोयं
धर्मस्याष्ट विधिः स्मृतः॥ म० वन० २।७५

सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। युधिष्ठिर के धर्माचरण पर जब द्रौपदी अव्यावहारिकता का संदेह करती है तो वे उत्तर देते है।

धर्मंचरामि सुश्रोणि
न धर्म फल कारणात्।
धर्मवाणिज्यको हीनो
जघन्यो धर्मवादिनाम् ॥[1]

युधिष्ठिर के कथन और सर्वत्र आचरण से यह स्पष्ट है कि इस संसार में सात्विक प्रवृत्ति मार्गी व्यक्ति भी शुद्ध धर्माचरण द्वारा अपने को इतना ऊंचा कर लेता है कि वह परमपद का अधिकारी होता है। इस प्रकार 'महाभारत' में मोक्ष की प्राप्ति के निवृत्ति मूलक एवं सात्विक प्रवृत्ति मूलक जीवन दृष्टियों का विवेचन है।

आधुनिक काव्य : 'महाभारत' मोक्ष-सम्बन्धी विचारधारा का प्रभाव आधुनिक काव्य पर युग के संदर्भ में, दिखाई देता है। आज विज्ञान और बुद्धि का युग है, अतः यह तो निश्चित है कि वैराग्य-साधन से प्राप्त होने वाले मोक्ष का प्रभाव अधिक नही पड़ सकता। आधुनिक कवि प्रत्येक आध्यात्मिक तत्व को आज के लोक-जीवन के आदर्श पर स्वीकार कर सकता है। हमारे लोक-संघर्ष ने जीवन को इतना अधिक व्यस्त और एकान्त बना दिया है कि आज का विचारक सामाजिक दायित्व की ओर अधिक उन्मुख है, जो राष्ट्रिय तथा सांस्कृतिक उत्थान पर विचार करता है।

आधुनिक संदर्भ में मोक्ष : आज के जीवन का वैषम्य मोक्ष की आधुनिक व्याख्या करता है। संसार को त्याग कर आत्मा और परमात्मा के एकत्व की दार्शनिकता में न उलझ कर वह जीवन के अन्य क्षेत्रों में मुक्ति की कामना करता है, वह सांसारिक कष्टों से मुक्ति चाहता है, और लौकिक व्यवहार की विषमताओं से मुक्ति की कामना करता है। प्राचीन जीवन में वैराग्य की प्रधानता का मुख्य कारण उस युग की परिस्थिति थी। अतः उस काल की राज्य व्यवस्था भी सम्पूर्ण रूप से त्याग पर साधनीभूत हो गई थी।

सामाजिक अहं का अभाव : महाभारत-काल में मोक्ष को परस्पर विपरीत मार्ग से प्राप्त करने का व्यापक प्रचार मिलता है, इसका कारण स्पष्ट है। उस काल के समाज मे व्यक्ति सामाजिक सम्बन्ध से विचार नही करता था। समष्टि रूप से सामाजिक अहंभाव की सजीवता का अभाव सम्पूर्ण युग में था। प्रत्येक व्यक्ति निजी सुख-दुःख और उसके निवारण की व्यक्तिगत प्रक्रिया से ग्रस्त था। साधना का समग्र पथ वैयक्तिक उच्चता का प्रतिरूप था अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उस युग में आज के जीवन के समान संघ शक्ति का अभ्युदय नही हुआ था। इस कारण व्यक्तिगत चिन्तन प्रधान विचारकों ने वैराग्य, संसार त्याग को मोक्ष का साधन बनाया। क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति व्यक्तिगत है अतः

---

१. म० वन० ३१।४-५

उसका साधन भी व्यक्तिगत होगा।

कृष्ण का सामाजिक मह व्यक्तिगत जीवनधारा के विपरीत भगवान कृष्ण ने समष्टि के मह का प्रतिपादन किया। इसी कारण कृष्ण ने त्याग और वैराग्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी कर्म पर अधिक बल दिया। धर्माचरण द्वारा जीवन के सम्पूर्ण कर्त्तव्यों का पालन करते हुए व्यक्ति परम पद को प्राप्त कर सकता है।

तत्कालीन राज्य व्यवस्था से क्षत्रियों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध था अत उन्होंने त्याग, वैराग्य का प्रतिपादन नहीं किया। जीवन की द्रुतगामिता से शेष तीन वर्ण पृथक् थे अत ब्राह्मणों ने वैराग्य का प्रतिपादन किया। भगवान् कृष्ण मूलत राज्य-व्यवस्था के धरातल के ऊपर आये थे अत कर्मयोग का प्रचार करके क्षत्रिय के लिए युद्ध क्षेत्र की हिंसा को भी धर्म के अन्तर्गत रखकर अर्जुन को प्रोत्साहित किया।[1]

धर्म एव नीति का समन्वय कर्मयोगियों ने धर्माचरण और नीति का समन्वय किया। आधुनिक कवि इस समन्वय को लोक जीवन की उन्नति के अनुकूल मानता है अत कृष्ण के कर्मवाद का व्यावहारिक धरातल पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इन साधन-मार्गों का विवेचन अगले प्रसग मे विस्तार से होगा। कर्ममार्गियों ने एक प्रमुख बात का प्रतिपादन किया कि नीति, आचरण की सात्विकता, धर्म-पालन, न्यायप्रियता से इस ससार मे भी सुख मोक्ष सुख का अनुभव हो सकता है और लोकोपरान्त मोक्ष की उपलब्धि भी सम्भव है।

आधुनिक काव्यों में मोक्ष की आध्यात्मिकता का सीधा प्रभाव 'महाभारत' से उपलब्ध होता है किन्तु उसमे मध्यवर्ती दार्शनिक सम्प्रदायों के विभिन्न विचारों का भी प्रभाव सम्मिश्रित हो गया है। हिन्दी के अनेक आधुनिक कवियों ने मोक्ष, मुक्ति, सद्गति आदि दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग करके जीव-मुक्ति की स्थिति का चित्रण किया है। 'महाभारत' मे सासारिक वैभव के त्याग से मोक्ष की प्राप्ति की सम्भावना व्यक्त की है। 'प्रिय प्रवास' की राधा भी भोग लालसाओं को त्याग कर आत्म उत्सर्ग के साथ मुक्ति की कामना करती।[2] हरिऔध जी योग, साख्य तथा वेदान्तियों की वैराग्यमयी मुक्ति की स्थापना न करके कर्ममार्गी की तरह लोक सेवी को सच्चा आत्म त्यागी बताकर 'मुक्त' रूप मे चित्रित करते हैं।[3]

---

१ गीता २।३७,३८

२ प्रिय प्रवास, १६।४१

३ जो होता है निरत तप मे मुक्ति की कामना से।
 आत्मार्थी है, न कह सकते हैं उसे आत्मत्यागी।
 जी से प्यारा जगत हित औ लोक-सेवा जिसे है।
 प्यारी सच्चा अवनितल मे आत्मत्यागी वही है। प्रियप्रवास, १६।४२

युग-सम्मत रूप : आधुनिक कवि ने मोक्ष की मूल दृष्टि 'महाभारत' से प्राप्त की, किन्तु उसका युग सम्मत रूप ही व्यक्त किया है। आज वैराग्य-प्राप्त मुक्ति से अधिक श्रेष्ठ लोक जीवन की सेवा से वैयक्तिक अहंकार के त्याग की महत्ता है। जो लोकसेवक इस व्यक्तिगत क्षुद्रत्व को त्याग कर अपने को व्यापक बना लेता है वही मुक्ति का अधिकारी है।

मैथिली शरण गुप्त की यशोदा को भी सांसारिकता में ही मुक्ति का आनन्द उपलब्ध है।[1] नहुष के उत्थान-पतन में कवि ने शुद्धधर्माचरण से स्वर्ग की प्राप्ति और धर्माचरण से विरत होने की स्थिति में पतन का चित्रण कर कर्मवाद को स्वीकार किया है। नहुष ने वैराग्य से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं की अपितु स्वकर्मों की उच्चता से। वही पतनोन्मुख नहुष उन्ही के बल पर अपवर्ग की भी कामना करता है।[2] 'जय-भारत' के स्वर्गारोहण पर्व में पांडवों के देह पतन के उपरान्त युधिष्ठिर को जिस मुक्ति के आनन्द का अनुभव होता है, उसमें त्याग और योग का सम्मिश्रण है।[3] यहां भी युधिष्ठिर अपने धर्माचरण में दृढ रहकर कुत्ते तक को त्यागने के लिए तैयार नही होते।[4] संसार में रहकर युधिष्ठिर ने अपने धर्म का निर्वाह किया अतः अन्त में वे प्रकृतिजयी होकर मुक्त हो गये।[5] मोक्ष-मार्ग की प्रमुख बाधा ममत्व, मोह, अथवा माया है, ऐसा वैराग्य-वादियों ने भी माना है। युधिष्ठिर का चरित्र इन बन्धनों से रहित निष्ठावान् और कर्त्तव्यपालक का रहा; अतः उन्हें सदेह परमपद की प्राप्ति हुई,[6] अतः 'जयभारत' में नारायण स्वयं देहात्मक नर का बन्धन मुक्त होने पर स्वागत करते हैं।[7]

धर्म के दो मार्ग : वनपर्व के द्वितीय अध्याय में धर्म के कर्म मार्ग और नीति मार्गों का अध्ययन इस विश्वास को दृढ़ करता है कि निष्काम कर्म करने वाला भी, वेदान्ती एवं योगी की भांति, मोक्ष को प्राप्त होता है।[8]

जयभारतकार 'महाभारत' की भावना का यथावत् चित्रण करता है।[9]

---

१. द्वापर, पृ० २८

२. आज मेरा भुक्तोज्झित हो गया है स्वर्ग भी,
   लेके दिखा दूंगा कल मैं ही अपवर्ग भी ॥ नहुष, पृ० ६५

३. जयभारत, पृ० ४४२

४. म० महा० ३।१२

५. जयभारत, पृ० ४४२

६. प्राप्तोऽसि भरतश्रेष्ठ दिव्यां गतिमनुत्तमाम्। म० महा० ३।२२

७. जयभारत, पृ० ४५२

८. एवं कर्माणि कुर्वन्ति संसार विजिगीषवः।
   रागद्वेष विनिर्मुक्ता ऐश्वर्यं देवता गता ॥ म० वन० २।८०

९. जयभारत, पृ० ३६४-३६५

'जयद्रथ वध' में भी धर्माचरण में लीन व्यक्ति को मुक्त माना गया है।[1] 'अंगराज' के कवि ने क्रियाशीलता से सिद्धि प्राप्ति का प्रतिपादन करते हुए देहान्त के पश्चात् मोक्ष के आध्यात्मिक रूप को तो प्राचीन आस्था के साथ स्वीकार नहीं किया किन्तु उसका बुद्धिवादी समाधान इस रूप में अवश्य किया है कि व्यक्ति अपने आदर्श धर्माचरण से लोकों में प्रतिष्ठित होता है।[2] दिनकर का कर्ण कर्मवाद और पुरुषार्थ की उस चरम ज्योति का प्रतीक है जो अपने सत्कर्मों से इस लोक में प्रतिष्ठित होकर उच्च पद को प्राप्त हुआ है।[3] उन्होंने सत्कर्म और तपस्या का लोक संग्रही रूप अपनाया है हरिऔध ने भी 'दमयन्ती' काव्य में मोक्ष के आध्यात्मिक रूप को मूलतः मानकर उसका युगानुकूल चित्रण किया है। वास्तविक मोक्ष यदि ब्रह्म की प्राप्ति है, तो लोक-सेवा में हम उसी ब्रह्म प्राप्ति का अनुभव कर सकते हैं।[4] दिनकर तपस्या और सत्कर्म के समन्वय को अमरत्व के लिए आवश्यक मानते हैं।

नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है,
देता वही प्रकाश आग में जो अभीत जलता है।
आजीवन झेलते दाह का दंश वीर व्रतधारी,
हो पाते तब कहीं अमरता के पद के अधिकारी।[5]

दर्शन : साधना-पक्ष

भारतीय दार्शनिकों ने दर्शन के सिद्धि-पक्ष पर जितना विचार किया है, उतनी ही मात्रा में साधना-पक्ष की विवेचना भी की है। सिद्धि-प्राप्ति के हेतु साधना के अनेक मार्ग भारतीय तत्व-चिन्तन की आधार-शिला हैं। यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि साधना-पक्ष को लेकर अनेक सम्प्रदायों और मतों का आविर्भाव हुआ, अतः दार्शनिक विवेचन में साधना-पक्ष का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

ब्रह्म क्या है? उसका स्वरूप क्या है? जगत्, सृष्टि और मोक्ष क्या है? तथा अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है? आदि प्रश्न मन में आने पर भारतीय तत्व-

---

१ जयद्रथवध, पृ० ५५

२ सदुद्योग अव्यर्थ होता कृतीका, क्रियाशीलता से सदासिद्धि होती,
भले देह का अन्त हो, किन्तु प्राणी, स्वआदर्श से लोक में व्याप्त होता।
अंगराज, पृ० २६५

३ रश्मिरथी, पृ० २०२

४ जब उसीका रूप जीव अशेष,
कहाँ? उसकी प्राप्ति में तब क्लेश।
ईश सेवा का फल प्रियवाम
लोक सेवा है सुमार्जित नाम। दमयन्ती, पृ० १६०

५ रश्मिरथी, पृ० ५६

चिन्तकों ने साधन मार्ग की ओर विचारना प्रारम्भ किया। दर्शन का मूल अभिप्राय अचिन्त्यतत्व को देखना अथवा अनुभूत करना है, अतः वह जिस मार्ग से अनुभूत किया जा सकता है, उस मार्ग का विकास आध्यात्म तत्व के साथ चला।

साधन पक्ष का विकास : साधन पक्ष का विकास मानव विकास से असंपृक्त नहीं है। मानव के अभ्युदय के साथ उसका उदय हुआ है। अनीश्वरवादी और ईश्वर वादी मतों के मध्य साधना का उत्तरोत्तर विकास होता गया। मानव चेतना के विकास के साथ सामाजिक परिस्थितियों ने भी साधना-पक्ष के उत्थान-पतन में गहरा योगदान किया। यह नितांत स्वाभाविक है कि चिन्तन का एक पक्ष जब चरम उन्नति पर पहुंचता है तो उसका विरोध होने लगता है और नया मत जनता के समक्ष आता है। यह विरोध और पुनः सर्जन युगों के विकास की अनिवार्य प्रतिक्रियाएं हैं। भारतीय चिन्तन-धारा के विकास से इस सूत्र को ठीक प्रकार समझा जा सकता है।

कर्म योग

वैदिक युग : चरम लक्ष्य ब्रह्म अथवा परमपद मोक्ष की प्राप्ति के लिए कर्म-सिद्धान्त सबसे प्राचीन है। मानव की उत्पत्ति के साथ इस कर्म-मार्ग का अभिन्न सम्बन्ध है। इस संसार में जब मानव है तो वह कर्म करेगा, जब कर्म करेगा तो उस कर्म के आधीन उसे इहलोक और परलोक के समस्त पदों की प्राप्ति सम्भव है। कर्म सिद्धान्त की प्राचीनता इसी से जानी जा सकती है कि आत्मा के समस्त व्यापारों का मूल कर्म है। कर्म शब्द को लेकर अनेक प्रकार की व्याख्याएं की जा सकती हैं। जीव और कर्म के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जीव को जन्म-मरण के चक्र में कर्मानुरोध से, संसार की अनेक योनियों मे प्रविष्ट होना पड़ता है।

'जीव का संचरण कर्मानुसार होता है। उपनिषदों मे भी कर्म और जीव के सांसारित्व का समन्वय किया गया है। ईश्वर की इच्छा अथवा आत्मा की स्वाभाविक प्रवृत्ति की अपेक्षा आत्मा के आवागमन के विषय में भी कर्म सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ है। कर्म की उत्पत्ति के कारण ही जीव पुनः पुनः शरीर में प्रवेश करता है। इस प्रकार कर्म मार्ग अत्यन्त प्राचीन और अधिक मान्य रहा है।

कर्म-काण्ड से कर्म-योग : 'महाभारत' के कर्म योग तक कर्म व्यापार ने एक विशेष यात्रा की। वेदों में कर्म कांड की प्रधानता है। देवों की उपासना, यज्ञादि क्रियाएं कर्म कांड के अन्तर्गत हैं। यज्ञ करने वाला व्यक्ति परम पद का अधिकारी होता है। यज्ञो मे देव यज्ञ, पितृयज्ञ, ऋषियज्ञो के अतिरिक्त अश्वमेध और राजसूय आदि का प्रचलन था। यज्ञ वैदिक युग की उपासना पद्धति के महत्वपूर्ण अंग थे। बड़े-बड़े यज्ञो मे देवों का आवाहन, सोमरस पान, आदि की क्रियाएं कर्म को मोक्ष-प्राप्ति के हेतु प्रधान मानती थीं।

उपनिषद्-युग : वस्तुतः उपनिषदों का युग ज्ञान-युग के रूप में स्वीकृत है

किन्तु इस काल में विकसित अन्य दार्शनिक मतों में कुछ में तो कर्म को भी स्थान मिला और कुछ में कर्म की उपेक्षा करके ज्ञान, योग, सन्यास की प्रधानता रही। भारतीय षड्दर्शनों का विकास उपनिषदों के युगों में ही हो रहा था। अतः यह स्पष्ट है कि एक ही युग में विभिन्न साधन पक्षों की मान्यता थी।

उपनिषद् युग का दार्शनिक आत्मनिष्ठ अधिक था। उसकी आत्मनिष्ठा के कारण ही आत्मज्ञान की विचारधारा ने बल पकड़ा। इस पर भी कर्म स्वतन्त्रता की स्वीकृति और कर्म-विरोध दोनों ही उपनिषदों में प्राप्त हैं। जैसे उसकी इच्छा है वैसे ही उसका क्रतु 'संकल्प' होता है तथा संकल्प के अनुसार मानव कर्म करता है।[1] इसके साथ 'कौषीतकि' उपनिषद् ने कर्म स्वातन्त्र्य का निषेध किया है।[2] 'छान्दोग्य'[3] और 'मुक्तोपनिषद्'[4] ने कर्म पुरुषार्थ को स्वीकार किया है। उपनिषदों में जहां पर भी कर्म की स्वीकृति है वह कर्म काड से भिन्न व्यक्ति की साधना के उस रूप में मान्य है, जो ज्ञान का एक अंग बनकर आती है। पुरुषार्थ करने से व्यक्ति की समस्त कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं और वह चिन्तन के पक्ष में आत्म ज्ञान के चरम ध्येय तक पहुँच जाता है।

महाभारत और कर्म योग दो व्यक्तित्व प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय करके कर्म योग की शिक्षा देने वाले कृष्ण और भीष्म ये दो व्यक्तित्व 'महाभारत' में प्रमुख हैं। कृष्ण ने कर्म योग की शिक्षा मोह ग्रस्त अर्जुन को दी और कर्म को लोक का व्यापक धर्म बताकर यह कहा कि यदि 'मैं कर्म न करूं तो विश्व कर्महीन हो जाए'।[5] इसी सिद्धान्त को भीष्म ने कर्म पुरुषार्थ की शिक्षा के रूप में, प्रवृत्ति का उपदेश आत्मग्लानि पूर्ण युधिष्ठिर को दिया। इन दोनों में अन्तर यह है कि कृष्ण की शिक्षा लक्ष्य में जहां आध्यात्मिक है वहां भीष्म की व्यावहारिक शिक्षा, आध्यात्मिक और राजनैतिक रूप में समन्वित हो गई है। इस प्रकार 'महाभारत' में कर्मयोग का विवेचन भगवान् कृष्ण के मुख से 'गीता' में और भीष्म के मुख से शान्ति पर्व, अनुशासन पर्व में हुआ है। इसके अतिरिक्त कर्म एवं पुरुषार्थ की चर्चा जहां भी आई है, वह मौलिक रूप में उक्त स्थलों से अभिन्न है या विशुद्ध लौकिक मानव रूप में चर्चित की गई है। उदाहरणार्थ कर्ण जिस पुरुषार्थ की बात कहता है वह नितान्त

---

१ बृह० उप० ४।४।५

२ कौषीतकि, ३।८

३ छान्दोग्य, ८।१६

४ मुक्तिकोपनिषद, २।५।६

५ न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ गीता ३।२२।२३

व्यक्तिगत और सासारिक यश-प्राप्ति का उपाय है, किन्तु युधिष्ठिर, द्रौपदी, भीष्म आदि जिस पुरुषार्थ की बात करते है वह मोक्ष से सम्बन्धित है। इसका कारण यह है कि इन पात्रो ने पुरुषार्थ की मीमांसा धर्माचरण के रूप में की है और कृष्ण के अनुसार धर्माचरण ही परमपद प्राप्ति मे मुख्य साधन है। कर्म उस धर्माचरण का मुख्य अग है। अत. 'महाभारत' मे वैराग्य और संन्यास को स्वीकार करते हुए भी कर्म योग को सर्वोपरि माना है।

कर्म योग. समीक्षा : कर्म-काड की प्रतिष्ठा करने वाले मीमांसा दर्शन से भी आगे महाभारतकार ने गीता मे 'कर्म' और 'यज्ञ' को अत्यन्त व्यापक रूप में स्वीकार किया है। निस्वार्थ बुद्धि से किए गए और परमात्मा की ओर ले जाने वाले सभी कर्मो को यज्ञ कहा गया ह।[१] 'महाभारत' के कर्मयोग की तीन विशेषताएं है—

१. कर्मचक्र की अनिवार्यता,

२. कर्म चक्र से पलायन धर्म की कायरता है,

३. कर्म से मोक्ष की प्राप्ति

कर्म-चक्र की अनिवार्यता को भगवान् कृष्ण प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा बलात् प्राणी से कर्म कराने की बात कहकर सिद्ध करते है।[२] शान्ति पर्व मे जब युधिष्ठिर वैराग्य लकर जंगल मे जाने की इच्छा करते है, तो व्यास जी उन्हे प्रवृत्ति की ओर मोडकर कर्म-चक्र की अनिवार्यता को सिद्ध करते है, और कर्म को ईश्वर समर्पित करने का प्रतिपादन करते हैं।[३]

दूसरे पक्ष में धर्माचरण के रूप में कर्म योग की शिक्षा दी गई है। यदि व्यक्ति कर्म से पलायन करता है तो वह धर्म-विमुख होता है। इस कठोर नियम के अनुसार अर्जुन को युद्ध के लिए कटिबद्ध होना पड़ा, और युधिष्ठिर को भी युद्ध करना पड़ा। शान्ति पर्व में युधिष्ठिर को प्रवृत्ति की ओर इसी हेतु उन्मुख किया गया कि जीवन के कर्म को त्याग कर जंगल में जाकर शान्ति की कामना मृगतृष्णा मात्र है। सच्ची शान्ति, आत्म-सुख, रूपी परमपद की प्राप्ति में है। अत: क्षत्रिय के लिए राज्य धर्म का पालन अनिवार्य है। कर्मनिष्ठ व्यक्ति दुष्कर्मो का प्रायश्चित सत्कर्मों से कर सकता है, किन्तु प्रायश्चित्त के अभाव में मरकर व्यक्ति परलोक में सतप्त रहता है।[४]

मोक्ष का साधन कर्म : भगवान कृष्ण ने कर्म को मोक्ष का परम साधन माना है। यद्यपि कर्म के साथ ज्ञान, योग, भक्ति की उपेक्षा नही की गई, किन्तु प्रधनता

---

१. गीता, ४।१५-३२

२. न हि कश्चिदक्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ गीता ३।५

३. म० शान्ति० ३२।२०

४. म० शान्ति० ३२।२५

कर्म की ही है। कृष्ण ने कर्म को मोक्ष का साधन मानकर उसकी स्थापना की, किन्तु निष्काम कर्म की व्याख्या मे कर्म का वास्तविक रूप उपस्थित किया, जिसमे मोक्ष पद प्राप्त हो सकता है। 'गीता' मे साधन मार्ग का आरम्भ निष्काम कर्म से करके उसका अन्त शरणागति मे किया गया है। निष्काम कर्म करने से तथा ध्यान योग के अभ्यास से साधक ब्रह्म भाव को प्राप्त कर लेता है, इस दशा मे वह प्रसन्न चित्त होकर समस्त प्राणियो मे समभाव रखता है।

कर्म के तीन सोपान कर्म योग की शिक्षा देते हुए भगवान् कृष्ण ने सबसे अधिक बल निष्काम कर्म के लिए दिया है। इसीलिए 'गीता' मे यह उपदेश दिया गया है कि फलाकाक्षाहीन किए गए कर्म बन्धन को उत्पन्न नही करते। कर्म के साथ प्रमुख बाधा साधक की वासना अर्थात् फलासक्ति है। भगवान् कृष्ण ने 'योग' शब्द का प्रयोग 'युक्ति' के रूप मे किया है।[1] पतजल-योग का अर्थ तो कुछ ही स्थलो पर अभिप्रेत है। कर्म वाद के कर्म योग रूप मे रूपातर के तीन सोपानो की चर्चा विस्तार से आई है। इसमे प्रथम सोपान अर्थात् आकाक्षा का वर्णन है, द्वितीय सोपान है कर्तृत्व के अभिमान का त्याग, तृतीय सोपान है ईश्वरार्पण। कर्मयोग के उक्त तीनों सोपान एक प्रकार से कर्मयोग की साधना के तीन मुख्य आयाम है। कर्म योगी के लिए प्रथम आवश्यकता है कि वह कर्म करते हुए उसके फल की इच्छा न करे।[2] फलाकाक्षा के त्याग को भगवान् कृष्ण ने महत्वपूर्ण सोपान के रूप मे प्रतिपादित किया है। यही साधना-मार्ग कर्म-योगी को मोक्ष तक ले जाता है। यदि कर्म-योगी फल की कामना ही नही छोड पाया तो वह साधना पथ के अगले सोपानो तक किस प्रकार पहुँचेगा ? कर्मयोगी के धर्माचरण का मूल सूत्र फल-त्याग ही है। भीष्म ने युधिष्ठिर को सासारिक आसक्ति-त्याग के साथ जीवन मे प्रविष्ट होने का उपदेश इसी आधार पर दिया था कि आसक्ति व्यक्ति के कर्म निष्ठ हृदय मे विकार उत्पन्न करती है और साधक के हृदय मे किसी भी प्रकार का विकार साधना का बाधक है।[3]

> कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
> मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[4]

इस श्लोक को कर्म योग का महामत्र मानना चाहिए। इसी का व्यावहारिक उपदेश भीष्म ने शान्ति पर्व मे युधिष्ठिर को दिया। आसक्ति का त्याग करके कर्म फल का त्याग ही उचित है, कर्म का त्याग अनुचित है।

कर्तृत्वाभिमान का त्याग कर्म-योगी का दूसरा सोपान कर्तृत्वाभिमान का

---

१ श्री मद्भगवद् गीता रहस्य, पृ० ५७
२ गीता० २।४७
३ म० शान्ति० ६२।६-११
४ गीता० २।४७

त्याग है। कर्म-फल की इच्छा के त्याग से ही साधना की पूर्णता नहीं होती। यदि कर्त्तव्य करने का अभिमान रहा तो अहंकार की यह भावना साधना में बाधक होगी। मनुष्य त्रिगुणात्मिका प्रकृति के गुणों का दास है अतः उसे अभिमान करने का अधिकार ही कहां ? यहां यह स्पष्ट है कि व्यक्ति सांसारिक कर्म-बन्धन में अपने को निमित्तमात्र समझे, नियोजक नहीं।

ईश्वरार्पण : कर्मयोगी साधक का अन्तिम सोपान अपने कर्म को ईश्वर के अर्पण करने में है।[1] 'गीता' मे स्पष्ट कहा है कि समस्त कार्यो की निष्पत्ति भगवदर्पण की भावना से होनी चाहिए।[2] भगवान् कृष्ण कहते हैं कि जीव के सभी कर्म आहुति, भोजन, दान, तपस्या आदि ईश्वरार्पण होने पर ही वह कर्म बन्धन के शुभाशुभ फलों से मुक्त होगा।

अज्ञानी तो आसक्ति-युक्त कर्म करता है, पर ज्ञानी अनासक्त होकर कर्तव्य बुद्धि से 'लोक संग्रह' के निमित्त आचरण करता है।

संक्षेप मे महाभारत कार का कर्म योग इस रूप में समझा जा सकता है कि सकाम कर्म सांसारिक बन्धनमात्र है, उसमे निःश्रेयस की प्राप्ति नहीं, अकाम कर्म ही योग और मुक्ति का चरम साधन है।

आधुनिक काव्य : साधन-पक्ष की दृष्टि से आधुनिक काव्य पर कर्मयोग और भक्ति मार्ग का व्यापक प्रभाव है। कर्म करना मानव-जीवन का सर्वाधिक व्यापक नियम है जिसमें जीवन के सभी पक्ष समाविष्ट हैं। एक ओर मानव के सभी कर्म : दया, सत्यपालन, कर्तव्यनिष्ठा आदि जीवन की व्यवस्था के लिए अनिवार्य हैं, दूसरी ओर कर्म के सर्वोच्च साधन से परमपद की प्राप्ति सम्भव है। अतः कर्मवाद आधुनिक युग के लिए नई प्रेरणा के रूप में उपस्थित हुआ। महाभारत-युग की जिस भयंकरता के मध्य कृष्ण ने कर्मयोग की स्थापना की थी, उसकी आवश्यकता आज के युग में उससे भी अधिक अनुभव की गई। इस कारण आज का कवि कर्म योग का जितना स्तवन करता है, उतना अन्य किसी साधन पक्ष का नहीं। इस प्रवृत्ति के लिए युगीन वातावरण अधिक उत्तरदायी है। आज के युग में योग, भक्ति, ज्ञान आदि व्यावहारिक कसौटी पर उतरने खरे नहीं है, जितना कर्म सिद्धान्त। मानव उस काल में भी कर्म चक्र की अनिवार्यता से आबद्ध था और आज भी है। कर्म के अभाव में उस समय भी उसका जीवन असम्भव था और आज भी कर्म के अभाव की कल्पना नहीं की जा सकती। कर्म ही एक ऐसा व्यावहारिक लोक-धर्म है, जिसके स्वरूप में परिवर्तन सम्भव है किन्तु उसकी आवश्यकता पर कोई भी युग प्रश्न वाचक नहीं

---

१. ईश्वरेण नियुक्तो हि साध्वसाधु च भारत।
कुरुते पुरुषः कर्म फलमीश्वरगामि तत्। म० शान्ति० ३२।१३

२. गीता, ९।२५

३. गीता, ३।२५

हो सकता।

'कृष्णायन' में कर्मयोग के मार्ग को बाधा-विघ्नों से रहित मानकर, उसे अल्प प्रयास से महासिद्धि-प्रदाता माना गया है।[१] 'महाभारत' के विचार का समर्थन करते हुए मिश्र जी कर्म करने के अधिकार की स्थापना करते हुए फल की अनासक्ति को मुख्य धर्म मानते हैं।[२] कर्म वज्र से भी अकर्तनीय है।[३] वही व्यक्ति को योग्य फल देता है।[४] गुप्त जी का नहुष कर्म की उच्च प्रतिष्ठा से ही देवत्व का पद प्राप्त कर सका।[५] जो मानव कर्म करता है वही भोग का अधिकारी है। कर्म के अभाव में प्राप्त वस्तु मानव की क्लीवता का द्योतक है।[६] आज का कवि कर्म की प्रधानता यहाँ तक स्वीकार करता है कि जिसने जीवन के संघर्ष में विघ्नों को परास्त नहीं किया, जो जूझा नहीं, जिसने कर्म के सौन्दर्य का अनुभव नहीं किया, वह मानव अपूर्ण है। गीता में कर्म का उपदेश देते हुए कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया था उसी सिद्धान्त के आधार पर 'जयभारत' के युधिष्ठिर कर्म की अनिवार्यता को स्वीकार कर युद्ध के लिए भी तत्पर हैं।[७] कर्म से सिद्धि प्राप्त होती है,[८] कर्म, ज्ञान, ध्यान योगादि से श्रेष्ठ है।[९]

'महाभारत' का कर्मवाद आधुनिक काव्य में इतना प्रभावशाली है कि अन्य साधन मार्गों की उपेक्षा भी दिखाई देती है। 'सेनापति कर्ण' में कर्महीन

---

१ कर्म योग पथ माहिं धनंजय। होत नाहिं आरम्भ करे क्षय।
बाधा-विघ्न न पथ अगारी। थोरिहु सिद्धि महाभय-हारी॥
कृष्णायन, पृ० ५४२

२ कर्महिं महं अधिकार तुम्हारा। नाहिं कर्म फल में अधिकारा॥
कृष्णायन, पृ० ५४३

३. काटा नहीं जा सकता वज्र से भी कर्म तो। जयभारत, पृ० ३३

४ कर्म ही किसी का उसे योग्य फलदायी है। जयभारत, पृ० १६

५ "धन्य! कर्म करना ही धर्म रहा आर्य का"। नहुष, पृ० ३३

६ कर्म करें लोग, इतना ही नहीं इष्ट है,
शिष्ट है वही जो कर्म कौशल विशिष्ट है
होगा वह क्या बड़ा जो विघ्नों से नहीं लड़ा?
भोग क्या करेगा, जो न अर्जन करे आप। नहुष, पृ० ३४

७ युद्ध यदि अनिवार्य है तो हम करेंगे,
शूर-वीर-समान मारेंगे मरेंगे। जयभारत, पृ० १७४

८ अनभ्यासी भी मेरे अर्थ,
कर्म कर होगा सिद्ध समर्थ। जयभारत, पृ० ३६४

९ ज्ञान से भी विशेष है ध्यान, ध्यान से श्रेष्ठ कर्म निष्काम।
जयभारत, पृ० ३७५

व्यक्ति को अशान्त बताया है।[1] सिद्धान्त वाक्यों के अतिरिक्त प्रबन्ध काव्यों के महत पात्रों के आचरण में कर्म की प्रधानता है। 'सेनापति कर्ण' के कृष्ण की मान्यता है कि वह कर्म फल-प्रदाता नही है, जिसमें काम, क्रोध का स्पर्श हो।[2] जैसा कि पहले कहा गया है, "कर्म सिद्धान्त" जीवन की व्यावहारिक व्यवस्था और परम पद का साधक है अतः 'रश्मिरथी' का कर्ण उज्ज्वल धर्म को जीवन का आधार मानता है, यह उज्ज्वल धर्म मानव को सत्कर्म में प्राप्त होता है। यह सत्कर्म ही मानव जीवन का अन्तिम आश्रय है।[3]

'महाभारत' के कर्म-योग को 'सेनापति कर्ण' में आधुनिक धर्माचरण के संदर्भ में ग्रहण किया गया है। विश्व को कर्ममय[4] बताकर कवि आज के मानव के लिए कर्म की महत्ता का प्रतिपादन करता है। कर्म ही वीरों की विभूति है[5] और कर्म की विभूति से मानव का जन्म-दोष—जो सामाजिक देन है—मिट जाता है।

> सिद्ध तुमने है किया निश्चय ही नर का
> पौरुष है पूज्य, जन्म दोष मिट जाता है
> कर्म की विभूति से। मिटाया दोष तुमने
> शस्त्र से, दया से, दान, तप और सत्य से।[6]

कर्ण के प्रति कही गई, कृपाचार्य की यह उक्ति मानव-जीवन में कर्म की अडिग महत्ता की स्थापना करती है। 'महाभारत' में एक दिन कृपाचार्य ने ही कर्ण को जन्म-दोष के कारण रंग भूमि प्रदर्शन के लिए वर्जित किया था[7] आज का कृपाचार्य इस स्तवन में अपने उस अपराध का परिहार करता है। कर्ण के आचरण में कर्म की महत्ता

---

१. मानो निर्वाण पद पा लिया है तुमने।
किन्तु आत्म शान्ति कहां कर्महीन जन को। सेनापति कर्ण, पृ० १६

२. भीमसेन कर्म तरु फूल कर भी नहीं
देना फल, जब तक काम, क्रोध मद के
कीट रहते हैं लगे उसकी शिराओं में। सेनापति कर्ण, पृ० ६६

३. भुवन की जीत मिटती है भुवन में,
उसे क्या खोजना गिर कर पतन में ?
शरण केवल उजागर धर्म होगा,
सहारा अन्त में सत्कर्म होगा। रश्मिरथी, पृ० १६१

४. जो हो तुम्हें, निश्चय ही जानो लोक धर्म में
बंधना पड़ेगा, यह कर्ममय विश्व है। सेनापति कर्ण, पृ० ५२

५. सेनापति कर्ण, पृ० ५३

६. सेनापति कर्ण, पृ० १६१

७. म० आदि० १३५।३२

पौरुष, दया, दान आदि गुणों से समन्वित है। इन गुणों से युक्त कर्म ही जीवन मे प्रतिष्ठा पाता है।

'कुरुक्षेत्र' का कवि 'महाभारत' के कर्मवाद से अत्यधिक प्रभावित है। कर्मवाद के समन्वयकारी सिद्धान्त होने के कारण, उसकी निर्विवाद व्यावहारिक उपयोगिता को दिनकर ने आस्था के साथ स्वीकार किया है 'कुरुक्षेत्र' के सप्तम् सर्ग मे कवि का अन्तिम सन्देश 'कर्मवादी' ही है। सन्यास कर्मवाद का विरोधी साधन मार्ग है। दिनकर ने सन्यास का विरोध[1] करके धर्माचरण प्रधान कर्म की प्रतिष्ठा की है। कर्म अनिवार्य साधन है, मानव जब तक भौतिक शरीर के बन्धन में है, तब तक कर्म से छूट नहीं सकता।[2] कर्म मार्ग की प्रमुख विशेषता यह है कि प्रवृत्ति से इसका विरोध न होकर, गहरा सम्बन्ध है। शान्ति पर्व मे युधिष्ठिर को प्रवृत्ति का उपदेश मिलता है, निश्चित ही वह कर्म सयुक्त है, क्योंकि कर्म के अभाव मे प्रवृत्ति मार्ग मृग तृष्णा है, छल है। युधिष्ठिर अपने राज धर्म को भूल कर ससार त्यागकर जगल मे जाना चाहते हैं अत भीम, भीष्म, व्यास आदि युधिष्ठिर की निवृत्ति का खडन लोकादर्श से प्रेरित प्रवृत्ति के आधार पर, कर्म की अनिवार्यता के सिद्धान्त से करते हैं।[3] 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म युधिष्ठिर को अपना कर्म पहचानने को कहकर उसमे मन की दृढ आस्था को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।[4] गीता मे कृष्ण अपने कर्म करने पर प्रकाश डालते हुए कहते है कि 'यदि मैं कर्म करना त्याग दू तो समस्त ससार भी मेरे अनुकरण मे कर्महीन होकर नष्ट हो जायेगा'।[5] विश्व के सचालन के लिए कृष्ण कर्म को अनिवार्य मानते हैं। 'महाभारत' के कर्मवाद को दिनकर ने इस रूप मे स्वीकार किया है कि ससार मे अनासक्ति से कर्म सम्पादन मानव की आत्मिक उन्नति का चरम उपाय है। आध्यात्मिक चेतना के स्पर्श से भौतिक सुख भोग भी

---

१ धर्मराज कर्मठ मनुष्य का पथ सन्यास नहीं है,
नर जिस पर चलता वह मिट्टी है, आकाश नहीं है। कुरुक्षेत्र, पृ० १३५

२ कर्म भूमि है निखिलमहीतल जब तक नर की काया,
तब तक है जीवन के अणु अणु मे कर्तव्य समाया।
क्रिया-धर्म को छोड मनुज कैसे निज सुख पायेगा,
कर्म रहेगा साथ, भाग वह जहा कहीं जायेगा। कुरुक्षेत्र, पृ० १३५

३ म० शांति० अध्याय ११-२३-२४

४ सिंहासन का भाग छोड कर
दो मत निर्जन वन को,
पहचानो निज कर्म युधिष्ठिर,
कडा करो कुछ मन को। कुरुक्षेत्र, पृ० १४८

५ गीता, ३।२२-२४

विश्व का कल्याण करते हैं। कर्मवाद में विश्वास रखने पर व्यक्ति यदि भाग्यवाद को न भी माने तब भी वह आदर्श रहित नहीं होता। आज का कवि जन्म जन्मान्तर और भाग्यवादी दृष्टिकोण को युग की यथार्थवादी विचारधारा के आलोक में ही मानता है, किन्तु उसमें अधिक आस्था को रूढ़ि की संज्ञा देता है। 'दमयन्ती' का कवि कर्म को मोक्ष और अपवर्ग की सिद्धि का साधन मानता है।

देव ! अपवर्ग, स्वर्ग या मोक्ष,
यद्यपि, ये हैं, सभी परोक्ष
किन्तु हैं सब जन के आधीन
कर्म कर पाते इन्हें प्रवीन।[1]

निष्काम कर्म की साधना से 'जन' स्वर्ग अपवर्ग और मोक्ष को अपनी सीमा में प्राप्त कर सकता है। अतः जीवन मे 'कर्म' की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है।[2] अनवरत कर्म साधना एकलव्य को धनुर्वेद के सर्वोच्च शिखर पर आसीन करने में सहायक रही।[3] जीव कर्मार्जन के हेतु ही संसारी बनता है।[4] इस प्रकार आधुनिक कवि 'महाभारत' के कर्म-मार्ग को व्यापक व्यावहारिक उपयोगिता के आधार पर स्वीकार करता है। सुमित्रानंदन पंत ने कर्म का स्तवन इस प्रकार किया है कि मानव कर्म से प्रेरित होकर कार्य करे, क्योंकि कर्म ही अपनी अदम्य शक्ति से मानव को लोहपुरुष बनाता है, और अन्ततः कर्म ईश्वर ही है, जिससे मनुष्य का सोया हुआ चैतन्य उद्भासित हो जाता है।[5]

कर्म शब्द का क्षेत्र इतना व्यापक है कि वह मानव जीवन के समस्त आच-

---

१. दमयन्ती, पृ० २९

२. यों भला स्वर्ग में धर्म कहां। इस लोक तुल्य है कर्म कहां।
है जन का लाभ कर्म करना। देता है स्वर्ग धर्म करना॥
दमयन्ती, पृ० १०९

३. एकलव्य, साधना-संकल्प सर्ग।

४. कर्मार्जन के हेतु जीव बनता संसारी। अंगराज, पृ० ८

५. कर्म प्रेरणा करें जन प्राप्त
रिक्त जीवन वर्जन से मुक्त,
कर्म प्रेरणा शक्ति का स्रोत,
जनों को करे लोह संयुक्त।
भाग्य बल पर बैठे निरुपाय
पूर्व कृत पापों के अभियुक्त
जगे सोया जीवन चैतन्य,
कर्म ईश्वर, जन हों न वियुक्त। लोकायतन, पृ० २५७

रणों को अपने में समाविष्ट किए हुए है अतः कर्म का छोड़ना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है। कर्म, चाहे जैसा हो, उसे करने और उसके प्रभाव को भोगने के लिए मानव जन्म लेता है, उसे पुनः कर्म करना पड़ता है। गीता में स्पष्ट कहा गया है कि जिस विश्व में हम रहते हैं वह विश्व और उसमें हमारा क्षणभर रहना ही कर्म है, तब कर्म को छोड़कर कहाँ जाया जा सकता है।[1] कर्म जीवन का इतना व्यापक आचरण है कि उसे अनेक अर्थों में समझा जा सकता है। आधुनिक कवि ने 'महाभारत' के कर्मवाद के अपनी विचारधारा के अनुसार आधुनिक रूप में अनेक अर्थ स्वीकार किए हैं। प्राचीन जीवन-दृष्टि की 'परमगति' 'परमपदप्राप्ति' आधुनिक युग में जीवन की चरित्र उन्नति की संज्ञाएं हैं, अतः प्राचीन कर्मवाद भी नवीन कर्मयोग में परिणत होकर जीवन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में हमारे समक्ष आया है। उसमें प्राचीन आध्यात्मिक चेतना का अंश है किन्तु वह सम्पूर्ण रूप में आध्यात्मिक चेतना नहीं है। आधुनिक कवि की दृष्टि में 'महाभारत' के कर्मवाद का सैद्धान्तिक विवेचन इस प्रकार है।

मानव शरीर धारण करके कर्म चक्र का एक महत्वपूर्ण अंग बनता है। अतः उसे कर्म करना चाहिए, कर्म से ही जीवन की उपलब्धियां सम्भव हैं। कर्म की व्यावहारिक उपचर्या में सकाम कर्म व्यक्ति को बन्धन में डालता है, और निष्काम कर्म बन्धन मुक्त करता है। निष्काम कर्म एक साधना है, अनासक्त व्यक्ति कर्म बन्धन से रहित कर्म में लिप्त होकर लोक कल्याण का साधक होता है, वही अलौकिक अर्थ में 'परमपद' है। जीवित व्यक्ति निष्काम कर्म साधना से, लोक-कल्याण करता हुआ सशरीर इस परमपद की शांति का अनुभव करता है। कर्मयोगी अपने पुरुषार्थ के बल पर समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है।

ज्ञानयोग

ज्ञान का लक्षण विषय का अवबोध कराने वाली वृत्ति को ज्ञान कहते हैं।[2] यह करण व्युत्पत्त्यर्थ है। भाव-व्युत्पत्ति के अनुसार ज्ञान के स्वरूप में आत्मा आदि तत्व आते हैं।[3] प्रथम स्थिति में ज्ञान साधन रूप है तथा द्वितीय में ज्ञान स्वरूपात्मक है, जिसे हम ज्ञान का सिद्ध रूप भी कह सकते हैं। 'महाभारत' में वृत्ति रूप ज्ञान और भाव रूप ज्ञान दोनों का स्थान स्थान पर विस्तार से वर्णन हुआ है। एक ओर ज्ञान को मोक्ष का साधन माना है क्योंकि ज्ञान के अभाव में परमेश्वर प्राप्ति का यत्न ही नहीं हो सकता। विषय ज्ञान के अनन्तर ही उसकी प्राप्ति की इच्छा होती है। इच्छा

१ गीता० ३।८-९

२ ज्ञानं ज्ञायते अनेन इति। गीता शा० भा० १८।१८ पृ० ४२२

३ ज्ञायतेऽनेनेति करण व्युत्पत्त्यावृत्ति ज्ञानम्।
ज्ञप्ति ज्ञानमिति भाव व्युत्पत्त्या स विज्ञानम्।
सर्वतन्त्र सिद्धान्त पदार्थ लक्षण संग्रह, पृ० ८६

से निश्चय और प्रयत्न आरम्भ होते हैं, तदुपरान्त फल की प्राप्ति होती है।[१] इसके अनन्तर 'महाभारत' में यज्ञ को भी ज्ञान-रूप कहा गया है। ज्ञान, फल, ज्ञेय और कर्म इन सब का अन्त होने पर जो प्राप्तव्य फल रूप से शेष रहता है उसको ही ज्ञेय मात्र में व्याप्त होकर स्थित हुआ ज्ञान स्वरूप परमात्मा कहा गया है।[२] इस प्रकार परमतत्व परमात्म को ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

ज्ञान का महत्व : 'महाभारत' के अनुसार संसार का स्वरूप ही ऐसा है कि इसमें अज्ञान के द्वारा ज्ञान आच्छादित रहता है। इस कारण समस्त प्राणी मोह को प्राप्त रहते है।[३] वे इन्द्रियों की आसक्ति के कारण कर्मों का फल भोगते और अनेक कष्ट पाते हैं।[४] अज्ञान की निवृत्ति के बिना सुख प्राप्ति असम्भव है। 'महाभारत' में स्पष्ट कहा गया है कि ज्ञान के द्वारा ही अज्ञान का नाश किया जा सकता है। परमात्मा का तत्वज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है जो सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्द घन परमात्मा को सहज ही प्रकाशित कर देता है।[५]

परमतत्व की प्राप्ति के लिए समस्त साधन मार्गों में ज्ञान को महत्व दिया गया है। सांख्य के अनुसार प्रकृति और पुरुष को तत्वतः जान लेना ही ज्ञान है।[६] योगमार्ग में भी ज्ञान की पूर्ण महत्ता है।[७] न्याय अपनी विशेष तर्क-प्रक्रिया के द्वारा परमतत्व के समुचित ज्ञान पर ही बल देता है।[८] वैशेषिक का भूत-विवेक भी ज्ञान पर ही आधारित है।[९] उपनिषदों मे तो प्रमुख रूप से ज्ञान-मार्ग का ही प्रतिपादन है। आत्म-ज्ञान उपनिषदों का चिन्त्य विषय है। वेदान्त में ज्ञान का महत्व सर्वोपरि है।[१०] बादरायण व्यास का ब्रह्म सूत्र ब्रह्म-जिज्ञासा के उत्तर में ही लिखा गया है :

---

१. ज्ञान पूर्वा भवेल्लिप्सा लिप्सा पूर्वाभिसंधिता।
   अभिसंधिपूर्वकम् कर्म कर्ममूलं ततः फलम्॥ म० शान्ति० २०६।६
२. ज्ञेयं ज्ञानात्मकं विद्याज्ज्ञानं सद्सदात्मकम्।
   ज्ञानानां च फलानां च ज्ञेयानां कर्मणां तथा
   क्षयान्ते यत् फलं विद्याज्ज्ञानं ज्ञेयप्रतिष्ठितम्। म० शान्ति० २०६।७-८
३. अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। म० भीष्म० २६।१५
४. म० भीष्म० २६।२२
५. ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
   तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥ म० भीष्म० २६।१६
६. म० शान्ति० अध्याय ३०५
७. म० शान्ति० अध्याय ३०६
८. भारतीय दर्शन, पृ० २६१, न्यायसूत्र ४।२।४६
९. प्रशस्तपाद भाष्य, बुद्धि प्रकरण, पृ० १३९
१०. भारतीय दर्शन, पृ० ४२६

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'। भक्ति मार्ग में भी ज्ञान को पूर्ण महत्त्व प्राप्त है।[1] परवर्ती काल के वैष्णवदार्शनिक वल्लभाचार्य ने भी भक्ति के प्रमुख अंग के रूप में महात्म्यज्ञान को आवश्यक माना है।[2] इस प्रकार भारतीय साधनाओं में ज्ञान का अनिवार्य महत्त्व है। 'महाभारत' में ज्ञान साधन का प्रतिपादन पूर्ववर्ती समस्त दर्शनों और धार्मिक आचारों से सकलित है जो समस्त सिद्धान्तों के समन्वय के लिए भी एक आवश्यक शृंखला के रूप में स्वीकृत है।

ज्ञान का विषय वेदान्त की विचार-परम्परा में सब प्रथम ज्ञातव्य वस्तु 'विषय' है जिसका अर्थ है 'प्रतिपाद्य'।[3] परमतत्त्व ही ज्ञान का प्रतिपाद्य है। गीता में ज्ञातव्य विषय का विभाजन क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के रूप में किया गया है। कृष्ण कहते हैं कि क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है।[4]

क्षेत्र का अर्थ शरीर है, और जो उसे जानता है अर्थात् आत्मा वह क्षेत्रज्ञ है।[5] क्षेत्र की आगे परिभाषा करते, पंचमहाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति दस इन्द्रियां, मन, पांच इन्द्रिय-विषय, इच्छा द्वेष, सुख दुःख, स्थूल देह पिण्ड, चेतना और धृति इन सब विकारों के साथ संक्षेप में क्षेत्र का स्वरूप बताया गया है,[6] जो सांख्य की प्रकृति का ही दूसरा रूप है। गीता में कहा है कि जो जानने योग्य है तथा जिसे जानकर मनुष्य परमानन्द को प्राप्त होता है वही 'क्षेत्रज्ञ' है।[7] क्षेत्रज्ञ का स्वरूप बताते हुए कहा है, कि परमात्मा सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषय को जानने वाला परन्तु वास्तव में इन्द्रियों से रहित है। वह आसक्ति रहित होने पर भी सब का धारण-पोषण करने वाला और निर्गुण होने पर भी गुणों का भोग करने वाला है।[8] वही चराचर भूतों के भीतर बाहर व्याप्त है। सूक्ष्म होने से वह अविनाशी है, वही समीप है और वही दूर है।[9] वह आत्म तत्त्व माया से परे ज्योतियों की भी

---

१ गीता १८।५५

२ महात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोधिक ।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा। 'तत्त्वदीप निबन्ध १।४५

३ वेदान्त के अनुबन्ध चतुष्टय में अनुबन्ध चार हैं। विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी।

४ क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञान यत्तज्ज्ञान मत मम। गीता, १३।२

५ इद शरीर कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति त प्राहु, क्षेत्रज्ञ इति तद्विद । गीता, १३।१

६ गीता, १३।५-६

७ गीता, १३।१२

८ गीता, १३।१४

९ गीता, १३।१५

ज्योति है, ज्ञान स्वरूप, ज्ञेय, और तत्व ज्ञान से प्राप्त करने योग्य है, और सभी के हृदय में विशेष रूप से स्थित है।[१] श्री कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि वे ही सब भूतों के हृदय में क्षेत्रज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित हैं।[२]

ज्ञान-योगी : 'महाभारत' में ज्ञानयोगी को प्रायः सभी स्थलों पर समदर्शी कहा गया है।[३] उसे कहीं भी भेद दृष्टिगोचर नहीं होता। सुख दुःख को समान मानते हुए, लाभालाभ को समान स्वीकार करते जो व्यक्ति जीवन के क्षेत्र में रत रहता है, उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।[४] इस समत्व भाव को भी योग कहा गया है।[५] ऐसा व्यक्ति ज्ञान के आधार पर निष्काम कर्म करता है, परन्तु वह कर्म संस्कारों के वशीभूत नहीं होता।[६] इसीलिए जहां भोगासक्ति में आतुर रहने वाले लोग स्त्री-पुत्रादि के नाश होने पर शोक करते हैं वहां ज्ञानी पुरुष सारासार को जानकर दुःखित नहीं होते।[७] अज्ञानियों के लिए जो भय का स्थान है, ज्ञानी पुरुष उस संसार से भयभीत नहीं होते।[८]

ज्ञान मार्ग के द्वारा ज्ञान योगी निर्मल बुद्धि को, बुद्धि के द्वारा निर्मल मन को, मन के द्वारा निर्मल इन्द्रिय-समुदाय को और इन सब के द्वारा अविनाशी परमात्मा को प्राप्त करता है।[९] जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत् का प्रकाशक सूर्य प्रकाश रूपी गुण को पाकर भी अस्ताचल को जाते समय अपने किरण-समूह को समेट कर निर्गुण होता है, उसी प्रकार समस्त भेदों से विवर्जित ज्ञानी भी अविनाशी निर्गुण ब्रह्म में प्रविष्ट हो जाता है।[१०] जो कहीं से आया हुआ नहीं है, नित्य विद्यमान है, पुण्य शीलों की परमगति है, अजन्मा है, समस्त प्रपंच की उत्पत्ति और प्रलय का स्थान है, अव्यय और सनातन है, अमृत अविकारी और अचल है—उस परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानयोगी उस समय परम अमृत स्वरूप को प्राप्त होता

---

१. गीता, १३।१७

२. गीता, १३।२७

३. मा० शान्ति० अध्याय २३६, २३९, १९४

४. गीता २।३८ शा० मा० पृ० ५५

५. समत्व योग उच्यते। गीता २।४८, शा० मा० पृ० ६१

६. म० शान्ति० १९४।६१

७. म० शान्ति० १९४।६३

८. म० शान्ति० १९४।६०

९. ज्ञानेन निर्मली कृत्य बुद्धिं बुद्ध्या मनस्तया।
मनसा चेन्द्रियग्राममक्षरं प्रतिपद्यते। म० शान्ति० २०६।२५

१०. म० शान्ति० २०६।३१

है यही उसकी सिद्धि है, यही उसका परमपद है और यही उसकी प्राप्तव्य परमगति है।[1]

आधुनिक काव्य आधुनिक काव्य मे ज्ञान की सैद्धातिक विवेचना महाभारतीय स्तर पर नही हुई है। आज के युग की आध्यात्मिक मान्यताओ की शिथिलता ने, कवि के जीवन दर्शन पर गम्भीर प्रभाव डाला है। अत 'महाभारत' का ज्ञान मार्ग 'ज्ञान मीमासा' उसके विवेच्य विषय नही बन पाए। आज के कवि की इस सीमा का सामान्य आभास हम जगत्, माया और मोक्ष के सदर्भ मे दे चुके हैं। दार्शनिक दृष्टि से अध्यात्म-ज्ञान मीमासा का अभाव कवि की सामाजिकता के कारण हुआ है, तथापि अनेक स्थलों पर ज्ञान विषयक धारणा और ज्ञान-मार्ग का विवेचन सम्भव हो सका है।

'कृष्णायन' मे कर्म की प्रतिष्ठा के साथ ज्ञान की मीमासा गीता के अनुरूप है। कर्म की प्रतिष्ठा के साथ ज्ञान म सबका अवसान माना गया है।[2] ज्ञान रूपी तरणि पर चढ कर ही साधक समस्त पापो को पार कर लेता है।[3] समस्त कर्म के बन्धनों को ज्ञान रूपी हुताशन शीघ्र ही जला डालता है। ज्ञान के समान ससार मे अन्य कुछ भी पवित्र नही है। अनेक योग साधनाओ से भी जिस वस्तु की प्राप्ति नही होती, उसकी प्राप्ति ज्ञान से सहज ही हो जाती है। जिसे ज्ञान का आधार प्राप्त हो जाता है, उसे शीघ्र ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

तैसे हि ज्ञान स्वरूप हुताशन,
करत भस्म सर कर्मन बन्धन।
ताते अर्जुन ज्ञान समाना,
नहि पुनीत कछु यहि जग आना।
योग सिद्धि नर काल बिनायी,
लेत ज्ञान आपुहि भइ पायी।[4]

'जयभारत' मे ज्ञान को अभ्यास सापेक्ष माना है[5], किन्तु ज्ञान की मीमासा अधिक सटीक नही हो पाई। ज्ञान परमेश्वर की प्राप्ति का अमोघ साधन माना गया है। ज्ञान के द्वारा ही आत्म दर्शन होता है, जिससे जीवात्मा और परमात्मा के अभेद

---

१ म० शान्ति० २०६।३२
२ जगमहं कर्म जदपि विधि नाना,
ज्ञानहि माहि सबन अवसाना। कृष्णायन, पृ० ५५५
३ ज्ञान तरणिचढि तुम तबहुँ, जइहौ सब अघ पार। कृष्णायन, पृ० ५५
४ कृष्णायन, पृ० ५५५-५६
५ बडा अभ्याससापेक्ष ज्ञान,
ज्ञान से भी विशेष है ध्यान। जयभारत, पृ० ३६५

का ज्ञान होता है। यह आत्म-दर्शन ज्ञान-सापेक्ष है।[1]

'कौन्तेयकथा' में कवि ज्ञान और कर्म के समन्वय में सिद्धि की कामना करता है और निःशेष ज्ञान को जड़ मानता है।[2] इसका प्रमुख कारण यह है कि शुष्क ज्ञान मानव को एकान्तप्रिय बना देता है और मनुष्य सामाजिकता के स्तर से पृथक हो जाता है।

ज्ञान का विषय : 'महाभारत' में ज्ञान का विषय क्षेत्रज्ञ है। अर्थात् आत्म-ज्ञान से संसार की अनित्यता को जानकर, इन्द्रिय सुख की क्षण भंगुरता को समझ कर, ध्यान, योगादि की क्रियाओं से समाधिस्थ अथवा ज्ञानी होकर क्षेत्रज्ञ को जानना ही ज्ञान का परम ध्येय है। जैसा कि हम पहले भी संकेत कर चुके हैं कि आज का कवि 'परम तत्व' की चर्चा कम करता है। आध्यात्मिक चिन्तन की अपेक्षा उसका चिन्तन सामाजिक अधिक है, इस कारण प्राचीन साधन मार्गों का भी आधुनिक संस्करण किया गया है। आज का कवि 'ज्ञान' को 'आत्मज्ञान' अथवा साधना के अनेक सोपानों के मुख्य आधार के रूप में न लेकर बुद्धि और विवेक का पर्याय मानता है। महाभारतकार के समान वह 'ज्ञान' को केवल परमपद प्राप्ति का साधन न मानकर उसकी मीमांसा सामाजिक स्तर पर करता है। 'कुरुक्षेत्र' का कवि ज्ञान को मानव के हृदय और मस्तिष्क का वह आलोक मानता है, जिसके द्वारा मानव लोक-कल्याण के लिए हृदय की सात्विकता और कोमलता को देख सके। मानव का एक वाह्य स्वार्थ परायण, कठोर, हिंस्र रूप है, किन्तु उसके हृदय में इसके विपरीत शान्ति की इच्छा कोमलता, दया, करुणा, की भावना निहित है अतः ज्ञान की शलाका से मानव इन हृदयस्थ गुणों को जान कर समाज के कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो।[3] दिनकर ने अत्यन्त समर्थ शब्दों में आत्म ज्ञान की मीमांसा सामाजिक

---

१. हुए निकटतम ही तुम मन से,
रहो कहीं भी तन से,
तेरा परमात्मीय तुझी में
देख आत्म-दर्शन से। द्वापर, पृ० १६७

२. निःशेषज्ञान चिन्तन मन सामाजिक स्तर से हट कर
एकान्त व्यक्ति में बस कर जीवन को जड़ कर देते।
कौन्तेय कथा, पृ० ७८

३. वल्कल मुकुट परे दोनों के छिपा एक जो नर है,
अन्तर्वासी एक पुरुष जो पिंडों से ऊपर है।
जिस दिन देख उसे पायेगा मनुज ज्ञान के बल से
रह न जायेगी उलझ दृष्टि जब मुकुट और वल्कल से।
उस दिन होगा सु प्रभात नर के सौभाग्य उदय का
उस दिन होगा शंख ध्वनित मानव की महा विजय का। कुरुक्षेत्र, पृ० १५१

दृष्टि में की है। आज के मानव का साध्य परमपद की प्राप्ति हो या न हो, वह आध्यात्मिक वैयक्तिक साधन है, किन्तु सामान्य मानवीय गुणों का प्रसार अत्यन्त आवश्यक है। जब तक इन गुणों को पहचान कर इनका विस्तार नहीं होगा तब तक आध्यात्मिक ज्ञान भी मानव का कल्याण नहीं कर सकेगा।

दिनकर महाभारतीय ज्ञान मार्ग की मान्यता को आस्था से स्वीकार करते हैं। 'महाभारत' का प्रतिपाद्य आत्म ज्ञान से परमपद की प्राप्ति है। अत मानव मात्र की अखण्ड अभिन्नता में विश्वास रखने वाला आस्थावान कवि ज्ञान की मान्यता से प्रभावित है। किन्तु उसका अपने युग के प्रति भी कुछ उत्तरदायित्व है, जिससे वह बचना नहीं चाहता, इस कारण वह आस्था के मूल को यथावत रखकर उसका युगानुरूप परिवर्तन करता है। कवि का दृढ विचार है, कि मानव जिस दिन भिन्न दृश्यमान संसार में अभिन्नता, प्रेम, सौहार्द, करुणा दया, ममत्व का सधान अपने ज्ञान-चक्षुओं में कर लेगा, उस दिन उसे सम्भवत वही परमानन्द प्राप्त होगा, जो आध्यात्मिक मान्यता में योगी को ब्रह्म के साक्षात से होता है।

ज्ञान योगी 'महाभारत' में उल्लिखित ज्ञानयोगी के लक्षणों में 'जयभारत' के युधिष्ठिर 'अंगराज', 'रश्मिरथी' के कर्ण, 'कौन्तेय कथा' के अर्जुन पूर्ण सिद्ध व्यक्त हुए हैं। 'महाभारत' में स्पष्ट कहा है कि भोगासक्ति में लिप्त व्यक्ति स्त्री-पुत्रादि के नाश पर शोक करते हैं, किन्तु ज्ञानयोगी सारासार को जानकर दुखित नहीं होते[1] आधुनिक काव्य के प्रमुख पात्रों में हमें वही लक्षण दिखाई देते हैं। द्रौपदी और बन्धुओं के पतन पर युधिष्ठिर शोक न करके शुद्ध आत्मा का आनन्द प्राप्त करते हैं।[2] यहा युधिष्ठिर ज्ञान-योगी के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

योगमार्ग

'महाभारत' में योग सिद्धान्त की व्यापक मीमासा है। भीष्मस्तवराज, गीता, शान्तिपर्व के अनेक अध्यायों में योग की स्वतन्त्र विवेचना की गई है। योग मार्ग 'महाभारत' का मुख्य मार्ग है, 'योग' की स्थिति 'गीता' में कर्मवाद के साथ 'योग'

---

१ शोक आतुर जनान् विराविण-
स्तत्तदेव बहु पश्य शोचत ।
तत्र पश्य कुशलानशोचतो
ये विदुस्तदुभय पद सताम् ॥ म० शान्ति० १२४।१३

२ उस विषम दशा में पड़ कर भी
क्या ही सहिष्णु थे वे विनयी,
निकले उनके से पुरुष वही
जो हुए अन्त में प्रकृतिजयी। जयभारत, पृ० ४४२

कर्मसुकौशलम्' कहकर स्वीकार की गई है। योग-सिद्धान्त की प्रमुख बात यह है कि मन सर्वथा इन्द्रियों की कामना के वशीभूत इच्छाओं में चक्र लगाता और जीव नाना कर्म करके विषय भोगों में लीन होता है। मन की निर्विकारिता के अभाव में आत्मा का तेज प्रकाशित नही होता और आत्म तेज के अभाव में मोक्ष प्राप्ति असम्भव है। अतः मोक्ष प्राप्ति के हेतु आत्मा का प्रकाश आवश्यक है, जो मन की शान्त स्थिति मे सम्भव है।

चित्त-वृत्ति-निरोध-वासना-निरोध : योग तत्वज्ञान का मूल मंत्र यही है कि वासना-निरोध करके चित्त-निरोध करना चाहिए। चित्त-निरोध में यम, नियम, आसन आदि करने पड़ेंगे, क्योंकि इन योग कर्मों के कारण मन स्वस्थ होकर शान्त बैठेगा और आत्मा का प्रकाश होगा। योगी साधक पंचप्राण, मन, इन्द्रियों के निरोध से साधना के चरम लक्ष्य की प्राप्ति करता है और योग के बल से राग, मोह, काल, क्रोध आदि को जीत कर परमपद को प्राप्त करता है।[1] समाधि के द्वारा योगी आत्मा को परमात्मा मे स्थिर कर अचल हो जाता और परम अविनाशी पद को प्राप्त करता है[2] महाभारतकार ने योग को परम बल कहा है,[3] जिसके कारण योगी प्राण को वश मे करता है और उसके पश्चात् इसी शरीर से दशो दिशाओ मे स्वच्छन्द विचरण करता है।[4]

स्थूल और सूक्ष्म योग : महाभारतकार वेद मे वर्णित दो प्रकार के योगो का वर्णन करता है। स्थूल योग अणिमा महिमा आदि आठ प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाला है और सूक्ष्म योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि) आठ अंगों से युक्त है।[5] सूक्ष्म योग से परम पद की प्राप्ति होती है।

सगुण-निर्गुण-साधन : योग के दो मुख्य साधन है—सगुण और निर्गुण। किसी विशेष देश मे चित्त की स्थापना 'धारणा' है। मन की धारणा के साथ किया गया प्राणायाम सगुण है और देश-विशेष का आश्रय न लेकर मन को निर्बीज समाधि में एकाग्र करना निर्गुण प्राणायाम कहलाता है।[6] वस्तुतः सगुण प्राणायाम साधना का प्रथम स्तर है और निर्गुण द्वितीय सोपान है। इसके अनन्तर जितेन्द्रियता[7]

---

१. म० शान्ति० ३००।११
२. म० शान्ति० ३००।३८
३. म० शान्ति० ३१६।२
४. म० शान्ति० ३१६।५
५. वेदेषु चाष्ट गुणिनं योगमाहुर्मनीषिणः।
सूक्ष्ममष्टगुणं प्राहुर्नेतरं नृप सत्तम ॥ म० शान्ति० ३१६।७
६. म० शान्ति० ३१६।८-९
७. म० शान्ति० ३१६।१२

मध्य रात्री के दो प्रहरो मे सोना,[१] एकान्तवास,[२] मन को अहंकार मे अहंकार को बुद्धि मे, बुद्धि को प्रकृति मे स्थापित करना योगी की साधना है।[३] योगी इस साधना की पूर्णता के साथ समाधि मे स्थित होता है और अंधेरे मे प्रज्ज्वलित अग्नि के समान हृदय देश मे स्थित ज्ञान स्वरूप परब्रह्म' का साक्षात्कार करता है।[४]

योग का व्यावहारिक रूप व्यास-शुक संवाद मे व्यास जी ने योग की दार्शनिक विवेचना करके योग के व्यावहारिक रूप की व्याख्या की है। योगी योगाभ्यास द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते है।[५] योग का व्यावहारिक रूप यह है कि योग से चित्त की शुद्धि के रूप मे काम, क्रोध, लोभ, भय का उच्छेदन होता है,[६] जिससे योगी सामान्य विषय भोगो से विरक्त होता और दम्भ का त्याग करता है।[७]

योगी के लिए अहिंसात्मक वाणी का प्रयोग ही श्रेयस्कर है, उसे समस्त संसार को ब्रह्म के संकल्प का परिणाम मानकर आचार-शुद्धि से विचरण करना चाहिए[८] यहाँ तक योगी व्यावहारिक धर्मों का आचरण करता है। इसके आगे के आचरण साधनात्मक हैं और परमपद की प्राप्ति कराते हैं।

ध्यान योग मोक्ष प्राप्ति के हेतु ध्यान का अनुष्ठान करने वाले योग को ध्यान योग कहा जाता है।[९] ध्यान योग के साधन का मूल रूप यही है कि पंचेन्द्रियों को मथ डालने वाले विषयो की ओर ध्यान योगी का मन न जाय। जब योगी इन्द्रियो सहित मन को एकाग्र कर लेता है तभी प्रारम्भिक ध्यान मार्ग का आरम्भ होता है,[१०] और वह नित्य योगाभ्यास के द्वारा शान्ति की प्राप्ति करता है।[११] ध्यान योग की व्यावहारिक आवश्यकताओ मे आलस्य, खेद और मात्सर्य-त्याग का महत्व अधिक है क्योंकि इन वृत्ति विकारो के त्याग से ही मन ध्यान में स्थिर हो सकता है। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि समस्त योग साधनों का उपदेश गीता देती

---

१ म० शान्ति० ३१६।११
२ म० शान्ति० ३१६।१२
३ म० शान्ति० ३१६।१३-१७
४ म० शान्ति० ३१६।२५
५ म० शान्ति० २४०।३
६ म० शान्ति० २४०।५
७ म० शान्ति० २४०।६-७
८ म० शान्ति० २०४।६
९ म० शान्ति० १९५।२
१० म० शान्ति० १९५।१०
११ म० शान्ति० १९५।२०

है। ध्यान योग की स्वीकृति का मुख्य कारण यह है कि ध्यान के द्वारा शुद्ध, परिष्कृत चित्त को ही ईश्वरार्पण किया जाय। इस दृष्टि से गीता शुष्कयोग का पक्ष ग्रहण न करके भगवद्ध्यान के साथ समन्वित करती है। ज्ञान-विज्ञान से पूर्ण, जितेन्द्रिय, विकाररहित योगी 'युक्त' होता है किन्तु जो 'युक्त' योगी अपने अन्तरात्मा को ईश्वरार्पण करके पूर्ण श्रद्धा से भजन करता है वह 'युक्ततम' होता है।[1]

> योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
> श्रद्धावान् भजते योमां स मे युक्त तमो मतः ॥[2]

'महाभारत' की दृष्टि मे योग केवल शारीरिक चेष्टा है। अतः उसे योग और भक्ति का समन्वय अभीष्ट है।

आधुनिक काव्य : योग की सैद्धान्तिक मीमासा आधुनिक काव्य मे प्रायः नहीं हुई है। तथापि स्थान-स्थान पर महाभारतीय पात्रो की उस साधनात्मक स्थिति का चित्रण अवश्य हुआ है, जिसमें योग-साधना की छाप स्पष्ट है। 'कृष्णायन' में मिश्र जी ने योग के अभ्यास के द्वारा चित्त की एकाग्रता का प्रतिपादन करते हुए, भ्रमित चित्तवृत्ति का शमन योग द्वारा उपस्थित किया है। योग साधना में लीन साधक अन्ततः ईश्वर को प्राप्त करता है।[3] 'कृष्णायन' का कवि 'महाभारत' के कृष्ण के शब्दों की पुनरावृत्ति करते हुए योग का प्रबल समर्थन करता है कि कोई भी योगी सांसारिक माया जाल से मोहित नही होता अतः हे अर्जुन तुम सब कालों में योग युक्त रहो, क्योंकि यही योग वास्तविक मार्ग है।[4] योगी यज्ञ, तप, दान से परे 'आद्यस्थान' को प्राप्त करता है।[5] 'जयभारत' में विषयों से विरल और इन्द्रियों को

---

१. गीता, ६।११-१८
२. गीता, ६।४७
३. अपि मोहि मन बुद्धि धनंजय,
 मिलिहो मोहि मंह अंत असंशय।
 योग युक्त करि करि अभ्यासू,
 चित्त भ्रमत इत उत नहि जासू,
 करत सो परम पुरुष कर ध्याना:
 पावत अंत दिव्य भगवाना। कृष्णायन, पृ० ५६६
४. मोहित होत न योगि कोउ, जानि मार्ग ये दोउ,
 ताते अर्जुन। काल सब योग-युक्त तुम होउ। कृष्णायन, पृ० ५७२
५. वेद, यज्ञ, तप, दान—इनके तजि वर्णित सुफल।
 परे जो आद्यस्थान, पावत योगी जानि यह ॥ कृष्णायन, पृ० ५७२

वश में करने वाले साधक को योगी 'स्थित प्रज्ञ' कहा है।[1] युधिष्ठिर को सामान्यतः एक अनासक्त योगी के रूप में चित्रित किया गया है।[2] 'कौन्तेय कथा' का अर्जुन तप, योग और ध्यान से ही शिव के दर्शन कर सका। योगी को परमात्मा प्राप्ति के अनेक सोपान पार करने पड़ते हैं, अतः अर्जुन प्रथम चित्त-वासना निरोध से समाधिस्थ होते हैं, सतत साधना से उनके हृदय में आलोक आता है और शिव पहले उपचेतन में, तत्पश्चात चेतन में दर्शन देते हैं।[3] अर्जुन की साधना की यह प्रक्रिया योगी की प्रक्रिया है।

नवीन साधनात्मक प्रक्रिया आधुनिक काव्य में योग साधना का भी नवीनीकरण किया है। मानव अपनी क्षुद्रत्व और स्वार्थ की भावना का त्याग करके, अनासक्त सांसारिक की तरह जीवन यापन करे, अपने को अकिंचन मानकर दूसरे के महत्व को समझे और अनावश्यक रूप में अन्य लालसाओं में न पड़कर नियम एवं संयम से रहे। ऐसा पुरुष भी योगी ही माना जाएगा। 'योग' को केवल योगासन, ध्यान, धारणा का रूप मानकर आत्मत्याग, सन्तोष और चतुर्मुखी सद्भावना के प्रसारक को भी योगी कहा है। जो योग के इस रूप से संसार का कल्याण कर सकता है, वह अपने कर्म से विश्व की उन्नति में सहायक होता है। 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म युधिष्ठिर को ऐसे ही अनासक्त योगी का उपदेश देते हैं।[4] इस उपदेश में कवि की वह धारणा स्पष्ट हुई है, जिसे वह मानव को सर्वोच्च गति का आधार मानता है।[5] योग, तप, ज्ञान आदि के विषय में आज के कवि की धारणा

---

१ किसी से जिन्हें नहीं है मोह
नहीं है जिन्हें किसी से द्रोह,
रहें जो रागरोष-भय हीन
वही हैं स्थित प्रज्ञ स्वाधीन। जयभारत, पृ० ३३५

२ जयभारत, पृ० ४४३

३ औ समाधिस्थ चिंतन में जाग्रत यों शिव की प्रतिमा
कम्पित निवात दीपक-सी फिर ठहरी होकर गहरी।
शिव उपचेतन में आए फिर चेतन में चिंतन से,
ध्यानस्थ प्रकृति से पाया शंकर का दर्शन मन में। कौन्तेय कथा, पृ० ६०

४ जिस तप से तुम चाह रहे
पाना केवल निज सुख को,
कर सकता है दूर वही तप,
अमित नरों के दुःख को। कुरुक्षेत्र, पृ० १२८

५ प्रेरित करो इतर प्राणी को
निज चरित्र के बल से,
भरो पुण्य की किरण प्रजा में
अपने तप निर्मल से। कुरुक्षेत्र, पृ० १५२

नितान्त बौद्धिक आधार पर टिकी हुई है। महाभारतकाल में योग साधना परमपद की प्राप्ति का प्रमुख साधन थी किन्तु आज के युग में 'मानवता' का विकास युग की सर्वोच्च पुकार है, अतः आज का कवि, विशेष रूप से राज दंड धारी योगी रूप को दलित मनुष्यता के उत्थान का साधक बनाने के लिए प्रयत्नशील है। महाभारतकाल की साधना और आधुनिक साधना में परिलक्षित अन्तर युग की व्यापक समस्याओं से सम्बद्ध है। उस काल के योगी के लक्षणों में अहिंसा, त्याग, आचरण शुद्धि, सत्य, सरलता, क्षमा, सम्पूर्ण प्राणियों में समभाव, जितेन्द्रियता आदि गुणों का समावेश आध्यात्मिक साधना के स्तर पर था[1] किन्तु वे सभी लक्षण आज के योगी में सामाजिक और मानवतावादी स्तर पर अभिव्यक्त हुए हैं।[2] भीष्म, मानव के जीवन में अनस्यूत शाश्वत विडम्बना की व्याख्या करते हैं कि मानव आदि काल से 'अमरत्व' को ढूंढता आया है। कहीं पर इसके साधन रूप योग, ज्ञान, भक्ति आदि को अपनाया गया, किन्तु जीवन में व्याप्त द्रोह, द्वेष का विष मानवात्मा की स्नायुओं में भरता ही रहा। भीष्म के ही शब्दों में कवि का अभिमत है कि वास्तविक, आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के लिए ज्ञान दीप को प्रज्वलित कर वैराग्य में राग और राज दंड धारण में योग के समावेश द्वारा मानवता का नवीन मार्ग दर्शन करना आवश्यक है।[3]

भक्ति मार्ग

भक्ति का स्वरूप : 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज सेवायां' धातु से होती है, जिसका अर्थ है सेवा, आराधना इत्यादि। परमात्मा के प्रति श्रद्धा अथवा प्रेम

---

१. मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वैकाग्र्य समाहितः।
पूर्वरात्रा परार्ध च धारयेन्मन आत्मनि ॥ म० शान्ति० २४०।१४

× × ×

विधूमइव दीप्तार्चिरादित्य इव दीप्तिमान्।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेऽऽत्मा तथाऽऽत्मनि। म० शान्ति० २४०।१६

२. कुरुक्षेत्र, पृ० १०८

३. खोजना इसे हो तो जलाओ शुभ्र ज्ञान-दीप
आगे बढ़ो वीर, कुरुक्षेत्र के श्मसान से,
राग में विराग, राज दंड धारी योगी बनो,
नर को दिखाओ पन्थ त्याग-बलिदान से,
दलित मनुष्य में मनुष्यता के भाव भरो,
दर्प की दुराग्नि करो दूर बलवान से,
हिम-शीत भावना में आग अनुभूति की दो,
छीन लो हलाहल उदग्र अभिमान से। कुरुक्षेत्र, पृ० १०९

भाव भक्ति का आधार है। जहा ज्ञान आदि अन्य मार्गों में प्रमुख रूप से तत्व चिन्तन प्रधान रहता है, वहा भक्ति मे भाव की प्रधानता है। भक्ति भगवान् के प्रति भक्त का रागात्मक समर्पण है। भगवच्छरणागति, प्रपत्ति, उपासना, आदि नामों से भी इसी मार्ग का अभिधान होता है। भारतीय धर्म साधना मे भक्ति मार्ग का अतीव महत्व है। 'महाभारत' मे जिस सात्वत् या भागवत् धर्म का आरम्भिक रूप दिखाई देता है, परवर्ती पुराणो, मत्रो एव अन्य सम्प्रदायो ने इस सिद्धान्त का विकास करते हुए, उसे भाव की अनेक रहस्यमयी कोटियो तक पहुँचा दिया है।

महाभारत-पूर्व भक्ति कर्म, ज्ञान और भक्ति मानव की सनातनी वृत्तिया हैं। यद्यपि वैदिक युग मे कर्म काड की प्रधानता रही फिर भी वहा ज्ञान की उपेक्षा सम्भव नही थी। वेद भारतीय ज्ञान के आदि स्रोत हैं। वैदिक ऋषियो ने प्रकृति की प्राणदायिनी शक्तियो के प्रति अनेक स्थलो पर अपनी रागात्मकता का भी परिचय दिया है। देवताओ के प्रति जहा पलकित होकर वैदिक ऋषि अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं वही हमे भक्ति भाव के मूल रूप का दर्शन हो जाता है। ऋग्वेद मे ही ऐसे अनेक स्थल है जहा प्रभु की सेवा मे अपनी वृत्तियो की सलग्नता उसी रूप मे वर्णित की गई है जिस रूप मे पति पत्नी की सलग्नता होती है। वहा कहा गया है कि 'सुख का ज्ञान रखने वाली, एक ही माग मे बढने वाली प्रभु प्राप्ति की कामना से युक्त मेरी समस्त बुद्धिया आज प्रभु की सेवा मे लगी हुई हैं और जैसे स्त्रिया अपने पति का आलिगन करती है वैसे ही मेरी बुद्धिया ऐश्वर्य शाली पवित्र प्रभु का आलिगन सुरक्षा के लिए करती हैं।'[1] एक अन्य मन्त्र मे सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभु के साथ अपनी बुद्धि का वैसा ही स्पर्श करने की कामना की गई है, जैसे कामनाशील पत्नी कामना युक्त पति का सस्पर्श करती है।[2] अनेक स्थलो पर विष्णु[3] और इन्द्र[4] के प्रति सामीप्य की उत्कट भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

उपनिषदो के काल तक आते रहस्यमयी भाव साधनाओ के अनेक सम्प्रदायो का निर्माण हो चुका था। उपनिषदो मे प्रणव-विद्या[5] दहर विद्या[6] मधुविद्या[7]

---

१ ऋग्वेद, १०।४३।१

२ ऋग्वेद, १।६२।११

३ इम मे वरुण श्रुधी हमवद्या च मृडय, त्वामवस्युराच के।

ऋग्वेद, १।२५।१६

४ त्व हि न पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ। अधाते सुम्नमीमहे।

ऋग्वेद, ८।९८।११

५ छान्दोग्यउपनिषद्, १।५।१

६ छान्दोग्यउपनिषद्, ८।१।१

७ बृहदारण्यक उपनिषद् २।५।१४

आदि का विवरण मिलता है, जो तत्कालीन भक्ति सम्प्रदायों का ही स्वरूप है। भक्त और भगवान् के सम्बन्ध में यहां कुछ अधिक भावात्मकता का विकास हुआ है। तथापि यह कहना उचित होगा कि उपनिषदों में ज्ञानमार्ग की प्रधानता के कारण भक्ति का रहस्यात्मक स्वरूप ही अधिक प्रस्फुटित हुआ है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में सृष्टि का आरम्भ जिस आत्मरूप से माना गया है वह भी रसात्मक स्वरूप है।[1] उसके साथ एकत्व की जिस कामना का प्रकटीकरण उपनिषद्कार ने किया है उसमें भी तीव्र रागात्मिकता, भक्ति का प्रकाशन हुआ है। यह माना जाता है कि श्वेताश्वतर उपनिषद् में भक्ति शब्द का प्रथम प्रयोग हुआ है। यह भक्ति गुरुभक्ति है और कहा गया है कि जैसी भक्ति देवताओं में होती है वैसी भक्ति गुरु के प्रति होनी चाहिए।[2]

पहले कहा जा चुका है कि पांचरात्र मत का आरम्भ भी महाभारत-पूर्व युग में हो चुका था और इस सम्प्रदाय के भी अनेक ग्रंथ उपलब्ध थे। 'महाभारत' भी इस सम्प्रदाय के आरम्भिक विकास का सूचक है। अपितु कहना यह चाहिए कि 'महाभारत' में भक्ति भावना का जो स्वरूप मिलता है, वह बहुत सीमा तक इसी सम्प्रदाय की देन है। 'महाभारत' का यह भक्ति स्वरूप संक्षिप्त में आगे वर्णित है।

महाभारत में भक्ति का स्वरूप : भक्ति भावना अपने स्वरूप की स्पष्टता के लिए जिन दो अवलम्बनों पर आधारित है, वे हैं उपास्य और उपासक। वेद और उपनिषद् काल में उपास्य का स्वरूप प्रायः अव्यक्त ही रहा परन्तु भक्ति का स्वरूप उसी क्षण बलशाली प्रवाह के साथ विकसित हुआ, जिस समय अवतार वाद की स्वीकृति भारतीय धर्म में हुई।

डांडेकर इस मत को स्वीकार करते हैं कि वेदों में अवतारवाद का कोई भी स्पष्ट संकेत नहीं, हाँ, कुछ ऐसे स्थल अवश्य मिल सकते हैं जिनमें इस विचार का मूल रूप पाया जाता है।[3] वेदों में विष्णु को अन्य सब देवताओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका था।[4] किन्तु विष्णु का कोई अवतार 'वेद' या 'उपनिषद' में

---

१. बृहदारण्यक० १।४।१-३

२. यस्य देवे परा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ। श्वेताश्वतर उपनिषद् ६।२३

३. "It must be said that there is no clear reference to the Avtar theory as such in Vedas. But the germs of the features of that conception are certainly to be found in Vedic passages :"
Studies in Indology; vishnn in the Vedas, p. 95.

४. "The name of Vishnu and his cult go back to Vedic time—He is conceived as the Infinite Spirit."
India anb its Faith; London, 1916, p. 50.

मान्य नही है। 'महाभारत' का भागवत धर्म श्रीकृष्ण को अपना उपास्य मानता है और उन्हें विष्णु से अभिन्न बताता है। 'महाभारत' में ही मानव ईश्वर की प्रथम कल्पना हुई है, ऐसा प्रतीत होता है[1] और यह 'महाभारत' के महत्व को स्थापित करने वाला एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है।

'महाभारत' ने भक्ति में इस अवतारवाद के साथ ही व्यक्त और सगुण तत्व का सैद्धान्तिक समावेश कर लिया। गीता मे कृष्ण ने कहा है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥[2]

अर्थात् अव्यक्त उपासकों का मार्ग अधिक क्लेशदायक होता है। अतः अगले श्लोकों में व्यक्त की उपासना का प्रतिपादन किया है।[3] 'महाभारत' की भक्ति का यह स्वरूप अतीव क्रांतिकारी था जिसका विकास परवर्तीकाल की वैष्णव उपासना में परिलक्षित है।

महाभारत का उपास्य 'महाभारत' के उपास्य निर्विवादरूप से श्री कृष्ण ही हैं। कथा विकास के अन्तर्गत पाडवों के राजसूय यज्ञ में श्री कृष्ण को ही पूजा का आसन प्रदान किया गया था।[4] अन्यत्र आध्यात्मिक प्रसगो मे भी श्री कृष्ण को ही परदेवता सिद्ध किया गया है। वन पर्व के मार्कण्डेय प्रसग मे बालमुकुन्द और श्री कृष्ण को अभिन्न मानते कहा गया है कि नारायण विष्णु, ब्रह्मा, शक्र, शिव, सोम, कश्यप, प्रजापति, धाता, विधाता, यज्ञ, अग्नि आदि सभी का स्वरूप श्री कृष्ण ही हैं।[5] इस सृष्टि में श्री कृष्ण से अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। श्री मद्भगवद्गीता मे भी श्री कृष्ण की विभूतियों का विभूति योग में ऐसा ही व्यापक वर्णन है।[6] श्री कृष्ण का विराटस्वरूप इन समस्त विभूतियो का प्रत्यक्ष रूप है।[7] वे ही

---

१ "In the Epicpoetry on the contrary in the Mahabbarta Vishnu is in full possession of this Honour At the same time there comes into view a Hero a man—God Krishna who is declared to be an incarnation of his divine essence—There is connection between the attainment of supremacy by Vishnu and his identification with Krishna"
The Religion of India, 1891, p 166

२ गीता, १२।५

३ गीता, १२।६ ७

४ म० सभा० ३५।२८-२६

५ म० वन० १८६।३-१२

६ गीता, १०।४-६

७ गीता, अध्याय ११

चराचर के पति है और सब जगत उन्हीं से उत्पन्न है। वन पर्व और गीता दोनों स्थलों पर श्री कृष्ण ने अपने अवतार का कारण बताया है।······जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का उत्थान होता है तब-तब मैं अपने को मानव रूप में उत्पन्न करता हूं। साधुओं के परित्राण और दुष्टों के विनाश के लिए मेरा युग-युग में अवतार होता है।[1] वे यह भी कहते हैं कि मुझ देह बन्ध परमात्मा को अनेक व्यक्ति समझ नहीं पाते। वस्तुतः मैं ही इस जगत् का मूल चक्र-धार हूं।

मार्कण्डेय ने अपनी प्रार्थना में श्री कृष्ण को पुराण पुरुष, विभु और हरि बताया है।[2] 'महाभारत' के नारायणीयपर्व और गीता में श्री कृष्ण के इस परमात्म रूप का अतिविस्तृत वर्णन है। वस्तुतः महाभारत काल मे प्रचलित समस्त ब्रह्म रूपों का पर्यवसान श्री कृष्ण के स्वरूप में होता हुआ दिखाई देता है। वहां उनकी स्पष्ट घोषणा है कि मुझसे परे और कोई नहीं है।[3] शांति पर्व मे भगवान् कृष्ण को संपूर्ण लोकों का पालक, और संहारक बताया है, अत. वे ही सब प्रकार से भजनीय है।[4]

इस प्रकार महाभारत मे उन भक्ति आंदोलन का मूल स्रोत विद्यमान है, जिसका साहित्यिक विकास परवर्ती दार्शनिक आचार्यों के सिद्धान्तो से हुआ।

आधुनिक काव्य : आधुनिक काव्य की भक्तिवादी विचारधारा मूलतः मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन से प्रभावित है। महाभारतीय प्रबन्ध काव्यों मे व्यक्त भक्ति की विचारधारा पर 'महाभारत' और परवर्ती भक्ति सिद्धांतो का सम्मिलित प्रभाव पड़ा है। 'महाभारत' मे पांचरात्र और सात्वत मतो के अन्तर्गत भक्ति की संक्षिप्त मीमांसा हुई है। गीता में भगवान् कृष्ण ने सर्वस्व समर्पण करने की प्रेरणा के द्वारा भक्ति के मार्ग को भक्त के लिए सुलभ किया, इसके अतिरिक्त ज्ञान, योगादि की सभी साधनाओं को ईश्वरार्पण करना भी भक्ति मार्ग का एक रूप ही है। 'महाभारत' प्रतिपादित भक्ति मार्ग का प्रभाव आधुनिक प्रबन्ध काव्यो की विस्तृत सामाजिक भाव-भूमि पर यत्रतत्र परिलक्षित होता है।

द्वापर मे गुप्त जी ने गीता के अनुसार भक्त के सर्वस्व समर्पण के सिद्धांत का उल्लेख किया है,[5] और महाभारतीय प्रबन्ध काव्यो के सभी प्रमुख पात्र भगवान्

---

१. म० वन० १८६।२७-२६, ३१

२. म० वन० १८६।५४

३. म० शान्ति० ३४५।२२

४. म० शान्ति० ३४८।८८

५. कोई हो सब धर्म छोड़ तू

आ, बस मेरी शरण धरे,

डर मत, कौन पाप वह, जिससे

मेरे हाथों तू न तरे ? द्वापर, पृ० १२

कृष्ण में अटूट आस्था रखते हैं। उनके द्वारा कृष्ण की भक्ति का प्रतिपादन कवि का प्रमुख ध्येय रहा है। भक्ति की सैद्धान्तिक विवेचना अथवा उसके विभिन्न लक्षणों के विषय में आज का कवि ज्ञान, योग आदि के समान ही विचार करता है। 'जयद्रथ वध' में युधिष्ठिर भक्ति-भावना से आपूरित होकर कृष्ण का स्तवन करते हैं।[1] महाभारत काल में कृष्ण ने वैदिक यज्ञों की बहुलता को समाप्त कर भक्ति की स्थापना की थी, आज का कवि उसी स्वर में पूजा, पाठ आदि को मानता हुआ भी वस्तुतः निर्मल हृदय की रागात्मिका वृत्ति 'भक्ति' को प्रमुख मानता है।[2] यही कारण है कि यज्ञ, तप, दान आदि से भक्ति का एक कण भी अधिक महत्वपूर्ण है, जिसे प्रभु तत्काल स्वीकार करते हैं,[3] यह विश्व अगाध सागर है तथा कृष्ण की भक्ति के बिना भवसागर से पार नहीं उतरा जा सकता।[4] 'कृष्ण सागर' में कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन करते हुए कृष्ण के अवतारत्व में भक्ति की स्थापना की गई है। यहाँ पर भी कृष्ण की स्तुति उपास्यदेव के रूप में करके उसे भक्ति से ही प्राप्त बताया गया है।[5]

'प्रिय प्रवास' के कवि ने भक्ति मार्ग का उसी रूप में नवीन आलेखन किया जिस रूप में कृष्ण चरित्र में परिवर्तन किया। पौराणिक भक्ति सिद्धान्त की व्यावहारिक उपचर्या को हरिऔध जी ने नैतिक बुद्धिवाद और आदर्शवाद की आनु-

---

१ आकार-हीन तथापि तुम साकार सतत सिद्ध हो,
सर्वेश होकर भी सदा तुम प्रेम-वश्य प्रसिद्ध हो।
करते तुम्हारा ही मनन, मुनिरत तुम्हीं में ऋषि सभी,
सन्तत तुम्हीं को देखते हैं ध्यान में योगीन्द्र भी।
× × ×
जय पूर्ण पुरुषोत्तम जनार्दन, जगन्नाथ, जगद्पते,
जय-जय विभो, अच्युत हरे, मंगल पते, माया पते।
जयद्रथ वध, पृ० ८३-८४

२ व्यंजन नहीं, देव देखेंगे
श्रद्धा-भक्ति तुम्हारी। द्वापर, पृ० ६३

३. यज्ञ, तप, दान, भजन-भोजन।
भक्ति का बहुत एक भी कण,
ग्रहण करता हूँ मैं तत्क्षण॥ जयभारत, पृ० ३३८

४ भव सागर यंध अगाध भरो। पद कृष्ण जहाज बिना न तरो।
नहिं दुस्तर सागर पार बिना। हरि भक्ति अनन्य कथा रति ना।
कृष्णायन, पृ० ४१६

५ कृष्ण सागर, पृ० २३६

निक सीमा में उपस्थापित किया है। जिस प्रकार भगवान् कृष्ण 'प्रिय प्रवास' में मानवोत्तर रूप में चित्रित हैं, उसी प्रकार भक्ति भी लोक सेवा, लोक संग्रह का पर्याय बनकर व्यक्त हुई है।[1] भक्ति की पौराणिक परम्परागत धारणा के विरुद्ध यह परिवर्तनकारी अनुष्ठान युग की विकसित बौद्धिक चेतना का अभिनन्दन करता है। आधुनिक काल के महाभारत प्रभावित प्रबन्ध काव्यों में इसी आधार पर भक्ति की विवेचना हुई है।

१. प्रिय प्रवास, सर्ग १६

उपसंहार

अपने इस विस्तृत अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह प्रभाव परम्परा कभी शिथिल और कभी व्यापक रूप से रही। सभी कवियों ने 'महाभारत' के कथानक को तत्कालीन युग-चेतना के आलोक में विन्यस्त किया। उन्होंने जीवन-साधना के अनेक पक्षों को 'महाभारत' से उठाकर उन्हें और भी अधिक लोकप्रियता देकर युगीन सभ्यता के शिखर-चैतन्य से मण्डित करके, काव्य के सुन्दर आवरण में प्रस्तुत किया। इससे आज की समस्याएँ प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के आलोक में विवेचना का विषय बनी। 'महाभारत' के प्रभाव को आज के कवि ने उतनी मात्रा में स्वीकार किया है जितना उसके जीवन-दर्शन के अनुरूप है।

इस दृष्टि से मूल से नितान्त सम्बन्ध रखने वाले परम्परावादी कवियों की सिद्धि पुनरुत्थानात्मक रही और सुधारवाद से प्रभावित कवियों ने आधुनिक सामाजिक सुधार के स्वर को 'महाभारत' के आश्रय से व्यक्त किया।

'महाभारत' की कथा, पात्र, धर्म और दर्शन मूलत महाभारत के होते हुए भी, अपनी नवीन व्याख्या में आधुनिक बौद्धिक चेतना से युक्त हैं।

किसी भी आर्ष ग्रंथ से प्रभावित साहित्य के मूल्यांकन का यही आधार है कि वह किस रूप में प्राचीन आदर्शों, सांस्कृतिक मूल्यों, सभ्यता के स्तरों की पुन स्थापना कर पाया है और कितने अनुपात में अपने युग की चेतना के प्रति जागरूक रहकर उसे स्पष्ट वाणी दी है। ऐसा साहित्य अति प्राचीन और अति आधुनिक दोनों के मध्य में समन्वय का मार्ग अपना कर सद्वृत्तियों की स्थापना करता है। आधुनिक प्रमुख कवियों ने महाभारतीय चिन्तन के क्षेत्र में—तत्कालीन दृष्टि को आधुनिक रूप देकर समन्वय की विराट् भावना से उपस्थित किया है।

कथा के परिवर्तन का मुख्य आधार कवि का उद्देश्य रहा है। सामान्यत कथा का पुन स्पर्श अधिक हुआ है। आधुनिक प्रबन्ध काव्यों का मुख्य दृष्टिकोण सामाजिक है—सामाजिक उन्नयन, प्राचीन रूढ जड विचारधारा का खण्डन और व्यापक समत्व का प्रतिपादन इन काव्यों की सिद्धि है। इनमें 'महाभारत' की धर्मविधि और दार्शनिक मान्यताओं को युगानुरूप स्वीकृति दी है। 'महाभारत' की कथा को इस युग में ग्रहण करने का सर्वप्रमुख कारण सांस्कृतिक पुनरुत्थान है, जिसमें आधुनिक कवि सफल हुआ है।

आधुनिक वादों, प्रवादों के मध्य विकसित कविता के गीति भाग के साथ जो 'प्रबन्ध' प्राप्त होता है वह मात्रा में बहुत अधिक तो है ही किन्तु सांस्कृतिक उन्नयन

की दृष्टि से उसका महत्व सर्वोपार है। विशेषकर उन काव्यों का, जो 'रामायण' 'महाभारत' के प्रभाव के अन्तर्गत लिखे गये और जिन्होंने पुनरुत्थान युग की चेतना की सटीक अभिव्यक्त करते हुए मानव के शाश्वत धर्माचारों की स्थापना की और शाश्वत धर्म का आख्यान किया।

आधुनिक कवियों का मुख्य उद्देश्य चरित्र-सृष्टि होने के कारण 'महाभारत' के अनेक अति प्राकृत तथ्यों को छोड़ दिया गया है—जिससे 'महाभारत' का चरित्र आधुनिक युग-चेतना का वाहक बन सके।

'महाभारत' के चरित्रों में वीर-युगीन भावना के व्यापक प्रसार के कारण मानवीय संघर्ष का अभाव है किन्तु आज के युग में वे चरित्र मानसिक द्वन्द्व की उस स्वाभाविकता से युक्त हैं जो आज के वैज्ञानिक मानव की मूल विशेषता है।

आधुनिक कवि ने महाभारतीय धार्मिक आचार-विचारों को युग के निष्कर्ष पर रखते हुए रूढ़िरूप में उनका पालन नहीं किया अपितु धर्म के तत्कालीन लोकादर्श और आज के जीवन के यथार्थ संघर्ष में समन्वय करते हुए बौद्धिक आधार पर धर्म का सम्पादन किया है।

आज के कवि की महान् उपलब्धि यह है कि उसने महाभारतीय आध्यात्मिक चिन्तन साधनाओं को आधुनिक सामाजिक उन्नति के साधन रूप में चित्रित किया है—वह उस रूप में दार्शनिक नहीं है किन्तु उसे समस्त दार्शनिक मान्यताएं संस्कार-जन्य रूप में स्वीकृत हैं। वह परमपद की प्राप्ति के लिए उन साधन मार्गों का उपयोग नहीं करता अपितु उनसे मानव उन्नति की सिद्धि प्राप्त करना चाहता है।

सार-रूप में कहा जा सकता है कि महाभारतीय युग और आज के युग में विलक्षण समत्व होने के कारण 'महाभारत' से प्रभावित कवि का साहित्यिक और सामाजिक दायित्व ही इस प्रभाव को स्वीकार करने की प्रेरणा देता है। इस प्रभाव को ग्रहण करके ही वह आज के जीवन को सर्वोपरि आवश्यकता 'मानव में कर्म भावना' के जागरण का प्रसार करने में समर्थ हुआ है।

संदर्भ ग्रंथो की सूची

काव्य ग्रन्थ

१ दूत वाक्य	भास
२ कर्णभार	"
३ दूतघटोत्कच	"
४ उरुभग	"
५ मध्यम व्यायोग	"
६ पचरात्र	"
७ अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास
८ किरातार्जुनीय	भारवि
९ वेणी सहार	नारायण
१० शिशुपाल वध	माघ
११ सुभद्रा धनजय	कुलशेखर वर्मन
१२ कीचक वध	नीतिवमन
१३ बाल-भारत	राजशेखर
१४ नैषधानन्द	क्षेमीश्वर
१५ किरातार्जुनीय व्यायोग	वत्सराज
१६ नैषध चरित्र	श्री हर्ष
१७ नल-विलास	रामचन्द्र
१८ निर्भय भीम	रामचन्द्र
१९ बालभारत	अमरचन्द
२० पाण्डव-चरित्र	देवप्रभसूरी
२१ बाल भारत	अगस्त्य
२२ रिट्ठणेमिचरिउ	स्वयभू
२३ महापुराण	पुष्पदन्त
२४ हरिवश पुराण	धवल
२५ पाण्डव पुराण	यश कीर्ति
२६ हरिवश पुराण	"
२७ हरिवश पुराण	श्रुति कीर्ति
२८ पृथ्वीराज रासो	चन्द्रबरदाई

२९. पंच पाण्डव रास	शालीभद्र सूर्य
३०. रामचरित मानस	गोस्वामी तुलसीदास
३१. सूरसागर	सूरदास
३२. महाभारत	सबलसिंह चौहान
३३. संग्राम सार (द्रोण पर्व)	कुलपति मिश्र
३४. पाण्डु चरित्र	राघोदास
३५. महाभारत कर्णार्जुनी	ठाकुर कवि
३६. नलोपाख्यान	रामनाथ पण्डित
३७. जैमिनी पुराण	जगत मणि
३८. विजय मुक्तावली	छत्रसिंह
३९. पांच पाण्डव चौपाई	लालवर्धन
४०. विदुर प्रजागर	कृष्ण कवि
४१. नल चरित्र	मुकुन्द सिंह
४२. महाभारत "शल्य और गदा पर्व"	
४३. महाभारत 'विराट पर्व तथा सभा पर्व'	
४४. चक्रव्यूह	अज्ञात
४५. द्रोण पर्व भाषा	देवदत्त
४६. धर्म संवाद	जनदयाल
४७. कृष्णायण	शिवदास
४८. धर्मगीता	जगन्नाथ दास
४९. पाण्डव पुराण	लाला बुलाकीदास
५०. पाण्डव यशेन्दु चन्द्रिका	स्वरूप दास
५१. नल दमयन्ती चरित्र	सेवाराम
५२. नल दमयन्ती कथा	अंगद कवि
५३. पाण्डव सत	विशनदास
५४. बभ्रूवाहन की कथा	प्राणनाथ
५५. बबुर वाहन की कथा	रामप्रसाद
५६. दमयन्ती नल की कथा	केवल कृष्ण
५७. नल चरित्र	सेवासिंह
५८. अभिमन्यु कथा	अज्ञात
५९. अभिमन्यु वध	"
६०. जरासंध	गिरधर दास
६१. कृष्ण सागर	जगन्नाथ सहाय
६२. देवयानी	जगन्मोहन सिंह

६३ महाभारत दर्पण	गोकुलनाथ
६४ जैमिनी पुराण	सूर्यबली सिंह
६५ धनंजय विजय	लालताप्रसाद
६६ नैषध काव्य	गुमान मिश्र
६७ विजय मुक्तावली	छत्र कवि
६८ आल्हा महाभारत (भीष्म पर्व)	गंगासहाय गौड़
६९ कृष्णायण	बिसाहूराम
७० संग्राम सार	कुलपति मिश्र
७१ वीर विनोद	श्री पद्मसिंह
७२ जयद्रथ वध	मैथिलीशरण गुप्त
७३ शकुन्तला	मैथिलीशरण गुप्त
७४ द्रौपदी चीरहरण	लोकेश्वर त्रिपाठी
७५ अभिमन्यु का आत्म बलिदान	कमलाप्रसाद वर्मा
७६ कीचक वध	शिवप्रसाद गुप्त
७७ संगीत महाभारत	नथाराम शर्मा गौड़
७८ अभिमन्यु वध	रघुनन्दनलाल मिश्र
७९ दुर्योधन-वध	जगदीश नारायण तिवारी
८० सैरन्ध्री	मैथिलीशरण गुप्त
८१. बक संहार	मैथिलीशरण गुप्त
८२ वन वैभव	मैथिलीशरण गुप्त
८३ अभिमन्यु वध	रामचन्द्र शुक्ल
८४ नल नरेश	प्रताप नारायण
८५ पाण्डव यशेन्द्र चन्द्रिका	स्वरूपदास
८६. महाभारत	श्री लाल खत्री
८७ अभिमन्यु पराक्रम	देवीप्रसाद बरनवाल
८८ नहुष	मैथिलीशरण गुप्त
८९ कृष्णायण	द्वारका प्रसाद मिश्र
९० नकुल	सियाराम शरण गुप्त
९१ अंगराज	आनन्द कुमार
९२ हिडिम्बा	मैथिलीशरण गुप्त
९३ जयभारत	मैथिलीशरण गुप्त
९४ रश्मिरथी	रामधारीसिंह दिनकर
९५ सावित्री	गौरीशंकर मिश्र
९६ शकुन्तला	भगवानदास शास्त्री

९७. शल्यवध	उग्रनारायण मिश्र
९८. पांचाली	डा० रांगेय राघव
९९. विदुलोपाख्यान	भगवतशरण चतुर्वेदी
१००. सती सावित्री	श्री गोपाल स्रोत्रीय
१०१. दमयन्ती	ताराचन्द हारीत
१०२. एकलव्य	डा० रामकुमार वर्मा
१०३. कचदेवयानी	श्री रामचन्द्र
१०४. सेनापति कर्ण	लक्ष्मीनारायण मिश्र
१०५. दानवीर कर्ण	गुरुपद्म सेमवाल
१०६. द्रौपदी	नरेन्द्र शर्मा
१०७. गुरु दक्षिणा	विनोद चन्द्र पाण्डेय
१०८. कौन्तेय कथा	उदयशंकर भट्ट
१०९. भारतेन्दु ग्रन्थावली	सं० व्रजरत्नदास
११०. उद्धव शतक	जगन्नाथ दास रत्नाकर
१११. प्रिय प्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय
११२. गुरुकुल	मैथिलीशरण गुप्त
११३. द्वापर	"
११४. मंगलघट	"
११५. भारत भारती	"
११६. त्रिपथगा	भगवतीचरण वर्मा
११७. पार्वती	रामानन्द तिवारी
११८. लोकायतन	सुमित्रानन्दन पन्त

समीक्षात्मक ग्रन्थ

११९. सियारामशरण गुप्त	सं० डा० नगेन्द्र
१२०. महाभारत मीमांसा	चिन्तामणि विनायक वैद्य
१२१. हिन्दू भारत का उत्कर्ष	"
१२२. भारत सावित्री	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१२३. महाभारत परिचय	गीता प्रेस गोरखपुर
१२४. श्रीमद् भगवद्गीता रहस्य	बालगंगाधर तिलक
१२५. भारतीय दर्शन	डा० बलदेव उपाध्याय
१२६. तुलसी दर्शन मीमांसा	डा० उदयभानुसिंह
१२७. हिंदीमहाकाव्य का स्वरूप विकास	डा० शम्भुनाथ सिंह
१२८. अपभ्रंश साहित्य	डा० हरिवंश कोछड़
१२९. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो	सं० डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

१३०	चन्दवरदाई और उनका काव्य	त्रिवेदी
१३१	मापण कवियो	श्री कें का शास्त्री
१३२	आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य	डा० हरिशकर शर्मा
१३३	मध्य युगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन	डा० सत्येन्द्र
१३४	युद्ध और अहिंसा	महात्मा गाधी
१३५	अहिंसा दर्शन	बलभद्र जैन
१३६	गान्धी और गाधीवाद	बलभद्र जैन
१३७	गुप्त जी की कला	डा० सत्येन्द्र
१३८	हिन्दुत्व	रामदास गौड
१३९	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल
१४०	सस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गैरोला
१४१	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा० श्रीकृष्णलाल
१४२	रसमीमासा	रामचन्द्र शुक्ल
१४३	मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य	डा० कमलाकान्त पाठक

संस्कृत ग्रन्थ

१	ऋग्वेद	
२	अथर्ववेद	
३	केनोपनिषद्	
४	मुण्डकोपनिषद	
५	वृहदारण्यक उपनिषद्	
६	माण्डूक्योपनिषद	
७	कौषीतकि उपनिषद	
८.	छान्दोग्य उपनिषद	
९	मुक्तिकोपनिषद	
१०	गीता	शकर एव रामानुज भाष्य
११.	सर्वतन्त्र सिद्धान्त पदार्थ लक्षण सग्रह	म० गौरीशकर मिश्र
१२	तत्वदीप निबन्ध	श्री वल्लभाचार्य
१३	निरुक्त	यास्क
१४	महाभारत	गीता प्रेस गोरखपुर

अंग्रेजी पुस्तकें

१. इम्पीरियल गजट आव इण्डिया ग्रियर्सन
२. चैम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया
३. सोशोलोजी आव रिलीजन जोचिनवाच
४. जरनल आफ अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी
५. दी क्राउन आव हिन्दुइज्म जे० एन० फरगूसन
६. महाभारत ए हिस्ट्री एण्ड ए ड्रामा राय प्रमाथामलिक
७. हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर विन्टर नित्ज
८. दी ग्रेट एपिक आव इण्डिया हापफिन्स
९. हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर मैकडोनल
१०. दी महाभारत ए क्रिटिसिज्म सी० वी० वैद्य
११. शक्ति एण्ड शाक्त सरजोन वुडरफ
१२. दि फिलासफी आव रवीन्द्रनाथ एस० के० मैत्रा
१३. हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर वी० वरदाचार्य
१४. दि हीरोइक एज आव इण्डिया एन० के० सिद्धान्त

———:०:———